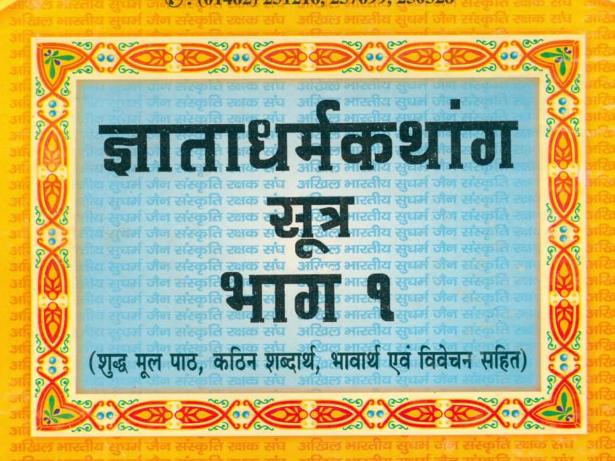
अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ



शाखा कार्यालय

नेहरू गेट बाहर, ब्यावर (राजस्थान) (c): (01462) 251216, 257699, 250328



आवरण सौजन्य

विद्या बाल मंडली सोसायटी, मेरठ

श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ साहित्य रत्न माला का ११६ वाँ रत्न

ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र

(अध्ययन १ से ८)

(शुद्ध मूल पाठ, कठिन शब्दार्थ, भावार्थ एवं विवेचन सहित)

अनुबादक

प्रो० डॉ० छगनलाल शास्त्री एम. ए. (त्रव), पी. एच.डी., काव्यतीर्थ, विद्यामहोदधि

> महेन्द्रकुमार रांकावत बी.एस.सी. एम. ए., रिसर्च स्कॉलर

> > संस्थात्क

नेमीचन्द बांठिया पारसमल चण्डालिया

प्रकाशक

श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, जोधपुर शास्त्रा-नेहरू गेट बाहर, ब्यावर-305901

२० (01462) 251216, 257699 फेक्स **250328**

द्रव्य सहायक

उदारमना श्रीमान् सेठ जशवंतलाल भाई शाह, बम्बई प्राप्ति स्थान

- १. श्री अ. भा. सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, सिटी पुलिस, जोधपुर 🕾 2626145
- २. शाखा-अ. भा. सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, नेहरू गेट बाहर, ब्यावर 🕸 251216
- ३. महाराष्ट्र शाखा-माणके कंपाउंड, दूसरी मंजिल आंबेड़कर पुतले के बाजू में, मनमाड़
- ४. श्री जशवन्तभाई शाह एदुन बिल्डिंग पहली धोबी तलावलेन पो० बॉ० नं० 2217, **बम्बई-2**
- ५. श्रीमान् हस्तीमल जी किशनलालजी जैन प्रीतम हाऊ० कॉ० सोसा० ब्लॉक नं० १०

स्टेट बैंक के सामने, मालेगांव (नासिक) 🟖 252097

- ६. श्री एच, आर. डोशी जी-३९ बस्ती नारनौल अजमेरी गेट, दिल्ली-६ 🕸 23233521
- ७. श्री अशोकजी एस. छाजेड़, १२१ महावीर क्लॉथ मार्केट, अहमदाबाद 🕸 5461234
- श्री सुधर्म सेवा सिमिति भगवान् महावीर मार्ग, बुलडाणा
- ६. श्री श्रुतज्ञान स्वाध्याय समिति सांगानेरी गेट, भीलवाड़ा 😂 236108.
- श्री सुधर्म जैन आराधना भवन २४ ग्रीन पार्क कॉलोनी साउथ तुकोगंज, इन्दौर
- 99. श्री विद्या प्रकाशन मन्दिर, ट्रांसपोर्ट नगर, मेरठ (उ. प्र.)
- १२. श्री अमरचन्दजी छाजेड़, १०३ वाल टेक्स रोड़, चैन्नई 🙈 25357775
- १३. श्री संतोषकुमार बोथरा वर्द्धमान स्वर्ण अलंकार ३६४, शॉपिंग सेन्टर, कोटा 🕸 2360950

मूल्य : ४०-००

तृतीय आवृत्ति १००० वीर संवत् २५३३ विक्रम संवत् २०६३ दिसम्बर २००६

मुद्रक - स्वास्तिक प्रिन्टर्स प्रेम भवन हाथी भाटा, अजमेर 🕾 2423295

प्रस्तावना

साहित्य समाज का दर्पण माना जाता है, जिसके आइने पर उस समाज की समस्त गित विधियों का प्रतिबिम्ब दृष्टि गोचर होता है। साहित्य के बल पर ही सम्बन्धित समाज के ज्ञान-विज्ञान, न्याय-नीति, आचार-विचार, धर्म, दर्शन, संस्कृति, खान-पान, रीति-रिवाज आदि की जानकारी होती है। भारतीय साहित्य का यदि सिंहावलोकन किया जाय तो जैन साहित्य का अपना विशिष्ट और गौरवपूर्ण स्थान है। इसका कारण अन्य दर्शनों के साहित्य को हलका बताना नहीं बिल्क वास्तविकता है। क्योंकि अन्य सभी दर्शनों के साहित्य छद्मस्थ कथित अनेक ऋषियों के विचारों का संकलन है जो विभिन्नताएं लिए हुए होने के कारण पूर्वापर विरोधी एवं ज्ञान की अल्पता के कारण अपूर्ण हैं, जबिक जैन आगम साहित्य राग द्वेष के विजेता तीर्थंकर प्रभु द्वारा कथित है, जिसमें वक्ता के साक्षात् दर्शन और वीतरागता के कारण दोष की किंचित् मात्र भी संभावना नहीं रहती, न ही उनमें पूर्वापर विरोध मिलता है।

जैन आगम साहित्य की जो प्रामाणिकता है, उसका कारण मात्र गणधर कृत होने से नहीं बिल्क इसके अर्थ के मूल प्ररूपक तीर्थंकर भगवान् की वीतरागता और सर्वज्ञता है। जो आगम साहित्य तीर्थंकर कथित एवं गणधर रचित होता है, उसे जैन दर्शन में द्वादशांगी रूप अंग प्रविष्ट साहित्य कहा जाता है। इसके अलावा कुछ ऐसे साहित्य को भी जैन दर्शन मान्यता प्रदान करता है जो श्रुतकेवली (दस से चौदह पूर्व के ज्ञाता) द्वारा रचित होता है। इस साहित्य को आगम शैली में अंग बाह्य कहा जाता है। श्रुत केवली द्वारा रचित आगम साहित्य को भी आगम मनीषी उतना ही प्रमाणित मानते हैं जितना अंग प्रविष्ट साहित्य को। इसका कारण रचियता की श्रुतज्ञान की विशुद्धता है। जो बात तीर्थंकर प्रभु कह सकते हैं, उस को श्रुत केवली अपने ज्ञान बल से उसी रूप में कह सकते हैं। दोनों में इतना ही अन्तर है कि केवलज्ञानी सम्पूर्ण तत्त्व को प्रत्यक्ष रूप में जानते देखते हैं, जबिक श्रुत केवली श्रुत ज्ञान के द्वारा परोक्ष रूप से जानते हैं। साथ ही उनकी रचनाएं इसलिए भी प्रामाणिक मानी जाती हैं क्योंकि वे नियमतः सम्यग् दृष्टि ही होते हैं। इस प्रकार जैन दर्शन आगम साहित्य के रूप में सर्वज्ञ कथित एवं गणधर रचित अथवा श्रुतकेवली द्वारा रचित को मान्यता प्रदान करता है।

www.jainelibrary.org

वर्तमान में जो आगम साहित्य उपलब्ध है, उसका समय-समय पर आगम मनीषियों ने विभिन्न रूपों में वर्गीकरण किया है। नंदी सूत्र के रचियता आचार्य श्री देववाचक ने अंग प्रविष्ट और अंग बाह्य दो भागों में विभक्त कर पुनः अंग बाह्य को आवश्यक और आवश्यक व्यतिरिक्त में विभक्त किया। इसके अलावा कालिक और उत्कालिक के रूप में भी इनको प्रतिष्ठित किया है। पश्चात्वर्ती आचार्यों ने अंग, उपांग, मूल, छेद और आवश्यक सूत्र के रूप में इनका वर्गीकरण किया। इसके अलावा विषय सामग्री के संकलन के आधार पर द्रव्यानुयोग, गणितानुयोग, धर्मकथानुयोग और चरणकरणानुयोग के आधार से इसे चार भागों में भी वर्गीकृत किया गया है। इस प्रकार अनेक प्रकार का वर्गीकरण होने पर भी सभी आगम साहित्य के मूल रचियता तो दो ही हैं या तो गणधर भगवन् अथवा स्थविर श्रुत-केवली भगवन्। प्रस्तुत ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र अंग प्रविष्ट द्वादशांगी का छठा अंग सूत्र है। विषय सामग्री की अपेक्षा कथा प्रधान होने से यह धर्मकथानुयोग के अन्तिगत आता है। समवायांग सूत्र के बारहवें समवाय में ज्ञानाधर्मकथांग की विषय सामग्री के बारे में निम्न पाठ है।

शिष्य प्रश्न करता है कि अहो भगवन्! ज्ञाताधर्मकथा में क्या भाव फरमाये गये हैं? भगवान् फरमाते हैं कि ज्ञाताधर्मकथा में ज्ञात अर्थात् प्रथम श्रुतस्कन्ध में उदाहरण रूप से दिये गये मेघकुमार आदि के नगर, उद्यान, चैत्य-यक्ष का मन्दिर, वनखण्ड, राजा, माता-पिता, समवसरण, धर्माचार्य, धर्मकथा, इहलौकिक पारलौकिक ऋदि, भोगों का त्याग, प्रव्रज्या, श्रुत(सूत्र)परिग्रह-सूत्रों का ज्ञान, उपधान आदि तप, पर्याय-दीक्षा काल, संलेखना, भक्त प्रत्याख्यान-आहार आदि का त्याग, पादपोपगमन संथारा, देवलोकगमन-देवलोकों में उत्पन्न होना। देवलोकों से चव कर उत्तम कुल में जन्म लेना, फिर बोधिलाभ सम्यक्त्व की प्राप्ति होना और अन्त क्रिया आदि का वर्णन किया गया है।

तीर्थंकर भगवान् के विनय मूलक धर्म में दीक्षित होने वाले, संयम की प्रतिज्ञा को पालने में दुर्बल बने हुए, तप नियम तथा उपधान तप रूपी रण में संयम के भार से भगनचित्त बने हुए घोर परीषहों से पराजित बने हुए ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूप मोक्ष मार्ग से पराजमुख बने हुए, तुच्छ विषय सुखों की आशा के वशीभूत एवं मूच्छित बने हुए साधु के विविध प्रकार के आचार से शून्य और ज्ञान, दर्शन, चारित्र की विराधना करने वाले व्यक्तियों का ज्ञाताधर्मकथा

सूत्र में वर्णन किया गया है और यह बतलाया गया है कि वे इस अपार संसार में नाना दुर्गतियों में अनेक प्रकार का दुःख भोगते हुए बहुत काल तक भव भ्रमण करते रहेंगे।

परीषह और कषाय की सेना को जीतने वाले, धैर्यशाली तथा उत्साह पूर्वक संयम का पालन करने वाले, ज्ञान, दर्शन, चारित्र की सम्यक् आराधना करने वाले, मिथ्यादर्शन आदि शल्यों से रहित, मोक्षमार्ग में प्रवृत्ति करने वाले, धैर्यवान् पुरुषों को अनुपम स्वर्ग, सुखों की प्राप्ति होती है। यह ज्ञाताधर्मकथा सूत्र में बतलाया गया है। वहाँ देवलोकों में उन मनोज्ञ दिव्य भोगों को बहुत काल तक भोग कर इसके पश्चात् आयु क्षय होने पर कालक्रम से वहाँ से चव कर उत्तम मनुष्य कुल में उत्पन्न होते हैं फिर ज्ञान, दर्शन चारित्र रूप मोक्ष मार्ग का सम्यक् पालन कर मोक्ष को प्राप्त करते हैं, यह ज्ञाताधर्मकथा सूत्र में बतलाया गया है। यदि कर्मवश कोई मुनि संयम मार्ग से चिलत हो जाय तो उसे संयम में स्थिर करने के लिए बोधप्रद-शिक्षा देने वाले संयम के गुण और असंयम के दोष बतलाने वाले देव और मनुष्यों के दृष्टान्त दिये गये हैं और प्रतिबोध के कारणभूत ऐसे वाक्य कहे गये हैं। जिन्हें सुन कर लोक में मुनि शब्द से कहे जाने वाले शुक परिव्राजक आदि जन्म जरा मृत्यु का नाश करने वाले इस जिनशासन में स्थित हो गये और संयम का आराधन करके देवलोक में उत्पन्न हुए और देवलोक से चव कर मनुष्य भव में आकर सब दु:खों से रहित होकर शाश्वत मोक्ष को प्राप्त करेंगे। ये भाव और इसी प्रकार के दूसरे बहुत से भाव बहुत विस्तार के साथ और कहीं-कहीं कोई भाव संक्षेप से कहे गये हैं।

ज्ञाताधर्मकथा सूत्र में परिता वाचना है, संख्याता अनुयोगद्वार हैं यावत् संख्याता संग्रहणी गाथाएं हैं। अंगों की अपेक्षा यह छठा अंग है। इसके दो श्रुतस्कन्ध हैं, उन्नीस अध्ययन हैं, वे संक्षेप से दो प्रकार के कहे गये हैं - चारित्र रूप और कल्पित। धर्मकथा नामक दूसरे श्रुतस्कन्ध में दस वर्ग हैं। प्रत्येक धर्मकथा में पांच सौ पांच सौ आख्यायिका हैं। प्रत्येक आख्यायिका में पांच सौ उपाख्यायिकाएं हैं। प्रत्येक उपाख्यायिका में पांच सौ पांच सौ आख्यायिकाएं उपाख्यायिकाएं हैं। इस प्रकार इन सब को मिला कर परस्पर गुणन करने से साढे तीन करोड़ आख्यायिकाएं-कथाएं होती हैं ऐसा श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने फरमाया है। ज्ञाताधर्मकथा सूत्र में २६ उद्देशे हैं, २६ समुद्देशे हैं, संख्याता हजार यानी ५७६००० एद कहे गये हैं। संख्याता

अक्षर हैं यावत् चरणसत्तरि करणसत्तरि की प्ररूपणा से कथन किया गया है। यह ज्ञाताधर्मकथासूत्र का संक्षिप्त विषय वर्णन है।

विवेचन - ज्ञाताधर्मकथाझ सूत्र में दो श्रुतस्कन्ध हैं। पहले श्रुतस्कन्ध के उन्नीस अध्ययन हैं। उनको ज्ञात अध्ययन कहते हैं। इनमें से दस अध्ययन ज्ञात (उदाहरण) रूप हैं। अतः इनमें आख्याइका (कथा के अन्तर्गत कथा) संभव नहीं है। बाकी के नौ अध्ययनों में से प्रत्येक में ४४०-४४० आख्याइकाएं हैं। इनमें भी एक-एक आख्याइका में ५००-५०० उपाख्याइकाएं हैं। इन उपाख्याइकाओं में भी एक एक उपाख्याइका में ५००-५०० आख्याइकाएं-उपाख्याइकाएं हैं। इस प्रकार इनकी कुल संख्या एक अरब इक्कीस करोड़ और पचास लाख (१२१५०००००) इतनी हो जाती है। जैसा कि गाथा में कहा है -

एगवीसंकोडिसयं, लक्खापण्णासमेव बोद्धव्या। एवं ठिए समाणे, अहिगयसुत्तस्स पत्थारा॥ एकविंशं कोटिशतं लक्षाः पञ्चाशदेव बोद्धव्याः। एवं स्थिते सति अधिकृत सुत्रस्य प्रस्तारः॥

इस प्रकार नौ अध्ययनों का विस्तार कहे जाने पर अधिकृत इस सूत्र का विस्तार वर्णित हो जाता है। यद्यपि 'ज्ञात' इस स्वरूप वाले नौ अध्ययनों की आख्याइका आदि की संख्या मूल में उपलब्ध नहीं है तो भी वृद्ध परम्परा में यह प्रचलित है। इसलिए यहाँ लिख दी गयी हैं। इससे जिज्ञासुओं के ज्ञान में वृद्धि होने की संभावना है।

दूसरे श्रुतस्कन्ध में जो अहिंसादि रूप धर्म कथाओं के दस वर्ग (समूह) हैं। उनमें एक-एक धर्मकथा में ५००-५०० आख्याइकाएँ हैं। एक-एक आख्याइका में ५००-५०० उपाख्याइकाएं हैं। एक-एक उपाख्याइका में ५००-५०० आख्याइकाउपाख्याइकाएं हैं। इस प्रकार पूर्वापर की संयोजना करने पर तीन करोड़ पचास लाख (३५०००००) आख्याइकाओं की संख्या हो जाती है।

शंका - धर्म कथाओं में इन आख्याइका, उपाख्याइका, आख्याइकाउपाख्याइका इन तीनों की संख्या एक अरब पच्चीस करोंड़ पचास लाख (१२५५०००००) होती है तो फिर यहाँ, सूत्रकार ने इनकी संख्या तीन करोड़ पचास लाख ही क्यों कही है?

समाधान - नौ ज्ञातों (उदाहरण) की जो आख्याइका आदि की संख्या बतलाई गयी है। ऐसी ही आख्याइकाएं आदि दस धर्मकथाओं में भी हैं। इसलिए दस धर्म कथाओं में कही हुई आख्याइका आदि की संख्या में से नव ज्ञात में कही हुई आख्याइका आदि की संख्या को कम करके अपुनरुक्त आख्याइका आदि बचती हैं उनकी संख्या साढ़े तीन करोड़ (३५०००००) ही होती है। इस प्रकार पुनरुक्ति दोष से वर्जित आख्याइका आदि की संख्या का कथन मूल में - ''एवमेव सपुव्यावरेणं अद्धुद्वाओ अक्खाइयाकोडीओ भवंतीति मक्खाओ'' - साढ़े तीन करोड़ किया गया है।

वर्तमान में जो दूसरा श्रुतस्कन्ध उपलब्ध होता है उसमें धर्मकथाओं के द्वारा धर्म का स्वरूप बतलाया गया है। इसमें दस वर्ग हैं। तेईसवें तीर्थंकर पुरुषादानीय भगवान् पार्श्वनाथ के पास दीक्षा ली हुई २०६ आर्यिकाओं (साध्वियों) का वर्णन है। वे सब चारित्र की विराधक बन गयी थी। अन्तिम समय में उसकी आलोचना और प्रतिक्रमण किये बिना ही काल धर्म प्राप्त हो गयी। भवनपतियों के उत्तर और दक्षिण के बीस इन्द्रों के तथा वाणव्यंतर देवों के दक्षिण और उत्तर दिशा के बत्तीस इन्द्रों की एवं चन्द्र, सूर्य, प्रथम देवलोक के इन्द्र सौधर्मेन्द (शक्रेन्द्र) तथा दूसरे देवलोक के इन्द्र ईशानेन्द्र की अग्रमहिषियों हुई हैं। वहाँ से चव कर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हो जायेंगी।

आगम साहित्य में यद्यपि अंतगडदसा, अनुत्तरोववाइय सूत्र तथा विपाक सूत्र आदि अंग भी कथात्मक है तथापि इन सब अंगों की अपेक्षा ज्ञातधर्म कथांग सूत्र का अपना विशिष्ट स्थान है। इसका अनुभव पाठक वर्ग स्वयं इसके पारायण से कर सकेंगे। इसके दो श्रुत स्कन्ध हैं। प्रथम श्रुतस्कन्ध में उन्नीस अध्ययन हैं और द्वितीय श्रुतस्कन्ध में दस वर्ग हैं जिस में तीर्थंकर प्रभु पाश्वनाथ के पास दीक्षित २०६ साध्वियों का वर्णन है जो चारित्र विराधक होने से विभिन्न देवलोक में देवी के रूप में उत्पन्न हुई।

जीव के आध्यात्मिक उत्थान में धर्म तत्त्व के गंभीर रहस्यों को समझने के लिए कथा साहित्य बहुत ही उपयोगी है। कथानकों के माध्यम से दुस्ह से दुस्ह विषय भी आसानी से समझ में आ जाता है। जैन आगम साहित्य में जितना महत्त्व द्रव्यानुयोग, गणितानुयोग, चरणकरणानुयोग का है उतना ही महत्त्व धर्मकथानुयोग साहित्य का भी है। प्रस्तुत आगम में जिन मूल एवं अवान्तर

कथाओं का उल्लेख हुआ है, वे सभी कथाएं जीव का आध्यात्मिक समुत्कर्ष करने वाली हैं। आत्मभाव अनात्मभाव का स्वरूप, साधक के लिए आहार का उद्देश्य, संयमी जीवन की कठोर साधना, शुभ परिणाम, अनासिक्त, श्रद्धा का महत्त्व आदि विषयों पर बड़ा ही मार्मिक प्रकाश कथाओं के माध्यम से इस आगम में किया गया है। एक-एक अध्ययन की कथा एवं उसमें आई अवान्तर कथाओं का सावधानी से पारायण किया जाय तो जीवन उत्थान में बहुत ही सहयोगी बन सकती हैं। संक्षिप्त में इसकी मुख्य उन्नीस कथाएं यहाँ दी जा रही है।

प्रथम अध्ययं :- यह अध्ययन मगध अधिपित महाराज श्रेणिक के सुपुत्र मेघकुमार का है। मेघकुमार ने बड़े ही उत्कृष्ट भावों से संयम ग्रहण किया। दीक्षा की प्रथम रात्रि को ज्येष्ठानुक्रम के अनुसार उनका संस्तारक (बिछौना) सभी मुनियों के अन्त में लगा, जिससे रात्रि में संतों के आने-जाने से उनके पैरों की टक्कर धूली आदि से मेघमुनि को रात्रि भर नींद नहीं आई, संयम में धोर कष्टों का अनुभव होने लगा। अतएव उन्होंने प्रातः होते ही भगवान् से पूछ कर घर लौटने का निश्चय किया। प्रातःकाल जब वे प्रभु के समक्ष उपस्थित हुए तो प्रभु ने उनके मनोगत भावों को प्रकट किया और उनके पूर्व हाथी के भवों में सहन किए गए घोरातिघोर कष्टों का विस्तृत वर्णन किया। कहा-हे मेघमुनि! इतने घोर कष्टों को तो सहन कर लिए और रात्रि के मामूली कष्ट से घबरा कर घर जाने का विचार कैसे कर लिया? मेघमुनि का इस पर चिंतन चला जिससे उन्हें जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ, जिसके बल से उन्होंने प्रत्यक्ष भगवान् द्वारा फरमाये गए पूर्वभवों को देखा। फलस्वरूप अपनी स्खलना के लिए पश्चाताप करने लगे बोले-भगवन् आज से दो नेत्रों को छोड़कर समग्र शरीर श्रमण निर्गन्थों की सेवा में समर्पित है।

इस कथानक से मेघमुनि के संयम की पहली रात्रि अनात्मभाव का बोध कराती है। जबिक भगवान् के उपदेश के बाद संयम में स्थिर होना आत्मभाव का संकेत करता है। जीव अनात्मभाव में होता है, तब उसे सामान्य कष्ट भी उद्धेलित कर डालते हैं, वही जीव जब आत्मभाव में स्थित होता है तो बड़े से बड़ा कष्ट भी निर्जरा का हेतु नजर आने लगता है।

दूसरा अध्ययन :- इस अध्ययन में बतलाया गया है कि संयमी साधक को संयम के साधनभूत शरीर को टिकाये रखने के लिए इसे आहार देना पड़ता है। पर साधक को आहार ग्रहण में न तो आसक्ति रखनी चाहिए न ही शरीर की पुष्टता का लक्ष्य रखना चाहिये।

धन्य सार्थवाह और उसकी पत्नी भद्रा को बड़ी मनौती के बाद एक पुत्र की प्राप्ति हुई। एक दिन भद्रा ने अपने पुत्र को नहला-धुलाकर अनेक आभूषणों से सुसज्जित कर अपने पंथक नामक दास चेटक को खिलाने के लिए दिया। पंथक उसे एक स्थान पर बिठा कर स्वयं खेलने लग गया। उधर विजय चोर गुजरा उसने उस बालक को आभूषणों से लदा देख उठा कर ले गया और गहने उतार कर बालक को अंध कूप में डाल दिया। नगर रक्षकों ने विजय चोर को पकड़ा और कारागार में डाल दिया। इधर कुछ समय बाद किसी के चुगली खाने पर एक साधारण अपराध में धन्य सार्थवाह को भी राजा ने कारागार में डाल दिया। विजय चोर और धन्य सार्थवाह दोनों एक ही बेड़ी में डाल दिए गए।

धन्यसार्थवाह की पत्नी भद्रा सेठ के लिए विविध प्रकार का भोजन तैयार करके अपने नौकर के साथ कारागार में भेजती। उस भोजन में से विजय चोर ने सेठ से कुछ हिस्सा मांगा तो सेठ ने अपने पुत्र की हत्यारा होने के कारण भोजन देने से इन्कार कर दिया। थोड़ी देर बाद सेठ को मल-मूत्र विसर्जन की बाधा उत्पन्न हुई। तो विजय चोर सेठ के साथ जाने को तैयार नहीं हुआ। वह बोला-तुमने भोजन किया है, तुम्ही जाओ, मैं भूखा प्यासा मर रहा हूँ। मुझे कोई बाधा नहीं है इसलिए मैं नहीं चलता। धन्य विवश होकर बाधा निवृत्ति के लिए दूसरे दिन से अपने भोजन का कुछ हिस्सा विजय चोर को देना चालू कर दिया। दास चेटक ने यह बात घर जाकर सेठ की पत्नी भद्रा को कही, तो वह बहुत नाराज हुई।

कुछ दिन पश्चात् सेठ कारागार से छूट कर घर गया तो बाकी सभी लोगों ने तो उसका स्वागत किया, किन्तु पत्नी भद्रा पीठ फेर कर नाराज होकर बैठ गई। धन्य सार्थवाह के नाराजी का कारण पूछने पर भद्रा ने कहा कि मेरे लाडले पुत्र के हत्यारे वैरी विजय चोर को आप आहार-पानी में से हिस्सा देते थे, इससे मैं नाराज कैसे न होऊं? धन्य सार्थवाह ने सेठानी भद्रा की नाराजी का कारण जानकर उसे समझाते हुए कहा कि मैंने उस वैरी को भोजन का हिस्सा तो दिया पर धर्म समझ कर, कर्तव्य समझ कर नहीं दिया, प्रत्युत मेरे मल-मूत्र की बाधा निवृत्ति में वह सहायक बना रहे इस उद्देश्य से मैंने उसे हिस्सा दिया। इस स्पष्टीकरण से भद्रा को संतोष हुआ। वह प्रसन्न हुई।

इस कथानक के माध्यम से प्रभु संयमी साधक को संकेत करते हैं कि जैसे धन्य सार्थवाह ने ममता प्रीति के कारण विजय चोर को आहार नहीं दिया, मात्र अपने शरीर की बाधा निवृत्ति में सहयोगी बना रहे, इसीलिए मामूली भोजन का हिस्सा दिया। उसी प्रकार निर्ग्रन्थ मुनि को भी अनासक्त भाव से अपने शरीर को आहार-पानी देना चाहिए जिससे इसके द्वारा सम्यग् ज्ञान, दर्शन, चारित्र का समुचित पालन हो सके।

तीसरा अध्ययन :- इस अध्ययन के कथानक का सम्बन्ध जिन प्रवचन पर शंका, कांक्षा या विचिकित्सा न करने से सम्बन्धित है। जो साधक "तमेव सच्चं णीसंकं जं जिणेहिं पवेइयं" आगम वचनों पर श्रद्धा रख कर तदनुसार आचरण करता है, वह अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। इसके विपरीत वीतराग वचनों में शंका, कांक्षा रखने वाला भटक जाता है।

जिनदत्त पुत्र और सागरदत्त पुत्र दोनों मित्र थे, वे एक समय आमोद-प्रमोद हेतु उद्यान में गए। वहाँ उन्होंने मयूरी के दो अंडों को देखा। उन्होंने दोनों अंडों को उठाया और अपने-अपने घर लेकर आ गए। सागरदत्त पुत्र शंकाशील था कि इसमें से मयूर निकलेगा अथवा नहीं, अतएव वह बार-बार अंडे को उठाता, उलट-पलट कर कानों के पास ले जाकर बजाता इससे वह अंडा निर्जीव हो गया, उसमें से बच्चा नहीं निकला। इसके विपरीत जिनदत्त पुत्र श्रद्धा सम्पन्न था, अतएव उसने उसे मयूर पालकों को सौंप दिया, मयूरी के द्वारा उस अंडे को सेवने के कारण कुछ दिनों बाद उसमें से एक सुन्दर मयूर का बच्चा निकला, जिसे जिनदत्त पुत्र ने बाद में नाचने आदि की कला में पारंगत किया। फलस्वरूप उसने खूब अर्थोपार्जन एवं मनोरंजन किया। कथानक सार है - वीतराग वचन में शंका रखना अनर्थ एवं भवभ्रमण का कारण है। जबकि शंका रहित होकर इसकी साधना आराधना करना मुक्ति के अनन्त सुखों का हेतु है।

चतुर्थ अध्ययका :- इस अध्ययन का कथानक इन्द्रिय निग्रह से सम्बन्धित है। आत्म साधना के पथिकों के लिए इन्द्रिय गोपन करना आवश्यक है। जो संयमी साधक संयम ग्रहण करने के बाद इन्द्रियों का निग्रह नहीं करता है, वह संयम च्यूत होकर अपना संसार बढ़ा लेता है। इसके विपरीत जो संयमी साधक संयम ग्रहण करके इन्द्रियों का निग्रह कर लेते हैं, वे इस भव में भी वंदनीय पूज्यनीय होते हैं और भवान्तर में मोक्ष के अक्षय सुखों को प्राप्त कर लेते हैं।

इस अध्ययन में दो कूर्म (कच्छप) का उदाहरण देकर बतलाया गया कि एक कूर्म ने इन्द्रियों का गोपन किया वह सियार के शिकार से बच गया। दूसरा कूर्म जो चंचल प्रवृत्ति का था उसने ज्यों ही अपनी एक-एक करके इन्द्रियों को बाहर निकाला, सियार ने उन्हें खा कर उसे प्राणहीन कर दिया। अतएव संयमी साधक को अपनी इन्द्रियों का निग्रह करना चाहिये।

पंचा अध्याया - इस अध्ययन में बतलाया गया है कि यदि कोई संयमी साधक संयम की साधना आराधना करते हुए शिथिल हो जाता है एवं बाद में किसी निमित्त को पाकर वह पुनः जागृत हो संयम में पूर्ण पुरुषार्थ करने लग जाता है तो शैलक राजर्षि मुनि की भांति वह आराधक हो कर अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है।

इस अध्ययन में मूल कथानक के साथ दो-तीन अवान्तर कथानक भी हैं। शैलकपुर नगर के राजा शैलक ने अपने पांच सौ मंत्रियों के साथ अपने पुत्र मंडुक को राजगद्दी पर बिठा कर दीक्षा अंगीकार की। साधु-जीवन की कठोर साधना के कारण उनका शरीर पित्तज्वर आदि रोग से ग्रसित हो गया। एक बार विचरण करते हुए शैलक मुनि अपने पांच सौ शिष्यों के साथ शैलक नगर में पधारे, उनके पुत्र मण्डुक राजा ने अपने पिता श्री मुनि को यथा योग्य चिकित्सा कराने का निवेदन किया, शैलक मुनि ने स्वीकृति प्रदान कर दी। नशीली औषधियों एवं सरस भोजन के उपयोग में शैलक मुनि इतने मस्त हो गए कि विहार करने तक का नाम ही नहीं लेते। ऐसे स्थिति में उनके मुख्य मंत्री पंथक मुनि को उनकी सेवा में रख कर शेष ४६६ शिष्यों ने अन्यत्र विहार कर दिया।

कार्तिक चौमासी का दिन था। शैलक मुनि आहार पानी एवं नशीली औषधि का सेवन कर सुख पूर्वक सोये हुए थे। उनका शिष्य पंथक मुनि ने सर्व प्रथम दैवसिक प्रतिक्रमण किया। इसके पश्चात् उन्होंने चातुर्मासिक प्रतिक्रमण की आज्ञा के लिए अपना मस्तक अपने गुरु शैलक मुनि के चरणों में रखा। शैलक मुनि गहरी निद्रा में सोये हुए थे ज्यों ही उनके मस्तक का स्पर्श शैलकमुनि के चरणों को हुआ तो वे एक दम कुद्ध हुए और बोले अरे कौन है, मौत की इच्छा करने वाला, दुष्ट जिसने मेरे पैरों को छू कर मेरी निद्रा भंग कर दी। इस पर पंथक मुनि ने दोनों हाथ जोड़कर निवेदन किया भगवन्! मैं आपका शिष्य पंथक हूँ। मैंने दैवसिक प्रतिक्रमण कर लिया है और चौमासी प्रतिक्रमण करने के लिए उद्यत हुआ हूँ, इसलिए मैंने अपने मस्तक से आपके चरणों को स्पर्श किया है, सो देवानुप्रिय! मेरा अपराध क्षमा कीजिये। पंथकमुनि के इस प्रकार कहने पर शैलक राजर्षि की आत्मा एक दम जागृत हुई, अहो मैंने राज्य रिद्धि का त्याग कर संयम अंगीकार किया और संयम में इतना शिथिलाचारी एवं आलसी बन गया कि चार माह गुजर जाने का भी मुझे भान नहीं रहा। इस प्रकार विचार कर दूसरे ही दिन पंथक अनगार के साथ शैलक राजर्षि ने विहार कर दिया और ग्रामानुग्राम विचरने लगे। जब अन्य ४६६

शिष्यों को इस बात की जानकारी हुई तो वे सभी शिष्य राजर्षि शैलक के पास आए और सभी आकर साथ विचरने लगे। इस प्रकार शैलक मुनि ने अपने पांच सौ शिष्यों के साथ वर्षों तक संयम का पालन कर सिद्ध गति को प्राप्त किया।

इस अध्ययन में चौमासी को दो प्रतिक्रमण करने का स्पष्ट पाठ है, कई भद्रिक महानुभाव कह देते हैं कि यह तो भगवान अरिष्टनेमि प्रभु के शासन की बात है, उन महानुभावों को जानना चाहिये कि जब भगवान अरिष्टनेमि प्रभु के शासनवर्ती सयमी साधकों के लिए कालोकाल प्रतिक्रमण करना आवश्यक भी नहीं था, उस समय भी उन्होंने दो प्रतिक्रमण किए, तो जहाँ वीर प्रभु के शासन में कालोकाल प्रतिक्रमण करना आवश्यक है, वहाँ तो दो प्रतिक्रमण आवश्यक ही नहीं अपितु अनिवार्य मानना चाहिये।

छठा अध्यया – इस अध्ययन में जीव की गुरुता और लघुता का विचार किया गया है। उदाहरण देकर समझाया गया है कि जिस प्रकार तूंबे पर मिट्टी के आठ लेप कर उसे यदि जलाशय में डाला जाय तो वह जलाशय के पैंदे में चला जाता है और ज्यों-ज्यों उसके लेप उतरते जाते हैं। त्यों-त्यों तूंबा हलका होकर ऊपर उठता है एवं आठों लेप हटने पर तूंबा जलाशय पर तैरने लग जाता है। इसी प्रकार जीव आठ कर्मों से युक्त होने पर चतुर्गति में परिभ्रमण करता है और ज्यों ही आठ कर्मों से रहित हो जाता है तब लोक के अग्रभाग (मोक्ष) को प्राप्त कर लेता है।

सातवां अध्ययन - इस अध्ययन में धन्य सार्थवाह और उसकी चार पुत्र वधुओं का दृष्टान्त जिसमें पांच-पांच शालिकणों के माध्यम से उनकी योग्यता का अंकन किया गया। उसी प्रकार आगमकार पांच महाव्रतधारी संयमी साधकों को शिक्षा देते हैं -

- १. जो संयमी साधक संघ के समक्ष पांच महाव्रतों को अंगीकार कर उनको या तो त्याग देता है अथवा उनका उपेक्षा पूर्ण पालन करता है। वह पहली पुत्र वधु के समान इस भव में तिरस्कार का पात्र बनता है और परभव में भी दुःखी होता है।
- २. जो संयमी साधक पांच महाव्रत को ग्रहण करके उसे अपनी जीविका का साधक मान कर खान-पान आदि में आसक्त होता है वह दूसरी बहू के समान दासी के तुल्य साधु लिंग धारी मात्र रह जाता है। विद्वानों की दृष्टि में वह उपेक्षणीय होता है।
 - ३. जो संयमी साधक पांच महाव्रत ग्रहण कर उनका यथावत् पालन करता है, वह तीसरी

बहु के समान इस भव में सभी लोगों का वंदनीय पूज्यनीय होता है और पर भव में देवलोक अथवा मोक्ष के सुखों को प्राप्त करता है।

४. जो संयमी साधक पांच महाव्रत ग्रहण कर उनका निरितचार पालन ही नहीं करता बिल्कि रात दिन संयम के पर्यायों को बढ़ाने में प्रयत्नशील रहता है वह साधक इस भव में तीर्थ का समुत्थान करने वाला, कुतीर्थिका का निराकरण करने वाला और सर्वत्र वंदनीय पूज्यनीय होकर क्रमशः सिद्धि गित को प्राप्त करता है।

अाठवां अध्यायाजा - इस अध्यायन में मुख्य कथानक तो वर्तमान चौबीसी के उन्नीसवें तीर्थंकर मिल्लभगवान् का है, अवान्तर कथानक अर्हन्नक श्रावक का है। दोनों ही कथानक आत्मार्थी जीवों के लिए प्रेरणास्पद हैं। भगवान् मिल्लनाथ प्रभु का कथानक इस आगमिक रहस्य को प्रकट करता है कि कोई राजा हो या रंक, महामुनि हो या सामान्य गृहस्थ, कर्म किसी का लिहाज नहीं करते। कपट सेवन के फलस्वरूप मल्ली भगवान् के जीव ने महाबल मुनि के भव में स्त्री नाम कर्म का बंध कर लिया। वहाँ काल के समय काल करके जयन्त विमान में उत्पन्न हुए। जयन्त विमान से चव कर भरत क्षेत्र में मिथिला-नरेश कुंभ की महारानी प्रभावती के उदर से उन्हें कन्या के रूप में जन्म लेना पड़ा, जिनका नाम "मल्ली" रखा गया, जिन्होंने दीक्षा लेकर तीर्थ की स्थापना की। यद्यपि आप तीन लोक के नाथ के रूप में अवतरित हुए पर मामूली तपस्या में माया करने के कारण स्त्री वेद रूप में जन्म लेना पड़ा। इसी मूल कथानक में अवान्तर कथानक प्रियधर्मी दृढ्धर्मी अर्हन्नक श्रावक का है, जिसकी धार्मिक दृढ़ता के सामने पिशाच रूप देव को झुकना ही नहीं पड़ा बल्कि श्रावक के पांवों में गिर कर उनसे क्षमायाचना मांगनी पड़ी।

जिंदवाँ अध्ययां – इस अध्ययन में इन्द्रियों और मन पर नियंत्रण न होने से उसका कितना अनिष्टकारी परिणाम होता है, इसका ह्बहू चित्रण किया गया है। साथ ही माता पिता की आज्ञा की अवहेलना का कितना दु:खद फल होता है इसका भी निरूपण किया गया है।

माकन्दी सार्थवाह के दो पुत्र जिन पालित और जिन रक्षित थे, वे व्यापार के निमित्त से ग्यारह बार समुद्री यात्रा कर चुके थे। बारहवीं बार समुद्री यात्रा करने के लिए माता-पिता ने उन्हें बहुत मना किया पर वे नहीं माने। यात्रा आरम्भ कर दी पर समुद्र के बीच में उफान आने से उनका जहाज डूब गया। एक पटिये के सहारे वे एक द्वीप पर पहुँचे। उस द्वीप की अधिपति रत्नादेवी थी, उसने उन दोनों को अपने साथ भोग-भोगते हुए उसके साथ रहने का कहा।

एक बार वह देवी इन्द्र के आदेशानुसार लवण समुद्र की सफाई के लिए गई। दोनों भाई उसकी अनुपस्थिति में दक्षिण दिशा की ओर गए वहाँ उन्होंने एक पुरुष को शूली पर चढ़े हुए देखा। पूछने पर पता चला वह भी उन्हीं की तरह देवी में चक्कर में फंस गया। उससे छुटकारा पाने का उपाय पूछने पर उसने बताया कि पूर्व के वनखण्ड में एक शैलक नामक यक्ष रहता है, वह निश्चित समय पर "िकसे तारूँ किसे पालुं?" की घोषणा करता है, उस समय आप उसे तारने की याचना करना ताकि वह आपको बचा सकेगा। दोनों भाईयों ने वैसा ही किया। शैलक यक्ष ने उन दोनों भाइयों को इस शर्त पर तारना पालना स्वीकार किया कि रत्नादेवी उन्हें अनेक तरह से ललचाएगी. मीठी-मीठी बातों में अपनी ओर विषय भोगों के लिए आकर्षित करेगी. तुम उस प्रलोभन में न आओ तो मैं तार सकता हूँ। दोनों भाइयों ने यक्ष की बात को स्वीकार की। यक्ष ने दोनों को अपनी पीठ पर बैठा कर समुद्र मार्ग से ले गया। इस बात की रत्नादेवी को जानकारी हुई तो वह तुरन्त समुद्र में तीव्र गति से गई और दोनों भाइयों को अपनी ओर इन्द्रिय सुर्खों की ओर ललचाने का प्रयास एवं विलाप किया। जिनपालित तो उसकी बातों से विचलित नहीं हुआ। किन्तु जिनरक्षित का मन विचलित हो गया। यक्ष ने उसके मनीमन भावों को जानकर उसे गिरा दिया। निर्दया हृदया रत्नादेवी ने उसे तलवार पर झेल कर उसके दुकड़े-टुकड़े कर दिये। जिनपालित ने अपने मन और इन्द्रियों पर नियंत्रण रखा तो सकुशल चम्पानगरी पहुँच गया। इन्द्रियों और मन पर काबू न रखने वाला जिनरक्षित रत्ना देवी द्वारा मार डाला गया। आगमकार यह दृष्टान्त देकर इन्द्रियों एवं मन पर काबू रखने का संकेत करते हैं।

दरस्वाँ अध्यया - इस अध्ययन में चन्द्रमा की कला के घटने-बढ़ने का कथानक है। आगमकार संयमी साधक को विकास और हास को इस कथानक के द्वारा घटित कर संकेत करते हैं कि जो संयमी साधक साधु के क्षमा आदि दस श्रमण धर्म का यथाविध पालन करता है उसका विकास शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की तरह होता है। इसके विपरीत जो संयमी साधक संयम ग्रहण करके श्रमण धर्म के गुणों का यथाविध पालन नहीं करता है, अथवा उपेक्षा करता है, उसका संयमी जीवन कृष्ण पक्ष के चन्द्रमा की भांति दिन-प्रतिदिन हास की ओर गिरता हुआ एक दिन अमावस्था के चन्द्रमा के समान पूर्ण रूप से नष्ट हो जाता है।

क्यारहवाँ अध्ययका - इस अध्ययन में संयमी जीवन की सहनशीलता-सहिष्णुता की महत्ता पर प्रकाश डाला गया है। संयमी साधक को अपने संयमी जीवन के दौरान यदि कोई उन्हें जाति कुल आदि को ही बताकर अपमानित करे अथवा अन्य प्रकार से कटु अयोग्य या असभ्य बचनों का प्रयोग कर उसकी हिलना निंदा करे तो साधक को उस पर लेशमात्र भी द्वेष नहीं करना चाहिये, बल्कि उसके प्रति करूणा भाव उत्पन्न होना चाहिये। इसके लिए समुद्र के किंनारे स्थित दावद्रव वृक्षों के दृष्टान्त देकर साधक की सहनशीलता को चार विकल्प क्रमशः देश विराधक, सर्व विराधक, देशाराधक और सर्वाराधक में निरूपित किया है।

वारहवाँ अध्यया - इस अध्ययन का मुख्य विषय पुद्गल एवं उनके परिणमन से सम्बन्धित है। जो पुद्गल आज शुभ नजर आते हैं, वह संयोग पाकर कालान्तर में अशुभ में परिणत हो जाते हैं, इसी प्रकार जो पुद्गल वर्तमान में अशुभ दृष्टिगोचर होते हैं वे संयोग पाकर कालान्तर में शुभ में परिणत हो जाते हैं। इस गूढ़ तत्त्व को बाहिरात्मा तो समझ नहीं सकती है। इस रहस्य को तो जैन दर्शन के तत्त्व वेता ही समझ सकते हैं।

प्रस्तुत कथानक में जितशतु राजा और उसके प्रधान सुबुद्धि का संवाद है। सुबुद्धि प्रधान जीवाजीव रहस्यों को जानने वाला तत्त्वज्ञ श्रमणोपासक था जबिक उसका राजा जितशतु जिनधर्म से अनिभिज्ञ मिथ्यादृष्टि था। सुबुद्धि प्रधान ने खाई के गंदे दुर्गन्ध युक्त पानी को प्रयोग द्वारा शुद्ध स्वाद में परिणत कर राजा को यथार्थ तत्त्व से अवगत कराया। इस पर राजा ने जिज्ञासा प्रकट की हे मंत्रीवर! यह बताओ कि आपने यह सत्य तथ्य कैसे जाना? सुबुद्धि ने उत्तर दिया स्वामी! इस सत्य तथ्य का परिज्ञान मुझे जिनवाणी से हुआ। इस पर राजा ने उनसे जिनवाणी श्रवण की अभिलाषा प्रकट की। सुबुद्धि प्रधान में राजा को जिनवाणी का स्वरूप समझाया। इसके पश्चात् जितशत्रु राजा एवं सुबुद्धि प्रधान ने स्थिवर भगवन्तों के पास दीक्षा अंगीकार की और मोक्ष के अक्षय सुखों को प्राप्त किया।

तेरहवाँ अध्ययन - इस अध्ययन में मुख्यतः तीन बिन्दुओं पर प्रकाश डाला गया है -

- . १. सद्गुरुओं के समागम से आत्मिक गुणों का विकास होता है।
- लम्बे काल तक सद्गुरुओं का समागम न होने से तथा मिथ्यादृष्टियों के परिचय में रहने से जीव के आत्मिक गुणों का हास होता है यावत् वह मिथ्यात्व में पहुँच जाता है।
 - ३. आंसक्ति पतन का कारण है।

नंदमणिकार श्रमणोपासक था, कालान्तर में लम्बे समय तक साधु का समागम न होने से वह विचारों से च्युत हो गया। अर्थात् पौषध अवस्था में बावड़ी बगीचा आदि के निर्माण का अकरणीय कार्य करने का उसने संकल्प कर लिया और तदनुसार उनका निर्मीण करवाया। निर्मीण ही नहीं करवाया बल्कि वह उसमें इतना आसक्त हुआ कि मर कर उसी बावड़ी में मेढ़क के रूप में उत्पन्न हुआ। बाद में मेढ़क के भव में परिणामों की विशुद्धि से उसे जातिस्मरण ज्ञान हुआ जिसके बल पर उसने अपने पूर्व भवों को देखा। अपनी आत्म-साक्षी से उसने दोषों का पश्चात्ताप कर पुनः श्रावक के व्रतों को स्वीकार किया। फलस्वरूप देवगित में उत्पन्न हुआ। वहाँ का आयुष्य पूर्ण कर वह महाविदेह क्षेत्र में मनुष्य भव प्राप्त कर चारित्र अंगीकार करके मोक्ष को प्राप्त करेगा।

चौद्रहवाँ अध्ययन - इस अध्ययन में पाठकों के बोध के लिए दो बातों का प्रकाश डाला गया है। एक तो कर्मों के विचित्र स्वरूप को बतलाया गया है कि एक समय वह था जब तेतली-पुत्र प्रधान ने स्वर्णकार की लड़की (पोटिला) के रूप सौन्दर्य पर आसक्त होकर पत्नी के रूप में मांगनी कर उसके साथ शादी की। कालान्तर में उसके साथ स्नेह सूत्र ऐसा टूटा कि तेतली-पुत्र प्रधान पोटिला को देखना तो दूर उसके नाम सुनने मात्र से ही उसे घृणा हो गई। दूसरा उसी पोट्टिला के उपदेश से प्रतिबोध पाकर तेतली-पुत्र प्रधान ने संयम अंगीकार कर केवलज्ञान, केवलदर्शन को प्राप्त किया। विस्तृत जानकारी कथानक के अध्ययन से ज्ञात होगी।

पाठद्रहताँ अध्ययन - इस अध्ययन में मन को लुभाने वाले इन्द्रिय-विषयों से सावधान रहने की सूचना दी गई है। धन्य सार्थवाह अपने सार्थ के साथ चम्पानगरी से अहिच्छत्रा नगरी की ओर प्रस्थान करता है, रास्ते में भयंकर अटवी आती है, उस अटवी के मध्य भाग में एक जाति के विषैले वृक्ष का बगीचा था। उसके फलों का नाम नंदीफल था, जो दिखने में सुन्दर, सुगन्धित एवं चखने पर मधुर लगते थे। पर उनका आस्वादन (चखने) मात्र प्राण हरण करने वाला था। धन्य सार्थवाह इस तथ्य का जानकार था, अतएव उसने सभी सार्थ के सदस्यों को सूचित किया कि इन नंदीफलों को खाना तो दूर बल्कि इसके वृक्षों की छाया के निकट भी न फटके। जिस-जिस ने उसकी बात मानी वें सकुशल अहिच्छत्र नगरी पहुँचे। जिन्होंने इसकी बात नहीं मान कर उन फलों को चक्खा वे मृत्यु को प्राप्त हो गए।

तीर्थंकर भगवान् सार्थवाह के समान हैं, वे संसारी प्राणियों को नंदीफल के समान इन्द्रिय विषय सुखों से बचने का संकेत करते हैं, जो उनकी बात मान कर इनको त्याग करता है वे मोक्ष के अक्षय सुखों को प्राप्त कर लेते हैं, जो उनकी बात नहीं मान कर इन्द्रिय विषय सेवन में अनुरक्त रहते हैं वे संसार में जन्म मरण करते रहते हैं।

सोलहवां अध्ययां - इस अध्ययन में द्रोपदी के जीव की कथा उसके नागश्री ब्राह्मणी के भव से चालू होती है। नागश्री के भव में उसने मासखमण के पारणे के दिन धर्मरुचि मुनिराज को कड़वे विषालत तूम्बे का शाक बहराया जिसके कारण उसका कितना भव भ्रमण बढ़ा इसका विस्तृत खुलासा इस अध्ययन में किया है। लम्बे काल तक जन्म मरण के पश्चात् उसे मनुष्य भव की प्राप्ति हुई तो उसके शरीर का स्पर्श इतना तीक्षण और अग्नि जैसा उष्ण था कि उसके साथ जिसने भी शादी की वे उसके साथ रहने को तैयार नहीं हुए, अंततोगत्वा उसने दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा ग्रहण के बाद भी वह शरीर बकुश, शिथिलाचारिणी, स्वच्छन्द होकर साध्वी समुदाय को छोड़कर एकाकिनी रहने लगी। एकाकिनी विचरण के दौरान उसने एक वैश्या को पांच पुरुषों के साथ क्रीड़ा करते हुए देखा। उसे देखकर उसने निदान कर लिया कि मेरे तप संयम का फल हो तो मैं भी इसी प्रकार के सुख को प्राप्त करूँ, फलस्वरूप देव गणिका के बाद द्रौपदी के रूप में उत्पन्न हुई। इस अध्ययन में सुपात्र को अमनोज्ञ आहार बहराने का दुष्परिणाम एवं साधना जीवन जो अक्षय सुखों का दिलाने वाला है, उसे संसारी तुच्छ सुखों के लिए निदान करना कितना हानि कारक है, यह बतलाया गया है।

सत्तरहवाँ अध्ययन न इस अध्ययन में अश्वों का उदाहरण देकर यह प्रतिपादित किया गया है कि जो साधक साधना जीवन में प्रवेश करने के बाद इन्द्रियों के वशीभूत होकर अनुकूल इन्द्रिय विषयों में आसकत होता है वह घोर कर्म बंधन को प्राप्त करती है, जिस प्रकार इन्द्रियों में अनुरक्त अश्व बंधन-बद्ध हुए। इसके विपरीत जो साधक इन्द्रियों के अनुकूल विषयों में आसकत नहीं होता वह कर्मों से बद्ध नहीं होता और जन्म मरण रहित आनंदमय निर्वाण को प्राप्त करता है जैसे इन्द्रियों के विषयों के प्रलोभन में न फंसने वाले अश्व स्वच्छन्द स्वाधीन विचरण करने में समर्थ हुए।

अठारहवाँ अध्ययन - इस अध्ययन में संयमी साधकों को आहार के प्रति कितना अनासक्त भाव रखना चाहिए इसका चित्रण किया गया है। धन्य सार्थवाह की पुत्री सुंसुमा का 'चिलात' चोर ने अपहरण कर उसे अपने कंधे पर डाल कर राजगृह नगर से बहुत दूर भागता हुआ ले गया उसका पीछा धन्य सार्थवाह और उसके पुत्रों ने लगातार किया, यह देखकर चिलात चोर अन्य कोई उपाय न देख कर सुंसमा का गला काट डाला और धड़ को वही छोड़कर मस्तक लेकर अटवी में कहीं भाग गया। सार्थवाह एवं उसके पुत्रों ने जब अपनी पुत्री का मस्तक विहीन निर्जीव शरीर देखा तो उन्हें बड़ा दुःख हुआ। अब उन्होंने चोर का पीछा करना छोड़ कर पुनः राजगृह नगर जाने का सोचा। पर वे राजगृह से इतना दूर आ गए कि बिना भोजन पान के उनका वापिस राजगृह पहुँचना सम्भव नहीं था, अतएव राजगृह पहुँचने के लिए मृत ''सुंसुमा'' के मांस रुधिर का उपयोग कर वे राजगृह पहुँचे। इसी तरह साधक मुनि को चाहिये कि वह इस अशुचि युक्त शरीर के पोषण के लिए आहार-पानी का उपयोग न करे प्रत्युत मोक्ष धाम पहुँचने के लिए अनासक्त भाव से आहार करे। जिस प्रकार धन्य सार्थवाह और उसके पुत्रों ने अनासक्त भाव से राजगृह पहुँचने के लिए मृत कलेवर का आहार किया।

उन्नीसवां अध्ययक - इस अध्ययन में मानव जीवन के उत्थान और पतन का सजीव चित्रण किया गया है। जो संयमी साधक हजारों वर्षों तक संयम का पालन करे और अन्त समय में इन्द्रियों और मन के वशीभूत होकर यदि संसार के भोगोपभोग के साधनों में आसक्त हो जाता है, तो उन साधनों का अल्प समय का उपभोग उसको नरक का मेहमान बना देता है। इसके विपरीत जो साधक उत्कृष्ट तप संयम की साधना करता है यह अल्प समय में ही सर्वार्थसिद्ध देवों के सुख को प्राप्त कर लेता है।

महाविदेह क्षेत्र में पुष्कलावती विजय में पुण्डरीकिणी राजधानी थी। वहाँ राजा महापद्म के दो पुत्र थे पुण्डरीक और कण्डरीक। राजा महापद्म ने स्थविर भगवन्तों के पास दीक्षा अंगीकार की और शुद्ध संयम की आराधना कर यथासमय सिद्धि गित को प्राप्त किया। इसके पश्चात् किसी समय दूसरी बार स्थविर भगवन्त पधारे तो राजकुमार कण्डरीक ने उनके पास दीक्षा अंगीकार की। दीक्षा के दौरान कण्डरीक अनगार के शरीर में अन्त प्रान्त अर्थात् रूखे सूखे आहार के कारण शैलक मुनि के समान दाहज्वर उत्पन्न हो गया। पुंडरीक राजा ने स्थविर भगवन्तों से निवेदन कर कण्डरीक मुनि का अपनी यानशाला में उपचार कराया। चिकित्सा के पश्चात् कण्डरीक मुनि स्वस्थ हो गए पर मनोज्ञ अशन पान खादिम और स्वादिम आहार में मुच्छित, गृद्ध, आसक्त और तल्लीन होने से वे शिथिलाचारी बन गए। कुछ समय स्थविर भगवन्तों के साथ विहार कर वापिस पुंडरीकिणी नगर में लौटे। पुंडरीक राजा उनकी भावना को

समझ कर उनसे पूछा - भगवन्! क्या आपका भोगों के भोगने का प्रयोजन है? तब कंडरीक मुनि ने हाँ भर दी। तुरन्त राजा पुंडरीक ने कण्डरीक का राज्याभिषेक कर दिया और स्वयं उनका वेष उपकरण आदि धारण कर चातुर्याम धर्म अंगीकार किया और इस अभिग्रह के साथ विहार कर दिया कि जब तक मैं स्थिवर गुरु भगवन्तों के दर्शन कर उनके पास से चातुर्याम धर्म अंगीकार न कर लूं तब तक मुझे आहार पानी करना नहीं कल्पता है।

इधर कण्डरीक द्वारा राजा बनने के पश्चात् अत्यधिक सरस पौष्टिक आहार करने से उसका पाचन ठीक प्रकार न होने से उसके शरीर में प्रचुर प्रचण्ड वेदना उत्पन्न हुई। उसका शरीर पित ज्वर से व्याप्त हो गया, वह राज्य अन्तःपुर में भी अतीव आसक्त बन गया। कहा जाता है कि तीन दिन इनका उपभोग कर काल के समय काल करके वह कण्डरीक राजा सातवीं नरक में उत्कृष्ट तेतीस सागर की स्थिति में उत्पन्न हुआ। इधर पुण्डरीक अनगार स्थिवर भगवन्तों की सेवा में पहुँचा वंदन नमस्कार कर दूसरी बार चातुर्याम धर्म अंगीकार किया। फिर बेले के पारणे के दिन होने से प्रथम पहर में स्वाध्याय दूसरे पहर में ध्यान और तीसरे पहर में गौचरी पधारे, ठंडा रूखा-सुखा भोजन पान ग्रहण किया, उस आहार से पुण्डरीक मुनि के शरीर में विपुल कर्कश वेदना हुई, उन्होंने उसी समय पापों की आलोचना की, संलेखना संधारा ग्रहण किया और उच्च भावों से काल के समय काल करके सर्वाधिसद्ध नामक अनुत्तर विमान में तेतीस सागर की स्थिति में उत्पन्न हुए। तीन दिन का राजसी सुख कण्डरीक को सातवीं नरक का मेहमान बना दिया जबिक तीन दिन का निर्दोष उत्कृष्ट संयम पुण्डरीक मुनि को छोटी मोक्ष अर्थात् सर्वाधिसद्ध का अधिकारी बना दिया।

अति संक्षेप में ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र के उन्नीस अध्ययनों की भूमिका हमने यहाँ दी विस्तृत जानकारी तो इन अध्ययनों के गहन पारायण से ही मिल सकेगी। वस्तुतः ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र के सभी उन्नीस ही अध्ययन मानव जीवन के आध्यात्मिक विकास के लिए बड़े ही उपयोगी, प्रेरणास्पद एवं महत्त्व पूर्ण हैं। इस आगम का अनुवाद जैन दर्शन के जाने-माने विद्वान् डॉ॰ छगनलालजी शास्त्री काव्यतीर्थ एम. ए., पी. एच. डी. विद्यामनोदिध ने किया है। आपने अपने जीवन काल में अनेक आगमों का अनुवाद किया है। अतएव इस क्षेत्र में आपका अध्य अनुधव है। प्रस्तुत आगम के अनुवाद में भी संघ द्वारा प्रकाशित अन्य आगमों की शैली का ही अकुबरण अध्यरणीय शास्त्री जी ने किया है यानी मूल पाठ, कठिन शब्दार्थ, भावार्थ एवं विवेचन आदि आदरणीय

शास्त्रीजी के अनुवाद की शैली सरलता के साथ पाडित्य एवं विद्वता लिए हुए है। जो पाठकों के इसके पठन अनुशीलन से अनुभव होगी। आदरणीय शास्त्रीजी के अनुवाद में उनके शिष्य श्री महेन्द्रकुमारजी का भी सहयोग प्रशंसनीय रहा। आप भी संस्कृत एवं प्राकृत के अच्छे जानकार हैं। आपके सहयोग से ही शास्त्री जी इस विशालकाय शास्त्र का अल्प समय में ही अनुवाद कर पाये। अतः संघ दोनों आगम मनीषियों का आभारी है।

इस अनुवादित आगम को परम श्रद्धेय श्रुतधर पण्डित रत्न श्री प्रकाशचन्दजी म. सा. की आज्ञा से पण्डित रत्न श्री लक्ष्मीमुनि जी म. सा. ने गत जोधपुर चातुर्मास में सुनने की कृपा की। सेवाभावी सुश्रावक श्री हीराचन्दजी सा. पींचा ने इसे सुनाया। पूज्य श्री जी ने आगम धारणा सम्बन्धित जहाँ भी उचित लगा संशोधन का संकेत किया। तद्नुसार यथास्थान पर संशोधन किया गया। तत्पश्चात् मैंने एवं श्रीमान् पारसमल जी चण्डालिया ने पुनः सम्पादन की दृष्टि से इसका पूरी तरह अवलोकन किया। इस प्रकार प्रस्तुत आगम को प्रकाशन में देने से पूर्व सूक्ष्मता से पारायण किया गया है। बावजूद इसके हमारी अल्पज्ञता की वजह से कहीं पर भी जुटि रह सकती है। अतएव समाज के विद्वान् मनीषियों की सेवा में हमारा नम्न निवेदन है कि इस आगम के मूल पाठ, अर्थ, अनुवाद आदि में कहीं पर भी कोई अशुद्धि, गलती आदि दृष्टिगोचर हो तो हमें सुचित करने की कृपा करावें। हम उनके आभारी होंगे।

प्रस्तुत आगम की अनुवादित सामग्री लगभग आठ सौ पचास पृष्ठों की हो गई। अतएव सम्पूर्ण सामग्री को एक ही भाग में प्रकाशित करना संभव नहीं होने से इसे दो भागों में प्रकाशित किया जा रहा है। प्रथम भाग में पृष्ठ संख्या ४३६+२८=४६४ तक एक से आठ अध्ययन लिए गए हैं। शेष अध्ययन दूसरे भाग में लिए गए हैं।

संघ का आगम प्रकाशन का कार्य पूर्ण हो चुका है। इस आगम प्रकाशन के कार्य में धर्म प्राण समाज रत्न तत्त्वज्ञ सुश्रावक श्री जशवंतलाल भाई शाह एवं श्राविका रत्न श्रीमती मंगला बहन शाह, बम्बई की गहन रुचि है। आपकी भावना है कि संघ द्वारा जितने भी आगम प्रकाशन हों वे अर्द्ध मूल्य में ही बिक्री के लिए पाठकों को उपलब्ध हो। इसके लिए उन्होंने सम्पूर्ण आर्थिक सहयोग प्रदान करने की आज्ञा प्रदान की है। तदनुसार प्रस्तुत आगम पाठकों को उपलब्ध कराया जा रहा है, संघ एवं पाठक वर्ग आपके इस सहयोग के लिए आभारी है।

आदरणीय शाह साहब तत्त्वज्ञ एवं आगमों के अच्छे ज्ञाता हैं। आप का अधिकांश समय धर्म साधना आराधना में बीतता है। प्रसन्नता एवं गर्व तो इस बात का है कि आप स्वयं तो आगमों का पठन-पाठन करते ही हैं, पर आपके सम्पर्क में आने वाले चतुर्विध संघ के सदस्यों को भी आगम की वाचनादि देकर जिनशासन की खूब प्रभावना करते हैं। आज के इस हीयमान युग में आप जैसे तत्त्वज्ञ श्रावक रत्न का मिलना जिनशासन के लिए गौरव की बात है। आपकी धर्म सहायिका श्रीमती मंगलाबहन शाह एवं पुत्र रत्न मयंकभाई शाह एवं श्रेयांसभाई शाह भी आपके पद चिह्नों पर चलने वाले हैं। आप सभी को आगमों एवं थोकड़ों का गहन अभ्यास है। आपके धार्मिक जीवन को देख कर प्रमोद होता है। आप चिरायु हों एवं शासन की प्रभावना करते रहें, इसी शुभ भावना के साथ!

संघ की आगम बत्तीसी प्रकाशन योजना के अर्न्तगत इस सूत्र का प्रथम बार नवम्बर २००३ में प्रकाशन हुआ। इसकी १००० प्रतियों अल्प समय में ही समाप्त हो गई। प्रथम आवृत्ति का तत्त्वज्ञ सुश्रावक श्रीमान् रानीदानजी सा. भंसाली, राजनांदगांव निवासी ने आद्योपरांत दोनों भागों का अवलोकन कर आवश्यक संशोधन किया अतः संघ आपका आभारी है। इसकी द्वितीय संशोधित आवृत्ति का जून २००५ में प्रकाशन किया गया था, अब इसकी यह तृतीय आवृत्ति श्रीमान् ज्ञिशादाताला साई शाह, मुम्बई निवासी के अर्थ सहयोग से ही प्रकाशित हो रही है। इसके प्रकाशन में जो कागज काम में लिया गया है वह उच्च कोटि का मेफलिथो साथ ही पक्की सेक्शन बाईडिंग है बावजूद आदरणीय शाह साहब के आर्थिक सहयोग दोनों भागों का मुक्य मात्र ४०)+४०) रूपयो ही रखा गया है। जो अन्य संस्थानों के प्रकाशनों की अपेक्षा अल्प है। पाठक बन्धुओं से निवेदन है कि वे इस तृतीय आवृत्ति का अधिक से अधिक लाभ उठावें।

क्यावर (राज.)

दिनांकः २४-१२-२००६

संघ सेवक नेमीचन्द बांठिया अ. मा. सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, जोधपुर

अस्वाध्याय

निम्नलिखित बत्तीस कारण टालकर स्वाध्याय करना चाहिये।

आकाश सम्बन्धी १० अस्वाध्याय	काल मर्यादा
१. बड़ा तारा टूटे तो-	एक प्रहर
२. दिशा-दाह 🗱	जब तक रहे
३. अकाल में मेघ गर्जना हो तो -	दो प्रहर
४. अकाल में बिजली चमके तो-	एक प्रहर
५. बिजली कड़के तो-	आठ प्रहर
६. शुक्ल पक्ष की ९, २, ३ की रात-	प्रहर रात्रि तक
७. आकाश में यक्ष का चिह्न हो-	जब तक दिखाई दे
<- १. काली और सफेद धूंअर-	जब तक रहे
१०. आकाश मंडल धूलि से आच्छादित हो-	जब तक रहे
औदारिक सम्बन्धी १० अस्वाध्याय	
९९-९३. हड्डी, रक्त और मांस ,	ये तिर्यंच के ६० हाथ के भीतर
	हो। मनुष्य के हो, तो १०० हाथ
	के भीतर हो। मनुष्य की हड्डी
•	यदि जली या धुली न हो, तो
·	१२ वर्ष तक।
९४. अशुचि की दुर्गंध आवे या दिखाई दे -	तब तक
१५. श्मशान भूमि-	सौ हाथ से कम दूर हो, तो।

^{*} आकाश में किसी दिशा में नगर जलने या अग्नि की लपटें उठने जैसा दिखाई दे और प्रकाश हो तथा नीचे अधकार हो, वह दिशा-दाह है।

१६. चन्द्र ग्रहण-

खंड ग्रहण में = प्रहर, पूर्ण हो

तो १२ प्रहर

(चन्द्र ग्रहण जिस रात्रि में लगा हो उस रात्रि के प्रारम्भ से ही अस्वाध्याय गिनना चाहिये।)
१७. सूर्य ग्रहण- खंड ग्रहण में १२ प्रहर, पूर्ण हो

तो १६ प्रहर

(सूर्य ग्रहण जिस दिन में कभी भी लगे उस दिन के प्रारंभ से ही उसका अस्वाध्याय गिनना चाहिये।)

१८. राजा का अवसान होने पर,

जब तक नया राजा घोषित न

हो

ु १६. युद्ध स्थान के निकट

जब तक युद्ध चले

२०. उपाश्रय में पंचेन्द्रिय का शव पड़ा हो,

जब तक पड़ा रहे

(सीमा तियँच पंचेन्द्रिय के लिए ६० हाथ, मनुष्य के लिए ९०० हाथ। उपाश्रय बड़ा होने पर इतनी सीमा के बाद उपाश्रय में भी अस्वाध्याय नहीं होता। उपाश्रय की सीमा के बाहर हो तो यदि दुर्गन्ध न आवे या दिखाई न देवे तो अस्वाध्याय नहीं होता।)

२१-२४. आषाढ़, आश्विन,

कार्तिक और चैत्र की पूर्णिमा

दिन रात

२५-२८. इन पूर्णिमाओं के बाद की प्रतिपदा-

दिन रातं

२६-३२. प्रातः, मध्याह्न, संध्या और अर्द्ध रात्रि-

इन चार सन्धिकालों में-

१-१ मुहूर्त

उपरोक्त अस्वाध्याय को टालकर स्वाध्याय करना चाहिए। खुले मुंह नहीं बोलना तथा सामायिक, पौषध में दीपक के उजाले में नहीं वांचना चाहिए।

नोट - नक्षत्र २८ होते हैं उनमें से आर्द्रा नक्षत्र से स्वाति नक्षत्र तक नौ नक्षत्र वर्षा के गिने गये हैं। इनमें होने वाली मेघ की गर्जना और बिजली का चमकना स्वाभाविक है। अतः इसका अस्वाध्याय नहीं गिना गया है।

% % % % %

ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र

भाग १

विषयानुक्रमणिका

	·				
क्रं.	विषय	पृष्ठ	क्रं.	विषय	पृष्ठ
उति	क्षेप्तज्ञात नामक प्रथम अध्य	यन	39	अभय द्वारा दोहद पूर्ति का आश्वासन	७१
٩.	आर्य सुधर्मा	3	२०.	दोहद पूर्ति हेतु देवाराधना	७२
₹.	आर्य जम्बू	93	२१.	देव का प्राकट्य	98
₹.	जबूस्वामी की जिज्ञासा	१६	२२.	विक्रियाजनित मेघों का प्रादुर्भाव	30
8.	सुधर्मा स्वामी द्वारा समाधान	9=	२३.	दोहद की संपन्नता	` ८ ०
¥.	पुनः पृच्छा	२०	२४.	देव को विदाई	5 ¥
ξ.	प्रथम अध्ययन का प्रारम्भ	२१	२५.	गर्भ की सुरक्षा	د ۲
૭.	महारानी धारिणी	२४	२६.	मेघकुमार का जन्म	द६
ς.	स्वप्नदर्शन	२४	૨ ૭.	जन्मोत्सव	ធធ
3	राजा श्रेणिक से स्वप्न निवेदन	े३०	२८.	नवजात शिशु के संस्कार	03
90.	स्वप्न फल संसूचन	33	₹.	नामकरण	PЗ
99.	महारानी का चिंतन	३७	₹0,	बालक का लालन पालन	73
9२.	श्रेणिक का उपस्थानशाला में आगमन	३७	₹9.	विविध कलाओं की शिक्षा	€3
93.	स्वप्न पाठकों का फलादेश	५१	₹₹.	बहत्तर कलाओं के नाम	83
9 8.	धारिणी देवी का दोहद	४४	₹₹.	कलाचार्य का सम्मान	£5
٩٤.	दोहद पूर्ति की चिंता	६२	₹४.	विवाह-संस्कार	33
१६.	दोहद पूर्ति की उत्कंठा	६६	३५.	आठ कन्याओं के साथ पाणिग्रहण	4°5
	राजा द्वारा सांत्वना	६७	₹.	स्नेहोपहार	१०३
	राजकुमार अभय का आगमन	६८	₹७.	भ० महावीर स्वामी का पदार्पण	१०४

क्रं.	विषय	पृष्ठ	क्रं.	विषय	पृष्ठ
३८.	मेघकुमार द्वारा भगवान् की पर्युपासना	900	६३.	देव-पूजा	२०४
38.	दीक्षा की भावना का उद्भव	१०५	६४.	पुत्र-लाभ	२०५
80.	प्रव्रज्या का संकल्प	30P	ξ ξ.	बाल क्रीड़ा	२०८
୪୩.	माता-पिता से निवेदन	999	ξξ .	देवदत्त का अपहरण एवं हत्या	305
४२.	माता की भाव-विह्वलता	992	६७.	वृत्तांत की गवेषणा	२१२
४३.	ऐहिक भोग : असार नश्वर	११६	٤ <u>ټ</u> .	चोर की गिरफ्तारी एवं सजा	२१४
४४ ,	एक दिवसीय राज्याभिषेक	१२३	ξ ε.	देवदत्त का अंतिम क्रिया-कर्म	२१६
४५.	संयमोपकरण की अभ्यर्थना	१२६	७ ०.	धन्य सार्थवाह : राजदण्ड	२१६
४६.	प्रव्रज्या की पूर्व भूमिका	१२५	૭૧.	कारागार में सार्थवाह के घर भोजन	२१७
૪७.	अनगार-दीक्षा	१४०	હ ર.	भोजन का हिस्सा देने की बाध्यता	२१६
8⊏.	मेघकुमार का उद्वेग	१४३	⊌ફે.	भद्रा की नाराजगी	२२१
8E,	प्रतिबोध हेतु पूर्वभव का आख्यान	१४७	૭૪.	कारागृह से मुक्ति	२२२
<u>ل</u> اه.	जाति स्मरण ज्ञान का उद्भव	१५६	હ્ય.	मित्रों एवं स्वजनों द्वारा सत्कार	२२२
४१.	विशाल मंडल की संरचना	१४८	७६.	भद्रा : कोप शांति	२२३
५२.	मेरुप्रभ द्वारा अनुकम्पा एवं फल प्राप्ति	१६३	૭૭.	विजय चोर की दुर्गति—	२२५
५ ३.	उपालम्भपूर्ण उद्बोधन	१६६	७८.	स्थविर धर्मघोष का पदार्पण	२२६
५४.	संयम-संशुद्धिः पुनः प्रव्रज्या	१६८	૭٤.	धन्य सार्थवाह द्वारा उपदेश श्रवण	२२७
XX.	भिक्षु-प्रतिमाओं की आराधना	ঀ७ঀ	ς٥.	प्रव्रज्या एवं स्वर्ग प्राप्ति	२२७
५६.	गुणरत्न संवत्सर तप की आराधना	१७६	4 ٩.	उपसंहार	२२८
પ્ર <i>હ</i> .	समाधि मरण	१८२	3	iड क नामक तीसरा अध्यय	ज
ሂ ፍ.	देवत्व प्राप्ति	326	<u>ټ</u> ٦.	जंबूस्वामी का प्रश्न	२३१
પ્રદ.	अंततः सिद्धत्व लाभ	989	द३.	आर्य सुधर्मा का उत्तर	२३१
\$	ांघाट नामक द्वितीय अध्यय	Ħ	ςγ.	मयूरी प्रसव	२३२
ξ ο.	धन्य सार्थवाह : परिचय	१८५	دلا.	दो अनन्य मित्र	२३२
६ ٩.	कुख्यात चोर विजय	१९७	<u>۾</u> Ę.	यावज्जीवन साहचर्य की प्रतिज्ञा	२३३
६२.	निःसतान भद्रा की चिन्ता	२०१	ج ن .	गणिका देवदत्ता	२३४

क्रं.	विषय .	पृष्ठ	क्रं. विषय	पृष्ठ
55.	उद्यान में आमोद-प्रमोद	२३४	११२.दीक्षा-संस्कार	२७२
<u> ج3.</u>	अण्डों का अधिग्रहण	२४०	११३.थावच्चापुत्र की तपःपूत चर्या	२७३
٠٥.	संशय का दुष्परिणाम	२४१	१९४.थावच्चापुत्र का जनपद विहार	. २७३
.93	अश्रद्धा का कुफल	२४३	११५.राजा शैलक द्वारा श्रावक-धर्म	
٤٦.	श्रद्धाशीलता का सत्परिणाम	२४३	का स्वीकरण	२७४
	कूर्म नामक चतुर्थ अध्ययन	न	११६.श्रेष्ठी सुदर्शन	२७४
.ફ3	दो मांस-लोलुप श्रृगाल	388	११७.परिव्राजक शुक	्२७६ [°]
દ૪.	दो कछुओं का झील से बहिरागमन	२५०	११८.शुक द्वारा शौचमूलक धर्म का उपदेश	
£¥.	श्रृगालों की कछुओं पर दृष्टि	२५०	१९६.थावच्चापुत्र का पदार्पण	२७८
ε ξ .	कछुओं द्वारा अंगगोपन	२५१	१२०.थावच्चापुत्र-सुदर्शन संवाद	70c
.થ3	सियारों का दुष्प्रभाव	२५१	१२९ सुदर्शन को प्रतिबोध	
€5.	अस्थिर कूर्म का सर्वनाश	२५२	i *	२५०
.33	अगुप्तेन्द्रिय कच्छम से शिक्षा	२५३	१२२.शुक का पुनः आगमन	रेदर
900	.जागरूक कछुआ	२५४	१२३.शुक एवं थावच्चापुत्र का शास्त्रार्थ	२८४
Ş.	तिक नामक पांचवां अध्यय	न	१२४.शुक का समाधान : दीक्षा	789
१०१.	.द्वारवती नगरी	२५७	१२५.थावच्यापुत्रः सिद्धत्व प्राप्ति	787
१०२.	.रैवतक पर्वत	२४८	१२६. मंत्रियों सहित राजा शैलक	
१०३.	श्री कृष्ण वासुदेव	२५६	की प्रव्रज्या	१३ इ
	थावच्चापुत्र	२६१	१२७. अनगार शुक की मुक्ति	२१६
	अर्हत् अरिष्टनेमि का पदार्पण	२६२	१२८.शैलकः रोगग्रस्त	७३६
	वासुदेव कृष्ण की भक्ति	२६३	१२१.राजा मंडुक द्वारा चिकित्सा व्यवस्था	२६७
	थावच्चापुत्र का वैराग्य	२६६	९३०.संयम में शैथिल्य	००६
	वैराग्य की परीक्षा	२६⊏	१३१.मदोन्मत्त शैलक का कोप	३०३
	थावच्चापुत्र का विवेक पूर्ण कथन	२६८	१३२.विनयशील पंथक	३०४
	कृष्ण वासुदेव का परितोष	२६६	१३३.शैलक का संयम पथ पर पुनः	
	र दीक्षाभिषेक	२७१	आरोहण	३०६

क्रं. विषय	पृष्ठ	क्रं. विषय	पृष्ठ
१३४.साधुओं का पुनर्मिलन	३०७	१५६.काशी नरेश शंख	३८४
१३५.मुक्तिलाभ	७०६	१५७.राजा अदीनशत्रु	रेदद
तुम्बा नामक षष्ठ अध्ययन	τ	१५∟.अद्भुत चित्रकार	3≂€
१३६.इन्द्रभूति की जिज्ञासा	30€	१५ ६.चित्रकार दण्डित	938
१३७. भगवान् का उत्तर	390	१६०.चित्रकार राजा अदीनशत्रु की शरण मे	इ.इ.स
रोहिणी नामक सातवां अध्यय	ान	१६१.पांचाल नरेश जितशत्रु	४३६
१३८.धन्य सार्थवाह एवं उसका परिवार ्र	३१४	१६२.परिव्राजिका चोक्षा एवं मल्ली	
१३६.भविष्य चिन्ता ः परीक्षण का उपक्रम	३१५	में धर्मचर्चा	३१६
९४०.परिणाम	३२५	१६३.चोक्षा परिव्राजिका का तिरस्कार	38 ⊏
१४१.उपसंहार	३३२	१६४.चोक्षा द्वारा जितशत्रु को उकसाना	४०१
मल्ली नामक आठवाँ अध्यय	न ं	१६५.छहों दूतों का एक साथ आगमन	४०२
१४२.सलीलावती विजय	३३७	१६६.राजा कुंभ द्वारा तिरस्कार पूर्ण	
१४३.राजधानी वीतशोका एवं राजा बल	३३७	प्रतिक्रिया	४०३
१४४.राजपुत्र का जन्म	३३⊏	१६७.मिथिला पर चढ़ाई की तैयारी	४०४
१४५.राजा बल की प्रव्रज्या और मुक्ति	३३८	१६८.कुम्भ द्वारा भी सैन्य सज्जा	४०४
१४६.राजा महाबल एवं साथी	3\$\$	१६९.समरभूमि में कुम्भ का पराभव	४०५
१४७.महाबल की साथियों सहित दीक्षा	३४१	१७०.मिथिला पर संकट के बादल	४०६
९४ ८.सदृश तपश्चरण	३४१	१७१ मल्ली द्वारा संकट का समाधान	४०७
१४६.तपश्चरण में छल	३४१	१७२.मल्ली द्वारा प्रतिबोध	३०४
१५०.पंडित मरण	३४६	१७३.विपुलदान	४२०
१५१.मल्ली का जन्म	३४⊏	१७४.देव-प्रेरणा	४२३
१५२.रानी प्रभावती का दोहद	388	१७५. प्रव्रज्या समारोह	४२५
१५३.मोहनगृह की संरचना	३ ५३	१७६. छहों राजा दीक्षित	४३२
१ ४४.कोसल नरेश प्रतिबुद्धि	३५४	१७७. चतुर्विध संघ संपदा	そ きと
१५५.कुणालाधिपति रुक्मी	३८१	.९७८. अर्हत् मल्ली : सिद्धत्व प्राप्ति	४३५

आगम बत्तीसी के अलावा संघ के प्रकाशन

क्रं. नाम	मूल्य	कुं. नाम	मूल्य
१. अंगपविद्वसुत्ताणि भाग १	98-00	५१. लॉकाशाह मत समर्थन	90-00
२. अंगपविद्वसुत्ताणि माग २	80-00	५२. जिनागम विरुद्ध मूर्ति पूजा	94-00
३. अंगपविद्वसुत्ताणि भाग ३	₹0-00	५३. बड़ी साधु वंदना	90-00
४. अंगपविद्वसुत्ताणि संयुक्त	#o-00	५४. तीर्थंकर पद प्राप्ति के उपाय	¥-00
४. अनंगपविद्वसुत्ताणि भाग १	३५-००	५५. स्वाध्याय सुधा	9-00
६. अनंगपविद्वसुत्ताणि भाग २	80-00	प्र ६. आनुपूर्वी	9-00
७. अनंगपविद्वसुत्ताणि संयुक्त	50-00	५७. सुखविपाक सूत्र	₹-00
८. अनुत्तरोचवाइय सूत्र	₹- 40	५=, भक्तामर स्तोत्र	7-00
६. आयारो	E-00	५६. जैन स्तुति	Ę-00
९०. सूयगडो	Ę-00	६०. सिद्ध स्तुति	3-00
११. उत्तरन्झयणाणि(गुटका)	90-00	६१. संसार तरिणका	9-00
९२. दसवेथालिय सुत्तं (गुटका)	ሂ-00	६२. आलोचना धंचक	₹-00
९३. णंदी सुत्तं (गुटका)	अप्राप्य	६३, विनयचन्द चौबीसी	9-00
१४. चउछेयसुताइ	94-00	६४. भवनाशिनी भावना	₹-00
१५. आचारांग सूत्र भाग १	<i>₹</i> ¥-00	६५. स्तवन तरंगिणी	ध्-०० .
१६. अंतगददसा सूत्र	90-00	६६. सामायिक सूत्र	9-00
१७-१६. उत्तराध्ययनसूत्र भाग १,२,३	8X~00	६७. सार्थ सामायिक सूत्र	3-00
२०. आवश्यक सूत्र (सार्थ)	90-00	६८. प्रतिक्रमण सूत्र	₹-00
२९. दशवैकालिक सूत्र	90-00	६१. जैन सिद्धांत परिचय	\$-0 0
२२. जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग १	90-00	७०. जैन सिद्धांत प्रवेशिका	8-00
२३. जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग २	90-00	७१. जैन सिद्धांत प्रथमा	8-00
२४. जैन सिद्धांत थोक संग्रह माग ३	90-00	७२. जैन सिद्धांत कोविद	\$-00
२५. जैन सिद्धांत थोक संग्रह माग ४	90-00	७३. जैन सिद्धांत प्रवीण	8-00
२६. जैन सिद्धांत थोक संग्रह संयुक्त	૧૫-૦૦	७४. तीर्थंकरों का लेखा	9-00
२७. पश्चवणा सूत्र के थोकड़े भाग १	E-00	७५. जीव-धडा	7-00
२८. पन्नवणा सूत्र के थोकड़े भाग २	90-00	७६, १०२ बोल का बासठियाः	o-X0
२६. पन्नवणा सूत्र के थोकड़े भाग ३	90-00	७७. लघुदण्डक	₹-00
३०-३२. तीर्थंकर चरित्र भाग १,२,३	480-00	७ ⊏. महादण्डक	9-00
३३. मोझ मार्ग ग्रन्थ भाग १	₹ X-00	७६. तेतीस बोल	₹-00
३४. मोझ मार्ग ग्रन्थ मार्ग २	\$0-00 No-00	८०. गुणस्थान स्वरूप	3-00
३५-३७. समर्थ समाधान भाग १,२,३	મૂહ-૦૦ ૧૫-૦૦	८१. गति-आगति	9-00
३८. सम्यक्त्व विभर्श	₹0-00	द२. कर्म-प्रकृ ति	9-00
३६. आत्म साधना संग्रह ४०. आत्म शुद्धि का मूल तत्वत्रयी	20-00	८३. समिति-गुप्ति	₹-00
४१. नवतत्वों का स्वरूप	93-00	८४. समकित के ६७ बोल	5-00
४२. अगार-धर्म	90-00	८५, पर्स्वीस स्रोल	3-00
४३. Saarth Saamaayik Sootra	90-00	द्र६. नव-तत्त्व	६-००
४४. तत्त्व-पृच्छा	90-00	८७. सामायिक संस्कार बोध	ુ. જ~૦૦
४५. तेतली-पुत्र	84-00	८८. मुखबस्निका सिद्धि	\$-00 -
४६. शिविर व्याख्यान	97-00	⊏ १. विद्युत् सचित्त तेऊकाय है	₹-00 -
४५. जेन स्वाध्याय माला	9=-00	६०. धर्म का प्राण यत्ना	2-00
४६. सुधर्म स्तवन संग्रह भाग १	२२-००	६१. सामण्ण सङ्ख्यिम्मो	अप्राप्य
४६. सुधर्म स्तवन संग्रह भाग २	9 ¥-00	६२. मंगल प्रभातिका	9.7%
५०. सुधर्म चरित्र संग्रह	90-00	६३. कुगुरु गुर्वाभास स्वरूप	8-00
der American und	•	•	

॥ णमो सिद्धाणं॥

णाऱ्याधम्मकहाओ ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र

(मूल पाठ, कठिन शब्दार्थ, भावार्थ एवं विवेचन सहित)

पढमं अज्झयणंः उक्टिखत्तणाए उद्मिप्तलात नामक प्रथम अध्ययन

(٩)

तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा णामं णयरी होत्था, वण्णओ।।

शब्दार्थ - तेणं कालेणं - उस काल में, तेणं समएणं - उस समय में, णयरी - नगरी, होत्था - थी।

भावार्थ - उस काल-वर्तमान अवसर्पिणी के चौथे आरे में, उस समय-जब आर्य सुधर्मा स्वामी विद्यमान थे, चम्पा नामक नगरी थी।

विवेचन - यहाँ पर काल तथा समय-इन दो शब्दों का प्रयोग हुआ है। साधारणतः ये दोनों शब्द समान अर्थ के सूचक हैं। जैन पारिभाषिक दृष्टि से इन दोनों में अन्तर है। काल वर्तना-लक्षण सामान्य समय का बोधक है तथा समय काल के सबसे छोटे भाग का-सूक्ष्मतम अंश का सूचक है। यहाँ इन दोनों का प्रयोग इस भेद युक्त अर्थ के साथ नहीं हुआ है। काल शब्द यहाँ उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी मूलक काल-चक्र के साथ सम्बद्ध है। समय शब्द साधारणतया युग-विशेष का बोधक है।

चम्पानगरी - जैनागमों में चम्पानगरी का अनेक स्थानों पर उल्लेख हुआ है। भगवान् महावीर स्वामी का वहाँ अनेक बार पदार्पण हुआ। उन्होंने तीन चातुर्मास भी वहाँ किये, जो क्रमशः ५६७, ५५८, ५४४ ईसा पूर्व हुए।

स्थानांग सूत्र में चम्पानगरी का दस महानगरियों में उल्लेख है। बारहवें तीर्थंकर भगवान् वासुपूज्य का जन्म इस नगरी में हुआ था। आचार्य शय्यंभव ने अपने पुत्र बालमुनि मनक का स्वल्प आयुष्य जान कर, उसके लिए दशवैकालिक सूत्र की यहीं पर रचना की।

बौद्ध ग्रंथों में भी चम्पा नगरी का अनेक स्थानों में वर्णन आया है। तदनुसार चम्पा एक विशाल नगरी थी। तथागत बुद्ध का भी इस नगरी में अनेक बार आगमन हुआ। अतएव उत्तरवर्ती काल में बौद्धों का इसके प्रति बड़ा आकर्षण रहा। फाह्यान आदि चीनी बौद्ध यात्री अपनी भारत-यात्रा के समय यहाँ भी आते रहे। उन्होंने अपने यात्रा-विवरण में उसकी विशालता और सुन्दरता का वर्णन किया है, यह नगरी अपने समय में बहुत रमणीय थी। यहां व्यापार का बड़ा केन्द्र था। दूर-दूर के व्यापारी यहां माल खरीदने आते थे। यहाँ के व्यापारी भी अपना माल बेचने के लिए मिथिला, अहिच्छत्रा आदि स्थानों पर जाते थे। चम्पा अंगदेश की राजधानी थी। अथर्व वेद , गोपथ ब्राह्मण एवं पाणिनीय अष्टाध्यायी आदि में अंग देश का उल्लेख मिलता है।

महाभारत में भी अंगदेश का कई प्रसंगों पर उल्लेख है। एक बार द्रोणाचार्य के शिष्यों-कौरव-पांडव आदि कई राजकुमारों के शस्त्र-कौशल, रण-कौशल के परीक्षण हेतु एक प्रतियोगिता का आयोजन था। अर्जुन ने वहाँ धनुर्विद्या में अपने आपको सर्वोत्तम सिद्ध किया। उसे चुनौती देने हेतु कर्ण उपस्थित हुआ। कर्ण को जब अराजकुलोत्पन्न कह कर प्रतियोगिता में भाग लेने के अयोग्य कहा गया, तब दुर्योधन ने वहीं पर उसे अंग देश का राजा घोषित करते हुए, उसका राज्याभिषेक किया।

सुप्रसिद्ध इतिहासकार किनंघम के अनुसार भागलपुर (बिहार) के आस-पास चम्पा की स्थिति मानी जाती है।

प्रथम उपांग औपपातिक सूत्र में चम्पानगरी का विस्तृत वर्णन हुआ है। उससे भारत की प्राचीन वास्तु कला का परिचय प्राप्त होता है। प्राचीन काल में नगरों का निर्माण किस प्रकार

[💠] अथर्व वेद-५-२२-१४ 💢 अष्टाध्यायी-४-१-१७० 🚸 गोपथ ब्राह्मण-२-६

होता था, इस वर्णन से यह प्रकट होता है। नगरों में जहाँ गगन चुम्बी प्रासाद होते थे, वहाँ साथ ही साथ हरे भरे लहलहाते सघन वृक्ष लता-कुंज आदि भी होते थे, जिनसे नगरों की शोभा मानी जाती थी। पानी से परिपूर्ण वापी, तालाब आदि भी होते थे। नगर के उपकंठ में कुसुमित वृक्षों और लताओं से सुरभित वन खंड होते थे, जहाँ विविध प्रकार के पक्षी कलरव करते थे 🗸।

वण्णओं - यहाँ एक तथ्य विशेष रूप से जानने योग्य है। प्राचीनकाल में आगमों का, शास्त्रों का ज्ञान कंठस्थ रखने की परम्परा थी। वैदिक धर्म के 'वेद', बौद्धधर्म के 'पिटक' तथा 'जैनागम' - ये तीनों कंठस्थ रूप से चलते रहे। गुरुजन से शिष्य शास्त्र-पाठ श्रवण करते तथा उसे अपनी स्मृति में रखते। वेदों के लिए 'श्रुति' शब्द तथा जैन 'आगम ज्ञान' के लिए 'श्रुत' शब्द का प्रयोग इसी आशय का सूचक है।

आगमों को शताब्दियों तक कंठस्थ-विधि से सुरक्षित रखने की दृष्टि से अधिक विस्तार से बचने के लिए राजा, श्रेष्ठी, सार्थवाह, नगरी, नदीं, उद्यान, वनखंड, ग्राम, सरोवर, वापी एवं चैत्य आदि विषयों का जिनका आगमों में अनेक स्थानों पर वर्णन आया है, एक विशेष स्वरूप (Standard) मान लिया गया, जिसे सभी राजाओं, श्रेष्ठियों, सार्थवाहों, नगरियों, नदियों, उद्यानों, वनखंडों, ग्रामों, सरोवरों, वापियों तथा चैत्यों आदि के लिए उपयोग में लिया जाता रहा।

यद्यपि सभी नगर, उद्यान आदि सर्वथा एक समान नहीं होते, यह सही है किन्तु स्थूल दृष्टि से उनमें बहुत कुछ समानता होती है। इसी भाव से यहाँ ऐसा किया गया है। तदनुसार जिस किसी आगम में प्रासंगिक रूप में नगर, उद्यान आदि किसी विषय का वर्णन अपेक्षित हो और यदि उसे किसी अन्य आगम से, जिसमें यह आया हो, लेने का संकेत करना हो तो 'वण्णओ' पद का उपयोग किया गया है, जिसका यह अभिप्राय होता है कि वह विषय अमुक आगम में वर्णित है, जहां से उसे यहां ले लिया जाए।

उदाहरणार्थ - औपपातिक सूत्र में नगरी, चैत्य, वनखंड, पादप(वृक्ष), शिलापट्टक, राजा, राजमहिषी इत्यादि का प्रसंगवश विस्तृत वर्णन आया है। इन विषयों का वर्णन यहीं से उद्धृत करने का 'वण्णओ' द्वारा अनेक आगमों में संकेत किया गया है।

[♦] उववाइय सुत्त सूत्र ३ पृष्ठ १८-२३

यहाँ ज्ञातव्य है - आगम श्रुत-परम्परा यथावत् रूप से चलती रहे उसमें जरा भी विकृति न आ पाये इसके लिए साधु संघ अत्यधिक प्रयत्नशील रहा।

भगवान् महावीर के निर्वाण के लगभग एक सौ साठ वर्ष अवाद मगध में द्वादश वर्षीय दुष्काल पड़ा तब वहाँ चन्द्रगुप्त मौर्य का राज्य था। जैन साधु इधर-उधर बिखर गये, अनेक दिवगत हो गये। जैन संघ को यह चिंता हुई कि आगम ज्ञान के रूप में जो महत्त्वपूर्ण विरासत उसे प्राप्त है, उसकी कैसे रक्षा की जाए? जब पाटलिपुत्र में जो अब पटना के नाम से प्रसिद्ध है, बिहार की राजधानी है, साधुओं का सम्मेलन आयोजित किया गया। आगमों की वाचना की गई पाठ का मेल न किया गया। ग्यारह अंगों का इस सम्मेलन में संकलन किया गया। केवल आचार्य भद्रबाहु स्वामी को चौदह पूर्वों का ज्ञान था।

कहा जाता है कि वे उस समय नेपाल देश में महाप्राण ध्यान की साधना में संलग्न थे। उनसे चौदह पूर्वों का ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न किया गया। किन्तु उसमें पूर्ण सफलता नहीं मिल सकी। श्री स्थूलभद्र अर्थ सहित दस पूर्वों का ज्ञान ही प्राप्त कर सके। बाकी के चार पूर्वों का उन्हें केवल मूल पाठ ही प्राप्त हो सका।

आगर्मों के संकलन एवं व्यवस्थापन का जैन इतिहास के अनुसार यह पहला प्रयास था। इसे आगमों की 'पाटलि पुत्र वाचना' कहा जाता है।

इस प्रकार प्रथम वाचना में आगम संकलित, सुव्यवस्थित तो कर लिए गये, पर उन्हें सुरक्षित रखने का पहले की ज्यों कंठस्थता का ही आधार रहा।

भगवान् महावीर के निर्वाण के द्वरेष या द्वरंग वर्ष बाद आगमों के संकलन का पुनः प्रयत्न हुआ । ऐसा कहा जाता है कि उस समय भी बारह वर्ष का भीषण दुर्भिक्ष पड़ा। भिक्षा प्राप्त न होने के कारण अनेक साधु दिवंगत हो गये। आगमों के अभ्यास का क्रम अवरुद्ध होने लगा। जब दुर्भिक्ष मिट गया, तब मथुरा में आर्य स्कन्दिल के निर्देशन में साधुओं का सम्मेलन आयोजित किया गया। उसमें पाठों को मिला कर आगमों को सुव्यवस्थित किया गया। आगमों के संकलन का यह दूसरा प्रयास था। इसे 'माथुरी वाचना' कहा जाता है।

इसी समय के आस-पास वलभी में आचार्य नागार्जुन के निर्देशन में आगम-वाचना हुई। आगमों का संकलन हुआ। उसे 'वलभी वाचना' अथवा 'नागार्जुनीय वाचना' कहा जाता है।

^{*} प्राकृत साहित्य का इतिहास पृष्ठ ५१।

[💠] प्राकृत साहित्य का इतिहास पृष्ठ ४१, ४२।

लगभग एक ही समय में दो भिन्न-भिन्न स्थानों में वाचनाएं होने का शायद यह कारण रहा हो, दूरवर्ती मुनियों का मथुरा पहुँचना संभव न हुआ हो, इसलिए सुविधा की दृष्टि से वलभी में मुनि-सम्मेलन आयोजित हुआ हो।

माथुरी वाचना के अनुयायियों का ऐसा मन्तव्य है कि भगवान् महावीर के निर्वाण के नौ सौ अस्सी (६८०) वर्ष 🖒 पश्चात् आचार्य देवर्द्धिंगणी क्षमाश्रमण के निर्देशन में वलभी में मुनि सम्मेलन हुआ। उसमें आगम वाचना की गई।

जो आचार्य नागार्जुन के नेतृत्व में वलभी में सम्पन्न वाचना के अनुयायी हैं, उनका ऐसा मानना है कि देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण के नेतृत्व में यह तीसरी वाचना भगवान् महावीर के निर्वाण के ६६३ (नौ सौ तिरानवें) वर्ष के बाद हुई। उस समय भी बारह वर्ष का दुष्काल पड़ने का प्रसंग बना था। बहुत से मुनि काल कवितत हो चुके थे। क्रमशः आगमों की विस्मृति होने लगी थी। जो भी मुनि बचे थे, वे एकत्रित हुए। उनमें जो बहुश्रुत मुनि थे, उन्हें जो आगम कंठस्थ थे, उनसे उनका श्रवण किया गया। कालक्रम से उत्तरोत्तर घटती हुई स्मरण शक्ति को ध्यान में रखकर आगमों को लिपि बद्ध करने का निर्णय किया गया। आगमों के जो आलापक छिन्न-भिन्न मिले, उनका अपनी मित के अनुसार संकलन एवं सम्पादन किया गया, आगमों को पुस्तकारूढ़ कर लिया गया। उसके बाद फिर कोई सर्व सम्मत आगम वाचना नहीं हुई। वे ही आगम हमें वर्तमान काल में प्राप्त हैं।

(२)

तीसे णं चम्पाए णयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए (एत्थणं) पुण्णभदे णामं चेइए होत्था, वण्णओ।

शब्दार्थ - तीसे - उसके, बहिया - बाहर, उत्तरपुरिक्थिमे - उत्तर-पूर्व के, दिसीभाए-दिशा भाग में (ईशान कोण) में, चेइए - चैत्य।

भावार्थ - उस चम्पा नगरी के बाहर उत्तर पूर्वी दिशा भाग में - ईशान कोण में पूर्णभद्र नामक चैत्य था। उसका वर्णन औपपातिक सूत्र से समझ लेना चाहिए।

[🔾] जैन परम्परा का इतिहास (द्वितीय संस्करण) पृष्ठे ६६

[💠] जैन परम्परा का इतिहास (द्वितीय संस्करण) पृष्ठ ६६

विवेचन - यहां प्रयुक्त 'चैत्य' शब्द का समीक्षात्मक दृष्टि से विचार करना आवश्यक है। चैत्य शब्द अनेकार्थक है। स्थानकवासी परम्परा के बहुश्रुत विद्वान् आचार्य श्री जयमलजी म. ने चैत्य शब्द के अर्थ के संबंध में विशेष गवेषणा की। उन्होंने उसके एक सौ बारह अर्थ बतलाए 🛧।

💠 चैत्यः प्रासाद-विजेयः १ चेड्य हरिरुच्यते २। चैत्यं चैतन्य-नाम स्यात् ३ चेइयं च सुधा स्मृता ४॥ चैत्यं ज्ञानं समाख्यातं ५ चेड्य मानस्य मानवः ६। चेइयं यतिरुत्तमः स्यात् ७ चेइय भगमुच्यते 🖒।। चैत्य जीवमवाप्नोति ६ चेई भोगस्य रंभणम् १०॥ चैत्यं भोग-निवृत्तिश्च १९ चेई विनयनीचकौ १२॥ चैत्यं पूर्णिमाचन्द्रः स्यात् १३ चेई गृहस्य रंभणम् १४। चैत्यं गृहमव्यावाधं १५ चेई च गृहछादनम् १६॥ चैत्यं गृहस्तंभं चापि १७ चेई नाम वनस्पतिः १८॥ चैत्यं पर्वताग्रे वृक्षः १६ चेई वृक्षस्यस्थूलनम् २०॥ चैत्यं वृक्षसारस्य २९ चेई चतुष्कोणस्तथा २२। चैत्यं विज्ञान-पुरुषः २३ चेई देहरूच कथ्यते २४॥ चैत्यं गुणज्ञो ज्ञेयः २५ चेई च शिव-शासनम् २६। चैत्यं मस्तकं पूर्णं २६ चेई वपुर्हीनकम् २८॥ चेई अश्वमवाप्नोति २६ चेइय खर उच्यते ३०। चैत्यं हस्ती विज्ञेयः ३१ चेई च विमुर्खी विदुः ३२॥ चैत्यं नसिंह नाम स्यात् ३३ चेई च शिवा पुनः ३४। चैत्यं रंभानामोक्त ३५ चेई स्यान्मदंगकम् ३६॥ चैत्यं शार्द्रलता प्रोक्ता ३७ चेई च इन्द्रवारुणी ३८। चैत्यं पुरंदर-नाम ३६ चेई चैतन्यमत्तता ४०॥ चैत्यं गृहि-नाम स्यात् ४१ चेई शास्त्र-धारणा ४२। चैत्यं क्लेशहारी च ४३ चेई गांधवीं-स्त्रियः ४४॥ चैत्यं तपस्वी नारी च ४४ चेई पात्रस्य निर्णयः ४६। चैत्यं शकुनादि-वार्ता च ४७ चेई कुमारिका विदुः ४८॥ चेई तु त्यक्त-रागस्य ४६ चेई धत्तूर कुट्टितम् ५०। वैत्यं शांति-वाणी च ५९ चेई वृद्धा वरांगना ५२॥

भाषा विज्ञान में शब्दों के अर्थ-परिवर्तन की दिशाओं पर विशेष रूप से विचार किया गया है। कोई शब्द जो प्रारम्भ में जिस अर्थ का सूचक होता है, परिवर्तित स्थितियों में उसका अर्थ बदलता जाता है। वह परिवर्तित अर्थ पूर्व प्रचलित अर्थ से भिन्न हो जाता है। उस समय के लोग उसका उसी अर्थ में प्रयोग करते हैं। चैत्य शब्द के साथ भी कुछ ऐसा ही घटित हुआ हो, भाषा शास्त्रियों का ऐसा अनुमान है।

चेई ब्रह्माण्डमानं च ५३ चेई मयुरः कथ्यते ५४। चैत्यं च नारका देवाः ४४ चेई च बक उच्यते ४६॥ चेई हास्यमवाप्नोति ५७ चेई निभृष्टः प्रोच्यते ५८। चैत्यं मंगल-वार्ता च ४६ चेई च काकिनी पुनः ६०॥ चैत्यं पुत्रवती नारी ६१ चेई च मीनमेव च ६२। ्रक चैत्वं नरेन्द्रराज्ञी च ६३ चेई च मृगवानरौ ६४॥ चैत्यं गुणवती नारी ६४ चेई च स्मरमन्दिरे ६६। चैत्यं वर-कन्या नारी ६७ चेई च तरुणी-स्तनौ ६८॥ चैत्यं सुवर्ण-वर्णा च ६६ चेई मुकुट-सागरी ७०। चैत्यं स्वर्णा जटी चोक्ता ७९ चेई च अन्य-धातुषु ७२॥ चैत्यं राजा चक्रवर्ती ७३ चेई च तस्य याः स्त्रियः ७४। चैत्यं विख्यात परुषः ७५ चेई पुष्पमती-स्त्रियः ७६॥ चेई ये मन्दिरं राजः ७७ चैत्यं वाराह संमतः ७८। चेई च यतयो धूर्ताः ८६ चैत्यं गरुड पक्षिणि ८०॥ चेई च पदानागिनी ८१ चेई रक्त-मंत्रेऽपि ८२। चेई चक्षुर्विहीनस्तु ८३ चैत्यं युवक पुरुषः ८४॥ चैत्यं वासुकी नागः ८५ चेई पुष्पी निगद्यते ८६। चैत्यं भाव-शद्धः स्यात् ८७ चेई क्षुद्रा च घंटिका ८८॥ चेई द्रव्यमवाप्नोति ८६ चेई च प्रतिमा तथा ६०। चेई सुभट योद्धा च ६९ चेई च द्विविधा क्षुधा ६२॥ चैत्यं पुरुष-क्षुद्रश्च ६३ चैत्यं हार एवं च ६४। चैत्यं नरेन्द्राभरणः ६५ चेई जटाधरो नरः ६६।। चेई च धर्म-वार्तायां ६७ चेई च विकथा पुनः ६८। चैत्यं चक्रपतिः सूर्यः ६६ चेई च विधि-भ्रष्टकम् १००॥

व्याकरण के अनुसार चैत्य शब्द 'चिति' से बना है। 'चिति' का अर्थ चिता है। ऐसा अनुमान है कि मृत व्यक्ति का जहाँ दाह-संस्कार किया जाता, उस स्थान पर उसकी स्मृति में एक वृक्ष लगाने की प्राचीनकाल से परम्परा रही है। ऐसा माना जाता है कि भारत वर्ष में ही नहीं किन्तु उसके बाहर अन्य देशों में भी ऐसा होता रहा है। चिति (चिता) के स्थान पर लगाएं जाने के कारण संभवतः उस वृक्ष को चैत्य के नाम से कहा जाने लगा हो।

मानव तो एक कल्पनाशील प्राणी है। समय बीतने पर वह परम्परा परिवर्तित हो गयी हो। वृक्ष लगाने के स्थान पर मृत पुरुष की स्मृति में चबूतरा बनाये जाना लगा हो। बदलते हुए कालक्रम के अनुसार चबूतरे का स्थान एक मकान ने ले लिया हो। अपने मन के परितोष के लिए मानव की कल्पना कुछ ओर आगे बढ़ी हो। उस मकान में किसी लौकिक देव, यक्ष आदि की प्रतिमा स्थापित की जाने लगी हो, ऐसा प्रतीत होता है। यों उसने एक देवायतन का रूप ले लिया हो। परिवर्तन की इस प्रक्रिया में स्मृति के प्रतीक तो बदलते रहे, किन्तु उन सब के लिए चैत्य शब्द ही प्रयुक्त होता रहा। अर्थात् इस अर्थ-परिवर्तन की श्रृंखला में चैत्य शब्द देव स्थान का पर्यायवाची हो गया।

जैनागमों में चैत्य के वर्णन से ऐसा अनुमान होता है कि वह लौकिक दृष्टि से पूजा-अर्चना का स्थान रहा। लोग अनेक प्रकार की कामनाएँ लेकर वहाँ आते रहते, क्योंकि सामान्य लोगों में ऐसा व्यवहार देखा जाता है। साथ ही साथ वह नागरिकों के आमोद-प्रमोद एवं हास-विलास के स्थान के उपयोग में आता था। चैत्यों के वर्णन के अन्तर्गत नर्तकों, कथकों-कथाकारों, हास-परिहासकारों, मल्लों तथा मागधों-यशोगाथा गाने वालों की अवस्थिति से यह प्रकट होता है।

चैत्यं राज्ञी शयनस्थानं १०१ चेई रामस्य गर्भता १०२। चैत्यं श्रवणे शुभे वार्ता १०३ चेई च इन्द्रजालकम् १०४॥ चैत्यं यत्यासनं प्रोक्तं १०५ चेई च पापमेव च १०६। चैत्यमुदयकाले च १०७ चैत्यं च रजनी पुनः १०८॥ चैत्यं चन्द्रो द्वितीयः स्यात् १०६ चेई च लोकपालके ११०। चैत्यं रतनं महामूल्यं १९१ चेई अन्यौषधीः पुनः॥११२॥

(इति अलंकरणे दीर्घ ब्रह्माण्डे सुरेश्वरवार्तिके प्रोक्तम् प्रतिमा चेइय शब्दे नाम ६० मो छे। चेइय ज्ञान नाम पांचमो छे। चेइय शब्दे यति=साधु नाम ७ मुं छे। पछे यथायोग्य ठामे जे नामे हुवे ते जाणवो। सर्व चैत्य शब्द ना आंक ४७, अने चेइयं शब्दे ४५ सर्व १९२ लिखितं पू० भूधर जी तत्शिष्य ऋषि जयमल नागौर मझे सं. १८०० - जयध्वज पृष्ठ ५७३-७६

(३)

तत्थ णं चंपाए णयरीए कोणिए णामं राया होत्था, वण्णओ।

शब्दार्थ - तत्थ - वहाँ, राया - राजा।

भावार्थ - वहाँ चम्पानगरी में कोणिक नामक राजा था। उसका वर्णन औपपातिक सूत्र से जान लेना चाहिए।

आर्य सुधर्मा

(8)

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी अजजसुहम्मे णामं थेरे जाइसंपण्णे, कुलसंपण्णे, बल-रूव-विणय-णाण-दंसण-चिरत्त-लाघव-संपण्णे, ओयंसी, तेयंसी, वच्चंसी, जसंसी, जियकोहे, जियमाणे, जियमाए, जियलोहे, जियइंदिए, जियणिहे, जियपरीसहे, जीवियास-मरण-भयविप्पमुक्के, तवप्पहाणे, गुणप्पहाणे, एवं करण-चरण-णिग्गह-णिच्छय-अज्जव-महव-लाघव-खंति-गुत्ति-मुत्ति-विज्जा-मंत-बंभ(चेर)-वय-णय-णियम-सच्च-सोय-णाण-दंसण-चारित्तप्पहाणे, उ(ओ)राले, घोरे, घोरव्वए, घोरतवस्सी, घोरबंभचेरवासी उच्छू दसरीरे, संखित्त-विउलते(य)उलेस्से चोद्दसपुळ्वी-चउणाणोवगए, पंचिहं अणगारसएहिं सिद्धं संपरिवुडे पुळ्वाणुपुळ्विं चरमाणे, गामाणुगामं दूइज्जमाणे, सुहं सुहेणं विहरमाणे, जेणेव चंपा णयरी जेणेव पुण्णभद्दे चेइए, तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छिता अहापडिरूवं उग्गहं ओगिण्हइ, ओगिण्हित्ता संजमेण तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

शब्दार्थ- अन्तेवासी - शिष्य, अज्ज सुहम्मे - आर्य सुधर्मा, थेरे - स्थिवर, जाइसंपन्ने - जाति-सम्पन्न-उत्तम मातृपक्ष युक्त, कुलसंपन्ने - उत्तम पितृपक्ष युक्त, बल - दैहिक शिक्त, रूप- शारीरिक सुंदरता, विनय - नप्रता, दंसण - दर्शन, लाघव - हलकापन-भौतिक पद्मर्थ एवं कषाय आदि के भार का अभाव, संपण्णे - इन विशेषताओं से युक्त, ओयंसी -

ओजस्वी, तेजंसी- तेजस्वी, वच्चंसी - वचस्वी-प्रशस्त भाषी अथवा वर्चस्वी-वर्चस् या प्रभावयुक्त, जसंसी - यशस्वी, जिय कोहे - क्रोध जेता, जियमाणे - मान जेता, जियमाए-माया जेता, जिय लोहे - लोभ जेता, जियइंदिए - इन्द्रिय जेता, जियणिहे - निद्राजेता. जिय परिसहे - परीषह जेता-कष्ट विजेता, जीवियास-मरण-भय-विष्यमुक्के - जीवन की आशा-कामना तथा मृत्यु के भय से रहित, तवप्पहाणे - तपःप्रधान, गुणप्पहाणे - गुण प्रधान-त्याग वैराग्य आदि गुणों की विशेषता से युक्त, करण - आहार विशुद्धि आदि, चरण -चारित्र, णिग्गह - निग्रह-राग आदि शत्रुओं का निरोध, णिच्छय - सत्य-तत्त्व में निश्चित विश्वास, अज्जव - आर्जव-ऋज्ता-सरलता, मद्दव - मार्दव-मृद्ता-कोमलता, खंति -क्षमाशीलता, गुत्ति - गुप्ति-मानसिक, वाचिक एवं कायिक वृत्तियों का गोपन या विवेक पूर्वक उनका उपयोग, मुत्ति - मुक्ति-कामनाओं से मुक्ति विज्जा - ज्ञान की विविध शाखाएँ, मंत - मन्त्र-सत् चिंतन या सद्विचार, बंभ - ब्रह्मचर्य, वेय - वेद आदि लौकिक-लोकोत्तर शास्त्र, णय - नैगम आदि, सच्च - सत्य, सोय - शौच-आत्मिक शुचिता या पवित्रता, पहाणे - प्रधान-इन-इन विशेषताओं से युक्त, उ(ओ)राले - साधना में सशक्त-प्रबल, घोरे -घोर-आंतरिक शत्रुओं का निग्रह करने में-रोकने में कठोर या अद्भुत शक्ति-सम्पन्न, घोरव्वए-घोरव्रती-महाव्रतों का अत्यंत दृढता से पालन करने वाले, घोर तवस्सी - उग्रं तप करने वाले, घोर बंभचेरवासी - कठोर ब्रह्मचर्य के व्रत को दुढ़ता पूर्वक पालन करने वाले, उच्छढ सरीर-उत्क्षित शरीर-दैहिक सार-संभाल या सज्जा आदि से रहित, संखित्त-विउल तेउलेस्से - विपुल या विशाल तेजोलेश्या को अपने भीतर समेटे हुए, चोद्दसपुळ्वी - चवदह पूर्वों के ज्ञान को धारण करने वाले, चउणाणोवगए - मति, श्रुत, अवधि तथा मनःपर्याय ज्ञान से युक्त, पंचिहिं अणगारसएहिं - पांच सौ साधुओं से, संपरिवृद्धे - संपरिवृत-धिरे हए, पुळाणुपूर्व्वि- पूर्वानुपूर्व-अनुक्रम से, चरमाणे - आगे बढ़ते हुए, गामाणुगामं - ग्रामानुग्राम-एक गांव से दूसरे गांव में, दूइज्जमाणे - जाते हुए, सुहसुहेणं - सुख पूर्वक, विहरमाणे - विहार करते हुए, जेणेव-जहाँ, तेणामेव - वहाँ, उवागच्छइ - आये-पधारे, उवागच्छित्ता - आकर, अहापडिरूवं-यथा प्रतिरूप-साधुचर्या के अनुरूप, उग्गहं - अवग्रह-आवास-स्थान, ओगिण्हड्ड- ग्रहण किया, ओगिण्हिता - ग्रहण करके, संजमेण- संयम से, तबसा - तप से, अप्पाणं - आत्मा को, भावेमाणे- भावित करते हुए, विहरइ - विचरते थे।

भावार्थ - भगवान् महावीर स्वामी के अन्तेवासी आर्य सुधर्मा स्वामी, जो कुलीनता, देह

सम्पदा-शारीरिक सौष्ठव, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, विनय, बहाचर्य आदि उत्तमोत्तम गुणों से युक्त, विराट व्यक्तित्व के धनी थे, पाँच सौ साधुओं के साथ विभिन्न स्थानों में विचरण करते हुए, सुखपूर्वक विहार करते हुए, चम्पा नगरी में पधारे। वहाँ पूर्णभद्र नामक चैत्य में समुचित, निरवद्य स्थान में रुके।

विवेचन - श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के ग्यारह गणधर-प्रमुख शिष्य थे। वे सभी ब्राह्मण वंशोत्पन्न थे। वेद, वेदांग, स्मृति, पुराण, दर्शन, धर्मशास्त्र आदि के वे प्रौढ़ विद्वान् थे। सैकड़ों शिष्यों के परिवार से युक्त थे। भगवान् महावीर के त्याग-तपोमय, साधनामय, आध्यात्मिक ज्योतिर्मय व्यक्तित्व से, उद्बोधन से प्रभावित होकर वे उनके पास श्रमण-धर्म में दीक्षित हो गए।

भगवान् महावीर स्वामी के नौ गण थे। जो इन ग्यारह गणधरों द्वारा अनुशासित थे। नौ गणधरों का भगवान् महावीर स्वामी के जीवनकाल में ही निर्वाण हो गया। प्रथम गणधर इन्द्रभूति गौतम तथा पंचम गणधर सुधर्मा स्वामी विद्यमान रहे।

भगवान् महावीर स्वामी का जिस दिन पावापुरी में निर्वाण हुआ, उसी दिन गणधर गौतमस्वामी को केवलज्ञान प्राप्त हुआ।

केवलज्ञानी अपने स्वाश्रित, स्वतंत्र, स्वतः प्रमाण केवलज्ञान-सर्वज्ञत्व के कारण साधु संघ के अधिनायक पद पर आसीन नहीं होते, ऐसी परम्परा है। अतः भगवान् महावीर स्वामी के पाट पर गौतम स्वामी नहीं विराजे। संघाधिनायक का उत्तरदायित्व श्री सुधर्मा स्वामी ने स्वीकार किया। वे भगवान् महावीर स्वामी के पाट पर विराजे।

श्री सुधर्मा स्वामी के नाम से पूर्व जो आर्य शब्द का प्रयोग दृष्टि गोचर होता है वह उनके निर्मल, उज्ज्वल, सात्विक, सौम्य तथा विपुल आत्म-शक्ति-सम्पन्न व्यक्तित्व का सूचक है।

(뇌)

तए णं चंपाए णयरीए परिसा णिगाया। कोणिओ णिगाओ। धम्मो कहिओ। परिसा जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया।

शब्दार्थ - परिसा - परिषद्-जनसमूह, णिग्गया - निर्गत हुआ-आया, धम्मो - धर्मोपदेश, किहिओ - कहा गया-दिया गया, जामेव दिसिं - जिस दिशा से, पाउब्भूया - प्रादुर्भूत हुआ, आया, तामेव दिसिं - उसी दिशा में, पडिगया - प्रतिगत हुआ-लौट गया।

भावार्थ - आर्य सुधर्मा स्वामी के चम्पा में पधारने पर लोग उन्हें वन्दन करने, उनका

उपदेश सुनने आये। राजा कोणिक भी आया। आर्य सुधर्मा स्वामी ने धर्म देशना दी। सुनकर सब लोग जिधर से, जहाँ-जहाँ से आये थे, वापस लौट गये।

विवेचन - कोणिक (कूणिक) अंगदेश-चम्पानगरी का राजा था। वह भगवान् महावीर स्वामी के अनुयायी मगधदेश-राजगृह नगर के नरेश श्रेणिक का पुत्र था। उसकी माता चेलना लिच्छिवी गणराज्य, वैशाली के अधिपति चेटक की पुत्री थी। कोणिक भगवान् महावीर स्वामी का परम भक्त था। यही कारण है कि उसने भगवान् महावीर स्वामी विषयक समाचारों से, प्रवृत्तियों से स्वयं को अवगत कराने हेतु एक प्रवृत्ति-वादुक की नियुक्ति की थी, उसे सहयोग करने हेतु अनेक कर्मचारी भी रखे थे। उनकी सहायता से वह प्रवृत्ति वादुक राजा तक समाचार पहुँचाता। जब राजा को भगवान् महावीर स्वामी के अपने यहाँ पदार्पण के समाचार मिलते तो वे हर्ष विभोर हो उठते तथा भगवान् को वन्दन करने, उनका उपदेश सुनने जाते। इससे भगवान् महावीर स्वामी के प्रति उनकी असीम श्रद्धा का परिचय मिलता है।

बौद्ध-साहित्य में अजातशत्रु के नाम से उनका उल्लेख है। वहां उसे बौद्ध धर्म का अनुयायी कहा गया है।

"अजातशत्रु जैन था या बौद्ध था", इस पर अनेक विद्वानों ने ऊहा-पोह किया है। सुप्रसिद्ध इतिहासकार डॉ. राधाकुमुद मुखर्जी ने उसे भगवान् महावीर स्वामी का अनुयायी बंताया है ♦।

पाश्चात्य इतिहासकार डॉ. स्मिथ के अनुसार अजातशत्रु का जैन धर्मानुयायी होना अधिक आधारयुक्त है।

मुनि श्री नगराजजी डी. लिट् ने अपनी पुस्तक "आगम और त्रिपिटकःएक अनुशीलन" में लिखा है -

अजातशत्रु कूणिक का बुद्ध से साक्षात्कार केवल एक बार होता है, पर महावीर स्वामी से उसका साक्षात्कार अनेक बार होता है।

सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर ऐसा संभव लगता है कि कूणिक पहले कुछ समय बौद्ध धर्म का अनुयायी रहा किंतु बाद में उसने जैन धर्म स्वीकार कर लिया और उसी पर स्थिर रहा। क्योंकि भगवान् महावीर स्वामी के निर्वाण के पश्चात् भी उसका जैनधर्म से निकटतम संपर्क रहा।

[💠] हिन्दू सभ्यता, पृष्ठ - १६०।

आर्य जंबू

(६)

तेणं कालेणं तेणं समएणं अज्जसुहम्मस्स अणगारस्स जेट्ठे अंतेवासी अज्ज जंबू णामं अणगारे कासवगोत्तेणं सत्तुस्सेहे जाव अज्जसुहम्मस्स थेरस्स अदूर-सामंते उड्ढं जाणू अहोसिरे झाणकोट्ठोवगए संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

शब्दार्थ - जेट्ठे - ज्येष्ठ-बड़े, अणगारस्स - अनगार-मुनि, कासवगोत्तेणं - काश्यप गोत्रीय, सत्तुस्सेहे - सात हाथ ऊँची देह से युक्त, अज्जसुहम्मस्स थेरस्स - स्थिविर आर्य सुधर्मा के, अदूर सामंते - न अधिक दूर न अधिक निकट-समुचित स्थान पर, उड्ढं जाणू -घुटने ऊँचे किये हुए, अहोसिरे - मस्तक नीचा किये हुए, झाणकोट्ठोवगए - ध्यान कोष्ठोपगत-ध्यान मुद्रा में स्थित।

भावार्थ - आर्य सुधर्मा के बड़े शिष्य आर्य जम्बू, जिनके शरीर की ऊँचाई सात हाथ थी, जो अन्यान्य दैहिक विशेषताओं से तथा तप आदि संयमोपवर्धक उत्तम गुणों से युक्त थे, आर्य सुधर्मा की सिन्निधि में आये, संयम एवं तप से आत्मानुभावित होते हुए समुचित स्थान पर उनके समक्ष घुटनों के बल झुके हुए, मस्तक नीचा किये, ध्यान-मुद्रा में अवस्थित हुए।

विवेचन - आर्य जंबू भगवान् महावीर स्वामी की परम्परा में अंतिम केवली थे। उनका जन्म राजगृह में अत्यंत वैभवशाली श्रेष्ठी ऋषभदत्त के घर हुआ। उनका लालन-पालन अपार वैभव एवं सुख समृद्धि के बीच हुआ। जंबू के वैराग्यमय धार्मिक संस्कार प्रारंभ से ही बहुत उच्च थे। माता-पिता और पारिवारिकजनों के आग्रह के कारण सोलह वर्ष की अवस्था में उनका आठ सुंदर श्रेष्ठी कन्याओं के साथ विवाह हुआ। उन्हें निन्यानवे करोड़ की संपत्ति प्रीतिदान में प्राप्त हुई।

सुहागरात में वे अपनी आठों नविवाहिता पिलियों को संसार की नश्वरता बतलाते हुए वैराग्य भाव की ओर प्रेरित करने हेतु वार्तालाप कर रहे थे। संयोग ऐसा बना, उसी समय प्रभव नामक प्रसिद्ध चोर अपने पाँच सौ साथियों के साथ चोरी करने के लिए जंबू के महल में प्रविष्ट हुआ। वह छिप कर जंबू और उनकी पिलियों का वार्तालाप सुनने लगा। जंबू द्वारा दिये गये उद्बोधन से उनकी पत्नियों के मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया। प्रभव चोर को भी प्रतिबोध प्राप्त हुआ। उसने अपने पाँच सौ साथियों को भी प्रतिबोधित किया। जंबू के माता-पिता भी इस घटना से अत्यंत प्रभावित हुए। संसार से विरक्त हुए। आठों पत्नियों, प्रभव सहित पाँच सो चोरों एवं अपने तथा पत्नियों के माता-पिता आदि कुल पाँच सो सत्ताईस व्यक्तियों के साथ जंबू प्रव्रजित हुए।

सोलह वर्ष की आयु में उन्होंने दीक्षा ग्रहण की। बीस वर्ष तक साधु पद में रहे इस प्रकार छत्तीस वर्ष की आयु में वे आचार्य पद पर आसीन हुए। उसके बाद चवालीस वर्ष तक आचार्य पद में रहे। इस प्रकार चौसठ वर्ष श्रमण पर्याय में रहे। उसमें दीक्षा के बाद बीस वर्ष तक छद्मस्थ अवस्था में रहे। चवालीस वर्ष केवली पर्याय में रहे। सर्वायु अस्सी वर्ष की पूर्ण करके मोक्ष में पधारे।

आर्य जंबू के पश्चात् धैर्यता, गंभीरता एवं विशिष्ट संहनन, प्रतिभा एवं उच्चतम परिणामों के अभाव से केवलज्ञान की परंपरा का विच्छेद हो गया। यहाँ से चतुर्दश पूर्वधरों-श्रुतकेविलयों की परम्परा का आरम्भ हुआ। प्रभव, शय्यंभव, यशोभद्र, संभूतविजय और भद्रबाहु श्रुतकेविलयों हुए। स्थूलभद्र मूलपाठ की दृष्टि से चतुर्दश पूर्वों, अर्थ की दृष्टि से दस पूर्वों के धार्क थे।

(७)

तए णं से अज्जजंबू णामे अणगारे जायसङ्ढे, जायसंसए, जायकोउहल्ले, संजायसङ्ढे, संजायसंसए, संजायकोउहल्ले, उप्पण्णसङ्ढे, उपण्णसंसए, उप्पण्णकोउहल्ले, समुप्पण्णसङ्ढे, समुप्पण्णसंसए, समुप्पण्णकोउहल्ले, उद्घाए उद्वेड। उद्घाए उद्वित्ता जेणामेव अज्जसुहम्मे थेरे तेणामेव उवागच्छड, उवागच्छित्ता अज्जसुहम्मे थेरे तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेड, करेत्ता वंदड णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता अज्जसुहम्मस्स थेरस्स णच्चासण्णे णाइदूरे सुस्सूसमाणे णमंसमाणे अभिमुहे पंजलिउडे विणएणं पञ्जुवासमाणे एवं वयासी।

शब्दार्थ - जायसङ्ढे - श्रद्धापूर्वक उत्पन्न इच्छा से युक्त, जायसंसए - अनिरूपित अर्थ के प्रति उत्पन्न संशय पूर्ण जिज्ञासा युक्त, जायकोउहल्ले - जिज्ञासा योग्य अर्थ के प्रति कुतूहल-विशेष उत्सुकतायुक्त, संजायसङ्ढे - पुनः उभरे हुए श्रद्धा भाव के साथ विशेष इच्छायुक्त, उद्वेड़ - उठते हैं, उद्वित्ता - उठकर, तिक्खुत्तो - तीन बार, आयाहिणं-पयाहिणं - आदक्षिण-प्रदिक्षणा करके जुड़े हुए हाथों को दाहिने ओर से घुमाते हुए, वंदड़ - वन्दना करते हैं, णमंसड़- नमस्कार करते हैं, वंदित्ता - वन्दना कर, णमंसित्ता - नमस्कार करके, णच्चासण्णे- न अति आसन्त-समीप, णाइदूरे - न अधिक दूर, सुस्सूसमाणे - शुश्रूषा-सुनने की इच्छा करते हुए, णमंसमाणे - नमन करते हुए, अभिमुहे - अभिमुख, पंजलिउडे - हाथ जोड़े हुए, विणएणं - विनय पूर्वक, पज्जुवासमाणे - पर्युपासना-अभ्यर्थना करते हुए, एवं - इस प्रकार, वयासी - बोले।

भावार्थ - आर्य जंबू गुरुवर आर्य सुधर्मा स्वामी से आगमों के पाँच अंग श्रवण कर चुके थे, उनके मन में छठे अंग के श्रवण करने की श्रद्धा पूर्वक इच्छा उत्पन्न हुई। क्रमशः वह तीव्र हुई, शंकाजनित जिज्ञासा योग्य अर्थ के प्रति उनके मन में विशेष उत्सुकता उत्पन्न हुई। वे अपने स्थान से उठकर आये। उन्होंने तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा पूर्वक यथा विधि आर्य सुधर्मा स्वामी को वन्दन-नमन किया। उनके समीप उपयुक्त स्थान पर स्थित हुए। हाथ जोड़े हुए, श्रवण करने की इच्छा लिये हुए, पुनः प्रणाम कर उनसे बोले।

विवेचन - जैनागमों का प्रयोजन-लक्ष्य प्राणी मात्र को, कोटि-कोटि मानवों को धार्मिक तत्त्वों से, सदाचरण से अवगत कराना तथा उस ओर प्रेरित करना है, यही कारण है, वहाँ ऐसी शैली को अपनाया गया है, जिससे आगमों का सदेश श्रोताओं और पाठकों के अन्तः स्थल तक सहज रूप में पहुँच सके। भाव को स्पष्ट करने हेतु वहाँ एक ही बात प्रायः अनेक समानार्थ सूचक शब्दों द्वारा कही जाती हैं, जिससे श्रोताओं या पाठकों के समक्ष उस घटना या उस वृतान्त का एक विशद भाव चित्र उपस्थित हो जाता है। बाह्य दृष्टि से देखने पर यह पुनरुक्ति जैसा प्रतीत होता है, पर भावात्मक दृष्टि से वास्तव में उसकी अपनी सार्थकता एवं उपयोगिता है। -

प्रस्तुत प्रसंग में आर्य जंब्स्वामी के जिज्ञासा मूलक मनोभाव को प्रकट करने के लिए श्रद्धा, संशय एवं कौतुहल के जात, संजात और उत्पन्न एवं समुत्पन्न होने का उल्लेख हुआ है। जात का अर्थ पैदा होना है। जात से पूर्व 'सम्-सं' उपसर्ग लगाने से संजात शब्द बनता है। 'सम-सं' उपसर्ग सम्यक् या भलीभाँति का सूचक है। इस प्रकार संजात का अर्थ भलीभाँति पैदा होना है। उत्पन्न होने का अर्थ प्रादुर्भूत होना है। समुत्पन्न का अर्थ सम्यक् रूप में प्रादुर्भूत है।

आर्य जंबू के मन में अपने परम पूज्य गुरुवर के प्रति असीम श्रद्धा थी। इसलिए उनके मन में श्रद्धा पूर्वक पूछने की इच्छा उत्पन्न होती है। यहाँ जो संशय शब्द का प्रयोग हुआ है, वह उनकी जिज्ञासा की हार्दिकता का सूचक है। कौतुहल शब्द उनके अंतःकरण के उत्सुक भाव के साथ जुड़ा हुआ है।

शिष्यों का गुरुजन के प्रति कितना अधिक विनय भाव था, यह आर्य जंबू के व्यवहार से प्रकट होता है। वे अपने स्थान से उठकर गुरुवर के पास आते हैं। यथा विधि उन्हें वन्दन करते हैं, फिर पूछने हेतु उनके सम्मुख उपस्थित होते हैं। न तो उनके बहुत नजदीक बैठते हैं और न बहुत दूर ही बैठते, क्योंकि उनके नजदीक बैठना अविनय होता है और बहुत दूर बैठना अनुपयोगी है। वे बड़ी श्रद्धा और उत्सुकता से गुरुवर के मुखारविन्द से तत्त्व-श्रवण करना चाहते हैं, विनय पूर्वक हाथ जोड़ कर उनकी सेवा में इस प्रकार निवेदन करते हैं।

जंबूस्वामी की जिज्ञासा

(¤)

जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं, आइगरेणं तित्थयरेणं, सयंसंबुद्धेणं, पुरिस्तमेणं, पुरिससीहेणं, पुरिसवर पुंडरीएणं, पुरिसवर गंधहित्थणा, लोग्तमेणं, लोगणाहेणं, लोगहिएणं, लोगपईवेणं, लोगपज्जोयगरेणं, अभयदएणं, सरणदएणं, चक्खुदएणं, मग्गदएणं, बोहिदएणं, धम्मदएणं, धम्मदेसएणं, धम्मणायगेणं, धम्मसारिहणा, धम्मवरचाउरंत चक्कविष्टणा, अप्पिडहयवरणाण-दंसणधरेणं, वियद्दछउमेणं, जिणेणं, जावएणं, तिण्णेणं, तारएणं, बुद्धेणं, बोहएणं, मुत्तेणं, मोयगेणं, सव्वण्णूणं, सव्वदरिसिणा सिवमयल मरुअ मणंत, मक्ख्य मव्वाबाह-मपुणरावित्तियं, सासयं ठाणमुवगएणं पंचमस्स अंगस्स अयमद्ठे पण्णत्ते, छद्दस्स णं अंगस्स णं भंते! णायाधम्मकहाणं के अट्ठे पण्णत्ते?

शब्दार्थ - आइगरेणं - आदिकर-सर्वज्ञता प्राप्त होने पर सर्वप्रथम श्रुतधर्म का शुभारम्भ करने वाले, तित्थयरेणं - तीर्थंकर-श्रमण-श्रमणी-श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध धर्म-तीर्थ के संस्थापक, सर्यसंबुद्धणं - स्वयंसंबुद्ध-किसी बाह्य निमित्त या सहायता के बिना स्वयं बोध

प्राप्त, पुरिसुत्तमेणं - पुरुषोत्तम-विशिष्ट अतिशयों से सम्पन्न, पुरिससीहेणं - पुरुषसिंह-आत्मशौर्य में पुरुषों में सिंह सदृश, पुरिसवरपुंडरीएणं - पुरुषवर पुंडरीक-सर्व प्रकार की मलिनता से रहित, पुरिसवर-गंधहत्थिणा - पुरुषवर गन्धहस्ती-पुरुषों में श्रेष्ठ गंध हस्ती के समान, लोगुत्तमेणं-लोकोत्तम, लोगणाहेणं - लोकनाथ-जगत् के प्रभु, लोगहिएणं - लोक का हित करने वाले, अथवा लोकप्रतीप-लोक-प्रवाह के प्रतिकलगामी-अध्यात्म-पथ पर गतिशील, लोगपज्जोयगरेणं-लोक प्रद्योतकर-लोक में धर्म का उद्योत-प्रकाश फैलाने वाले, अभयदएणं - अभयप्रद, सरणदएणं- शरणप्रद, चक्खुदएणं - चक्षुःप्रद-अन्तर्चक्षु खोलने वाले, मग्गदएणं - मार्ग प्रद, बोहिदएणं - बोधिप्रद-संयम जीवन मूलक बोधि प्रदान करने वाले, धम्मदएणं - धर्मप्रद, धम्मदेसएणं - धर्मोपदेशक, धम्मणायगेणं - धर्मनायक, धम्मसारहिणा - धर्म सारथी, धम्मवर चाउरंत चक्कविष्णा - तीन ओर महासमुद्र तथा एक ओर हिमवान् की सीमा लिये विशाल भूमण्डल के स्वामी, चक्रवर्ती की तरह उत्तम धर्म-साम्राज्य के सम्राट, अप्पडिहयवरणाण दंसणधरेणं - प्रतिघात, विसंवाद या अवरोध रहित उत्तम ज्ञान व दर्शन के धारक, वियद्व छउमेणं-धातिकर्मों से रहित, जिणेणं - जिन-राग-द्वेष-विजेता, जावएणं - ज्ञायक-राग आदि भावात्मक सम्बन्धों के ज्ञाता अथवा ज्ञापक, तिण्णेणं - तीर्ण- संसार सागर को तैर जाने वाले, तारएणं-राग आदि को जीतने का पथ बताने वाले, बुद्धेणं - बोध युक्त, बोहएणं - बोधक-बोधप्रद, मुत्तेणं - मुक्त-बाहरी तथा भीतरी ग्रन्थियों से छूटे हुए, मोयगेणं - मोचक-मुक्तता के प्रेरक, सव्वण्णुणं - सर्वज्ञ. सव्वदरिसिणा - सर्वदर्शी, सिवं - शिव-मंगलमय, अयलं - अचल-स्थिर, अरुवं - अरुज-रोग या विध्न रहित, अणंतं - अनन्त, अक्खवं - अक्षय, अव्वाबाहं-अव्याबाध-बाधा रहित, अपुणरावित्तियं - अपुनरावर्तित-पुनरावर्तन रहित, सासयं - शाश्वत, ठाणं - स्थान, उक्पाएणं - उपगत-समीप पहँचे हुए, अयं - यह, अहे - अर्थ, पण्णत्ते -प्रजास किया गया-बतलाया गया, भंते - भगवन, के - क्या?

भावार्थ - धर्म-तीर्थ के संस्थापक, केवलज्ञान से विभूषित, श्रुत-परंपरा के संप्रवर्तक, पुरुषोत्तमत्व आदि अनेकानेक उत्तमोत्तम गुणों के धारक श्रमण भगवान् महावीर स्वामी द्वारा प्रतिपादित पंचम अंग व्याख्या प्रज्ञप्ति सूत्रगत विषयों का आपने परिज्ञापन-विवेचन किया। अब कृपया बतलाएं, भगवान् महावीर स्वामी ने छठे अंग ज्ञाताधर्म का क्या अर्थ कहा-तद्गत विषयों का किस प्रकार विवेचन किया?

सुधर्मा स्वामी द्वारा समाधान

(3)

जंबुत्ति अज्जसुहम्मे थेरे अज्जजंबूणामं अणगारं एवं वयासी-एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं छट्टस्स अंगस्स दो सुयक्खंधा पण्णत्ता, तंजहा - णायाणि य धम्मकहाओ य।

शब्दार्थ - तए - तब, थेरे - स्थिवर-प्रौढ चारित्रादि वैशिष्टय युक्त, संपत्तेणं - सप्राप्त, सुयक्खंधा - श्रुतस्कन्ध, तं - वह, जहा - जैसे, णायाणि - ज्ञात-उदाहरण, धम्मकहाओ-धर्म कथाएँ, य - और।

भावार्थ - स्थिवर आर्य सुधर्मास्वामी ने जम्बूस्वामी को संबोधित कर कहा-अनेकानेक . उत्कृष्ट गुण विभूषित भगवान् महावीर स्वामी ने छठे अंग-ज्ञाताधर्मकथा के ज्ञात और धर्मकथाएँ नामक दो श्रुत स्कन्ध बतलाये हैं।

(90)

जड़ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं छट्टस्स अंगस्स दो सुयक्खंधा पण्णत्ता तं जहा - णायाणि य धम्मकहाओ य। पढमस्स णं भंते! सुयक्खंधस्स समणेणं जाव संपत्तेणं णायाणं कड़ अज्झयणा पण्णत्ता?

शब्दार्थ - जइ - यदि, जाव - यावत्, अमुक पर्यन्त।

भावार्थ - जम्बू स्वामी पुनः प्रश्न करते हैं - सिद्धत्व आदि गुणगणोपेत श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने यदि छठे अंग ज्ञाताधर्मकथा सूत्र के ज्ञात और धर्मकथाएँ नामक दो श्रुतस्कन्ध बतलाये हैं, तो कृपया फरमाएं - उन्होंने प्रथम ज्ञात संज्ञक श्रुत स्कन्ध में कितने अध्ययन प्ररूपित किये हैं?

(99)

एवं खलु जंबू! समणेणं जाव संपत्तेणं णायाणं एगूणवीसं अज्झयणा पण्णता, तं जहा - उक्खित्तणाए, संघाडे, अंडे कुम्मे य, सेलगे। तुंबे य रोहिणी, मल्ली, माइंदी, चंदिमाइ य॥ १॥ दावद्दवे उदगणाए, मंडुक्के, तेयली वि य। णंदिफले, अमरकंका, आइण्णे सुसमाइ य॥ २॥ अवरे य पुंडरीए, णायएक एगूणवीसइमे।

भावार्थ - आर्य सुधर्मास्वामी ने फरमाया - हे जम्बू! महामहिम श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने ज्ञात नामक श्रुतस्कन्ध के उन्नीस अध्ययन प्रतिपादित किये हैं। वे इस प्रकार हैं -

१. उत्क्षिप्तज्ञात २. संघाट ३. अंडक ४. कूर्म ५. शैलक ६. तुम्ब ७. रोहिणी ८. मल्ली ६. माकन्दी १०. चन्द्र ११. दावद्रववृक्ष १२. उदक १३. मण्डूक १४. तेतलीपुत्र १५. नन्दीफल १६. अमरकंका (द्रौपदी) १७. आकीर्ण १८. सुषमा १६. पुण्डरीक-कण्डरीक। ये उन्नीस ज्ञात अध्ययनों के नाम हैं।

विवेचन - जैनागमों के आविर्भाव के सम्बन्ध में कहा गया है - "अत्थं भासइ अरहा सुत्तं गंशंति गणहरा निउणं" • - अर्थात् अर्हत्-तीर्थंकर अर्थ रूप में अपना प्रवचन करते हैं- उपदेश देते हैं। गणधर निपुणता पूर्वक शब्द रूप में उसे संग्रंथित करते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि जैनागमों के शब्द गणधरों के हैं।

भगवान् महावीर स्वामी वर्तमान अवसर्पिणी के अन्तिम अर्हत्-तीर्थंकर थे। उनके ग्यारह गणधर प्रमुख शिष्य थे। भगवान् महावीर स्वामी के द्वारा समय-समय पर जो धर्म-देशना दी गई, उसे अर्थ या भाव के आधार पर सभी गणधरों ने अपनी-अपनी दृष्टि से शब्द रूप में संग्रिथित किया। शाब्दिक या भाषात्मक दृष्टि से सभी गणधरों की संग्रथना या रचना एक समान हो, यह संभव नहीं है किंतु अर्थ की दृष्टि से सभी एक ही हैं।

भगवान् महावीर स्वामी के ग्यारह गणधर तथा नौ गण थे। पहले से सातवें तक गणधर एक-एक गण की व्यवस्था देखते थे, वाचना देते थे। आठवें और नौवें गणधर की तथा दसवें एवं ग्यारहवें गणधर की अपनी एक-एक वाचना थी, वे सम्मिलित रूप में वाचना देते थे। इस

^{- 🍫} पाठान्तर - णामा।

आवश्यक निर्युक्ति ६२।

प्रकार ग्यारह गणधरों की नौ वाचनाएँ हुई। कल्पसूत्र **७** एवं स्थानांग सूत्र **ॐ** में इस संबंध में उल्लेख हुआ है।

नौ गणधर भगवान् महावीर स्वामी के जीवन-काल में ही मोक्ष प्राप्त कर चुके थे। प्रथम गणधर इन्द्रभृति गौतम एवं पंचम गणधर सुधर्मा स्वामी भगवान् महावीर स्वामी के मोक्ष प्राप्त करने के पश्चात् भी विद्यमान रहे। ज्यों-ज्यों गणधर मोक्ष पधारते गये उनके गण सुधर्मा स्वामी के गण में मिलते गये। आज हमें जो आगम साहित्य प्राप्त हैं, उसके शब्दकार आर्य सुधर्मा स्वामी हैं। किंतु अर्थोपदेशक भगवान् महावीर स्वामी ही है। यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि शब्द रूप में संग्रिथित आगमों की प्रामाणिकता का आधार अर्थ रूप में सर्वज्ञ भाषित के अनुरूप या तत्संगत होना ही है। उपर्युक्त तथ्य के अनुरूप ही आगमों का वक्ता के द्वारा बोध कराना है। इसका अभिप्राय यह है कि जंबू स्वामी जब आर्य सुधर्मा स्वामी से प्रश्न करते, तब वे ऐसा कहते कि भगवान् महावीर स्वामी ने इस संबंध में जो कहा है, वह कृपया मुझे बतलाइये।

आर्य सुधर्मा स्वामी जब जम्बू स्वामी के प्रश्न का समाधान करते तो वे भगवान् महावीर स्वामी द्वारा कथित तथ्यों को अपने शब्दों में प्रकट करने की बात कहते। इस शैली द्वारा यह व्यक्त किया गया है कि आगमगत श्रुत ज्ञान का स्रोत वस्तुतः भगवान् महावीर स्वामी से ही प्रस्फुटित, प्रवाहित हुआ।

पुनः पृच्छा (१२)

जइ णं भंते! समणेणं जाव संपत्तेणं णायाणं एगूणवीसा अज्झयणा पण्णता तं जहा - उक्खितणाए जाव पुंडरीए(ति)य, पढमस्स णं भंते! अज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते?

भावार्थ - हे भगवन्! यदि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने ज्ञात नामक श्रुतस्कन्ध के उत्क्षित से लेकर पुंडरीक तक उन्नीस अध्ययन फरमाये हैं तो कृपया बतलाएँ, उन्होंने प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ कहा?

कल्पसूत्र-२०३

[‡] स्थानांग सूत्र स्थान ६-२६

प्रथम अध्ययन का प्रारंभ

(93)

एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे दाहिणहभरहे रायगिहे णामं णयरे होत्था। वण्णओ। गुणसिलए चेइए। वण्णओ।

शब्दार्थ - इहेव - इसी, जंबुद्दीवे - जम्बू द्वीप में, भारहेवासे - भारत वर्ष में, दाहिणहभरहे - दक्षिणार्ध भरत में।

भावार्थ - आर्य सुधर्मा स्वामी ने फरमाया - हे जम्बू! वह इस प्रकार है - उस काल, उस समय इसी जम्बूद्वीप में-भारतवर्ष में दक्षिणार्ध भरत में-भरत क्षेत्र के दक्षिणी आधे भाग के अन्तर्गत राजगृह नामक नगर था। वहाँ गुणशील नामक चैत्य था। इन दोनों का वर्णन औपपातिक सूत्र से समझ लेगा चाहिए।

विवेचन - राजगृह पूर्वी भारत का एक प्राचीन नगर रहा है। यह पहले गिरिव्रज के नाम से प्रसिद्ध था। यह विपुल, रत्न, उदय स्वर्ण तथा वैभार नामक पांच पर्वत श्रेणियों से घिरा हुआ है। इनमें विपुल और वैभार पर्वत का सर्वाधिक महत्त्व माना जाता है। जैन इतिहास के अनुसार विपुल पर्वत पर तपस्या कर अनेक मुनियों ने मोक्ष प्राप्त किया। उस पर्वत में अनेक गुफाएं हैं। वह पांचों पर्वतों में सबसे ऊँचा है।

पांचवें अंग आगम भगवती सूत्र में वैभार पर्वत के मीचे उष्ण जल के कुंड का उल्लेख है। आज भी उस स्थान पर उष्ण जल का स्त्रोत विद्यमान है। ऐसी मान्यता है कि उसमें स्नान करने से चर्म रोग का निवारण हो जाता है। इसी कारण सहस्रों व्यक्ति उसमें स्नान करते हैं।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी और तथागत बुद्ध के राजगृह में अनेक चातुर्मासिक प्रवास हुए। दक्षिण बिहार के अन्तर्गत बिहार शरीफ नामक नगर से दक्षिण की ओर लगभग चवदह मील की दूरी पर वह स्थित है। इस समय वह राजगिर (Rajgir) के नाम से प्रसिद्ध हैं।

वैदिक ग्रंथों में गिरिव्रज का उल्लेख प्राप्त होता है। यह श्री कृष्ण के प्रतिद्वन्द्वी राजा जरासंध की राजधानी था। शुरू से ही यह अवैदिक परंपरा का केन्द्र रहा।

(98)

तत्थ णं रायगिहे णयरे सेणिए णामं राया होत्था। महया हिमवंत० वण्णओ। तस्स णं सेणियस्स रण्णो णंदा णामं देवी होत्था सुकुमाल पाणिपाया वण्णओ॥ शब्दार्थ - तत्थ - वहाँ, तस्स - उसके, राया - राजा, रण्णो - राजा के, देवी -रानी, सुकुमालपाणिपाया - सुकोमल हाथ-पैर युक्त।

भावार्थ - राजगृह नगर का श्रेणिक नामक राजा था। वह महाहिमवान् आदि के सदृश महत्ता तथा वैभव, बल, प्रतिष्ठा, जनप्रियता आदि अनेक विशेषताओं से युक्त था। उसकी नन्दा नामक रानी थी। वह सुकुमार हाथ पैर आदि अंग-प्रत्यंगों के शुभ लक्षण तथा सौन्दर्य युक्त थी। राजा, रानी और चैत्य का वर्णन, औपपातिक सूत्र से जान लेना चाहिए।

(৭५)

तस्स णं सेणियस्स पुत्ते णंदाए देवीए अत्तए अभए णामं कुमारे होत्था। अहीण पंचिंदिय सरीरे जाव सुरूवे, सामदंडभेय-उवप्पयाणणीइ सुप्पउत्तणय-विहिण्णू, ईहा बूहमणण गवेसण अत्थ सत्थमइ विसारए, उप्पत्तियाए, वेणइबाए, किम्मियाए, पारिणामियाए, खडिव्लिहाए बुद्धीए उववेए, सेणियस्स रण्णो बहुसु कज्जेसु य, कुडुंबेसु य, मंतेसु य, गुज्झेसु य, रहस्सेसु य, णिच्छएसु य, आपुच्छणिज्जे, पडिपुच्छणिज्जे, मेढी, पमाणं, आहारे, आलंबणं, चक्खू, मेढीभूए, पमाणभूए, आहारभूए, आलंबणभूए, चक्खुभूए, सव्यक्जेसु, सव्यभ्यूमियासु, लद्धपच्चए, विश्वण्णवियारे, रज्जधुरचिंतए यावि होत्था। सेणियस्स रण्णो रज्जं च, रहं च, कोसं च, कोट्टागारं च, बलं च, वाहणं च, पुरं च, अंतेउरं च, स्थमेव समु(वे)पेक्खमाणे समुपेक्खमाणे विहरइ॥

शब्दार्थ - असए - आत्मज, अहीण - परिपूर्ण, पंचिंदिय - पांच इन्द्रियां, सुरूषे - सुन्दर रूप युक्त, साम - खुशामद या प्रलोभन द्वारा सहमत करना-प्रसन्न करना, दंड - भय दिखाकर सहमत करना, भेय - आपस में भेद उत्पन्न कर दबाना, उवप्पयाण - उपप्रदान-कुछ देकर राजी करना, णीइ सुप्यउत्तणय - नीति-प्रयोग में दक्ष, विहण्णू - व्यवहार-निष्णात, ईहा - चेच्टा, अपोह - चिन्तन, मग्गण - मार्गण, गवेसण - खोज, अत्थसत्थमइ - अर्थ शास्त्र में निपुण, विसारए - कार्य कुशल, उप्पत्तियाए - औत्पातिकी, वेणइयाए - वैनियकी, काम्मियाए- कार्मिकी, पारिणामियाए - पारिणामिकी, चडव्विहाए बुद्धीए - चार प्रकार की बुद्धि द्वारा, उववेए - उपपेत-युक्त, काजेसु - कार्यों में, रहस्सेसु - रहस्यमय कार्यों में,

www.jainelibrary.org

णिच्छएसु - निश्चय या निर्णय करने में, आपुच्छणिज्ञे - पूछने योग्य, मंतेसु - मंत्रणा या सलाह में, गुज्झेसु - गुप्त कार्यों में, परिपुच्छणिज्ञे - पुनः पुनः पूछने योग्य, मेढी - खिलहान में गड़े स्तंभ के समान दृढ़, पमाणं -प्रमाण, आहारे - आधार, आलंबणभूए - आलम्बन स्वरूप, पमाणभूए - प्रमाणभूत-सर्वथा प्रामाणिक-खरा, चक्खूभूए - चक्षुभूत-मार्ग दर्शक, सव्वकज्जेसु - सब कार्यों में, सव्वभूमियासु - सब भूमिकाओं में-प्रसंगों में, लद्धपच्चए - लब्ध प्रत्यय-विश्वासपात्र, विइण्णवियारे - वितीर्ण विचार-सबको विचार देने वाला, रज्जधुरचिंतए - राज्य के दायित्वभार की चिन्ता करने वाला-अपने उत्तरदायित्व के प्रति जागरूक, रहं - राष्ट्र, कोसं - कोश-खजाना, कोहागारं - कोशागार-अन्न भण्डार, बलं - सेना, वाहणं - वाहन, सवारी में उपयोगी हाथी, घोड़े आदि, पुरं - नगर, अंतेउरं - अन्तःपुर-रनवास, सयमेव - स्वयमेव, समुपेक्खमाणे - देखभाल करता हुआ।

भावार्थ - राजगृह-नरेश श्रेणिक का पुत्र अभयकुमार दैहिक सौष्ठव, बुद्धि-कौशल, साम-दण्ड-भेद-उपप्रदान (दाम) आदि राजनैतिक चातुर्य, चिंतन, मनन, गवेषण में निपुण, सौम्य एवं सहृदय था। परिवार, नगर, राज्य, राज्य, कोश, कोष्ठागार आदि की सुव्यवस्था में निष्णात था। महाराज श्रेणिक के सभी महत्त्वपूर्ण कार्य योजना, मंत्रणा, परामर्श आदि के निष्पादन में वह अत्यन्त योग्य होने के साथ-साथ परम विश्वासपात्र था। वह मगध साम्राज्य के संचालन में एक मेढ़ी की तरह सुदृढ़ आधार था, अनुपम मेधावी था।

विवेचन - यहाँ पाठ में प्रयुक्त 'जाव' शब्द 'वण्यओ' की तरह विस्तृत वर्णन को संक्षेप में सूचित करने का हेतु है। तदनुसार विस्तृत पाठ उन अन्य आगमों से ग्राह्य है, जिनमें वह आया हो।

पानी का एक कुंड लबालब भरा हुआ हो और उसमें पुरुष तो बिठाने पर एक द्रोण (प्राचीन नाप) पानी बाहर निकले तो वह पुरुष मान-संगत कहलाता है। तराजू पर तोलने पर यदि अर्ध भार प्रमाण तुले तो वह उन्मान-संगत कहलाता है। अपने अंगुल से एक सौ आठ अंगुल ऊँचा हो तो वह प्रमाण-संगत कहलाता है।

अभयकुमार जहाँ शरीर सौष्ठव से सम्पन्न था वहीं अतिशय बुद्धिशाली भी था। सूत्र में उसे चार प्रकार की बुद्धियों से युक्त बतलाया गया। चार प्रकार की बुद्धियों का स्वरूप इस प्रकार हैं -

औरपत्तिकी बुद्धि - सहसा उत्पन्न होने वाली सूझ-बूझ। पूर्व में कभी नहीं देखे, सुने

अथवा जाने किसी विषय को एकदम समझ लेना, कोई विषम समस्या उपस्थित होने पर तत्क्षण उसका समाधान खोज लेने वाली बुद्धि।

- २. वैनियकी विनय से प्राप्त होने वाली बुद्धि।
- 3. कर्मजा कोई भी कार्य करते-करते, चिरकालीन अभ्यास से जो दक्षता प्राप्त होती है वह कर्मजा, कार्मिकी अथवा कर्मसमुत्था बुद्धि कही जाती है।
- ४. पारिणामिकी उम्र के परिपाक से-जीवन के विभिन्न अनुभवों से प्राप्त होने वाली बुद्धि। मितज्ञान मूल में दो प्रकार का है श्रुतिनिश्रित और अश्रुतिनिश्रित। जो मितज्ञान, श्रुतज्ञान के पूर्वकालिक संस्कार के आधार से-निमित्त से उत्पन्न होता है किन्तु वर्त्तमान में श्रुतिनिरपेक्ष होता है, वह श्रुतिनिश्रित कहा जाता है। जिसमें श्रुतज्ञान के संस्कार की तिनक भी अपेक्षा नहीं रहती वह अश्रुतिनिश्रित मितज्ञान कहलाता है। उल्लिखित चारों प्रकार की बुद्धियाँ इसी विभाग के अन्तर्गत हैं। चारों बुद्धियों को सोदाहरण विस्तृत रूप से समझने के लिए नन्दीसूत्र देखना चाहिए।

महारानी धारिणी

(9६)

तस्स णं सेणियस्स रण्णो धारिणी णामं देवी होत्था जाव सेणियस्स रण्णो इडा जाव विहरइ।

शब्दार्थ - तस्स - उसके, इट्टा - इष्ट-प्रिय!

भावार्थ - राजा श्रेणिक की रानी का नाम धारिणी था। वह उत्तम दैहिक लक्षण, सौन्दर्य एवं गुणातिशय युक्त थी। राजा के लिए वह इष्ट-प्रीतिकर-प्रिय थी।

विवेचन - यहाँ 'जाव' शब्द से यह सूचित किया गया है कि महाराज श्रेणिक की रानी धारिणी के सौन्दर्य सौष्ठव, माध्या, सौकुमार्य आदि से सम्बद्ध विशेषणात्मक विस्तृत वर्णन अन्य आगर्मों से उद्धृत कर लिया जाए।

स्वप्लदर्शन

(99)

तए णं सा धारिणी देवी अण्णया कयाइ तंसि तारिसगंसि छक्कहुग-

www.jainelibrary.org

लट्टमद्वसंठिय-खंभुग्गय-पवरवर-सालभंजिय उज्जलमणिकणग-रयण-थूभिय-विंडकजालद्ध-चंदणिज्रूह-कंतर-कणयालि-चंदसालिया-विभत्तिकलिए सरसच्छथाऊवल-वण्णरइए बाहिरओ दूमियघड्डमट्टे अन्भितरओ पसत्तसु विलिहिय चित्तकम्मे णाणाविह-पंचवण्ण-मणिरयण कोट्टिमतले पउमलया-फुल्लवल्लि-वरपुष्फजाइ-उल्लोयचित्तियतले चं(वं)दणवरकणगकलस-सु(वि)-णिम्मियपडिपूजिय-सरस-पउम-सोहंतदारभाए पयरग्ग लंबंत-मणिमुत्तदाम-सुविरइय-दारसोहे सुगंधवर कुसुम-मउयपम्हल-सयणोवयारे-मणहिययणिव्वुइकरे कप्पूर-लवंग-मलयचंदण-कालागरू-पवरकुंदुरुक्क-तुरुक्कधूवडज्झंत-सुरभि-मघमघंत-गंधुद्धयाभिरामे सुगंधवरगंधिए गंधविटभूए मणिकिरण पणासियंधयारे किं बहुणा? जुड़गुणेहिं सुरवरविमाण-वेलं वरघरए तंसि तारिसगंसि सयणिजंसि सांलिंगणविट्टए उभओबिब्बोयणे दुहओ उण्णए मज्झे णय-गंभीरे गंगापुलिण-वालुयाउद्दालसालिसए उयचियखोमदुगुल्लपट्टपंडिच्छण्णे अत्थरयमलय-णवतय-कुसत्त-लिंब-सीह केसर पच्चुत्थए सुविरइयरयत्ताणे रत्तंसुयसंवुए सुरम्मे आइणग-रुयबूर-णवणीयतुल्लफासे पुब्बरत्तावरत्तकालसमयंसि सुत्तजागरा ओहीरमाणी ओहीरमाणी एगं महं सत्तुस्सेहं रययकूडसण्णिहं णहयलंसि सोमं सोमागारं लीलायंतं जंभायमाणं मुहमतिगयं गयं पासित्ता णं पडिबुद्धा।

शब्दार्थ - अण्णया - अन्यदा-दूसरे समय, कयावि - कदापि, तंसि - उसमें, तारिसगंसि- उस प्रकार के, छक्कडग - षट्काष्ठक-काठ के छह छह खंडों से युक्त, लड़ - लष्ठ-मनोहर-सुन्दर महु - मृष्ट-धिस कर चिकने किये हुए, संठिय - संस्थित-यथा स्थान भली भांति स्थापित, उग्गय - उद्गत्-बाहर निकली हुई, पवरवर - अति उत्तम, सालभंजिय - शालभंजिका-पुतलियाँ, कणग - स्वर्ण, थूभिय - स्थूपिका-छन्नाकार छोटे-छोटे शिखर, विडग-छजे, जाल - छिद्रयुक्त-विशेष प्रकार के झरोखे, अद्भवंद - अर्धचन्द्राकार-आधे चांद के आकार की सीढ़ियाँ, अंतर - जलनिर्गम द्वार-पानी बाहर जाने की नालियाँ, चंदसालिय - चन्द्रशालिका-भवन पर भवन, विभित्त - विभागशः रचना, कलिय- कलित-कलायुक्त-सुन्दर, सरस - अतिशय रंगयुक्त, अच्छ - स्वच्छ-साफ, उवल - उपल-दग्ध पाषाण - पत्थरों को

जलाकर बनाया हुआ चूना या कली, वण्ण - वर्ण-मकानों को पोतने की पीले रंग की विशेष प्रकार की मिट्टी, बाहिरओ - बाहर से, दुमिय - पोते हुए कली आदि द्वारा सफेद किये हुए, घट - घृष्ट-घिसे हुए, अब्भितरओ - भीतर से, प्रसत्त - प्रशस्त-श्रेष्ठ, सुविलिहिय -सुविलिखित-अत्यन्त सुन्दर रूप में चित्रित, चित्तकम्मे - चित्रकारी, पंचवण्ण- काले, पीले, नीले, सफेद तथा लाल पांच वर्ण युक्त, कोहिमतले - आंगन, पउमलया - पद्म या कमल के आकार की लताएँ, फुल्लवल्ली - पुष्पवल्ली-फूलों से लदी बेलें, पुष्फजाइ - मालती आदि लताएं, उल्लोयचित्तियतले - चित्रांकित वितानतल-चाँदनी से युक्त, चंदणवरकणगकलस -उत्तम स्वर्ण से बने चन्दन चर्चित मंगल-कलश, सुविणिम्मिय - सुविनिर्मित-सुन्दर रूप में बने हुए, पडिपुंजिय - प्रतिपुंजित - एक दूसरे के ऊपर रचित, सरस पउमसोहंत- खिले हुए कमलों से शोभित, दारभाए- द्वार भाग, पयर- प्रतर सोने के पतले सूत्र-तार, मुत्त- मुक्ता-मोती, दाम - माला, मउय - मृदुल-कोमल, पम्हल - पक्ष्मल - आक की कोमल रूई आदि, सयण - शयनीय-शय्या, मणहियय - मन के लिए, हितप्रद-तुष्टिप्रद, णिव्युइकरे -सुख प्रद, तुरुक्क - धूव-लोबान, डज्झंत - दह्यमान-आग में जलाये जाते हुए, सुरिध -सुगन्ध, पणासिय - प्रनष्ट - मिटा हुआ, जुड़ - द्युति-कांति, वेलिबियं - विडम्बना-तिरस्कार करने वाले, वरघरए - रम्य प्रासाद में, सयणिजंसि - शय्या में, सालिंगणविट्टए - शरीर प्रमाण, उभआं - दोनों ओर, बिब्बोयणं - तिकये, उन्नए - उन्नत, मज्झे - बीच में, णयंगंभीरे - कुछ झुके हुए-नीचे, पुलिण - तट, उद्दाल - पैर रखते ही नीचे धंसने वाले, उयचिय - उपचित - नाना रंगों से रंजित, चित्रांकित, खोम - श्रोम-अत्यन्त बारीक धागों से बुने हुए, दुगुल्ल - दुकूल-अतसी आदि की सूक्ष्म रूई से बुने हुए, पट्ट - वस्त्र, पडिच्छण्णे-ढके हुए, अत्थरय- रज रहित-निर्मल, मलय - मलय देश में उत्पन्न बारीक सूत से बना हुआ, णवतय- विशिष्ट ऊन से निर्मित, कुसत्त - देश विशेष में उत्पन्न, लिम्ब - अल्पवयस्क भेड़-मेमने की ऊन से बना हुआ, सीहकेसर पच्चुत्थए - सिंह के मस्तक के बालों के समान, सुविरइय - सुन्दर रूप में रचित, रयत्ताणे - रजस्त्राण-रज (खेहे) आदि से बचाने वाला-ऊपर तना हुआ विशिष्ट आच्छादन, रत्तंसुयसंवुए - रक्तांशुक संवृत-लाल वस्त्र से ढ़का हुआ, सुरम्मे - सुरम्य-सुन्दर, आइणय - मृग आदि के बालों से निर्मित वस्त्र, रूय - धुनी हुई कपास, बूर - एक प्रकार की कोमल या चिकनी वनस्पति, णवणीयतुष्ठफासे - मक्खन के समान चिकने स्पर्श से युक्त, पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि - रात के पिछले प्रहर कैंमैध्य रात्रि

में, सुत्त जागरा - कुछ सोती कुछ जागती, ओहीरमाणी - ऊंघती हुई, महं - महान्, अतिविशाल, रययकूडसण्णिहं- चांदी के पर्वत के शिखर के समान-अत्यन्त श्वेत, सोमं - सौम्य-प्रशस्त, सोमागारं - सौम्य आकार युक्त - सर्वांग सुन्दर, लीलायंतं - लीला-क्रीड़ा करते हुए-उल्लास युक्त, जंभायमाणं - जम्हाई लेते हुए, मुहमइगयं - मुख में प्रवेश करते हुए, गयं - हाथी को, पासित्ता - देखकर, पडिबुद्धा - जाग गई।

भावार्थ - एक समय का प्रसंग है - रानी धारिणी अपने श्रेष्ठ भवन में शय्या पर सो रही थी। वह भवन बड़ा ही सुरम्य सुहावना एवं कलात्मक रूप में निर्मित था। उसके बहिर्भाग में काष्ठ निर्मित अति सुन्दर आकार युक्त उच्च, प्रशस्त, चिकने स्तंभों पर मनोज्ञ शालभंजिकाएं-पुतिलयाँ उकेरी हुई थीं। उसकी स्वर्णनिर्मित, मणियों एवं रत्नों से जड़ी हुई स्तूपिकाएं - छत्राकार छोटे-छोटे शिखर-गुम्बज छज्जे एवं छिद्र युक्त गवाक्ष-झरोखे तथा अर्ध चन्द्राकार सोपान-सीढ़ियां ये सब बहुत ही मनोरम थे। दैनन्दिन आवश्यक कार्योपयोगी रचना से वह परिपूर्ण था। उस भवन पर कलात्मक निर्माण युक्त चन्द्रशालिकाएं-प्रशाल बड़े ही सुन्दर थे। गेरु आदि धातुओं से वह रंजित-रंगा था। उसका बाहरी भाग कली से पुता हुआ था, अत्यन्त सफेद था। कोमल पाषाण से घिसाई किये जाने के कारण वह बहुत चिकना था। उसका आंगन सफेद, लाल, पीले, हरे एवं नीले रत्नों से जड़ा था। उसकी छत फूलों से लदी मालती आदि लताओं के चित्रों से अंकित थी। उसके दरवाओं पर स्वर्ण निर्मित, चन्दन-चर्चित मंगल-कलश बड़े ही सुन्दर रूप में स्थापित थे। दरवाओं पर मणियों एवं मोतियों की मालाएं लटकती थीं। अनेक सुगन्धित पदार्थों से बने धूप को जलाने से निकलती सुगन्ध से वह भवन महकता था। स्थान-स्थान पर जड़ी हुई मणियों की ज्योति से वह जगमगाता था। सुन्दरता में वह देव-विमान को भी मात करता था।

ऐसे उत्तम भवन में महारानी निवास करती थी। शय्या बिछी थी। उस पर देह प्रमाण गद्दा लगा था। दोनों ओर मस्तक तथा पैरों के स्थान पर-ऊपर एवं नीचे तिकये लगे थे। वह शय्या दोनों तरफ से ऊंची थी, बीच में गंभीर-गहरी या नीची थी। जैसे गंगा के तट की बालू पर पैर रखते ही उसकी कोमलता के कारण वह उसमें धंस जाता है, वह शय्या उसी प्रकार कोमल थी। सुन्दर रूप में सज्जित-कसीदा कढ़ी हुई, अति बारीक धागों से बनी चहर उस पर बिछी थी। मिट्टी, खेह आदि से बचाने हेतु उसके लिए एक सघन आस्तरण बना हुआ था। जब वह उपयोग में नहीं ली जाती. तब बिछीना उससे ढका रहता था।

कोमलता में उस शय्या का स्पर्श मृग-चर्म बूर संज्ञक वनस्पति विशेष तथा मक्खन के सदृश था।

ऐसी सुन्दर शय्या पर सोई हुई रानी धारिणी ने रात के पिछले प्रहर-आधी रात के समय, जब न तो वह गहरी नींद में थी, और न जाग ही रही थी, बहुत हलकी सी नींद में ऊँघ रही थी, स्वप्न में देखा-एक विशाल लगभग सात हाथ ऊँचा, चांदी के पर्वत के शिखर के समान श्वेत, सौम्य-सुन्दर, मोहक आकृति युक्त, उल्लास युक्त लीलामयी भावमुद्रा में जम्हाई लेते हुए हाथी ने, उसके मुख में प्रवेश किया। देखकर वह जाग गई।

विवेचन - मानव स्वभावतः एक सौन्दर्य प्रिय प्राणी है। आध्यात्मिकता एवं लौकिकता की दृष्टि से सौन्दर्य दो प्रकार का है। निर्मल, पावन संस्कारों के कारण जिनका अन्तःकरण आत्मा के निरावरण, शुद्ध ज्योतिर्मय स्वरूप के सौन्दर्य से जुड़ जाता है, वे भौतिक सुख-सुविधा, प्रियतामय जीवन से मुँह मोडकर साधना का पथ अपना लेते हैं। जिनका रूझान लौकिकता से जुड़ा होता है, वे बाह्य सौन्दर्य से आकृष्ट रहते हैं। यदि साधन प्राप्त हों तो अपने रहने के स्थान, वस्त्र, पात्र, आदि सभी उपकरण मनोविनोद के विविध साधन सुन्दर, सुन्दरतर, सुन्दरतम हों, ऐसी आकाक्षा उनके मन में उदित रहती है। मानव की यही प्रवृत्ति ललित कलाओं के उद्भव और विकास का मूल बीज है।

स्थापत्य-वास्तु कला, चित्रकला, मूर्तिकला, काव्यकला एवं संगीत कला के रूप में पांच लिलतकलाओं की मान्यता संप्रतिष्ठित हुई।

दैनन्दिन जीवन एवं मानसिक उल्लास, हास-विलास आदि कार्यकलापों में सौन्दर्य ढालने की दृष्टि से कलाओं का विस्तीर्ण रूप में विकास हुआ। पुरुषों के लिए बहत्तर तथा स्त्रियों के लिए चौसठ कलाओं का आगमिक उल्लेख इसी का द्योतक है।

प्रस्तुत सूत्र में धारिणी के अत्यंत सुन्दर, सुनिर्मित, सुसज्जित भवन का जो वर्णन हुआ है, वह भारत की अतीव उन्नत वास्तु कला का प्रतीक है। भवन के प्रत्येक भाग, अंगोपांग के निर्माण में कितनी सुन्दरता और भव्यता को दृष्टि में रखा जाता रहा है, वह इस वर्णन से स्पष्ट है।

आगम-वाङ्मय की रचना का मुख्य उद्देश्य प्राणी मात्र का आत्म-कल्याण है। अतः व्रत, त्याग, तप, वैराग्य आदि का उसमें विस्तृत विवेचन है। साथ ही साथ लोगों के ऐहिक जीवन का भी विशद वर्णन है।

इस प्रकार ज्ञेय, हेय एवं उपादेय-तीनों ही प्रकार के विषयों के उनमें वर्णन प्राप्त होते हैं। ज्ञेय तो सभी विषय हैं किन्तु उनमें उपादेय या ग्राह्म वही हैं, जिनसे आत्मा का हित हो, जो आत्मा के लिए श्रेयस्कर हों। वे सब हेय या त्याज्य हैं जो आत्मा के लिए अहितकर हैं।

यहाँ यह ज्ञातव्य है कि जन जीवन के सर्वांगीण विवेचन की दृष्टि से जैन आगमों में जो सामग्री उपलब्ध है, वह भारतीय संस्कृति, सभ्यता, लोक जीवन के विविध पक्ष इत्यादि के ज्ञान की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। ढाई हजार वर्ष पूर्व के जन-जीवन का सजीव चित्रण जो जैन आगमों में प्राप्त होता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। इसलिए आत्म-साधना के लिए जैन आगमों के अध्ययन की उपयोगिता तो है ही इसके साथ ही प्राचीन कालीन राज्य-व्यवस्था, व्यापार, कृषि, उद्योग, शिक्षा, राजनीति, समाजनीति आदि अनेक विषयों के प्रामाणिक ज्ञान की दृष्टि से भी उनका अत्यधिक महत्त्व है। इस सूत्र में वर्णित भवन, प्रासाद और शय्या इसके उदाहरण हैं, जिनसे कला के क्षेत्र में हमारे देश की उन्नति-प्रवणता का परिचय प्राप्त होता है।

जैन आगमों में जहाँ भी महापुरुषों के जीवन-वृत के प्रसंग हैं, वहाँ मातृ-गर्भ में उनके आने के समय माताओं को स्वप्न आने के उल्लेख हैं। इससे प्रकट होता है कि सबका तो नहीं पर किन्हीं विशेष स्वप्नों का जीवन में आने वाली घटनाओं के साथ कुछ न कुछ सम्बन्ध अवश्य है।

स्थानांग एवं व्याख्या प्रज्ञप्ति सूत्र में यथातथ्य स्वप्न, प्रतान स्वप्न, चिन्ता स्वप्न, तद्विपरीत एवं अव्यक्त स्वप्न के रूप में पाँच प्रकार के स्वप्नों का उल्लेख है। जैसा कि इनके नामों से प्रकट होता हैं, ये क्रमशः अनुकूल-प्रतिकूल, शुभ-अशुभ फल की प्राप्ति, घटना विशेष का विस्तार से देखना, मनःस्थित चिन्ता को स्वप्न में देखना, स्वप्न में दृष्ट घटना का विपरीत प्रभाव तथा स्वप्न में देखी गई घटना का पूर्णतः ज्ञान न रहना-इन भावों के द्योतक हैं।

आचार्य जिनसेन ने महापुराण में स्वस्थ एवं अस्वस्थ के रूप में उनके दो भेद बतलाये हैं, जो शारीरिक स्वस्थता एवं अस्वस्थता की दशा में आने वाले स्वप्नों के सूचक हैं।

जैन दर्शन की दृष्टि से विचार किया जाए तो स्वप्न का कारण दर्शन मोहनीय कर्म का उदय है। दर्शन मोह के उदित होने के परिणाम-स्वरूप मन में राग-द्रेष का स्पन्दन होता है,

[🍲] स्थानांग सूत्र स्थान-५,

[🔾] व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र १६-६१

महापुराण-४१, ५७-६०

चैतिसक (चित्त सम्बम्धी) चांचल्य उद्गत होता है। रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श मूलक विषयों से संबद्ध स्थूल एवं सूक्ष्म विचार तरंगों से आन्दोलित होता है। विषयोन्मुख संकल्प-विकल्प या वृत्तियां इतना प्राबल्य पा लेती हैं कि निद्रा आने पर भी शान्ति नहीं मिलती। इन्द्रियों के सुप्त हो जाने के बावजूद मन भटकता रहता है। उसमें अनेकानेक विषयों का चिन्तन चलता रहता है। मन की वृत्तियों की यह चंचलता ही स्वप्नों की पृष्ठ भूमि है। वह स्वप्न रूप में परिणत हो जाती है। पुण्यात्मक संस्कार युक्त व्यक्तियों के स्वप्न शुभ सूचक हैं। अर्ध रात्रि में न गहरी निद्रा, न पूरी जागृतता की स्थिति में आया हुआ स्वप्न सार्थक होता है, ऐसी मान्यता है। महारानी धारिणी का स्वप्न इसी प्रकार का था।

राजा श्रेणिक से स्वप्ल-निवेदन

(95)

तए णं सा धारिणी देवी अयमेयारूवं उरालं कल्लाणं सिवं धण्णं मंगल्लं सिस्सिरीयं महासुमिणं पासित्ताणं पिडवुद्धा समाणी हृद्वतुद्धा चित्तमाणंदिया पीइमणा परमसोमणस्सिया हिरसवस-विसप्पमाण-हिस्या धाराहय-कलंबपुप्फगं पिव समूसिय-रोमकूवा तं सुमिणं ओगिण्हइ २ ता सयणिज्जाओ उट्ठेइ २ ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ २ ता अतुरिय-मचवल-मसंभंताए अविलंबियाए रायहंससिरसीए गईए जेणामेव से सेणिए राया तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छिता सेणियं रायं ताहिं इद्घाहिं, कंताहिं, पियाहिं, मणुण्णाहिं, मणामाहिं, उरालाहिं, कल्लाणाहिं, सिवाहिं, धण्णाहिं, मंगल्लाहिं, सिस्सिरीयाहिं, हियय-गमणिज्जाहिं हियय-पल्हाय-णिज्जाहिं मिय-महुर-रिभिय-गंभीर-सिस्सिरीयाहिं गिराहिं संलवमाणी २ पिडबोहेइ २ ता सेणिएणं रण्णा अब्भणुण्णाया समाणी णाणामणि कणगरयणभित्तिचित्तंसि भद्दासणंसि णिसीयइ २ ता आसत्था वीसत्था सुहासण-वरगया करयल परिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजिलं कट्टु सेणियं रायं एवं वयासी।

शब्दार्थ - एयारूवं - इस प्रकार के मंगलमय, सस्सिरीयं - सश्रीक-श्री या शोभायुक्त, महासुमिणं - महास्वप्न, हट्टतुट्टा - हष्ट-तुष्ट-अत्यंत प्रसन्न, चित्तमाणंदिया - चित्त में आनन्द

का अनुभव करती हुई, पीइमणा - प्रीतिमना-मन में प्रीति या प्रसन्नता युक्त, परमसोमणस्सियाअत्यंत सौम्य भावयुक्त, हरिसवसविसप्पमाणिहयया - हर्षातिरेक से प्रफुल्लित हृदय, धाराहयकलंब-पुष्फगं - मेघद्वारा बरसाई गई जलधारा से आहत कदम्ब का पुष्प, समुससियरोमकूवा - समुच्छित रोम कूप-रोमांचित, ओगिण्हड़ - अवगृहीत करती है-ध्यान में लाती है।
पायपीढाओ - पादपीठ से, पच्चोरुहड़ - उतरती है-पादपीठ पर पैर रखकर नीचे उतरती है,
अतुरियं - त्वरा-जल्दबाजी रहित, अचवलं - चंचलता रहित, असंभंताए - स्खलना रहित,
अविलंबियाए - विलम्ब रहित, रायहंससरिसीए - राजहंस सदृश, गईए - गित द्वारा,
इहाहें - इष्ट-प्रिय, मणुण्णाहें - मनोज या मनोहर, मणामाहिं - मन को अत्यंत प्रिय,
हियय-गमणिजजाहें - हृदय को प्रीतिकर लगने वाली, पल्हायणिज्जाहें - आह्लादित करने
वाली, मिय - परिमित शब्द युक्त, महुर - माधुर्ययुक्त, गिराहिं - वाणी द्वारा, संलवमाणी संलाप करती हुई-बोलती हुई, पिडबोहेइ - जागती है, अब्भणुण्णाया - अभ्यनुज्ञात-आज्ञा
प्राप्त कर, भित - रचना, भद्दासणंसि - उत्तम आसन पर, णिसीयइ - बैठती है, आसत्थाआश्वस्त, वीसत्था - विश्वस्त, करयल - करतल-हथेली, पिरग्गहियं - परिगृहीत-ग्रहण की
हुई, सिरसावतं - शिर के चारों ओर, मत्थए - मस्तक पर, कट्ट - करके।

भावार्थ - रानी धारिणी ऐसे मंगलमय, श्रेयः सूचक, प्रशस्त शुभ स्वप्न को देखकर जागृत हुई। उसे बड़ा हर्ष एवं परितोष था। उसका मन अत्यंत आनन्दित और आह्लादित था। वह अत्यधिक उल्लासवश रोमांचित हो उठी। पादपीठ पर पैर रखकर अपनी शय्या से नीचे उतरी। जरा भी जल्दबाजी किये बिना धीरे-धीरे वह राजा श्रेणिक के निकट आई। बड़े शान्त भाव से इष्ट, प्रिय, मधुर एवं मनोरम वाणी द्वारा राजा को जगाया। उनकी आज्ञा पाकर वह शुभ आसन पर बैठी, विधिवत् हाथ जोड़े, मस्तक झुकाये आदर पूर्वक उन्हें अभिवादन किया। तत्पश्चात् उसने राजा से इस प्रकार कहा।

(3P)

एवं खलु अहं देवाणुप्पिया! अज्ज तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि सालिंगणविट्टए जाव णियग-वयण-मइवयंतं गयं सुमिणे पासिता णं पिडबुद्धा। तं एयस्स णं देवाणुप्पिया! उरालस्स जाव सुमिणस्स के मण्णे कल्लाणे फलवित्तिविसेसे भविस्सइ? शब्दार्थ - के - क्या, फलवित्तिविसेसे - फलवृत्ति विशेष-विशिष्ट फल।

भावार्थ - देवानुप्रिय! जब मैं सुसज्जित सुन्दर शय्या पर सो रही थी, मैंने स्वप्न में एक भव्य, प्रशस्त श्वेत हस्ती को अपने मुख में प्रवेश करते देखा, मैं तत्काल जाग गई। देवानुप्रिय! इस शुभ स्वप्न का क्या विशेष फल होगा? बतलाएँ।

· (२०)

तए णं से सेणिए राया धारिणीए देवीए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हड्डतुड्ड जाव हिचए धाराहय-णीव-सुरिभ-कुसुम-चुंचु-मालइयतणू ऊसिस्य रोमकूवे तं सुमिणं उग्गिण्हड्ड २ त्ता ईहं पविसङ्घ २ ता अप्पणो साभाविएणं मङ्गुव्वएणं बुद्धि विण्णाणेणं तस्स सुमिणस्स अत्थोग्गहं करेड्, करेत्ता धारिणिं देविं ताहिं जाव हियय-पल्हाय-णिज्ञाहिं मिउमहुर-रिभियगंभीर-सस्सिरीयाहिं वग्गूहिं अणुवूहेमण्णे २ एवं वयासी।

शब्दार्थ - णीए - कंदब वृक्ष, चुंचुमालइय - पुलिकत, तणू - तन-शरीर, ऊसिस्यरोमकूवे - उच्छ्वसित रोमकूप-रोमांचित, उग्गिण्हड़ - अवगृहीत करता है-सामान्यतः अर्थ ग्रहण करता है, ईहं - अर्थ पर्यालोचनामुखी चेष्टा, पिवसड़ - प्रवेश करता है-अन्तः प्रविष्ट होता है, साभाविएणं - स्वाभाविक, मइपुव्वएणं - मितपूर्वक, बुद्धिविण्णाणेणं - बुद्धि विज्ञान से-बुद्धि के विशिष्ट ज्ञान से, अत्थोग्गहं - अर्थोद्ग्रह-अर्थ का निश्चय, मिउ - मृदु-कोमल, रिभिय - मधुर स्वर, वगूहिं - वाणी द्वारा, अणुवूहेमाणे- प्रशंसा करते हुए।

भावार्थ - राजा श्रेणिक रानी धारणी का यह कथन सुनकर बहुत हर्षित, सन्तुष्ट, आनन्दित और प्रसन्न हुआ। हर्ष के कारण उसका हृदय बड़ा प्रफुल्लित हुआ। वह पुलिकत एवं रोमांचित हो उठा। उसने स्वप्न पर पहले सामान्य रूप से विचार किया फिर उसके अर्थ पर पर्यालोचन किया। तत्पश्चात् अपनी स्वाभाविक विशिष्ट बुद्धि द्वारा उस स्वप्न का अर्थ-फल विषयक निश्चय किया। ऐसा कर उसने रानी के हृदय में आह्लाद उत्पन्न करने वाली मृदुल, मधुर एवं गंभीर वाणी द्वारा इस प्रसंग की बार-बार प्रशंसा करते हुए कहा।

विवेचन - मितज्ञान द्वारा किसी पदार्थ को जानने का एक विशेष क्रम है। सबसे पहले जिज्ञासु ज्ञेय पदार्थ को सामान्य रूप में अवगृहीत करता है, उसे ग्रहण करता है। उसे 'अवग्रह' कहा जाता है। यह पदार्थ विषयक ज्ञान का सामान्य रूप है। इसमें ज्ञेय पदार्थ का स्वरूप

अस्पष्ट रहता है। जानने का क्रम आगे बढ़ता है। ज्ञेय पदार्थ के अर्थ या स्वरूप के संबंध में जिज्ञासु विशेष रूप से आलोचन-पर्यालोचन करता है, उसे 'ईहा' कहा जाता है। यहाँ पदार्थ के स्वरूप-बोध के संबंध में पर्यालोचनात्मक विशेष चेष्टा रहती है। पदार्थ का स्वरूप निर्णीत या निश्चित नहीं हो पाता। तत्पश्चात् जिज्ञासु मनन पूर्वक अपनी बुद्धि द्वारा ज्ञेय पदार्थ के स्वरूप का निश्चय-निर्णय करता है। इसे 'अवाय' कहा जाता है। फिर वह निर्णीत ज्ञान स्मृति में संस्कार रूप में अवस्थित हो जाता है, इसे 'धारणा' कहा जाता है। यहाँ राजा श्रेणिक द्वारा जिज्ञासित स्वप्न विषयक ज्ञान प्राप्त करने का इसी प्रकार का-सहजतया अवग्रह, ईहा और अवाय पूर्वक प्रयत्न दृष्टिगोचर होता है।

स्वप्न फल-संसूचन (२१)

उराले णं तुमे देवाणुप्पिए! सुमिणे दिट्ठे, कल्लाणे णं तुमे देवाणुप्पिए! सुमिणे दिट्ठे, सिवे धण्णे मंगल्ले सिस्सिरीए णं तुमे देवाणुप्पिए! सुमिणे दिट्ठे आरोग्ग-तुट्ठि-दीहाउय-कल्लाण-मंगल-कारए णं तुमे देवी! सुमिणे दिट्ठे अत्थलाभो ते देवाणुप्पिए! पुत्तलाभो ते देवाणुप्पिए! एकं खलु तुमं देवाणुप्पिए! णवण्हं मासाणं बहुपिडिपुण्णाणं अद्धट्टमाण य राइंदियाणं वीइक्कंताणं अम्हं कुलकेऊं कुलदीवं कुलपव्ययं कुलविडिसयं कुलितिलयं कुलिकित्तिकरं कुलिवितिकरं कुलणंदिकरं कुलजसकरं कुलाधारं कुलपायवं कुलिविवद्धणकरं सुकुमालपाणिपायं जाव दारयं प्याहिसि।

शब्दार्थ - दिद्वे - देखा, आरोग्ग - अरुणता-स्वस्थता, तुष्टि - तुष्टि-परितोष, दीहाउय-दीर्घायुष्य-लम्बी आयु, अत्थलाभो - अर्थ-लाभ-इच्छित पदार्थ की प्राप्ति, रज्जलाभो - राज्य लाभ, सोक्खलाभो - सौख्य-लाभ-सुख प्राप्ति, णवण्डं मासाणं - नौ महीने, बहुपडिपुण्णाणं-सर्वथा परिपूर्ण, राइंदियाणं - रात-दिन, वीइक्कंताणं - व्यतीत होने पर, अम्हं - हमारे, कुलकेऊं - कुलकेतु-कुल-कीर्ति को ध्वजा के सदृश फहराने वाले, कुलदीवं - कुल-दीपक- कुल को प्रकाशित करने वाले अथवा कुलद्वीप-द्वीप के सदृश कुल के लिए आधारभूत, कुलविंडसयं - कुलावतंसक-कुल के लिए मुकुंट के सदृश सर्वश्रेष्ठ, कित्तिकरं - कीर्तिकर-यशस्वी बनाने वाले, कुल वित्तिकरं - कुल वृत्तिकर-कुल मर्यादा का पालन करने वाले, कुल णांदिकरं - कुल को आनन्दित करने वाले, धन-धान्यादि की वृद्धि करने वाले, कुल पायवं - कुल के लिए पादप-वृक्ष, कुल विवद्धणकरं - कुल विवर्धन कुल की विशेष वृद्धि करने वाले, सुकुमाल पाणिपायं - सुकोमल हाथ पैर युक्त, दारयं - दारक-पुत्र, पयाहिसि-उत्पन्न करोगी।

भावार्थ - राजा श्रेणिक ने रानी धारिणी को संबोधित कर कहा - हे देवानुप्रिय! जो स्वप्न तुमने देखा है, वह कल्याणप्रद, शिव, श्रेयस्कर, वैभव सूचक, मंगलमय एवं श्रीमय-शोभायुक्त है। देवानुप्रिय! वह स्वप्न आरोग्य-उत्तम स्वास्थ्य, तुष्टि-परितोष, दीर्घायुष्य-लम्बा आयुष्य प्रदान करने वाला है। इससे इच्छित पदार्थ का लाभ होगा, पुत्र लाभ होगा, राज्य एवं भोगों का सुखलाभ होगा।

देवानुप्रिय! पूरे नव मास तथा साढे सात रात-दिन व्यतीत होने पर तुम पुत्र को जन्म दोगी, जो हमारे कुल को ध्वजा के सदृश उल्लिसित करने वाला, कुल के लिये दीपक के सदृश प्रकाशक, पर्वत के तुल्य आधारभूत, मुकुट के समान सर्वश्रेष्ठ-सर्वोच्च, तिलक के सदृश शोभामय, कुल के लिए यशस्कर, मर्यादा-परिपालक, आनन्द एवं वृद्धिकर तथा सुकोमल हाथ पैर युक्त-सर्वांग सुन्दर होगा।

(25)

से वि य णं दारए उम्मुक्क-बालभावे विण्णाय परिणयमेत्ते जोव्वणग-मणुप्पत्ते सूरे वीरे विक्कंते वित्थिण्णविपुलबलवाहणे रज्जवई राया भविस्सइ। तं उराले णं तुमे देवी! सुमिणे दिद्ठे जाव आरोग्ग-तुट्टि-दीहाउ-कल्लाणकारए णं तुमे देवी! सुमिणे दिद्ठे ति कट्टु भुज्जो-भुज्जो अणुवूहेइ।

शब्दार्थ - उम्मुक्कबालभावे - उन्मुक्त बाल भाव-बाल्यावस्था पार करके, विण्णाय - विज्ञात-भली भाँति जाना हुआ, परिणयमेत्ते - परिणतमात्रा-विद्या, कला आदि में परिपक्ता, जोव्यणग - यौवन-युवावस्था, विक्कंते - विक्रान्त-पराक्रमी, विश्थिण्ण - विस्तीर्ण-विस्तार युक्त, रज्जवई - राज्यपति-अनेक राज्यों का अधिपति, भुज्जो-भुज्जो - भूयो-भूयः-बार बार, अणुवूहेइ - प्रशंसा करता है।

भावार्थ - वह बाल्यावस्था को क्रमशः पार करता हुआ विद्या, कला आदि में परिपक-निष्णात होगा। युवा होकर शूर, वीर तथा पराक्रमशाली होगा। विशाल सेनां एवं वाहनों का अधिनायक-स्वामी होगा। वह अनेक राज्यों का अधिपति-राजा होगा। देवी! तुमने आरोग्य, तुष्टि, दीर्घायुष्य एवं कल्याणसूचक स्वप्न देखा है। इस प्रकार कह कर राजा स्वप्न के मंगल की प्रशंसा करने लगा।

(23)

तए णं सा धारिणी देवी सेणिएणं रण्णा एवं वुत्ता समाणी हद्वतुद्वा जाव हियया करयल-परिग्गहियं जाव अंजिलं कट्टु एवं वयासी।

शब्दार्थ - सेणिएणं रण्णा - श्रेणिक राजा द्वारा, एवं - इस प्रकार, वुत्ता - कहे जाने पर।

भावार्थ - राजा श्रेणिक द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर रानी धारिणी हर्षित, संतुष्ट एवं आनन्दित हुई। अपने दोनों हाथ जोड़कर उन्हें मस्तक पर आवर्तित कर, अंजलि बांधे वह राजा से कहने लगी।

(88)

एवमेयं देवाणुप्पिया! तहमेयं देवाणुप्पिया! अवितहमेयं असंदिद्धमेयं इच्छियमेयं देवाणुप्पिया! पिडिच्छियमेयं इच्छियपिडिच्छियमेयं सच्चे णं एसमद्ठे जं णं तुन्ने वयह ति कद्दु तं सुमिणं सम्मं पिडिच्छइ २ ता सेणिएणं रण्णा अन्धणुण्णाया समाणी णाणा-मणिकणग-रयण-भतिचित्ताओ भद्दासणाओ अन्ध्रद्देइ २ ता जेणेव सए सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सयंसि सयणिज्जेंसे णिसीयइ २ ता एवं वयासी -

शब्दार्थ - एवमेयं - यह ऐसा ही है, तहं - तथ्य, अवितहं - अवितथ-असत्य रित, असंदिद्धं - असन्दिग्ध-संदेह रिहत, इन्छियं - इन्छित-इष्ट, पिडिन्छियं - प्रतिन्छित-अत्यधिक इन्छित-अभीष्ट, सन्त्ये - सत्य, एसं - यह, तुक्ये - आप, वयह - कहते हैं, सम्मं - सम्यक्-भलीभौति, पिडिन्छइ - स्वीकार करती है, अक्षुट्ठेइ - अभ्युत्थित होती है-उठती है।

भावार्थ - रानी धारिणी ने राजा श्रेणिक से कहा - देवानुप्रिय! आपने जो स्वप्न का फल बताया-वह तथ्य पूर्ण-असत्य वर्जित एवं अत्यन्त इच्छित-अभीष्ट है। यों कहकर रानी ने उस स्वप्न को भलीभाँति सहेजा-अंगीकार किया। राजा की आज्ञा पा कर वह विविधमणि-स्वर्ण-रत्न-रचित चित्रांकित, उत्तम आसन से उठी तथा अपनी शय्या के पास आई, उस पर बैठी। बैठकर मन ही मन सोचने लगी।

विवेचन - रानी धारिणी द्वारा अपने पति, महाराज श्रेणिक को स्वप्न निवेदन, श्रेणिक द्वारा स्वप्न के शुभ, प्रशस्त, मंगलमय फल का प्रतिपादन, रानी द्वारा हर्षातिरेक, विनय एवं आभार पूर्वक उसका स्वीकरण इत्यादि के रूप में जो पिछले सूत्रों में वर्णन आया है, उससे यह स्पष्ट होता है कि हमारे देश में प्राचीन काल में पारिवारिकजनों के बीच परस्पर कितना सौहार्दपूर्ण, प्रीति पूर्ण व्यवहार था।

धारिणी राजा को अत्यन्त मधुर, मृदुल, विनम्न शब्दों में जगाती है तथा विधिवत् प्रजनन पूर्वक अपना स्वप्न निवेदित करती है। उसके फल की जिज्ञासा करती है। रानी के हृदय में अपने पित के प्रति जो अत्यधिक विनीतता, सहृदयता एवं स्निग्धता का भाव था, वह यहाँ स्पष्टतया प्रकट होता है।

राजा भी बड़े हर्ष, उल्लास और प्रीति पूर्ण शब्दों में रानी को स्वप्न का फल बतलाता है। यह उनके सुखमय दाम्पत्य जीवन का स्पष्ट निदर्शन है। कहा गया है - "यद् यदाचरित श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः"-बड़े आदमी जैसा आचार-व्यवहार करते हैं, सामान्यजन वैसा ही करते हैं, उनका अनुसरण करते हैं। "यथा राजा तथा प्रजा" यह कहावत इसी भाव को प्रकट करती है।

वह एक ऐसा युग था, जब लोगों के व्यवहार में परस्पर बड़ा आत्मीय भाव, सौजन्य एवं सौमनस्य था। व्यवहार में कर्कशता, रूक्षता और उद्दण्डता नहीं थी। व्यवहार की सुकुमारता, कोमलता और मधुरता में ही जीवन का आनन्द है, लोग यह जानते थे। इन पुराने उदाहरणों से आज के लोगों को अपने दैनन्दिन व्यवहार को सुन्दर एवं सौम्य बनाने की प्रेरणा प्राप्त करनी चाहिये।

जिनका पारिवारिक एवं लौकिक जीवन सुकुमारता, सहदयता एवं सद्भावना पूर्ण होता है, वे अपने धार्मिक जीवन में भी सहज ही अग्रसर होने में उत्साहित रहते हैं।

महारानी का चिंतन

(२५)

मा मे से उत्तमे पहाणे मंगल्ले सुमिणे अण्णेहिं पावसुमिणेहिं पडिहम्मिहित्ति कट्टु देवयगुरु जणसंबद्धाहिं पसत्थाहिं धम्मियाहिं कहाहिं सुमिणजागरियं पडिजागरमाणी २ विहरइ -

शब्दार्थ - मा - नहीं, मे - मेरा, पहाणे - प्रधान-श्रेष्ठ, अण्णेहिं - दूसरे, पावसुमिणेहिं-पापपूर्ण-अशुभ स्वप्नों द्वारा, पडिहम्मिहित्ति - प्रतिहत-नष्ट हो जाए, पसत्थाहिं - प्रशांत-श्रेष्ठ, धम्मियाहिं - धार्मिक, कहाहिं - कथाओं द्वारा, सुमिण जागरियं - स्वप्न जागरित-स्वप्न के संरक्षण हेतु जागरिका-निद्रा का त्याग, पडिजागरमाणी - प्रति जागृत रहती हुई।

भावार्थ - मेरा यह उत्तम श्रेष्ठ स्वप्न अन्य अशुभ स्वप्नों से कहीं नष्ट न हो जाएं, यह सोचकर रानी धारिणी देव, गुरुजन विषयक प्रशस्त धार्मिक कथाओं-जीवनियों द्वारा अपने उत्तम स्वप्न के रक्षण हेतु जागरण करती रही।

श्रेणिक का उपस्थान शाला में आगमन

(२६)

तए णं सेणिए राया पच्चूसकाल समयंसि कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेता एवं वयासी - खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! बाहिरियं उवहाणसालं अज्ज सविसेसं परमरम्मं गंधोदग-सित्त-सुइय-सम्मिज्जओविलत्तं पंचवण्ण-सरस-सुरभि-मुक्क-पुष्फ-पुंजोवयार-किलयं कालागरु-पवरकुंदुरुक्क तुरुक्क-धूव-डज्झंतमघ-मघंत-गंधुद्धयाभिरामं सुगंध वरगंधियं गंधविद्दभूयं करेह य कारवेह य करित्ता य कारवित्ता य एयमाणित्तयं पच्चिप्पणह।

शब्दार्थ - पच्चूसकाल समयंसि - प्रातःकाल के समय, कोडुंबियपुरिसे - कौटुम्बिक पुरुषों को, सद्दावेड़ - बुलाता है, खिप्पामेव - शीघ्र ही, उवट्टाणसालं - उपस्थान शाला-सभा भवन, अज्ज - आज, सविसेसं - विशेष रूप से, परमरम्मं- अत्यंत रमणीय, गंधोदग- सुगन्धित जल, सित्त - सिंचित, सुइय - शुचिक-पवित्र, साफ-सुथरी, संमिज्जिय - सम्मार्जित-कचरा आदि निकाल कर साफ की हुई, उवलितं - उपलिप्त-लीपी हुई-पोता पोंछा लग्गई हुई, मुक्क - मुक्त-बिखरे हुए, पुष्फपुंजोवयारकिलयं - पुष्प समूह के उपचार-सजावट से युक्त, कालागरु - काला अगर-एक सुगन्धित द्रव्य, पवरकंदुरुक्क - उत्तम कुन्दुरुक-एक उत्तम सुगन्धित पदार्थ, मधमघंत - महकती हुई, उद्धय - उद्धूत-प्रसृत या फैली हुई, अभिरामं - सुंदर, गंधविष्टभूयं - गन्धवितिका (बाट) के सदृश, करेह - करो, कारवेह - कराओ, आणित्यं - आज्ञिसका-आज्ञा, पच्चिपणह - प्रत्यर्पित करो-सूचित करो।

भावार्थ - तदनन्तर राजा श्रेणिक ने प्रातः काल के समय अपने कौटुम्बिक पुरुषों-पारिवारिक सेवकों को बुलाया और कहा कि हे देवानुप्रियो! आज बाहरी उपस्थानशाला (सभा-भवन) को शीघ्र ही विशेष रूप से सुसिज्जित करो। वहाँ अत्यन्त रमणीय, सुगंधित जल का छिडकाव कराओ। सफाई कराओ, पोता (पोंछा) लगवाओ। पाँच रंगों के ताजे, सुगंधित फूलों के समूह से उसे सजाओ। काले अगर, उत्तमकुंदुरुक लोबान आदि का धूप जलाओ, जिससे वह महकने लगे, सुगंधित वर्तिका की ज्यों सुंदर लगने लगे। ऐसा कर, करवाकर, मुझे वापस सूचित करो।

विवेचन - इस सूत्र में जो 'कोडुंबियपुरिस' - कौटुम्बिक पुरुष शब्द आया है, वह राज परिवार के सेवकों-नौकरों का सूचक है। उनको सेवक न कह कर कौटुम्बिक पुरुष कहा जाता था। यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। कौटुम्बिक पुरुष का अर्थ परिवार के लोग है। सेवकों के प्रति राजा आदि बड़े लोगों का भी सम्मान पूर्ण भाव और व्यवहार था। इससे यह प्रकट होता है कि उन्हें परिवार के व्यक्तियों के सदृश समझा जाता था। जो सुख-दुःख में साथ देते हों, उनको ऐसा समझा ही जाना चाहिये। इससे प्रकट है कि सेवा करने वालों का समाज में उस समय प्रतिष्ठा पूर्ण स्थान था।

(२७)

तए णं ते कोडुंबियपुरिसा सेणिएणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हड्तुड्डा जाव पञ्चिप्पणंति।

शब्दार्थ - बुसा समाणा - कहे जाने पर, पच्चिप्पणंति - प्रत्यर्पित करते हैं-सूचित करते हैं। भावार्थ - राजा द्वारा इस प्रकार आदिष्ट सेवकों ने आदेशानुरूप सभी कार्य संपन्न कर, हर्ष एवं परितोष के साथ राजा को उस विषय में सूचित-निवेदित किया।

(२८)

तए णं से सेणिए राया कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए फुल्लुप्पल-कमल-कोमलुम्मिलियंमि अहापंडुरे पभाए रत्तासोगप्पगास-किंसुय-सुयमुह-गुंजद्धराग-बंधुजीवग-पारावयचलण-णयण-परहुय-सुरत्तलोयण-जासुमणकु सुम-जिलयजलण-तवणिज्जकलस-हिंगुलयणिगर-रूवाइरेगरेहंत-सस्सिरीए दिवायरे अहकमेण उदिए तस्स दिणकर परंपरावयार-पारद्धंमि अंधयारे बालायव-कुंकुमेण खइयव्व जीवलोए लोयण-विसयाणुयास-विगसंत-विसददंसियंमि लोए कमलागरसंडबोहए उद्वियंमि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते सयणिज्जाओ उट्ठेइ।

शब्दार्थ - कल्लं - कल्य-प्रभातकाल, पाउप्पभायाए - प्रभा-प्रकाश के प्रादुर्भूत याप्रायः प्रकट हो जाने पर, रयणीए - रात्रि के, फुल्लुप्पल - खिले हुए पद्म, कमल - मृग
विशेष, उम्मिलियंमि - उन्मीलित-विकसित होने पर, अह - अथ-रात्रि के चले जाने पर,
पंडुरे - श्वेत वर्ण युक्त, रक्त - रक्त-लाल, असोग - अशोक वृक्ष, पगास - प्रकाश-कान्ति,
किंसुय - पलाश (ढ़ाक) के पुष्प, सुयमुह - शुकमुख-तोते की चोंच, गुंजद्धराग - गुंजाधरागआधी घुँघची-चिरमी का रंग, बंधुजीवग - बन्धुजीवक-वनस्पति विशेष, पारावयचलणणयणकबूतर के पैर और नेत्र, परहुयसुरक्तलोयण - कोयल के सुन्दर लाल नेत्र, जासुमणकुसुम जपा कुसुम, जिलयजलण - ज्विति-ज्वलन-जलती हुई अग्नि, तवणिज्जकलस - स्वर्णकलश, हिंगलुयणिगर - हिंगलु का निकर-समूह या राशि, रूवाइरेग - रूपातिरेक-अतिशय
रूप-सुन्दरता, रेहंत - राजित-सुशोभित, सिरीए - श्री-शोभा, दिवायरे - दिवाकर-सूर्य,
अहकमेण - यथाक्रम-क्रमशः, उदिए - उदित होने पर-उगने पर, दिणकरपरंपरा - सूर्य का
किरण समूह, अवयार - अवतरण-प्रसार, पारद्धम्मि - पराभव हो जाने पर, बालायवकुंकुमेणप्रातःकाल के आतप-धूप रूपी कुंकुम से, खड़य - खित-व्याम, लोयणविसअ - लोचनविषय-प्रत्यक्ष, अणुआस - अनुकाश-विकास, विगसंत - विकसित होता हुआ, विसद -

स्वच्छ, दंसियंमि - दर्शित, कमलागारसंडबोहए - सरोवरों में स्थित कमल समूह को विकसित करने वाले, उद्वियंग्मि - उत्थित होने पर-उगने पर, सहस्सरस्सिग्मि - सहस्र रश्मियों-किरणों से युक्त, दिणयरे - सूर्य, तेयसा - तेज से, जलंते - जाज्वल्यमान होने पर।

भावार्थ - स्वप्न देखने की रात के अगले दिन प्रभातकाल हुआ। कमल विकसित हुए। काले मृगों के नेत्र निद्रा रहित होने से खिल गए। प्रभात काल की श्वेत कांति सर्वत्र प्रसृत हुई। सूर्य क्रमशः उदित होने लगा। उस समय वह लाल अशोक, पलाश के पुष्प, तोते की चोंच, चिरमी के आधे भाग, बन्धु जीवक के फूल, कबूतर के पैर और नेत्र, कोयल के सुन्दर, लाल-लोचन, जपा कुसुम-प्रज्वलित अगिन, स्वर्ण कलश एवं हिंगलू की राशि की लालिमा से भी अधिक लाल था, सुशोभित था।

सूरज की किरणों का समूह विस्तृत होकर अंधकार का नाश करने लगा। प्रातःकाल के आतप-धूप रूपी कुंकुम से जीवलोक मानो व्याप्त हो गया। नेत्र विषय-प्रत्यक्ष ज्ञान का प्रसार होने से लोक स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगा। सरोवरों में विद्यमान कमल-समूह का विकासक सहस्र किरण युक्त सूर्य तेज से जाज्वल्यमान हो गया। ऐसा होने पर राजा श्रेणिक अपनी शय्या से उत्थित हुआ-उठा।

विवेचन - यदि जैन आगमों की शाब्दिक सुन्दरता एवं शब्द-संरचना और वर्णन शैली पर विचार किया जाय तो यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि वहाँ शब्दालंकार, अर्थालंकार, माधुर्य आदि गुण प्रभृति सभी साहित्यिक विधाएं सुंदर रूप में, सहजतया समाविष्ट हैं। जहाँ उपमाओं का प्रसंग आता है, वहाँ उनकी एक लम्बी श्रृंखला सी सहज रूप में जुड़ जाती है। इन धर्मप्रधान शास्त्रों में काव्य का सा आनन्द पाठकों को प्राप्त होता है। जैसा पहले विवेचन हुआ है, अर्थ रूप में आगम-तत्त्व का प्रतिपादन श्रमण भगवान् महावीर स्वामी द्वारा हुआ। अनुपम प्रतिभा के धनी गणधरों ने जब उसका शब्द रूप में सग्रंथन किया, तब उन्होंने लोगों की अभिरुचि बढ़ाने हेतु उस वर्णन में जिस साहित्यिक सौष्ठव का संचार किया, वह बड़ा अद्भुत है। पाठक जब पढ़ते हैं, श्रोता सुनते हैं, तब ऐसा अनुभव होता है मानो किसी अति सरस गद्य काव्य का श्रवण, पठन कर रहे हों।

इस सूत्र में प्रभातकाल का, सूर्योदय का जो वर्णन आया है, वह वस्तुतः इतना सुंदर और मोहक है कि - श्रोताओं और पाठकों के समक्ष प्रभात का सजीव दृश्य उपस्थित हो जाता है। प्रातःकालीन सूर्य की लालिमा को जिन रक्तवर्णमय पदार्थ, पुष्प तथा शुक, कोकिला, एवं कपोत आदि पक्षियों के नेत्र मुख आदि से उपमित किया है, वह बहुत ही च मत्कारिक है।

इस काव्यात्मक सौंदर्य पूर्ण विवेचन का लक्ष्य पाठकों को आगमों के अध्ययन में रुचिशील बनाना तथा त्याग, वैराग्य एवं संयममय जीवन की ओर प्रेरित करना है।

यहाँ प्रयुक्त फुल्लुप्यलकमलकोमलुम्मिलियंमि में 'कमल' शब्द बड़ा महत्त्वपूर्ण है। व्याकरण महाभाष्य में शब्दों के लिए ''शब्दाः कामदुधाः'' ऐसा उल्लेख हुआ है। कामधेनु की ज्यों शब्द अनेक अर्थों को देने में सक्षम होते हैं। इस दृष्टि से संस्कृत, प्राकृत एवं पालि साहित्य अत्यंत समृद्ध है। जहाँ एक ही शब्द का विविध अर्थों में प्रयोग दृष्टिगोचर होता है।

सामान्यतः कमल का अर्थ 'पद्म' (सरोवर में विकसित पुष्प विशेष) होता है, जो साहित्य में बहुत प्रसिद्ध है। मुख, नेत्र, चरण, हाथ आदि को प्रायः इससे उपमित किया जाता है।

यहाँ यह जानने योग्य है - यदि कमल शब्द नपुंसकलिङ्ग में प्रयुक्त हो (कमलं) तो उसका अर्थ पदा या पुष्प विशेष होता है। यदि उसी का प्रयोग पुल्लिङ्ग (कमलः) में हो तो वह मृग विशेष - काले मृग का बोधक होता है। यद्यपि इस समासयुक्त पद में यह लिङ्ग-भेद दृष्टिगोचर नहीं होता क्योंकि समास के अन्तर्वर्ती पदों में लिङ्ग, विभक्ति और वचन का लोप होता है किंतु पूर्वापर प्रसंग से यह स्पष्ट होता है कि यहाँ 'कमल' का मृग के लिए प्रयोग किया है। अर्थात् 'कमल' का अर्थ 'पदा' तथा 'कमलः' ❖ का अर्थ मृग विशेष होता है।

(38)

उट्ठेइता जेणेव अट्टणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता अट्टणसालं अणुपविसइ २ ता अणेगवायाम-जोग-वग्गण-वामदण-मल्ल-जुद्ध-करणेहिं संते पिरस्तंते सयपागेहिं सहस्सपागेहिं सुगंधवर-तेल्लमाइएहिं पीणणिज्जेहिं दीव-णिज्जेहिं दप्पणिज्जेहिं मयणिज्जेहिं विहंणिज्जेहिं सिव्विदिय-गाय पल्हाय-णिज्जेहिं अब्भंगएहिं अब्भंगिए समाणे तेल्लचम्मंसि पडिपुण्णपाणिपाय-सुकुमाल-कोमलतलेहिं, पुरिसेहिं, छेएहिं, दक्खेहिं , पट्ठेहिं, कुसलेहिं, मेहावीहिं णिउणेहिं णिउण-सिप्पोवगएहिं जियपरिस्समेहिं अब्भंगण-परिमद्दणुव्वट्टण-

[💠] संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी (वामन शिवराम आप्टे) पृष्ठ ३३५

करणगुण-णिम्माएहिं अट्टिं सुहाए मंससुहाए तयासुहाए रोमसुहाए चउव्विहाए संबाहणाए संबाहिए समाणे अवगयपरिस्समे णरिंदे अट्टणसालाओ पडिणिक्खमइ।

शब्दार्थ - उट्ठेइता - उठकर, अहणसाला - व्यायामशाला, उवागच्छइ - आता है, अणुपविसइ - अनुप्रविष्ट होता है-अन्दर आता है, वायाम - व्यायाम, जोग- योग्य, वग्गण-वल्गन-कूदना, वामद्दण - व्यामर्दन-बाह् आदि अंगों को परस्पर मरोड़ना, मल्लजुद्धकरणेहिं -कुश्ती का अभ्यास करना, संते - श्रांत-श्रम करने से थकावट युक्त, परिस्संते - परिश्रांत-थका हुआ, सयपागेहिं सहस्सपागेहिं - शतपाक-सहस्रपाक-सौ बार तथा एक हजार बार पकाए हुए, सुगंधवरतेल्लमाइएहिं - सुगंधित उत्तम तेल आदि से, पीणणिज्जेहिं - प्रियणीय-प्रीतिप्रद, दीवणिज्जेहिं - दीपनीय-जठराग्नि को उदीप्त करने वाले, दप्पणिज्जेहिं - दर्पणीय-देह बल की वृद्धि करने वाले, मयणिज्जेहिं - मदनीय-कामवर्धक, विहंणिज्जेहिं - बृहणीय-मांसवर्धक, सिव्विदियगाय पल्हायणिज्जेहिं - समस्त इंद्रियों एवं गात्र-शरीर को प्राह्णादित, आनंदित करने वाले, अवभंगएहिं - अध्यंगन-उबटनों द्वारा, तेल्लचम्मंसि - तेलमालिश, पडिपुण्ण - परिपूर्ण-भलीभाँति किए हुए, पाणिपाय - हाथ-पैर, सुकुमालकोमलतलेहिं - सुकुमार एवं कोमल तल युक्त, छेएहिं - छेक, अवसरज्ञ, दक्खेहिं - दक्ष-तत्क्षण कार्य करने में सक्षम, पट्ठेहिं -बलिष्ठ, कुसलेहिं - मर्दन करने में प्रवीण, मेहावीहिं - प्रतिभाशाली, णिउणेहिं - निपुण, णिउणसिप्पोवगएहिं - निपुण शिल्पगत-अंगमर्दन आदि के सूक्ष्म रहस्यों में निपुण, जियपरिस्समेहिं - जित परिश्रम-परिश्रम को जीतने वाले, परिमद्दण - परिमर्दन, उव्वष्टण -उद्वेलन-गर्दन आदि अंगों का विशेष रूप से उद्वर्तन-उबटन, णिम्माएहिं - इन कार्यों को करने वाले, अद्विसुहाए - अस्थ्रियों-हड्डियों के लिए सुखकर, मंससुहाए - मांस के लिए सुखप्रद, तयासुहाए - त्वचा के लिए प्रीतिकर, चउव्विहाए - चार प्रकार के, संबाहणाए - संवाहन-मर्दन आदि क्रियाओं से, अवगयपरिस्समे - अपगत परिश्रम-थकावट रहित, णरिंदे - नरेन्द्र-राजा, पडिणिक्खमड - प्रतिनिष्क्रान्त हुआ-बाहर निकला।

भावार्थ - राजा श्रेणिक अपनी शय्या से उठकर व्यायामशाला में आया। उसने अनेक प्रकार से व्यायाम किया। भारी वस्तुओं को उठाना, कूदना, अंगों को परस्पर मरोड़ना, कुश्ती का अभ्यास इत्यादि अनेक प्रकार के उपक्रम उसमें थे। व्यायामजनित परिश्रांति को दूर करने हेतु शतपाक एवं सहस्रपाक आदि सुगंधित तैलों से उसने मालिश करवाई, जिनसे रक्त-प्रवाह का सुसंचालन, देह की धातुओं का परिष्करण, जठराग्नि का दीपन, शक्ति-संवर्धन तथा शरीर एवं

सभी इंद्रियों का संस्फुरण सधता है। तेल-मालिश के बाद अभ्यंगन दक्ष व्यक्तियों ने उनके शरीर पर विविध प्रकार से उबटन लगाया जो अस्थि, मांस, त्वचा एवं रोम आदि सभी के लिए सुखप्रद, प्रीतिजनक था। इस प्रकार वह राजा शरीरोपयोगी व्यायाम, मालिश इत्यादि करवाकर व्यायामशाला से बाहर निकला।

विवेचन - प्राचीन भारत में प्रत्येक कार्य को अत्यंत समीचीनता, सुंदरता और उपयुक्तता के साथ निष्पन्न करने का लोगों में विशेष रुझान था। यद्यपि आध्यात्मिक दृष्टि से देह क्षणभंगुर है किंतु जीवन के परमलक्ष्य-मोक्ष को साधने में वह उपयोगी भी है। साथ ही। साथ वह लौकिक, सामाजिक, पारिवारिक उत्तरदायित्वों को पूर्ण करने में भी उपयोगी होता है। इसलिए ऐहिक दृष्टि से उसे स्वस्थ, बलिष्ठ, कार्यदक्ष एवं समर्थ बनाना आवश्यक है।

प्राचीन कालीन एकतंत्रीय शासन प्रणाली में राजा का सर्वाधिक महत्त्व था। शासन, राष्ट्ररक्षा प्रजा के लिए सुख-सुविधाओं की अत्यधिक व्यवस्था, आशंकित विघ्नों से सावधानी, आकस्मिक आपदाओं का मुकाबला इत्यादि अनेक उत्तरदायित्वों के निर्वाह का मुख्य केन्द्र राजा होता था। सामर्थ्यपूर्वक संचालन हेतु राजा के व्यक्तित्व में जहाँ बुद्धि कौशल, शासननैपुण्य, औदार्य आदि गुणों का महत्त्व है, उसी प्रकार दैहिक शक्तिमत्ता, बलिष्ठता, सुष्ठुता एवं प्रभावकारिता का भी अपना महत्त्व है।

इस सूत्र में राजा के व्यायामशाला में आने एवं व्यायाम करने का जो वर्णन आया है, वह इस तथ्य का द्योतक है कि प्राचीन काल के राजा दायित्व-निर्वाह की दृष्टि से अपने शरीर की सबलता एवं स्वस्थता का पूरा ध्यान रखते थे। "क्षतात् त्रायत - इति क्षत्रियः" - जो दूसरों को दुःख से, पीड़ा से, संकट से बचाता है, वह क्षत्रिय है। क्षत्रिय की इस परिभाषा को सार्थकता देना राजा अपना कर्तव्य मानता था। तदर्थ जैसा ऊपर सूचित हुआ है, दैहिक सामर्थ्य सर्वथा अपेक्षित होता है। स्वस्थ एवं सबल शरीर, साधना तथा तपश्चर्या में भी उपयोगी सिद्ध होता है। इसी कारण अष्टांग-योग में यम-नियमों के पश्चात् आसनों का स्थान है*, जो अरुणता एवं स्वस्थता के साथ-साथ ध्यान के अभ्यास में भी सहायक होते हैं।

इस प्रकरण में राजा द्वारा शतपाक एवं सहस्रपाक तैलों द्वारा मालिश कराए जाने का उल्लेख हुआ है। ये आयुर्वेदिक पद्धित से तैयार किए गए विशेष तेल थे, ऐसा प्रतीत होता है।

[🗱] पातंजल योग-सूत्र साधन पाट सूत्र - २६

भारतवर्ष में प्राचीन काल में आयुर्वेद बहुत उन्नत रहा है। उसमें रोग-निदान और चिकित्सा के अतिरिक्त स्वस्थवृत्त का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। चरक-संहिता आदि प्राचीन ग्रंथों में वह भलीभाँति व्याख्यात है। व्यक्ति किस तरह स्वस्थ रहे, इस हेतु बहुत प्रकार के प्रयोगों का वहाँ उल्लेख हुआ है। ऐसा अनुमान है, शतपाक एवं सहस्रपाक विशेष प्रकार के तैल थे, जिनको विशिष्ट लोग मालिश या अंगमर्दन में प्रयोग में लेते थे।

उपासकदशांग-सूत्र में भगवान् महावीर स्वामी के प्रमुख श्रावक आनन्द द्वारा व्रत-ग्रहण के अन्तर्गत इनका उल्लेख हुआ है। आनंद ने मालिश हेतु शतपाक एवं सहस्रपाक तैलों के अतिरिक्त और सभी मालिश के तैलों का परित्याग किया । आचार्य अभयदेवसूरि ने उपासकदशांग सूत्र के इस प्रसंग पर जो टीका लिखी है, उसमें इनके संबंध में चर्चा की है। उनके अनुसार शतपाक ऐसा तैल रहा हो, जिसमें सौ प्रकार के द्रव्य पड़े हों अथवा जिसका सौ बार परिपाक किया गया हो। इसी प्रकार सहस्रपाक ऐसा तैल रहा हो, जिसमें सौ के स्थान पर सहस्र द्रव्य पड़े हों अथवा जिसका सहस्र बार परिपाक किया गया हो।

(30)

पडिणिक्खमित्ता जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ २ ता मज्जणघरं अणुपविसइ २ ता स(मु)मं(त)त्तजालाभिरामे विचित्तमणिरयणकोट्टिमतले रमणिज्जे ण्हाणमंडवंसि णाणामणि-रयणभित्तिचित्तंसि ण्हाणपीढंसि सुहणिसण्णे सुहोदएहिं पुष्फोदएहिं गंधोदएहिं सुद्धोदएहिं य पुणो पुणो कल्लाणग-पवर मज्जणविहीए मज्जिए तत्थ कोउयसएहिं बहुविहेहिं कल्लाणग-पवर-मज्जणा-वसाणे पम्हल-सुकुमाल-गंधकासाईय-लूहियंगे अहय-सुमहम्ध-दूसरयण-सुसंवुए सरस-सुरभि-गोसीस चंदणाणुलित्तगत्ते सुइमाला-वण्णग-विलेवणे आविद्ध-मणि-सुवण्णे कप्पिय-हारद्धहार-तिसरय-पालंब-पलंबमाण-कडिसुत्त-सुकयसोहे पि(ण)णिद्धगेविज्जे अंगुलेज्जग-लिवंगय-लिवंव्यवा-भरणे णाणामणि-कडग-तुडिय-थंभियभूए अहियरूव-सस्सिरीए कुंडलुज्जोइ-याण्णे मउडदित्त-

[🗯] उपासकदशांग सूत्र अध्ययन १ सूत्र २५।

www.jainelibrary.org

सिरए हारोत्थयसुकय-रइयवच्छे पालंब-पलंबमाण-सुकय-पडउत्तरिज्जे मुद्दिया-पिंगलंगुलीए णाणामणि-कणग-रयणविमलमहरिह-णिउणोविय-मिसिमिसंत विरइय-सुसिलिइ विसिद्ध-लइसंठियपसत्थ आविद्ध वीरबलए, किं बहुणा? कप्परुक्खए चेव सुअलंकियविभूसिए णरिंदे सकोरंट मल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं उभओ चउचामरवालवीइयंगे मंगल-जयसद-कयालोए अणेगगणणायग-दंडणायग-राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुंबिय-मंति-महामंति-गणग-दोवारिय-अमच्च-चेडपीढमद-णगर-णिगम-सेट्टि-सेणावइ-सत्थवाह-दूय-संधिवालसिद्धं संपरिवुडे धवलमहामेहणिग्गए विव गहगण-दिप्पंत-रिक्ख-तारागणाण मज्झे सिस व्य पियदंसणे णरवई मज्जणघराओ पिटिणिक्खमइ, पिटिणिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्टाणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे।

शब्दार्थ - पडिणिक्खिमत्ता - प्रतिनिष्क्रांत होकर-निकल कर, मज्जणघरे - स्नानघर, समंत्तजालिभरामे - चारों ओर निर्मित जालियों के कारण, अभिराम - सुंदर, विचित्त - विचित्र, रमणिज्जे - रमणीय, सुंदर, ण्हाणमंडवंसि - स्नानमंडप में, ण्हाणपीढंसि - स्नान पीठ पर, सुहणिसण्णे - सुखपूर्वक बैठा, सुहोदएहिं - शुभ उदक-उत्तम जल द्वारा, पुष्फोदएहिं - पुष्प युक्त जल द्वारा, गंधौदएहिं - सुगंधित पदार्थ युक्त पानी द्वारा, विहीए - विधिपूर्वक, कोउयसएहिं - कौतुकशत्-सैकडों प्रकार के क्रियोपचार, बहुविहेहिं - बहुत प्रकार के, पवरमज्जणावसाणे - भलाभाँति स्नान करने के पश्चात्, पम्हल - पक्ष्मल-ऊँचे उठे हुए सूक्ष्म सूत के तंतुओं से युक्त, गंधकासाईय - सुगंधित काषाय रंग में रंगे हुए, लुहियंग - देह के अंगों को पोंछा, अहय - अहत-अखंडित, सुमहग्ध - बहुमूल्य, दूसरयण - दूष्यरल-श्रेष्ठ वस्न, सुसवए - सुसंवृत्त हुआ-पहना, सरस-सुरिभ-गोसीस-चंदण - सरस-सुगंधित गोशीर्ष जातीय उत्तम चंदन, अणुलित्तगत्ते - देह पर लेप किया, सुझाला - पवित्र पुष्पों की माला, वण्णग-विलेवणे - केसर आदि अंगरागों का आलेपन, आविद्ध - धारण किया, कष्पय - कल्पित-रचित, हार - अडारह लड़ों का हार, अर्द्धहार - नौ लड़ों का हार, तिसरय - तीन लड़ों का हार, पालम्ब - झूमका, पलंबमाणा - लटकता हुआ, कडिसुत्त - कटिसूत-कमर

में धारण करने की करधनी, सुकयसोहे - सुंदर शोभा निष्पादित की, पिणिद्धगेविज्जे -कंठहार पहना, अंगुलेज्जाग - अंगुठियाँ, लिलयंगय - सुंदर अंग, लिलयकयाभरणे - सुहावने आभूषण, तुडिय - भुजबंद, थंभिय - स्तंभित-धारण किए, भूए - भुजाएँ, अहिय - अधिक, रूव - रूप, कुंडलज्जोइय - कर्णभूषणों से उद्योतित-प्रकाशित, आणणे - मुख, मउड 🖯 मुकुट, दित्तसिरए - मस्तक पर रखा, उत्थय - उठे हुए, सुकय-सुंदर रूप में निर्मित, वच्छे-वक्षस्थल, पडउत्तरिज्जे - उत्तरीय वस्त्र, मुद्दिया-पिंगलंगुलिए - धारण की हुई मुद्रिकाओं के पीले नगों के कारण पीत अंगुली युक्त, उविय - उचित-शोभान्वित, मिसिमिसंत - देदीप्यमान, सुसिलिइ - अत्यन्त शोभामय, संठिय - संस्थित, वीरवलए - वीरवलय-परिकर-कमरबंध, किं बहुणा - अधिक क्यां कहा जाय, कप्परुक्खए - कल्पवृक्ष, चेव - और, सकोरंट-मल्ल-दामेणं - कोरंट के पुष्पों से बनी मालाओं से युक्त, छत्तेणं - छत्र द्वारा, धरिज्जमाणेणं-धार्यमाण-धारण किए हुए, चउचामरवाल - चार चँवरों के बालों से, वीइयंगे - विजितांग-अंगों पर डुलाए जा रहे थे, सद - शब्द, कयालोए - दिखाई देने पर, गणणायग -गणनायक-सामंत, दंडणायग - दंडाधिकारी-कोतवाल, राई - राजा-माण्डलिक या अधीनस्थ राजा, ईसर - युवराज या ऐश्वर्य संपन्न, तलवर - राजा द्वारा पुरष्कृत स्वर्णपट्टशोभित, माडंबिय-मांडविक-कतिपय ग्रामों के अधिपति-जागीरदार, कोडुंबिय - कतिपय परिवारों के प्रधान, मंति-मंत्री, महामंति - महामंत्री, गणग - ज्योतिषी या कोषाध्यक्ष, दोवारिय - द्वारपाल, अमच्च-अमात्य-सचिव, चेड - सेवक, पीढमद्द - अंगरक्षक, णगर-णिगम-सेट्टि - नागरिक, व्यापारी तथा श्रेष्ठिजन, सेणावइ - सेनापति, सत्थवाह - सार्थवाह-देश विदेश में व्यापार करने वाले, दय - दत, संधिवाल - संधिपाल-संधि योजना में निपुण, सर्द्धि - से या साथ, संपरिवुडे -संपरिवत्त, धवल - निर्मल, सफेद, महामेह - महामेघ, णिग्गए - निकले हुए, गहगण -ग्रह-समूह, दिप्पंत - दीप्त होते हुए, अंतरिक्ख - अंतरिक्ष-आकाश, मज्झे-मध्य, संसि व्य-चंद्रमा के समान, पियदंसणे - देखने में आनंदप्रद, सीहासण-वरगए - उत्तम सिंहासनोपगत, पुरत्थाभिमुहे - पूर्वाभिमुख, सण्णिसण्णे - बैठा।

भावार्थ - व्यायामशाला से बाहर निकलकर राजा श्रेणिक ने स्नानागार में प्रवेश किया। वह स्नानागार चारों ओर मनोहर जालियों से युक्त था। उसके भीतर मणिरत्न जटित चित्रांकित रमणीय स्नानमण्डप बना था। रत्न निर्मित स्नानपीठ-नहाने का बाजोट था। राजा उस पर बैठा। उसने स्नानार्थ लाए हुए पवित्र, शुद्ध, सुगंधित निर्मेल जल से उत्तम विधि पूर्वक भलीभाँति

www.jainelibrary.org

आनंद लेते हुए स्नान किया। मृदुल, सुरिभत तौलिए से देह को पौंछा। देह पर गोशीर्ष चंदन आदि सरस, उत्तम गंध युक्त अंगराग लगाए। बहुमूल्य श्रेष्ठ वस्त्र धारण किए। अनेक प्रकार की मिणयों एवं रत्नों से बनाए हुए छोटे-बड़े हार भुजबंध, कुंडल, अंगुठियाँ आदि अनेकानेक आभरण, सुंदर, कलापूर्ण, स्वर्ण, रत्नादि निर्मित वीरवलय-परिकर धारण किया। छत्रवाहक राजा के मस्तक पर कोरण्टपुष्प की माला जिस पर डाली गई है ऐसा छत्र धारण किए हुए थे। दोनों ओर सेन्नक चँवर डुला रहे थे।

राजा स्नानघर से बाहर निकला। लोग मंगलमय जयघोष करने लगे। राजा अनेक गणनायक, दण्डनायक, अधीनस्थ राजन्यगण, मंत्री, महामंत्री, अमात्य, सेनापित, अंगरक्षक, द्वारपाल, सम्मानित नागरिक वृंद, सार्थबाह, व्यापारी, ज्योतिषी, परिचारकवृंद आदि से घिरा हुआ, ऐसा प्रतीत होता था मानो बादलों के समूह से निकलता हुआ नक्षत्र-मध्यवर्ती चंद्रमा हो। राजा सभा-भवन में आया और पूर्वाभिमुख होकर सिंहासन पर आसीन हुआ।

तए णं से सेणिए राया अप्पणो अदूरसामंते उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए अह भद्दासणाइं सेयवत्थ-पच्चृत्थुयाइं सिद्धत्थ-मंगलोवयार-कयसंतिकम्माइं रयावेइ २ ता (अप्पणो अदूर सामंते) णाणामणि-रयणमंडियं अहिय-पेच्छणिज्ज-रूवं महम्बद पट्टणुग्गयं सण्ह बहुभत्तिसय-चित्त(द्वा)ठाणं ईहामिय-उसभ-तुरय-णर-मगर-विहग-वालग-किण्णर-रुरु-सरभ-चमर-कुं जर-वणलय-पउमलय-भित्तिचित्तं सुखचिय-वर कणग-पवर-पेरंत-देसभागं अब्भितिरयं जवणियं अंछावेइ २ ता अ(च्छ) त्थरग-मउअ-मसूरग-उच्छइयं धवल-वत्थ-पच्चत्थुयं विसिद्धं अंग-सुहफासयं सुमउयं धारिणीए देवीए भद्दासणं रयावेइ २ ता कोडुंबिय पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी-खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! अट्टंग-महाणिमित्त-सत्तत्थ-पाढए विविद्दसत्थकुसले सुमिणपाढए सद्दावेह, सद्दावेत्ता एयमाणित्तयं खिप्पामेव पच्चिप्पण्ह।

शब्दार्थ - अप्पणो - अपने, अट्ट - आठ, सेयवत्थ - श्वेत वस्त्र, पच्चुत्थुयाइं - प्रत्युस्थित-ऊपर रखे हुए, सिद्धत्थ - विघ्न शान्ति हेतु, मंगलोवयार - मंगलोपचार-सफेद सरसों आदि के मांगलिक उपचार, रयावेड़ - रचना कराता है, मंडिय - मंडित, पेच्छणिजस्तवं-

दर्शनीय रूप युक्त, सण्ह - चिकना, मनोहर, बहुभत्तिसय चित्तद्वाणं - सैकड़ों प्रकार के चित्रों से युक्त, ईहामिय - ईहामृग-मृग विशेष, उसभ - वृषभ-बैल, तुरय - तुरग-अश्व, णर - मनुष्य, विहग - पक्षी, वालग - व्यालक - सर्प, किण्णर - व्यंतर विशेष-किन्नर, रुक्त - रूरू जातीय मृग, सरभ - अष्टापद, चमर - चमरी गाय, कुंजर - हाथी, वणलय - वनलता, पउमलय - पचलता, भित्तचित्तं - विशिष्ट रचनामय चित्रयुक्त, सुखचिय - सुन्दर रूप में खचित, वरकणग - सुंदर स्वर्णमयतार, पवरपेरंतदेसभागं - उत्तम किनारों से युक्त, अन्धितरियं - भीतरी भाग में, जवणियं - यवनिका - पर्दा, अंच्छावेइ - लगवाया, अत्थरग-अस्तरजस्क-धूलिमिट्टी रहित स्वच्छ, मउअ - मृदुक-मुलायम, मसूरग + तिकया, उच्छड़यं - उच्छ्यित-ऊँचा उठा हुआ, वत्थ - वस्त्र, अंग सुहफासयं - अंग सुख स्पर्श-सुखद अंगस्पर्श युक्त, अट्ठंग-महा-णिमित्त-सुत्तत्थ-पाढए - अष्टांग महानिमित्त सूत्रार्थ पाठक-अष्टांग महानिमित्त के व्याख्याता, विविह-सत्थ-कुसले - विभिन्न शास्त्रों में प्रवीण, सुमिणपाढए - स्वप्न शास्त्र के पंडित।

भावार्थ - राजा श्रेणिक ने अपने निकट उत्तर पूर्व दिशा भाग-ईशान कोण में श्वेत वस्त्र से ढ़के हुए, शांति कर्म मूलक मांगलिक उपचार युक्त आठ उत्तम आसन रखवाए। ऐसा कर उसने सभा के भीतर के भाग में पर्दा लगवाया, जो विभिन्न मणियों और रत्नों से मण्डित, अत्यधिक दर्शनीय रूप युक्त, बहुमूल्य, उत्तम वस्त्र निर्मित श्लक्षण चिकना था। उस पर अनेक पशु-पक्षी, वनलता, पद्मलता आदि के सुन्दर आकार युक्त चित्र अंकित थे। उस पर्दे के किनारे सुन्दर सोने के तारों द्वारा कलापूर्ण रीति से सज्जित थे। पर्दा लगवाने के बाद रानी धारिणी के लिए उत्तम आसन रखवाया। जो स्वच्छ, धवल उपधान सहित था। वह श्वेत वस्त्र से आवरित था। अंगों के लिए अतीव सुख-स्पर्श युक्त एवं कोमल था।

तदनंतर राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और उनको कहा-देवानुप्रियो! अष्टांग-महानिमित्तवेत्ता�, विविध शास्त्र कुशल स्वप्नशास्त्र के व्याख्याताओं को बुलाने की आज्ञा दी तथा वैसा कर शीघ्र सूचित करने को कहा।

 [♦] भूकंप, उत्पात, स्वप्न, उल्कापात, अंगस्फुरण, स्वर, व्यंजन एवं लक्षण-थे महानिमित्त शास्त्र के अष्ट अंग हैं।

(32)

तए णं ते कोडुंबियपुरिसा सेणिएणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्टतुट्ट जाव हियया करयल-परिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु "एवं देवो तहत्ति" आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेंति २ त्ता सेणियस्स रण्णो अंतियाओ पडिणिक्खमंति २ त्ता रायगिहस्स णयरस्स मज्झंमज्झेणं जेणेव सुमिणपाढग-गिहाणि तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सुमिणपाढए सद्दावेंति।

शब्दार्थ - दसणहं - दस नाखून, आणाए - आज्ञा के, विणएणं - विनय पूर्वक, वयणं - वचन, पडिसुणेंति - स्वीकार करते हैं, अंतियाओ - पास से, मज्झंमज्झेणं - बीचों बीच, सुमिणपाढग-गिहाणि - स्वप्न पाठकों के घर।

भावार्थ - राजा श्रेणिक द्वारा यों कहे जाने पर कौटुम्बिक पुरुषों ने अत्यंत प्रसन्नता पूर्वक हाथ जोड़, सिर झुकाए राजा को नमस्कार किया और उनके आदेश को विनय पूर्वक स्वीकार किया। वैसा कर वे वहाँ से चले एवं राजगृह नगर के बीचोंबीच वहाँ पहुँचे, जहाँ स्वप्न-पाठकों के घर थे।

(33)

तए णं ते सुमिणपाढगा सेणियस्स रण्णो कोडुंबियपुरिसेंहिं सद्दाविया समाणा हहतुह जाव हियया ण्हाया कयबलिकम्मा जाव पायच्छित्ता अप्प-महग्धा-भरणा-लंकिय सरीरा हरियालिय-सिद्धत्थय-कयमुद्धाणा सएहिं सएहिं गिहेहिंतो पिडिणिक्खमंति २ त्ता रायगिहस्स णयरस्स मज्झंमज्झेणं जेणेव सेणियस्स रण्णो भवण-वर्डेसग-दुवारे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता एगयओ मिलंति २ त्ता सेणियस्स रण्णो भवण-वर्डिसग-दुवारेणं अणुपविसंति २ त्ता जेणेव बाहिरिया उवहाणसाला जेणेव सेणिए राया तेणेव उवागच्छंति २ त्ता सेणियं रायं जएणं विजएणं वद्धावेति, सेणिएणं रण्णा अच्चिय-वंदिय-पूइय-माणिय-सक्कारिय-सम्माणिया समाणा पत्तेयं २ पुव्वण्णत्थेसु भद्दासणेसु णिसीयंति।

शब्दार्थ - सद्दाविया समाणा - आमंत्रित किये जाने पर, ण्हाया - स्नान किया,

कथबिलकम्मा - स्नान सम्बन्धी संपूर्ण विधि पूर्ण की, पायच्छित्ता - प्रायश्चित्त, अप्पमहग्ध-अल्पभार-बहुत मूल्य, हरियालिय - हरितालिका-दूर्वा, मुद्धाणा - मस्तक, सएहिं - अपने, गिहेहिंतो - घरों से, भवण-वडेंसग-दुवारे - उत्तम भवन के द्वार पर, एगयओ मिलंति - एक साथ मिलते हैं, बद्धावेंति - वर्धापित करते हैं (बधाई देते हैं), अच्चिय-अर्चित, बंदिय-वंदित, पूड्रय - पूजित, माणिय - मानित, सक्कारिय - सत्कारित, सम्माणिय- सम्मानित, पत्तेयं - प्रत्येक, पुव्वण्णत्थेसु - पूर्वन्यस्त-पहले से ही रखे हुए।

भावार्थ - राजा श्रेणिक के कौटुम्बिक पुरुषों द्वारा आमंत्रित किए जाने पर स्वप्न पाठक अत्यंत प्रसन्न हुए। उन्होंने स्नान सम्बन्धी संपूर्ण विधि पूर्ण की। मंगलोपचार किए। शरीर पर आभरण धारण किए। दूर्वा एवं श्वेत सरसों आदि द्वारा संपादित शुभोपचार पूर्वक वे अपने-अपने घरों से निकले। राजगृह नगर के बीच से होते हुए राज महल के द्वार पर पहुँचे। सब एक साथ होकर महल के अंदर प्रविष्ट हुए, सभा-भवन में आए, जय-विजय शब्दों द्वारा राजा को वर्धापित किया। राजा ने उनका अर्चन, वंदन, पूजन एवं मान-सम्मान किया। वे स्वप्न पाठक पहले से रखे हुए श्रेष्ठ आसनों पर बैठे।

(38)

तए णं सेणिय राया जवणियंतिरयं धारिणि देविं ठवेइ २ ता पुष्फ-फल-पडिपुण्ण-हत्थे परेणं विणएणं ते सुमिणपाढए एवं वयासी-एवं खलु देवाणुष्पिया धारिणी देवी अज्ञ तंसि तारिसगंसि सयणिजंसि जाव महासुमिणं पासित्ता णं पडिबुद्धा, तं एयस्स णं देवाणुष्पिया! उरालस्स जाव सस्सिरीयस्स महासुमिणस्स के मण्णे कळ्ळाणे फलवित्ति विसेसे भविस्सइ?

शब्दार्थ - जवणियंतरियं - पर्दे के पीछे, ठवेड़ - बिठलाता है, परेणं - अत्यधिक, पडिपुण्ण - परिपूर्ण, तारिसगंसि - उस प्रकार के, भविस्सड़ - होगा।

भावार्थ - तदनंतर राजा श्रेणिक ने रानी धारिणी को पर्दे के पीछे बिठलाया। फिर अपने हाथों में पुष्प और फल लेकर अत्यंत नम्नता पूर्वक उन स्वप्न-पाठकों को महास्वप्न के बारे में ज्ञापित किया और पूछा कि इस उत्तम, प्रशस्त महास्वप्न का कैसा शुभ एवं कल्याणकारी फल होगा?

www.jainelibrary.org

स्वप्न पाठकों द्वारा फलादेश

(34)

तए णं ते सुमिणपाढगा सेणियस्स रण्णो अंतिए एयमट्ठं सोच्चा-णिसम्म-हट्टतुट्ठ जाव हियया तं सुमिणं सम्मं ओगिण्हंति २ त्ता ईहं अणुपविसंति २ त्ता अण्णमण्णेण सिद्धं संचालेंति २ त्ता तस्स सुमिणस्स लद्ध्टा गहियट्ठा पुच्छियट्ठा विणिच्छियट्ठा अभिगयट्ठा सेणियस्स रण्णो पुरओ सुमिणसत्थाइं उच्चारेमाणा २ एवं वयासी -

शब्दार्थ - अण्णमण्णेण - अन्योन्य-परस्पर, संचालेंति - चिंतन-मनन करते हैं, लद्धट्ठा-लब्धार्थ-अर्थ को उपलब्ध किया, गहियट्ठा - गृहीत किया, पुच्छियट्ठा - परस्पर पूछ कर विचार-विमर्श किया, विणिच्छियट्ठा - निश्चय किया, अभिगयट्ठा - सम्यक् ज्ञात किया, पुरओ - आगे, सुमिणसत्थाइं - स्वप्न शास्त्रों का, उच्चारेमाणा - उच्चारण करते हुए।

भावार्थ - स्वप्न पाठक राजा का कथन सुनकर हृदय में अत्यधिक हृष्ट, पुष्ट, आनंदित हुए। उन्होंने उस स्वप्न को सम्यक् अवगृहीत किया, आत्मसात किया। वैसा कर उन्होंने ईहा में - तद्विषयक गवेषणात्मक चिंतन में प्रवेश किया। परस्पर विचार-विमर्श किया। स्वप्न के फल को अवगत किया एवं निश्चय किया। तदनंतर श्रेणिक राजा के समक्ष स्वप्न शास्त्र के सिद्धान्तों की चर्चा करते हुए, वे बोले।

(38)

एवं खलु अम्हं सामी! सुमिणसत्थंिस बायालीसं सुमिणा, तीसं महासुमिणा बावत्तिरं सव्वसुमिणा दिहा। तत्थ णं सामी! अरहंतमायरो वा, चक्कविद्यायरो वा, अरहंतंिस वा, चक्कविद्येस वा, गढभं वक्कम-माणंिस एएसिं तीसाए महासुणिणाणं इमे चउद्दसमहा सुमिणे पासित्ता णं पडिबुज्झंति तंजहा -

गय-उसभ-सीह-अभिसेय, दाम-सिस-दिणयरं झयं कुंभं। पउमसर-सागर-विमाण, भवण-रयणुच्चय-सिहिं च।। शब्दार्थ - खलु - निश्चय ही, सामी - स्वामी, बावत्तरिं - बहत्तर, दिट्टा - देखे गए, अरहंतमायरो - अरिहंत की माताएं, चक्कविद्यमायरो - चक्रवर्ती की माताएं, गब्भं - गर्भ, वक्कम-माणंसि - व्युत्क्रमित होने पर-गर्भ में आने पर, एएसिं तीसाए - इन तीस में से, इमे - ये, चउद्दस - चवदह, गय - हाथी, अभिसेय - अभिषेक, दाम - पुष्पमाला, दिणयरं - सूर्य, झयं - ध्वजा, कुंभं - पूर्णकलश, पउमसर - कमल युक्त सरोवर, रयणुच्चय-रत्न-राशि, सिहिं - अग्नि।

भावार्थ - स्वामिन्! स्वप्नशास्त्र में बयालीस प्रकार के स्वप्न और तीस महास्वप्न-यों बहतर प्रकार के स्वप्न प्रतिपादित हुए हैं। स्वामिन्! तदनुसार अर्हतों तथा चक्रवर्तियों की माताएं उनके गर्भ में आने पर इन तीस महास्वप्नों में से गज, वृषभ तथा सिंह आदि के चतुर्दश महा स्वप्न देखकर प्रतिबुद्ध होती है, जागती है।

विवेचन - तीर्थंकर प्रायः देवलोक से च्यवन करके मनुष्यलोक में अवतरित होते हैं। कोई-कोई कभी रत्नप्रभा पृथ्वी से निकल कर भी जन्म लेते हैं। स्वर्ग से आकर जन्म लेने वाले तीर्थंकर की माता को स्वप्न में विमान दिखाई देता है और रत्नप्रभापृथ्वी से आकर जन्मने वाले. तीर्थंकर की माता भवन देखती है। इसी कारण बारहवें स्वप्न में 'विमान अथवा भवन' ऐसा विकल्प बतलाया गया है।

(३७)

वासुदेवमायरो वा वासुदेवंसि गब्भं वक्कम-माणंसि एएसिं चउद्दसण्हं महासुभिणाणं अण्णयरे सत्त महासुभिणे पासित्ता णं पडिबुज्झंति। बलदेवमायरो वा बलदेवंसि गब्भं वक्कम-माणंसि एएसिं चउद्दसण्हं महासुभिणाणं अण्णयरे चत्तारि महासुभिणे पासित्ता णं पडिबुज्झंति। मंडलियमायरो वा मंडलियंसि गब्भं वक्कम-माणंसि एएसिं चोद्दसण्हं महासुभिणाणं अण्णयरं एगं महासुभिणं पासित्ता णं पडिबुज्झंति।

शब्दार्थ - एएसिं चउद्दसण्हं - इन चवदह में से, अण्णयरे - अन्यतर - किन्हीं, मंडलियमायरो - मांडलिक राजाओं की माताएं।

भावार्थ - जब वासुदेव गर्भ में आते हैं तो उनकी माताएं इन चतुर्दश महास्वप्नों में से कोई सात महास्वप्न देख कर प्रतिबुद्ध (जागृत) होती है। जब बलदेव गर्भ में आते हैं, तब उनकी माताएं इनमें से कोई चार महास्वप्न देख कर प्रतिबुद्ध होती है। इसी प्रकार जब माण्डलिक राजा गर्भ में आते हैं, तब उनकी माताएं इनमें से कोई एक महास्वप्न देख कर प्रतिबुद्ध होती है।

(35)

इमे य (णं) सामी! धारिणीए देवीए एगे महासुमिणे दिट्टे। तं उराले ण सामी! धारिणीए देवीए सुमिणे दिट्टे जाव आरोग्ग-तुट्टि-दीहाउ-कल्लाण-मंगल्ल-कारए णं सामी! धारिणीए देवीए सुमिणे दिट्टे। अत्थलाभो सामी! सोक्खलामो सामी! भोगलाभो सामी! पुत्त लाभो रज्जलाभो, एवं खलु सामी! धारिणी देवी णवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं जाव दारगं पयाहिइ। से विय य णं दारए उम्मुक्क-बालभावे विण्णाय-परिणयमित्ते जोव्वणग-मणुप्पत्ते सूरे वीरे विक्कंते वित्थिण्ण-विउल-बल-वाहणे रज्जवई राया भविस्सइ अणगारे वा भावियप्या, तं उराले णं सामी! धारिणीए देवीए सुमिणे दिट्टे जाव आरोग्ग तुट्टि जाव दिट्टे त्तिकट्ट भुज्जो भुज्जो अणुवूहेंति।

शब्दार्थ - णवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं - नौ महीनों के पूर्ण हो जाने पर, उम्मुक्क बालभावे - बाल्यावस्था व्यतीत होने पर, विण्णाय-परिणयमित्ते - विज्ञात परिणत मात्र- यौवन रूप अवस्थान्तर का अनुभव कर-युवा होकर, जोव्वणगं - यौवन, अणुप्पत्ते - प्राप्त कर, विक्कंते - विक्रांत-अत्यधिक पराक्रमी, विउल - विपुल- विशाल, भावियप्पा - भावितातमा - आत्मा को संयम से भावित करने वाला।

भावार्थ - स्वामिन्! राजमहिषी धारिणी देवी ने एक महास्वप्न देखा है। वह स्वप्न आरोग्य, तुष्टि, दीर्घायुष्य एवं कल्याणकारक है। वह अर्थ, सौख्य, भोग, पुत्र एवं राज्य लाभ का सूचक है। स्वामिन्! धारिणी देवी नौ महीनों के पूर्ण होने पर पुत्र को जन्म देगी। वह पुत्र बाल्यावस्था पार कर क्रमशः युवा होगा, बड़ा ही शूरवीर पराक्रमी एवं विशाल सेना, वाहन, राज्य आदि का अधिपति होगा। अथवा वह अणगार-गृहत्यागी, सर्वस्व त्यागी साधु होगा। यों कहकर उन्होंने रानी धारिणी के इस शुभ स्वप्न की पुनः पुनः प्रशंसा की।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में स्वप्नपाठकों द्वारा फलादेश में कथित 'रज्जवती राया भविस्सइ, अणगारे वा भावियण्या' यह वाक्यांश ध्यान देने योग्य है। इससे यह तो स्पष्ट है ही कि अतिशय पुण्यशाली आत्मा ही मानव जीवन में अनगार-अवस्था प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त कर सकती है। इसके अतिरिक्त इससे यह भी विदित होता है कि बालक के माता-पिता को राजा बनने वाले पुत्र को पाकर जितना हर्ष होता था, मुनि बनने वाले बालक को प्राप्त करके भी उतने ही हर्ष का अनुभव होता था। तत्कालीन समाज में धर्म की प्रतिष्ठा कितनी अधिक थी, उस समय का वातावरण किस प्रकार धर्ममय था, यह तथ्य इस सूत्र से समझा जा सकता है।

(38)

तए णं सेणिए राया तेसिं सुमिणपाढगाणं अंतिए एयमङ्कं सोच्चा णिसम्म हड जाव हियए करयल जाव एवं वयासी।

भावार्थ - राजा श्रेणिक स्वप्न का फल प्रतिपादित करने वाले उन स्वप्नशास्त्रवेत्ताओं के इस कथन को सुनकर अत्यन्त हर्षित एवं आनन्दित हुए। वे हाथ जोड़ कर उनसे इस प्रकार बोले।

(80)

एवमेयं देवाणुप्पिया! जाव जं णं तुब्धे वयह - तिकट्टु तं सुमिणं सम्मं पिडेच्छइ २ ता ते सुमिणपाढए विउलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं वत्थ-गंध-मल्लालंकारेण य सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारिता सम्माणिता विउलं जीवियारिहं पीइदाणं दलयइ २ ता पिडेविसजेइ।

शब्दार्थ - जं - जो, वयह - कहते हो, साइमेणं - स्वाद्य-स्वाद युक्त, मह्न - माला, जीवियारिहं - जीवन-निर्वाह योग्य, पीइदाणं - प्रीतिदान, दलयइ - देता है, पिडिविसजेइ - प्रतिविसर्जित करता है।

भावार्थ - देवानुप्रियो! आप जैसा कहते हैं, वैसा ही तथ्य पूर्ण है, सत्य है, यों कह कर राजा ने स्वप्न फल को स्वीकार किया, आदर दिया। स्वप्न वाचकों का अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, अलंकार, माला आदि द्वारा सत्कार किया। प्रसन्नता पूर्वक उनको जीवन निर्वाह योग्य प्रीति दान देकर विदा किया।

(84)

तए णं से सेणिए राया सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ २ त्ता जेणेव धारिणी देवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धारिणिं देविं एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिए! सुमिणसत्थंसि बायालीसं सुमिणा तीसं महासुमिणा जाव एगं महासुमिणं जाव भुज्जो-भुज्जो अणूबूहेइ।

भावार्थ - तदनंतर राजा श्रेणिक सिंहासन से उठा। उठकर वहाँ आया जहाँ रानी धारिणी थी। उसने रानी से कहा - देवानुप्रिये! तुमने बयालीस स्वप्नों के अंतर्गत एक महास्वप्न देखा है। यह अत्यंत हर्ष का विषय है। राजा ने बार-बार स्वप्न की प्रशंसा की।

(85)

तए णं सा धारिणीं देवी सेणियस्स रण्णो अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठ जाव हियया तं सुमिणं सम्मं पडिच्छइ २ त्ता जेणेव सए वासघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता एहाया कयबलिकम्मा जाव विपुलाइं जाव विहरइ।

शब्दार्थ - सए - स्वकीय-अपने, वासघरे - आवासगृह में, विपुलाई - बहुत से।

भावार्थ - रानी धारिणी राजा श्रेणिक का कथन सुनकर अत्यंत हर्षित, परितुष्ट एवं प्रसन्न हुई। अपने स्वप्न को भली भाँति आत्मसात् किया। वैसा कर अपने निवास स्थान में आई। फिर स्नान सम्बन्धी संपूर्ण विधि पूर्ण की एवं मंगलोपचार किए। पूर्ववत् विपुल भोगमय जीवन जीने लगी।

धारिणी देवी का दोहद

(83)

तए णं तीसे धारिणीए देवीए दोसु मासेसु वीइक्कंतेसु तइए मासे वहमाणे तस्स गब्भस्स दोहल-काल-समयंसि अयमेयारूवे अकालमेहेसु दोहले पाउक्पवित्था।

शब्दार्थ - दोसु मासेसु वीइक्कंतेसु - दो महीने व्यतीत होने पर, तइए - तृतीय,

वहमाणे - वर्तमान, दोहल-काल-समंयसि - दोहद का समय आने पर, एयारूवे - इस प्रकार का, अकाल-मेहेसु-असमय में मेघों को देखने का, पाउक्भिवित्था-प्रादूर्भूत-उत्पन्न हुआ। भावार्थ - तत्पश्चात् जब दो माह बीत गए, तीसरा महिना चल रहा था, तब रानी के

गर्भ के दोहद (गर्भस्थ जीव के विचारानुसार गर्भवती स्त्री की इच्छा विशेष) का समय आया। रानी धारिणी के मन में अकाल-असमय में, वर्षा ऋतु के बिना ही मेघों को देखने की इच्छा उत्पन्न हुई।

(88)

धण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ, संपुण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ, कवत्थाओ णं ताओ०, कयपुण्णाओ, कयलक्खणाओ, कय-विहवाओ, सुलद्धे णं तासि माणुस्सए जम्म जीविय फले जाओ णं मेहेसु अब्भुग्गएसु अब्भुज्जएसु अब्भुण्णएसु अब्भुडिएसु सगज्जिएसु सविज्जुएसु सफुसिएसु सथणिएसु धंतधोय-रुप्पपट्ट-अंक-संख-चंद-कुंद-सालिपिट्टरासि-समप्पभेसु चिउर हरियालभेय-चंपग-सण-कोरंट सरिसय पउमरय-समप्पभेसु लक्खारस-सरसरत्तकिंसुय-जासुमण-रत्त बंधुजीवग जाइहिंगुलय-सरस कुं कुम्-उरब्भ-ससरुहिर-इंदगोवग-समप्पभेसु बरहिण-णीलगुलिय-सुग-चास-पिच्छ-भिंगपत्त-सासग-णीलुप्पलणियर-णवसिरीस-कुसुम-णवसदल-समप्पभेसु जच्चंजण-भिंगभेय-रिट्टग-भमरावलि-गवल-गुलिय-कज्जल समप्पभेसु फुरंतविज्जुय-सगज्जिएसु वायवस-विपुल-गगण-चवल-परिसक्किरेसु णिम्मलवर-वारिधारा-पयलियपर्यंड-मारुय-समाह य समोत्थरंत उवरिउवरितुरियवासं पवासिएसु धारापहकर-णिवाय-णिव्वाविय मेइणितले हरिय गणकंचुए, पल्लविय पायवगणेसु, वल्लिवियाणेसु पसरिएसु, उण्णएसु सोहग्गमुवागएसु, णगेसु णएसु वा, वेभारगिरि-प्पवायत्ड-कडग-विमुक्केसु उज्झरेसु, तुरियपहाविय-पल्लोट्ट-फेणाउलं सकलुसं जलं वहंतीसु गिरिणईसु, सज्ज-ज्जुणणीव-कुडय कंदल-सिलिंध-कलिएसु उववणेसु, मेह-रसिय-हट्टतुट्ट-चिट्टिय-हरिसवस-पमुक्क-कंठकेकारवं मुयंतेसु बरहिणेसु, उउ-वस-

मयजणिय-तरुणसहयरि-पणिच्चएस्, णवसुरभिसिलिध-कुडयकंदल-कलंब-गंधद्धणि मुयंतेसु उववणेसु, परहुय-रुय-रिभियं-संकुलेसु उद्दायंतरत्तइंदगोवय-थोवय-कारुण्णविल-विएसु ओणयतण-मंडिएसु दद्दुर-पयंपिएसु संपिंडिंय-दरिय-भमरमहुयरि पहकर-परिलिंत-मत्तछप्पयकुसुमासवलोलमहुर-गुंजंतदेसभाएसु उववणेसु, परिसामिय-चंद सुरगहगण पणद्वणक्खत्ततारगपहेइंदाउह-बद्ध-चिंधपट्टंसिअंबरतले उड्डीण-बलागपंति-सोहंतमेहविंदे, कारंडगचक्कवाय-कलहंस उस्सुयकरे संपत्ते पाउसंमि काले, ण्हायाओ, कयबलिकम्माओ कयकोउय-मंगलपायच्छित्ताओ किं ते? वरपायपत्त णेउर-मणिमेहल-हार-रइयओवियकडग-खुडुय-विचित्त-वरवलय-धंभियभुयाओ कुंडलउज्जोवियाणणाओ रयण-भूसियंगाओ णासाणीसास-वायवोज्झं चक्खुहरं वण्णफरिस-संजुत्तं हयलाला-पेलवाइरेयं धवलकणय-खिचयंत-कम्मं आगासफलिह सरिसप्पभं अंसुयं पवर परिहियाओ-दुगुल्ल सुकुमाल उत्तरिज्जाओ सव्वोउयसुरभि कुसुम-पवरमल्ल-सोहियसिराओ-कालागरु-धूवधूवियाओ-सिरीसमाण-वेसाओ सेयणय-गंध हत्थिरयणं दुरूढाओ समाणीओ, सकोरंट-मल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं चंदप्पभ-वङ्खेरुलिय विमलदंड-संख-कुंद-दगरय-अमय महिय-फेण-पुंज सण्णिगास-चडचामर-वाल-वीजियंगीओ, सेणिएणं रण्णा सिद्धं हत्थि-खंधवरगएणं, पिट्ठओ २ समणु-गच्छमाणीओ चाउरंगिणीए सेणाए महया हवाणीएणं, गयाणीएणं, रहाणीएणं, पायत्ताणीएणं, सव्विड्ढीए सव्वज्जुईए जाव णिग्घोस-णाइय रवेणं रायगिहं णयरं सिंघाडग-तिय-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापहपहेसु आसित्त-सित्त-सुइय-संमज्जि-ओवलित्तं जाव सुगंधवरगंधिय गंधविट्टभूयं अवलोएमाणीओ, णागरजणेणं अभिणंदिज्जमाणीओ गुच्छ-लया-रुक्ख-गुम्म-वल्लि-गुच्छ-ओच्छाइयं सुरम्मं वेभारगिरि- कडग-पायमूलं सव्वओ समंता आहिडेमाणीओ २ दोहलं विणियंति। तं जड़ णं अहमवि मेहेसु अब्भुग्गएसु जाव दोहलं विणिज्जामि।

शब्दार्थ-धण्णाओ-धन्या-भाग्यशालिनी, ताओ - वे, अम्मयाओ - माताएं, संपुण्णाओ-पुण्यशालिनी, कयत्थाओ - कृतार्थ, कयपुण्णाओ - कृत पुण्या, कयलक्खणाओ- कृतलक्षणा-सफल या सार्थक शारीरिक लक्षण युक्त, कयविहवाओ-कृत विभवा-सफल वैभव युक्त, सुलद्धे- समुपलब्ध, माणुस्सए - मनुष्य के, जम्मजीवियफले - जन्म एवं जीवन का फल, मेहेसु - बादलों के, अब्भुग्गएसु - अभ्युद्गत-प्रादुर्भूत होने पर, अब्भुज्जएसु - अभ्युद्यत-बरसने के लिए तैयार, अब्भुण्णएसु - अभ्युन्नत-विशेष रूप से उन्नत या ऊँचे, अब्भुट्टिएसु -अभ्युत्थित-बरसने को उद्यत, सगजिएसु - सगजित-गर्जन सहित, सविजाएसु - सविद्यत-बिजली युक्त, सफुसिएसु- जिनसे वर्षा की बूंदे टपक रही हों, सथिणएसु - धनघोर गर्जन करते हुए, धंत - ध्यात-अग्नि के संयोग से प्रतापित, धोय - निर्मल, रूप्पपट - रंजतपत्र -चाँदी का पत्र, अंक-स्फटिक रत्न, कुंद- श्वेत पुष्प विशेष, सालि - चावल, पिट्ठ - पिसे हुए, समप्पभेसु - समान प्रभा-कांति युक्त, चिउर - पीले वर्ण का द्रव्य विशेष, चंपग -चंपकपृष्य, सण - सण पृष्प, सरसिय - सर्वप-सरसों, पउमरय - पदारज-पराग, लक्खारस-लाक्षारस-आई लाख, सरसरत्तकिंसुय - सरस रक्तकिंशुक-ताजे लाल पलाश-पुष्प, जासुमण-जपा पुष्प, बंधु जीवग - बंधु जीवक के पुष्प, जाइहिंगुलय - उत्तम जाति के हिंगुलक, सरस कुंकुम - पानी में घोली हुई कुंकुम, उरब्भ - मेष - मेंढा, सस - खरगोश, रुहिर - रुधिर, इंदगोवग - इन्द्रगोपक-वर्षाऋतु में होने वाला कीट विशेष, बरहिण - मयूर, णीलगुलिय -नील गुटिका, सुग - तोता, चास - नीलकंठ-पक्षी विशेष, पिच्छ - पंख, भिंगपत्त - भूंग पत्र-भ्रमर जाति विशेष के पंख, सासग - सासक नामक वृक्ष, णीलुप्पलणियर - नीले कमलों का समूह, णवसिरीस कुसुम - नव सरसों का पुष्प, णवसदल - नया हरा घास, जच्चंजण-उत्तम अंजन (सुरमा), भेय - भेद, रिट्टग - श्याम वर्ण का रत्न विशेष, भमरावर्लि - भंवरीं की पंक्ति (समूह) गवलगुलिय - भैंस के सींग का सार भाग, फुरंत - स्फुरित (चमकती हुई), वायवस - तेज हवा के कारण, परिसक्किरेसु - परिष्वष्कित - गमन क्रिया में प्रवृत्त, णिम्मलवर - अत्यंत निर्मल, पगलिय - प्रगलित - चलते हुए, पयंड - प्रचंड-अत्यंत प्रबल, मारूय - मारुत, समाहय - समाहत-संप्रेरित, समोत्थरंत - आच्छादित करते हुए, उविर -ऊपर, तुरियवासं - घनघोर वर्षा, पवासिएसु - आरंभ करते हुए, धारापहकरणिवाय -जलधारा के गिरने से, णिळ्वाविय - निर्वापित-बुझाया (शांत किया हुआ), मेइणितले -पृथ्वी तल, पल्लविय - पल्लवित-पत्रित, पायव-गणेसु - वृक्ष समूह, विल्ल - बेल,

पसरिएसु - प्रसृत-फैले हुए, उण्णएसु - उन्नत-उच्च, सोहग्गमुखागएसु - सौन्दर्य प्राप्त, णगेसु- पर्वतों में, णएसु - नदों-बड़ी नदियों में, पवायतड - प्रपात-तट, कड़ग - कटक-पर्वत के भाग, विमुक्केसु - विमुक्त-निकले हुए, उज्झरेसु - निर्झर-झरने, तुरिय - त्वरित-तेजी से, पहाविय - प्रधावित-दौड़ते हुए, बहते हुए, पलोट्ट - प्रत्यागत-पत्थर आदि से टकराकर वापस लौटे हुए, फेणायुलं - फेनाकुल-झाग से व्याप्त, सकलुसं - मैला, सज्ज -सर्ज नामक वृक्ष, अञ्जुण - अर्जुन नामक वृक्ष, कुडय - कुटज नामक वृक्ष, कंदल - अंकुर, सिलिंघ - शिलीन्घ्र-भूमि को फोड़ कर निकले हुए छत्रक, उववण - उपवन, मेहरसिय -मेघ-रसित-बादलों के गरजने के शब्द, चिट्टिय - स्थित, पमुक्क - प्रमुक्त-खुले हुए, केकारवं-मयूर-ध्वनि-मोर की बोली, मुयंतेसु - छोड़ते हुए-बोलते हुए, उउ - ऋतु, मय - मद-उन्मत्त भाव, जिणय - जिनत-उत्पादित (किये हुए), तरुण सहयरि - युवासहचारिणी, पणच्चिए -पनर्तित-नाचते हुए, कलंब - कदंब, गंधद्धणि- नासिका के लिए तृप्तिप्रद सुगंध, परहुय-रुय-रिभिय-संकलेसु - कोयल की मधुर ध्वनि से व्याप्त, उद्दायंत - शोभमान, थोवय -चक्रवाक, कारुण्ण - करुणा जनक, विलविएसु - बोलते हुए, ओणय - अवनत, झुके हुए, तण - तृण-घास, मण्डिए - मण्डित-सुशोभित, दहुर - मेंढक, पयंपिए - प्रजल्पित-बोलते हुए, संपिंडिय - एकत्रित, दरिय - दर्ग-मदयुक्त, महुयरि - मधुकरी-भ्रमरी, परिलिंत -अतीव लीन होते हुए, छप्पय - षट्पद-भ्रमर, कुसुमासव - पुष्प रस, लोल - चंचल, परिसामिय- परिश्यामित - संपूर्णतः श्याम वर्ण युक्त, पणह - प्रणब्ट-गायब, इंदाउह -इन्द्रधनुष, चिंधपट- ध्वजा-वस्त्र, बलागपंति - बगुलों की कतार, विंदे - वृंद-समूह, कारण्डक-पक्षी विशेष, चक्कवाय - चक्रवाक-चकवा, कलहंस - राजहंस, उस्सुयकरे - उत्सुकता पैदा करने वाले, संपत्ते - आ जाने पर, पाउसंमिकाले - वर्षा ऋतु, पत्त - प्राप्त-धारण किए हुए, णेउर - नृपुर-पैंजनी, मणिमेहर - मणियों से बनी हुई मेखला (कर्धनी), भूसिय - शोभित, णासाणीसास वायवोज्झं- नासिका से निकलते श्वास की हवा से हिलता हुआ, चक्खुहरं -नेत्रप्रिय, वण्णफरिससंजुत्तं- उत्तम वर्ण एवं सुखद स्पर्शे युक्त, हय - अश्व, लाला - लार, पेलवाइरेयं - कोमल, अंतकम्मं - किनारों पर किया गया कलात्मक कार्य, फलिह -स्फटिक, अंसुयं - वस्त्र, पवर परिहियाओ - सुंदर रूप में पहने हुए, दुगुल्ल - दुकूल-वृक्ष विशेष की कोमल छाल से निकाले हुए तन्तुओं से बना वस्त्र, उत्तरिज्जाओ - उत्तरीय धारण किए हुए, सब्बोउय - समस्त ऋतुएँ, धूवियाओ - धूपित-धूप द्वारा सुगंधित, सिरी-समाण-

वेसाओ- साक्षात् लक्ष्मी के सदृश वेश युक्त, सेयणगगंधहित्थरयणं- सेचनक नामक उत्तम गंध-हिस्त, दुरूढाओ - आरूढ, चंदप्पभ - चंद्रकांत मिण, वइर - वज्र-हीरा, वेहिलय - वैड्र्य, दग - जल बिंदु, रय - रज, अमय - अमृत, मिह्य - मिथत, सिण्णगास - सदृश, खंध - स्कंध, पिट्ठओ - पीछे से, समणुगच्छमाणीओ - अनुगमन करती हुई, चाउरंगिणीए- सेणाए - चतुरंगिणी सेना से, हयाणीएणं - अश्व-सेना, गयाणीएणं - गज-सेना, रहाणीएणं- रथ-सेना, पायत्ताणीएणं - पैदल-सेना द्वारा, सव्वड्ढीए - समस्त ऋदि युक्त, सव्वज्जुईए- समस्त द्वित-प्रभा युक्त, णिग्धोसणाई - राजा के आगमन की, उद्धोषणा आदि से युक्त, रवेणं - शब्द के साथ, सिंघाडग - त्रिकोण मार्ग-तिकोने स्थान, तिय - त्रिक्-जहाँ से तीन रास्ते निकलते हों, चउक्क- चतुष्क-चौराहे, चच्चर - चत्वर-जहाँ चार से अधिक रास्ते निकलते हों, चउक्क- चतुष्क-चौराहे, चच्चर - चत्वर-जहाँ चार से अधिक रास्ते निकलते हों, चउम्मुहं - चतुर्मुखु-चार द्वार युक्त, महापह - महापथ-राजमार्ग, पह - पथ-सामान्य मार्ग, आसित्त - आसिक्त-सुगंधित जल आदि छिड़का हुआ, अवलोएमाणीओ - अवलोकन करती हुई, णागर जणेणं- नागरिक जनों द्वारा, अभिणंदिज्जमाणीओ - अभिनंदित की जाती हुई, गुम्मवल्लि - चारों दिशाओं में फैली हुई शाखाओं से युक्त लताएं, आहिण्डेमाणीओ - धूमती हुई, विणियंति- पूर्ण करती हैं, जइ - यदि, अहमवि - मैं भी।

भावार्थ - रानी धारिणी के मन में भाव तरंगें उठने लर्गी—वे माताएँ धन्य हैं, भाग्यशालिनी हैं, पुण्यवती हैं, उन्हीं का वैभव सफल है, वे कृतार्थ हैं, जो वर्षा ऋतु के बिना ही आकाश में नील, श्वेत, पीत, रक्त आदि विविध वर्णयुक्त मेघों को देखती हैं। वे मेघ गरज रहे हों, उनमें बिजली चमक रही हों, धीरे-धीरे उनसे बूँदे टपके रही हों। उन्होंने घनघोर वर्षा का रूप ले लिया हो। भूमि जल से संसिक्त हो गई हो। उपवनों में पौधे, लताएँ, वृक्ष अंकुरित होने लगे हों, उद्यान फूलों की सुरिभ से महक रहे हो।

उसकी विचार तरंगें उच्छिलत होने लगी। उसका चिंतन क्रम आगे बढ़ने लगा। मन ही मन कहने लगी - स्वर्ण, स्त्न, मिण इत्यादि से निर्मित हार, कुंडल, वलय, अंगुलिय, मेखला आदि आभूषणों को धारण किए हुए, अत्यंत बारीक, कोमल, सुहावने वस्न पहने हुए, महाराज श्रेणिक के साथ सेचनक गंध हस्ति पर आरूढ हों। पीछे-पीछे अश्व, हस्ति, रथ एवं पदाित रूप चतुरंगिणी सेना चल रही हो। राजगृह नगर के बीचोंबीच से जन जन द्वारा किए जाते हुए जयघोष के साथ निकल रही हो। गगन में धुमड़ते हुए, गरजते हुए, सुहावने, लुभावने, नेत्रों के लिए प्रीतिप्रद, हृदय में आनंद का संचार करने वाले, निर्जर की तरह बरसते हुए मेघों को देखकर आह्रादित होती हों, अपना दोहद पूर्ण करती हों। कितना अच्छा हो मैं भी अपना दोहद पूर्ण करूँ।

विवेचन - आगमों में अनेक स्थानों पर ऐसे वर्णन आते हैं, जो साहित्यिक दृष्टि से बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। इन विस्तृत काव्य-सुषमा से विभूषित वर्णनों के पीछे रचनाकारों का एक विशेष प्रयोजन रहा है।

भाषा का जीवन में सर्वाधिक महत्त्व है। यदि वह नहीं होती तो मानव ने ऐहिकता एवं पारलौकिकता के संबंध में जो वैचारिक विकास किया है, संभवतः वह हो नहीं पाता। साहित्य का अनुपम भंडार, अध्यातम एवं संस्कृति की अनुपम विरासत, जो आज हमें वाङ्मय के रूप में उपलब्ध है, अप्राप्त रहती। वैचारिक पृष्ठभूमि को आकर्षक, आह्नादप्रद, शांतिप्रद बनाने हेत् भाषा की सुष्टता और वर्णन की सुरम्यता, मनोज्ञता पर विशेष बल देने की अपनी सार्थकता है। अलंकारों के रूप में भाषा की सुंदरता को बढ़ाने हेतु एक विशेष विधा का विकास हुआ। इस विधा का अति प्राचीन रूप हम आगम-साहित्य में पाते हैं, जो आगे चलकर काव्य-शास्त्र के क्षेत्र में विकसित हुआ। भामह, दण्डी, उदंभट आदि आचार्यों ने अलंकारों को काव्य-शोभा का अनन्य उन्नायक तत्त्व माना। यहाँ यह भी ज्ञातव्य है, काव्य का लक्ष्य केवल श्रोत्रेन्द्रिय आदि का आनंद ही नहीं है, वरन यदि वह अध्यात्म का मोड़ ले ले तो परम शांति, निवृत्ति एवं आत्म-समाधि का भी संसाधक होता है। सुप्रसिद्ध काव्यशास्त्री आचार्य मम्मट ने <mark>'सद्</mark>यः परनिर्वृतये♦' पद द्वारा काव्य से सधने वाली आध्यात्मिक उन्नति की ओर संकेत किया है। आगमों में सरस, अलंकृत वर्णन के जो प्रसंग आते हैं, वे मानव की सहज माधुर्य एवं सौंदर्य प्रवण मनोवृत्ति को दृष्टि में रखते हुए ही उपस्थापित किए गए हैं, जिनसे जन-जन को उनका पठन, श्रवण करने की प्रेरणा मिल सके। यों आगमिक वाङ्मय में अनुप्रविष्ट होने के पश्चात् आत्मशुद्धिकारी, कर्म क्षयकारी, संयममूलक, तपश्चरण, वैराग्य, संवेग, निर्वेद आदि की दिशा में अग्रसर होने का उनमें भाव उत्पन्न होना संभावित है, क्योंकि यही आत्मा के स्वाभाविक सुंदर मूलगुण हैं।

इस सूत्र में मेघ का जो आलंकारिक वर्णन आया है, वह वास्तव में अनूठा है। इसे प्राकृत के अत्युत्तमंगद्य काव्य की संज्ञा दी जा सकती है। अनुप्रास, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अनेक अलंकारों का जिस सहजता से इस वर्णन में समावेश हुआ है, वह आश्चर्यजनक है। जहाँ शब्द संरचना में अलंकार अप्रयत्न-साध्य होते हैं, वहाँ काव्यात्मक शोभा अद्भूत रूप ले

[💠] काव्य प्रकाश १, २

जाव झियायइ।

लेती है। प्रस्तुत वर्णन में अलंकारों का इतना सहज समावेश हुआ है कि उनका शब्द और अर्थ के साथ तादात्म्य सिद्ध हो जाता है।

दोहदपूर्ति की चिंता (४५)

तए णं सा धारिणी देवी तंसि दोहलंसि अविणिज्जमाणंसि असंपत्त-दोहला असंपुण्ण-दोहला असंमाणिय-दोहला सुक्का भुक्खा णिम्मंसा ओलुग्गा ओलुग्ग-सरीरा पमइल-दुब्बला किलंता ओमंथिय-वयण-णयण-कमला पंडुइयमुही करयलमलियव्व चंपगमाला-णित्तेया दीण-विवण्ण-वयणा जहोचियपुष्फ-गंध-मल्लालंकारहारं अणभिल-समाणी कीडा-रमण-किरियं च परिहावेमाणी दीणा दुम्मणा णिराणंदा भूमिगय-दिट्ठीया ओहय-मण-संकष्पा

शब्दार्थ - अविणिज्जमाणंसि - अविद्यमान रहने पर-पूर्ण न होने पर, असंपुण्ण - असंपूर्ण, असंमाणिय - असम्मानित, सुक्का - शुष्क, भुक्खा - श्रुधित-बुभुक्षा (भूख) जैसी पीडा से व्याकुल, णिम्मंसा - निर्मांस-मांसशून्य की ज्यों दुर्बलता युक्त, ओलुग्गा - चिंतातिशय से जीर्ण, पमइल-दुब्बला - म्लान एवं अशक्त, किलंता - व्यथा से क्लान्त-ग्लानियुक्त, ओमंथिय - नीचे किए हुए, वयण - वदन-मुख, पंडुइयमुही - पीले पड़े मुख युक्त, करयलमिलयवा - हथेली से मसली हुई सी, णित्तेया - निस्तेज-दीप्ति रहित, दीण - दैन्ययुक्त, विवण्ण - चिंता से फीका पड़ा हुआ, जहोचिय - यथोचित, अणिमलसमाणी - अभिलाषा न करती हुई, कीडारमणिकरियं - मन बहलाव की क्रियाएँ, परिहावेमाणी - त्याग करती हुई, दुम्मणा - दुःखित मन युक्त, भूमिगय-दिद्धिया - भूमि पर दृष्टि गडाए हुए, ओहय - अपहत-नष्ट, झियायइ - आर्तध्यान में निमन्न हो गई।

भावार्थ - रानी धारिणी ने अपने दोहद को अपूर्ण एवं असंपन्न देखा तो वह अत्यधिक व्यथित हुई। उसका मुँह सूख गया। वह शरीर में इतनी दुर्बलता महसूस करने लगी मानो उसकी देह में मांस ही न रहा हो। उसका शरीर चिंतातुर, जीर्ण एवं म्लान हो गया। उसका मुँह और आँखे नीचे की ओर झुक गई। उसे मनोविनोद-मनोरंजन क्रियाएँ अप्रिय लगने लगीं। उसका मन बड़ा दुःखित होने लगा। उसकी दृष्टि जमीन पर गड़ गई। उसे कर्तव्याकर्तव्य का कोई भान ही न रहा तथा वह आर्त्तध्यान में निमम्न हो गई।

(४६)

तए णं तीसे धारिणीए देवीए अंगपडियारियाओ अन्भिंतरियाओ दासचेडियाओ धारिणिं देविं ओलुग्गं जाव झियायमाणिं पासंति २ त्ता एवं वयासी - किण्णं तुमे देवाणुप्पिए! ओलुग्गा ओलुग्गसरीरा जाव झियायसि?

शब्दार्थ - अंगपडियारियाओ - अंगपरिचारिकाएँ-शरीर की देखभाल करने वाली, दासचेडियाओ - दासचेटिकाएँ-दासियाँ।

भावार्थ - रानी धारिणी की व्यक्तिगत सेविकाओं ने जब उन्हें चिंता से जीर्ण, पीड़ित और आर्त्तध्यान युक्त देखा तो बोली - देवानुप्रिये! आपकी ऐसी स्थिति क्यों हो रही है, आप आर्त्तध्यान क्यों कर रही है?

(80)

तए णं सा धारिणी देवी ताहिं अंगपडियारियाहिं अब्भिंतरियाहिं दास-चेडियाहिं एवं वुत्ता समाणी ताओ दासचेडियाओ णो आढाइ, णो परियाणाइ, अणाढायमाणी अपरियाणमाणी तुसिणीया संचिद्वइ।

शब्दार्थ - ताहिं - उनके द्वारा, एवं - इस प्रकार, बुत्ता समाणी - कहे जाने पर, आढाइ - आदर करती है, परियाणाइ - गौर करती हैं, तुसिणीया - मौन, संचिट्टइ - संस्थित होती है।

भाषार्थ - सेविकाओं द्वारा जो यह कहा गया, रानी धारिणी ने अन्यमनस्क होने के कारण न उनका आदर ही किया और न उस पर कोई गौर ही किया। वह चुपचाप बैठी रही।

(४८)

तए णं ताओ अंगपडियारियाओ, अब्भिंतरियाओ दासचेडियाओ धारिणि

देविं दोच्चं पि तच्चंपि एवं वयासी - किण्णं तुमे देवाणुप्पिए! ओलुगा ओलुगा-सरीरा जाव झियायसि?

शब्दार्थ - दोच्चं - दूसरी बार, तच्चं - तीसरी बार।

भावार्थ - तब उन दासियों ने दूसरी एवं तीसरी बार फिर रानी से कहा - देवानुप्रिये! आप क्यों खिन्न, व्यथित एवं उदासीन होती हुई आर्त्तध्यान में डूबी हैं।

(38)

तए णं सा धारिणी देवी ताहिं अंगपिडयारियाहिं अन्भितिरयाहिं दासचेडियाहिं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वृत्ता समाणी णो आढाइ णो परियाणाइ अणाढायमाणी अपरियाणमाणी तुसिणीया संचिद्वइ।

भावार्थ - उन दासियों द्वारा दूसरी बार-तीसरी बार पुनः पुनः कहे जाने पर भी रानी धारिणी ने उनके कथन का न कोई आदर किया और न ध्यान ही दिया, वह मौन स्थित रही।

(২০)

तए णं ताओ अंगपडियारियाओ अब्भिंतरियाओ दासचेडियाओ धारिणीए देवीए अणाढाइज्जमाणीओ अपरिजाणिज्जमाणीओ तहेव संभंताओ समाणीओ धारिणीए देवीए अंतियाओ पडिणिक्खमंति २ ता, जेणेव सेणिए राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं जाव कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेंति २ ता एवं वयासी-एवं खलु सामी! किंपि अज्ज धारिणी देवी ओलुग्गा ओलुग्ग-सरीरा जाव अट्टज्झाणोवगया झियायइ।

शब्दार्थ - संभंताओ - संभ्रांत-व्याकुल, समाणिओ - होती हुई।

भावार्थ - रानी द्वारा अपने कथन का इस प्रकार आदर न किए जाने पर वे दासियाँ व्याकुल होती हुई रानी धारिणी के यहाँ से चल कर राजा श्रेणिक के पास आती हैं। हाथ जोड़ कर, सम्मान पूर्वक मस्तक झुकाकर, जय-विजय शब्द द्वारा वर्धापित किया और वे बोलीं - स्वामिन्! आज महारानी धारिणी देवी अत्यंत व्यथा, आकुलता एवं खिन्नता-युक्त, होकर आर्त्तध्यान में डूबी हुई हैं।

www.jainelibrary.org

(ধ্ৰ)

तए णं सेणिए राया तासिं अंगपडियारियाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म तहेव संभंते समाणे सिग्धं तुरियं चवलं वेड्यं जेणेव धारिणी देवी तेणेव उवागच्छड़ उवागच्छित्ता धारिणि देविं ओलुग्गं ओलुग्ग सरीरं जाव अट्टज्झाणोवगयं झियायमाणिं पासइ, पासित्ता एवं वयासी - किण्णं तुमं देवाणुप्पिए! ओलुग्गा ओलुग्ग सरीरा जाव अट्टज्झाणोवगया झियायसि?

शब्दार्थ - सिग्धं - शीघ्र, चवलं - चपल-चंचल, वेड्यं - वेगपूर्वक, अट्टज्झाणोवगयं-आर्तध्यान में संलम्न।

भावार्थ - राजा श्रेणिक उन परिचारिकाओं से यह सुनकर बहुत व्याकुल हुआ और वह अत्यंत शीघ्रता तथा त्वरापूर्वक, धारिणी देवी जहाँ थी, वहाँ आया। उसने उसको उद्दिग्न, परिश्रांत तथा आर्त्तध्यान में चिंता युक्त देखा। वह बोला - देवानुप्रिये! तुम इस प्रकार चिंतातुर, व्याकुल, खिन्न और अवसन्न क्यों हो रही हो?

(५२)

तए णं सा धारिणी देवी सेणिएणं रण्णा एवं वुत्ता समाणी णो आढाइ जाव तुसिणीया संचिद्वइ।

भावार्थ - राजा श्रेणिक के इस कथन पर धारिणी ने आदरपूर्वक गौर नहीं किया, चुपचाप बैठी रही।

(१३)

तए णं सेणिए राया धारिणिं देविं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वयासी - किण्णं तुमं देवाणुप्पिए! ओलुग्गा जाव झियायसि?

भावार्थ - इस पर राजा श्रेणिक ने रानी धारिणी को दो-तीन बार फिर कहा - देवानुप्रिये! तुम क्यों चिंताग्रस्त और आकुल हो?

(४४)

तए णं सा धारिणी देवी सेणिएणं रण्णा दोच्चंपि तच्चंपि एवं वुत्ता समाणी णो आढाइ णो परिजाणाइ तुसिणीया संचिद्वइ।

भावार्थ - रानी धारिणी ने राजा श्रेणिक द्वारा पुनः पुनः कहने पर भी ध्यान नहीं दिया। ज्यों की त्यों बैठी रही।

(४४)

तए णं से सेणिए राया धारिणिं देविं सवह-सावियं करेड़, करेता एवं वयासी-किं णं तुमं देवाणुप्पिए! अहमेयस्स अष्टस्स अणिरहे सवणयाए ता णं तुमं ममं अयमेयारूवं मणोमाणिसयं दुक्खं रहस्सी करेसि?

शब्दार्थ - सवह-सावियं - शपथशापित-सौगंध दिलाकर, अणिरहे - अयोग्य, सवणयाए- श्रवण करने के लिए, एयारूवं - इस प्रकार के, रहस्सी करेसि - छिपाती हो।

भावार्थ - यह देखकर राजा श्रेणिक ने रानी को सौगंध दिलाकर कहा-देवानुप्रिये! क्या मैं तुम्हारी मन की पीड़ा को सुनने योग्य नहीं हूँ, जिससे तुम उस दुःख को मन में छिपा रही हो।

दोहदपूर्ति की उत्कंठा

(48)

तए णं सा धारिणी देवी सेणिएणं रण्णा सवह-साविया समाणी सेणियं रायं एवं वयासी - एवं खलु सामी! मम तस्स उरालस्स जाव महासुमिणस्स तिण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अयमेयारूवे अकालमेहेसु दोहले पाउब्भूए -''धण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ, कयत्थाओ णं ताओ अम्मयाओ जाव वेभारिगिर-पायमूलं आहिंडमाणीओ दोहलं विणिति, तं जड णं अहमवि जाव दोहलं विणिज्जामि।'' तए णं हं सामी। अयमेयारूवंसि अकाल-दोहलंसि अविणिज्जमाणंसि ओलुग्गा जाव अट्टज्झाणोवगया झियायामि।

भावार्थ - राजा श्रेणिक द्वारा शपथपूर्वक इस प्रकार कहे जाने पर रानी धारिणी उनसे

बोली - स्वामिन्! उस उत्तम महास्वप्न को देखने के पूरे तीन माह बाद मुझे असमय में मेघों को देखने का दोहद उत्पन्न हुआ। मैं सोचने लगी वे माताएँ धन्य हैं, कृतार्थ हैं, जो वैभार पर्वत की तलहटी में घूमती हुई, अपने दोहद को पूर्ण करती हैं। मैं भी उसी प्रकार अपने दोहद को पूर्ण करूँ, तो मैं धन्य हो जाऊँ। स्वामिन्! अपने इस प्रकार के दोहद के पूर्ण न होने से मेरे मन में चिंता और विषाद उत्पन्न हुआ, मैं आर्त्तध्यान करने लगी। मेरी इस व्यथा और व्याकुलता का यही कारण है।

राजा द्वारा सांत्वना

(২৬)

तए णं से सेणिए राया धारिणीए देवीए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म धारिणे देविं एवं वयासी - मा णं तुमं देवाणुप्पिए! ओलुगा जाव झियाहि, अहं णं तहा करिस्सामि जहा णं तुब्भं अयमेयारूवस्स अकालदोहलस्स मणोरहसंपत्ती भविस्सइ त्तिकट्टु धारिणे देविं इट्टाहिं कंताहिं पियाहिं मणुण्णाहिं मणामाहिं वग्नूहिं समासासेइ २ ता जेणेव बाहिरिया उवट्टाणसाला तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे धारिणीए देवीए एयं अकालदोहलं बहूहिं आएहि य उवाएहि य उप्पत्तियाहि य वेणइयाहि य कम्मियाहि य पारिणामियाहि य चउब्विहाहिं बुद्धीहिं अणुचिंतेमाणे २ तस्स दोहलस्स आयं वा उवायं वा ठिडुं वा उप्पत्तिं वा अविंदमाणे ओहय-मणसंकप्पे जाव झियायइ।

शब्दार्थ - मणोरहसंपत्ती - मनोरथ पूर्ति, समासासेइ - भलीभाँति आश्वासन देता है, सिण्णसण्णे - बैठा, आएहि - साधनों द्वारा, उप्पत्तियाहि - औत्पातिकी, वेणइयाहि - वैनियकी, किम्मियाहि - कार्मिकी, पारिणामियाहि - पारिणामिकी, चडिव्विहाहिं - चार प्रकार की, अणुचितेमाणे - अनुचितन करता हुआ-बार बार विचारता हुआ, ठिइ-स्थिति, अविंदमाणे- प्राप्त नहीं करता हुआ-नहीं जानता हुआ, ओहयमणसंकप्ये - अपहतमनः संकल्प-हतोत्साह।

भावार्थ - राजा श्रेणिक ने रानी धारिणी से यह बात सुनी तब बोला - देवानुप्रिये! तुम

दुःखित मत बनो, आर्त्तध्यान मत करो। मैं ऐसा उपाय करूँगा, जिससे तुम्हारा यह अकाल मेघ दर्शन विषयक दोहद मनोरथ पूर्ण होगा। यों कहकर उसने धारिणी देवी को इष्ट, कांत, प्रिय, मनोज्ञ और मनोरम वाणी द्वारा भलीभाँति आश्वासन दिया, धीरज बंधाया। फिर वह बाहरी सभा भवन में आया, पूर्वाभिमुख होकर सिंहासन पर बैठा। धारिणी देवी के अकाल मेघ दर्शन विषयक दोहद की पूर्ति हेतु चारों बुद्धियों से अनेक प्रकार चिंतन किया, उपायों को खोजने का प्रयास किया, किंतु उस विषय में उसे कुछ भी नहीं सूझा। वह हताश एवं चिंताकुल हो गया।

राजकुमार अभय का आगमन

(২৯)

तयाणंतरं च णं अभए कुमारे ण्हाए कयबलिकम्मे जाव सव्वालंकार विभूसिए पायवंदए पहारेत्थ गमणाए।

शब्दार्थ - पायवंदए - चरणों में वंदन करने हेतु, गमणाए - जाने का, पहारेत्थ -निश्चय किया।

भावार्थ - दूसरी ओर कुमार अभय ने अपने आवास स्थान में स्नानादि नित्य नैमिक्तिक मंगलोपचार किए, सब प्रकार के अलंकारों से विभूषित हुआ तथा अपने पिता राजा श्रेणिक को प्रणाम करने हेतु जाने का विचार किया।

(38)

तए णं से अभयकुमारे जेणेव सेणिए राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सेणियं रायं ओहय-मणसंकप्पं जाव झियायमाणं पासइ, पासित्ता अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था।

शब्दार्थ - अज्झत्थिए - मन में ऊहापोह किया, पत्थिए - प्रार्थित-तथ्य जानने हेतु तत्पर, समुप्पिजित्था - उत्पन्न हुआ।

भावार्थ - अभयकुमार राजा श्रेणिक के समीप आया और देखा कि उनके मन पर कुछ आघात पहुँचा है, कुछ हताश जैसे हैं, यह देखकर वह मन ही मन ऊहापोह करने लगा, सोचने लगा तथा उसके मन में ऐसा विचार आया!

(60)

अण्णया ममं सेणिए राया एज्जमाणं पासइ, पासित्ता आढाइ परियाणइ सक्कारेइ सम्माणेइ आलवइ संलवइ अद्धासणेणं उविणमंतेइ मत्थयंसि अग्धाइ। इयाणि ममं सेणिए राया णो आढाइ णो परियाणइ णो सक्कारेइ सम्माणेइ णो इडाहिं कंताहिं पियाहिं मणुण्णाहिं मणामाहिं ओरालाहिं वग्गूहिं आलवइ संलवइ णो अद्धासणेणं उविणमंतेइ णो मत्थयंसि अग्धाइ किंपि ओहयमणसंकप्पे झियायइ। तं भवियव्वं णं एत्थं कारणेणं। तं सेयं खलु मे सेणियं रायं एयमद्ठं पुच्छित्तए। एवं संपेहेइ, संपेहेता जेणामेव सेणिए राया तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल परिगाहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजिलं कद्दु जएणं विजएणं वद्धावेइ २ ता एवं वयासी -

शब्दार्थ - अण्णया - अन्य समय, ममं - मुझको, एउजमाणं - आते हुए, आलवड़-वार्तालाप करते, अद्धासणेणं - आधे आसन पर, उविणमंतेड़ - उप निमंत्रित करते-खुलाने, मत्थयंसि - मस्तक को, अण्याड़ - सूंघते (चूमते), इंबाणि - इस समय, भविष्यव्यं - होना चाहिये, सेयं - श्रेयस्कर, पुण्डितए - पूछना, संपेहेड़ - संप्रेक्षण करता है, मन में चिंतन करता है।

भावार्थ - अन्य समय महाराज श्रेणिक जब मुझे आता देखते तो आदर करते, सत्कार करते, सम्मान करते, आलाप-संलाप करते। अपने आसन के आधे भाग पर बैठने के लिए आमंत्रित करते तथा मेरा मस्तक सूंघते (चूमते)। परंतु आज वे वैसा कुछ भी नहीं कर रहे हैं। न वे इट, कांत, प्रिय और मनोज्ञ वाणी से वार्तालाप ही कर रहे हैं। उनके मानसिक संकल्प पर कुछ आधात पहुँचा है, ऐसा प्रतीत होता है। इसका कोई न कोई कारण होना चाहिये। अतः यही श्रेयस्कर है कि-मैं महाराज से इस संबंध में पूछूँ। यों विचार कर वह राजा श्रेणिक के पास आया और हाथ जोड़ कर, मस्तक झुकाकर, उन्हें प्रणाम करते हुए जय-विजय शब्द द्वारा वर्धापित करते हुए, इस प्रकार बोला -

(६१)

तुक्षे णं ताओ! अण्णया ममं एउजमाणं पासिसा आढाह परियाणह जाव

मत्थयंसि अग्घायह आसणेणं उविणमंतेह, इयाणि ताओ! तुब्भे ममं णो आढाह जाव णो आसणेणं उविणमंतेह किंपि ओहयमणसंकप्पा जाव झियायह, तं भवियव्वं ताओ! एत्थ कारणेणं, तओ तुब्भे मम ताओ! एयं कारणं अगूहेमाणा असंकेमाणा अणिणहवेमाणा अपच्छाएमाणा जहाभूय-मवितह-मसंदिद्धं एयमट्ठं आइक्खह। तए णं हं तस्स कारणस्स अंतगमणं गमिस्सामि।

शब्दार्थ - ताओ - तात-पिता, इयाणि - इस समय, अगूहेंमाणा - नहीं छिपाते हुए, असंकेमाणा - शंका न करते हुए, अणिण्हवेमाणा - मनोगत बात को अप्रकट न रखते हुए, अपच्छाएमाणा - चिंतित विषय को गुप्त न रखते हुए, जहाभूय - जैसा है वैसा, अवितहं - सद्भूत-यथार्थ, संदिद्धं - संदेह रहित, आइक्खह - आख्यात करें, अंतगमणं - अतर्गमन- बारीकी से जानना।

भावार्थ - पिता श्री! अन्य समय जब मुझे आप आता देखते तो आदर देते, मस्तक सूंघते (चूमते), आसन पर बैठने के लिए कहते। इस समय आप वैसा कुछ नहीं कर रहे हैं। आपके मानसिक संकल्प पर कोई आघात पहुँचा है, अतएव आप आर्त्तध्यान में है। इसका अवश्य ही कोई न कोई कारण है। पिता श्री! उस कारण को न छिपाते हुए, किसी प्रकार की शंका न करते हुए, अप्रकट न रखते हुए, जैसा है, उसे उसी रूप में ज्यों का त्यों, सही-सही बतलाएँ, मैं उसके कारण की बारीकी से खोज करूंगा।

(६२)

तए णं से सेणिए राया अभएणं कुमारेणं एवं वुत्ते समाणे अभयकुमारं एवं वयासी - एवं खलु पुत्ता! तव चुल्लमाउयाए धारिणीए देवीए तस्स गढमस्स दोसु मासेसु अइक्कंतेसु तइयमासे वट्टमाणे दोहलकाल समयंसि अयमेयारूवे दोहले पाउब्भवित्था-धण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ तहेव णिरवसेसं भाणियव्वं जाव विणिति। तए णं अहं पुत्ता! धारिणीए देवीए तस्स अकालदोहलस्स बहूहिं आएहि य उवाएहिं जाव उप्पत्तिं अविंदमाणे ओहय-मणसंकप्पे जाव झियायामि तुमं आगयंपि ण याणामि, तं एएणं कारणेणं अहं पुत्ता! ओहय-मणसंकप्पे जाव झियामी।

शब्दार्थ - पुत्ता - पुत्र, चुल्लमाउयाए - छोटी माता, आगयं - आए हुए, याणामि-जानता हूँ।

भावार्थ - अभयकुमार द्वारा यों कहे जाने पर महाराज श्रेणिक ने उसे कहा-पुत्र! तुम्हारी छोटी माता धारिणी के गर्भ के दो माह व्यतीत हो जाने पर तीसरे महीने में, जो गर्भवती नारियों के दोहद का समय है, ऐसा दोहद उत्पन्न हुआ - उसके मन में ऐसा भावोद्रेक हुआ कि वे माताएँ धन्य हैं, जो अकाल समय में आकाश में विविध वर्णों के बरसते हुए मेघों को देखने का आनंद लेती हैं (यहाँ पूर्व का सारा वर्णन गाह्य है)। पुत्र! तब मैंने धारिणी देवी के अकाल दोहद के संबंध में बहुत प्रकार से खोज की किंतु समाधान नहीं पा सका। इससे मेरे मन पर बहुत चोट पहुँची और मुझे आर्त्तध्यान होने लगा। तुम्हारा आना भी मैं जान नहीं सका। इसी कारण मेरा मन आहत और चिंतित है।

अभय द्वारा दोहद पूर्ति का आश्वासन (६३)

तए णं से अभए कुमारे सेणियस्स रण्णो अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हडु जाव हियए सेणियं रायं एवं वयासी - 'मा णं तुब्भे ताओ! ओहय-मणसंकप्पा जाव झियायह। अहं णं तहा करिस्सामि जहा णं मम चुल्लमाउयाए धारिणीए देवीए अयमेयारूवस्स अकाल दोहलस्स मणोरह-संपत्ती भविस्सइ'' तिकट्टु सेणियं रायं ताहि इट्टाहें कंताहिं जाव समासासेइ।

भावार्थ - अभयकुमार ने महाराज श्रेणिक से यह सुना। वह हर्षित होकर बोला - "पिताश्री! आप अपने मन को खिन्न, उद्विन न रखें, दुश्चिंता न करें। मैं वैसा उपाय करूंगा, जिससे मेरी छोटी माता धारिणी देवी के अकाल दोहदजनित मनोरथ की पूर्ति होगी।" यों कह कर उसने राजा श्रेणिक को बड़े ही मधुर, प्रिय और मनोज्ञ शब्दों में आश्वासन दिया।

(६४)

तए णं सेणिए राया अभएणं कुमारेणं एवं वुत्ते समाणे हट्टतुद्ठे जाव अभयं कुमारं सक्कारेड सम्माणेड, सक्कारिता सम्माणिता पडिविसज्जेड। शब्दार्थ - पडिविसज्जेड - विदा किया।

भावार्थ - अभयकुमार द्वारा यों कहे जाने पर राजा श्रेणिक हर्षित और आनंदित हुआ। अभयकुमार का सत्कार, सम्मान किया और विदा किया।

दोहदपूर्ति हेतु देवाराधना

(६५)

तए णं से अभए कुमारे सक्कारिए सम्माणिए पडिविसज्जिए समाणे सेणियस्स रण्णो अंतियाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणामेव सए भवणे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणे णिसण्णे।

भावार्थ - इस प्रकार सम्मानित एवं सत्कारित होकर अभयकुमार श्रेणिक राजा के यहाँ से चला और अपने भवन में आया, सिंहासन पर बैठा।

(६६)

तए णं तस्स अभयकुमारस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पिजतथा-णो खलु सक्का माणुस्सएणं उवाएणं मम चुल्लमाउयाए धारिणीए देवीए अकाल-दोहल-मणोरह-संपत्तिं करित्तए णण्णत्थ दिव्येणं उवाएणं। अत्थि णं मज्झ सोहम्म-कप्पवासी पुव्यसंगइए देवे महिहिए जाव महासोक्खे। तं सेयं खलु मम पोसह-सालाए पोसहियस्स बंभयारिस्स उम्मुक्कमणि-सुवण्णस्सववगय-माला-वण्णग-विलेवणस्स णिक्खित्तसत्थ-मुसलस्स एगस्स अबीयस्स दक्भ-संथारो-वगयस्स अद्यमभतं पगिणिहत्ता पुव्यसंगइयं देवं मणसी-करेमाणस्स विहरित्तए। तए णं पुव्यसंगइए देवे मम चुल्लमाउयाए धारिणीए देवीए अयमेयारूवे अकालमेहेसु दोहलं विणेहिइ।

शब्दार्थ - सक्का - शक्य-होने योग्य, णण्णात्थ - नान्यत्र-इसके बिना संभव नहीं, दिख- देव विषयक, सोहम्म-कप्यवासी - सौधर्म कल्पवासी, पुरुवसंगइए - पूर्वसंगतिक- पूर्वजन्म में संबद्ध-मित्र, महिद्विए - अत्यधिक ऋदि युक्त, ववगय - व्यपगत-छोड़ कर,

णिक्खित - निक्षिप्त-रखकर, सत्थ - शस्त्र, अबीयस्स - अद्वितीय-दूसरे को साथ लिए बिना, दक्क्प - डाभ, संथार - संस्तरण-बिछौना, अट्टमभत्तं - तीन उपवास-तेले का तप, पिण्हित्ता - ग्रहण कर।

भावार्ध - तदनंतर अभयकुमार ने मन में ऊहापोह किया, चिंतना एवं परिकल्पना की - मेरी छोटी माता धारिणी के असमय में मेघदर्शन रूप दोहद पूर्ति किसी मनुष्यकृत उपाय द्वारा संभव नहीं है। देवकृत उपाय के बिना वह मनोरथ पूर्ण नहीं हो सकता। सौधर्मकल्पवासी एक देव मेरा पूर्व जन्म का मित्र है। वह अत्यंत ऋद्धि, पराक्रम और वैभवशाली है। इसलिए मेरे लिए यही श्रेयस्कर है कि मैं ब्रह्मचर्य का पालन करता हुआ, मणि रत्न, स्वर्ण निर्मित आभरणों का, शस्त्रों तथा सभी आरंभ-समारंभ जनक उपकरणों का त्याग कर, पौषधशाला में पौषध स्वीकार करूँ। डाभ के बिछौने पर संस्थित हुआ, मैं त्रिदिवसीय उपवास (तेले का तप) ग्रहण कर, अपने पूर्वजन्म के मित्र-देव का स्मरण करूँ। वह देव मेरी छोटी माता धारिणी देवी के इस अकाल मेघ दर्शन रूप दोहद की पूर्ति करेगा।

विवेचन - उपर्युक्त वर्णन में अभयकुमार के मित्र देव के लिए "पुट्यसंगइए" (पूर्व संगतिक-पहले का परिचित) शब्द का प्रयोग हुआ है। इससे वह मित्र अभयकुमार के इस भव का मित्र ध्यान में आता है। आगे-देव के वर्णन में भी पूर्व भव का स्नेह बताया गया है। इससे भी अभयकुमार का कोई मित्र काल करके देव बना हो, इस बात की पृष्टि होती है।

(६७)

एवं संपेहेइ, संपेहिता जेणेव पोसहसाला तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छिता पोसहसालं पमज्जइ, पमजित्ता उच्चार-पासवण-भूमिं पिडलेहेइ, पिडलेहिता दब्भ-संथारगं पिडलेहेइ, पिडलेहिता दब्भसंथारगं दुरूहइ, दुरूहिता अट्टमभत्तं पिगण्हइ, पिगण्हिता पोसहसालाए पोसहिए बंभयारी जाव पुठ्यसंगइयं देवं मणसीकरेमाणे २ चिट्ठइ।

शब्दार्थ - पमज्जइ - प्रमार्जित करता है, उच्चारपासवणभूमिं - मल-मूत्र त्याग करने का स्थान, पडिलेहेइ - प्रतिलेखन करता है, मणसीकरेमाणे - मन में स्मरण करता हुआ।

भावार्थ - इस प्रकार संप्रेक्षण-चिंतन, मनन कर अभयकुमार पौषधशाला में आया। उसने

पौषधशाला का प्रमार्जन किया। मल-मूत्र त्याग की भूमि का प्रतिलेखन किया। तदनंतर डाभ के आसन का प्रतिलेखन किया। प्रतिलेखन कर वह आसन पर स्थित हुआ, उसने तेले की तपस्या स्वीकार की। इस प्रकार उसने पौषधशाला में ब्रह्मचर्य पूर्वक पौषध में अवस्थित होते हुए अपने मित्र देव का स्मरण किया।

विवेचन - अकाल दोहद पूर्ति के लिए अभयकुमार के द्वारा किया गया पौषध सहित तेला तप रूप नहीं समझा जाता है। किन्तु उसे तो मात्र देवता को बुलाने का साधन मात्र समझा जाता है। तेला निरवद्य प्रवृत्ति रूप होने से इसे बंधन का कारण भी नहीं समझा जाता है। देव को बुलाने का उपाय पौषध सहित तेला ही होने से अभयकुमारादि ने प्रतिलेखनादि क्रिया युक्त पौषध सहित तेला किया एवं उसका देवागमन रूप इच्छित परिणाम भी उन्हें उसी के अन्त में प्राप्त हो गया। इसलिए प्रतिलेखनादि क्रियाएँ परिणाम शून्य नहीं समझनी चाहिए। सांसारिक कार्य के लिए की गई पौषधादि प्रवृत्तियाँ भी धार्मिक नहीं कहला कर सांसारिक ही कहलाती है। तथापि सावद्य प्रवृत्तियों की अपेक्षा ये निरवद्य होने से प्रशस्त कहा जा सकता है। एकाग्र चित्त से तीन दिन तक देवता का स्मरण करने से स्मरण करने वाले के मनोयोग के पुद्गल देव तक पहुँच कर उसके अंग (आसन-शरीर के अवयव) को चलित करते हैं, जिससे वह देव अवधि का उपयोग करके उस स्मरण करने वाले को देखकर उसके पास पहुँच जाता है। प्रशस्त अप्रशस्त तपस्या से प्रसन्नादि होना आने, नहीं आने में हेतु नहीं है। तेला तो देवता तक सूचना पहँचाने का उपाय मात्र है। एकान्त में पौषध सहित होने से चित्त की एकाग्रता में सहायता मिलती है। भरत चक्रवर्ती पर उपसर्ग कराने वाले आपात चिलातों ने अपने कुलदेवों (मेघमाली) को बुलाने के लिए पौषध विधि के अनजान होने से नग्न होकर सिन्धु नदी में रेती के संस्तारक (बिछौने) पर आरूढ होकर मेघमाली देवों का तेला किया था जिससे मेघमाली देवों का आसन चिलत होकर वे आ गये। कृष्ण वासुदेव का तेला भी इसी प्रकार का समझना चाहिए।

देव का प्राकट्य

(६८)

तए णं तस्स अभयकुमारस्स अद्वमभत्ते परिणममाणे पुट्यसंगइयस्स देवस्स आसणं चलइ। तए णं पुट्यसंगइए सोहम्मकप्पवासी देवे आसणं चलियं पासइ पासित्ता ओहिं पउंजइ। तए णं तस्स पुव्वसंगइयस्स देवस्स अयमेयास्त्वे अज्झत्थिए जाव समुप्पिजित्था-एवं खलु मम पुव्वसंगइए जंबूदीवे २ भारहे वासे दाहिणह भरहे, रायिगेहे णयरे पोसहसालाए पोसिहए अभए णामं कुमारे अहमभत्तं पिगिण्हिता णं मम मणसी करेमाणे २ चिट्ठइ। तं सेयं खलु मम अभयस्स कुमारस्स अंतिए पाउब्भवित्तए। एवं संपेहेइ संपेहित्ता उत्तरपुरित्थमं दिसीभागं अवक्कमइ २ ता वेउव्विय-समुग्धाएणं समोहणइ २ ता संखेज्जाइं जोयणाइं दंडं णिसिरइ, तं जहा -

शब्दार्थ - परिणममाणे - पूर्ण होने पर, चलइ - चिलत होता है, ओहिं - अवधिज्ञान को, पउंजइ - प्रयुक्त करता है, वेउव्विय-समुग्धाएणं - वैक्रिय समुद्धात, समोहणइ - आत्मप्रदेशों का विस्तार कर उन्हें बाहर निकालता है, संखेज्जाइं - संख्यात, जोयणाइं - योजन, णिसिरइ - निकालता है।

भावार्थ - जब अभयकुमार के तेले की तपस्या पूर्ण हुई तो उसके पूर्वजन्म के मित्र देव का आसन डोलने लगा। देव ने अपने आसन को जब डोलते हुए देखा तो उसने अवधिज्ञान का उपयोग किया। तब उस देव के मन में ऐसाभाव उद्गत हुआ-उसे यों परिज्ञात हुआ कि जब्ह्रीप-भारत वर्ष के अंतर्गत दक्षिणार्ध भरत में, राजगृह नगर में, पौषधशाला में मेरे पूर्वजन्म का मित्र अभयकुमार अपने तेले की तपस्या के पूर्ण होने पर मुझे स्मरण करता हुआ स्थित है। इसलिए मेरे लिए यह उचित है कि मैं अभयकुमार के समक्ष उपस्थित होऊँ। यों विचार कर वह उत्तरपूर्व दिशा भाग, ईशान कोण में अवक्रांत होता (जाता) है और वैक्रिय समुद्धात करता है-उत्तर वैक्रिय शरीर बनाने हेतु आत्म-प्रदेशों को बाहर निकाल कर उन्हें संख्यात योजन पर्यंत दण्डाकार रूप में परिणत करता है।

विवेचन - उपर्युक्त वर्णन में आये हुए "आसणं चलइ" शब्द का अर्थ - "शारीरिक अंग स्फुरण (कम्पन)" समझना चाहिए। सिंहासन व विमान आदि आसन का चलन नहीं समझना चाहिए।

(33)

रयणाणं १, वइराणं २, वेरुलियाणं ३, लोहियक्खाणं ४, मसारगल्लाणं

४, हंसगब्भाणं ६, पुलगाणं ७, सोगंधियाणं ६, जोइरसाणं ६, अंकाणं १०, अंजणाणं ११, रययाणं १२, जायस्वाणं १३, अंजण पुलगाणं १४, फिलहाणं १४, रिट्ठाणं १६, अहाबायरे पोगाले पिरसाडेइ २ ता अहासुहुमे पोग्गाले पिरिगिण्हइ २ ता अभयकुमार-मणुकंपमाणे देवे पुळ्यभव-जिणयणेह-पीइबहुमाण-जायसोगे तओ विमाणवर-पुंडरीयाओ रयणुत्तमाओ धरिणयल-गमण-तुरिय-संजिणय-गमणपयारो वाघुण्णिय-विमल-कणग-पयरग-विडंसग-मउडुक्कडाडोव, दंस-णिज्जो अणेगमणि-कणगरयण-पहकर-पिरमंडिय-भित्तचित्त-विणिउत्तमणुगुण-जिणयहिरसे पेंखोलमाण-वरलिय-कुंडलुज्जिलय-वयण-गुण-जिणयसोमस्त्वे उदिओ विव कोमुदीणिसाए सिणच्छरंगार उज्जित्य-मज्झभागत्थे णयणाणंदो सरयचंदो दिव्वोसहि-पज्जलुज्जिलय-दंसणाभिरामो उउलच्छि-समत्त-जायसोहे पइट्ट-गंधुद्धयाभिरामे मेरुरिव णगवरो विउव्वियविचित्तवेसे दीवसमुद्दाणं असंखपिरमाण-णामधेज्जाणं मज्झयारेणं वीइवयमाणो उज्जोवंतो पभाए विमलाए जीवलोयं रायगिहं पुरवरं च अभयस्स य तस्स पासं ओवयइ दिव्वस्वधारी।

शब्दार्थ - रिट्ठाणं - श्याम रत्न, अहाबायरे - यथा बादर-सार रहित पुद्गलों का, परिसाडेड - परिशाटन-परित्याग करता है, अहासुहुमे - यथा सूक्ष्म-सारभूत पुद्गल, अणुकप्पमाणे- अनुकंपा करता हुआ, विमाणवरपुंडरियाओ - श्वेत कमल सदृश अति उत्तम विमान, वाघुण्णिय- व्याघूणित-हिलते हुए, पयरग - पात (सोने के पतले पात), उक्कडाडोव- उत्कट आटोप-मन को आकर्षित करने वाली विशिष्ट सज्जा, विणिउत्त - विनियुक्त-धारण किए हुए, अणुगुण - अनुगण-करघनी, पेंखोलमाण - दोलायमान-हिलते हुए, कोमुदीणिसाए - कार्तिक पूर्णिमा, सिणच्छरंगार- शनि और मंगल, सरयचंदो - शरद ऋतु का चंद्रमा, दिव्योसिह-दिव्यौषियां-जड़ी बूँटियां, पज्जलुज्जलिय - प्रज्वलित, लच्छि - लक्ष्मी, पइट्ठ - प्रकृष्ट- उत्तम, उद्धुय - सर्वत्र फैली हुई, विउव्वियविचित्तवेसे - वैक्रियलब्धि द्वारा रचित विचित्र वेश युक्त, दीवसमुद्दाणं - द्वीपों और समुद्रों को, णामधेज्जाणं - नाम धारण करने वाले, वीइवयमाणो - दिव्यगित से चलता हुआ, ओवयइ - अवतरित होता है।

भावार्थ - सौधर्म कल्पवासी देव ने हीरे, वैडूर्य, लोहिताक्ष, मसारगल्ल, हंसगर्भ, पुलक,

सौगंधिक ज्योति, अंक, अंजन, रंजन, जातरूप, अंजन, पुलक, स्फटिक तथा रिष्ट संज्ञक रत्नों के यथा बादर असार पुद्गलों का परित्याग किया, यथा सूक्ष्म सारमय पुद्गलों को ग्रहण किया। फिर उत्तर वैक्रिय शरीर निर्मित किया। अभयकुमार पर उसके मन में अनुकंपा का भाव जागृत हुआ। पूर्व भव में उत्पन्न स्नेह, प्रीति और गुणानुराग के कारण वह अपने मित्र अभय की व्यथा से खिन्न हुआ। उत्तम रत्नमय श्वेतकमलोपम विमान से निकलकर धरती पर जाने हेतु शीघ्रतापूर्वक दिव्यगति से चला। उस समय वह सोने के पतले पात से बने हिलते हुए कर्ण पत्र तथा तीव्र आभामय मुकुट के कारण बड़ा ही दर्शनीय प्रतीत होता था। वह स्वर्ण निर्मित, मणिरत्न जटित कटि सूत्र पहने बड़ा हर्षित था। कानों से लटकते हुए श्रेष्ठ, मनोहर कुण्डलों से प्रोज्ज्वल मुख दीप्ति के कारण उसका रूप बड़ा सौम्य प्रतीत होता था। ऐसा लगता था मानो कार्तिक पूर्णिमा की रात्रि में शनि और मंगल ग्रह के मध्य शारदीय चंद्र उदित हो रहा हो, नेत्रों के लिए बड़ा आनंद प्रद था। दिव्य औषधियों के प्रकाश से उद्योतित, समस्त ऋतु शोभा से परिव्याम, सर्वत्र प्रसृत सुगंध से मनोज्ञ, मेरू पर्वत की ज्यों वह द्युतिमान, कांतिमान था। वैक्रिय लब्धिजनित विचित्र वेशयुक्त दिव्यरूपधारी वह देव, असंख्य परिमाण और नामयुक्त द्वीपों और समुद्रों के बीचोंबीच होता हुआ, अपनी निर्मल प्रभा से तिर्यक्लोक को प्रकाशित करता हुआ, राजगृह नगर में अभयकुमार के समीप पहुँचा।

(90)

तए णं से देवे अंतिलक्खपिडवण्णे दसद्धवण्णाइं सिखंखिणियाइं पवर वत्थाइं परिहिए। (एक्को ताव एसो गमो। अण्णोऽवि गमो) ताए उक्किहाए तुरियाए चवलाए चंडाए सीहाए उद्धयाए जयणाए छेयाए दिव्वाए देवगईए जेणामेव जंबुद्दीवे २ भारहे वासे जेणामेव दाहिणद्धभरहे रायगिहे णयरे पोसहसालाए अभए कुमारे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अंतिलक्खपिडवण्णे दसद्धवण्णाइं सिखंखिणियाइं पवरवत्थाइं परिहिए अभयं कुमारं एवं वयासी -

शब्दार्थ - अंतिलक्खपडियण्णे - आकाश में स्थित, दसद्धवण्णाइं - पाँच वर्ण युक्त, सिखंखिणाइं - घुंघर युक्त, पवर वत्थाइं - उत्तम वस्न, उक्किट्ठाए - उत्कृष्ट, चंडाए - प्रचंड-अतिवेगयुक्त, सीहाए - शीघ्र, उद्धयाए - औत्सुक्यवश अत्यंत तीव्र, जयणाए - कार्य साफल्यसूचक, छेयाए - छेक-निर्विघ्न-कुशल।

भावार्थ - अंतरिक्ष में विद्यमान, घुंघर युक्त, पाँचवर्णों के उत्तम वस्त्र धारण किए हुए, वह देव अभयकुमार के पास आया। (अभय कुमार के पास देव के आगमन का यह एक प्रकार का गम-पाठ है। इस संबंध में दूसरे प्रकार का निम्निकत पाठ भी है।)

आकाश में स्थित, सुन्दर पाँच वर्णों के वस्त्र पहने हुए, जिनमें घुंघुरु लटक रहे थे, वह देव उत्कृष्ट, त्वरित, चपल, शीघ्र, औत्सुक्यपूर्ण, साफल्यसूचक, निर्विघ्न, दिव्यगित द्वारा जंबूद्वीप-भारत वर्ष के अंतर्गत, दक्षिणार्द्ध भरत में, राजगृह नगर में, पौषधशाला में, अभयकुमार के निकट पहुँचा।

विवेचन - उपर्युक्त वर्णन में आये हुए "दसद्धवण्णाइं सिखंखिणाइं पवरवत्थाइं" पाठ का आशय इस प्रकार समझना चाहिए - "पहने जाने वाले एक ही वस्त्र में पांचों वर्णों का मिश्रण है तथा जो घुंघर (छोटी-छोटी घण्टिकाओं) से युक्त है, ऐसा श्रेष्ठ वस्त्र।"

(৬৭)

अहं णं देवाणुप्पिया! पुञ्चसंगइए सोहम्मकप्पवासी देवे महिहुए जं णं तुमं पोसहसालाए अट्टमभत्तं पिगण्हिता णं ममं मणसीकरेमाणे २ चिट्टिसि, तं एस णं देवाणुप्पिया! अहं इहं हळ्यमागए। संदिसाहि णं देवाणुप्पिया! किं करेमि? किं दलामि? किं पयच्छामि? किं वा ते हिय-इच्छियं?

शब्दार्थ - इहं - यहाँ, हव्वं - शीघ्र, संदिसाहि - बतलाओ, दलामि - दूँ, पयच्छामि-प्रदान करूँ, हिय - हृदय।

भावार्थ - देवानुप्रिय! मैं तुम्हारा पूर्वभव का मित्र, सौधर्मकल्पवासी, परम ऋद्धिशाली देव हूँ। तुम पौषधशाला में तेले का तप स्वीकार कर, मन में मुझे स्मरण करते हुए स्थित रहे। इसलिए मैं यहाँ शीघ्र आया हूँ। देवानुप्रिय! बतलाओ मैं तुम्हारे लिए क्या करूँ, क्या दूँ? क्या उपहृत करूँ? क्या प्रदान करूँ? तुम मुझसे क्या हित साधना चाहते हो। तुम्हारे मन में क्या इच्छा है?

(७२)

तए णं से अभए कुमारे तं पुव्वसंगइयं देवं अंतलिक्ख-पंडिवण्णं पासइ, पासित्ता हट्टतुट्ठे पोसहं पारेइ, पारेत्ता करयल जाव अंजलिं कट्टु एवं वयासी- एवं खलु देवाणुप्पिया! मम चुल्लमाउयाए धारिणीए देवीए अयमेयारूवे अकालदोहले पाउब्भूए - धण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ! तहेव पुव्वगमेणं जाव विणिज्जामि। तं णं तुमं देवाणुप्पिया! मम चुल्लमाउयाए धारिणीए देवीए अयमेयारूवं अकालदोहलं विणेहि।

शब्दार्थ - पारेइ - पूर्ण करता है, विणेहि - पूर्ण करूँ।

भावार्थ - यह सुनकर अभयकुमार ने आकाश स्थित अपने पूर्वजन्म के मित्र देव को देखा। वह हृष्ट एवं तुष्ट हुआ। अपने पौषध को पूर्ण किया तथा हाथ जोड़कर यों बोला - देवानुप्रिय! मेरी छोटी माता धारिणी को अकाल में मेघ-दर्शन का दोहद उत्पन्न हुआ। उसके मन में यह भावना आई कि वे माताएँ धन्य हैं, जो अपने दोहद-जनित मनोरथ को पूर्ण करती हैं। (यहाँ एतद्विषयक संपूर्ण पूर्व पाठ ग्राह्य है।) देवानुप्रिय! इसलिए आप मेरी छोटी माता धारिणी के दोहद को पूर्ण कर दो।

विक्रियाजनित मेघों का प्रादुर्भाव

(७३)

तए णं से देवे अभएणं कुमारेणं एवं वृत्ते समाणे हद्दतुट्ठे अभयं कुमारं एवं वयासी - तुमं णं देवाणुप्पिया! सुणिव्वय-वीसत्थे अच्छाहि, अहं णं तव चुल्लमाउयाए धारिणीए देवीए अयमेयारूवं दोहलं विणेमि-त्तिकट्टु अभयस्स कुमारस्स अंतियाओ पिडणिक्खमइ, पिडणिक्खमित्ता उत्तरपुरिक्थिमे णं वेभारपव्वए वेउव्विय समुग्घाएणं समोहण्णइ समोहण्णित्ता संखेजाई जोयणाई दंडं णिसिरइ, जाव दोच्चं पि वेउव्विय-समुग्घाएणं समोहण्णइ, समोहण्णित्ता खिप्पामेव सगज्जइयं सविज्जुयं सफुसियं तं पंचवण्ण-मेह-णिणाओ-वसोहियं दिव्वं पाउसिरिरं विउव्वइ २ ता जेणेव अभए कुमारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता अभयं कुमारं एवं वयासी-

शब्दार्थ - सुणिव्वुय - सुनिर्वृत-शांत, वीसत्थे - विश्वस्त, अच्छाहि - रहो, समुग्घाएणं

समोहण्णइ - समुद्धात करता है, सगज्जइयं - गर्जना सहित, सविज्जुयं - बिजली सहित, सफुसियं - जल-बिंदुओं सहित, णिणाओ - निनाद, पाउससिरिं - वर्षा ऋतु की शोभा को।

भावार्थ - अभयकुमार द्वारा यों कहे जाने पर देव हर्ष एवं प्रसन्नता के साथ बोला - देवानुप्रिय! तुम शांत, निश्चिंत एवं विश्वस्त रहो। मैं तुम्हारी छोटी माता धारिणी देवी के दोहद को पूर्ण करता हूँ। ऐसा कहकर, वह देव अभयकुमार के पास से निकलता है, निकल कर उत्तर-पूर्व दिशा में, वैभार गिरि पर, उसने वैक्रिय-लिब्ध द्वारा समुद्धात किया। संख्येय योजन परिमित दण्ड का निष्कासन किया। दूसरी बार भी उसने वैक्रिय समुद्धात किया तथा गर्जना और बिजली से युक्त जल की बूँदें बरसाते हुए, पाँच वर्णों के मेघों की ध्वनि से शोभित, दिव्य सुंदर वर्षा ऋतु को विक्रिया द्वारा प्रकट किया। वैसा कर वह जहाँ अभयकुमार था, वहाँ आया और उसे इस प्रकार कहा।

(৬४)

एवं खलु देवाणुप्पिया! मए तव पियद्वयाए सगज्जिया सफुसिया सविज्जुया दिव्वा पाउसिसरी विडिब्बिया, तं विणेड णं देवाणुप्पिया! तव चुल्लमाउया धारिणी देवी अयमेयारूवं अकालदोहलं।

शब्दार्थ - पियड्डयाए - प्रियता-प्रसन्नता के लिए, विणेउ - पूर्ण करे।

भाषार्थ - देवानुप्रिय! मैंने तुम्हारी प्रसन्नता के लिए गर्जना, बिजली और जल बिन्दुओं से युक्त, दिव्य वर्षा ऋतु की शोभा, विक्रिया द्वारा उत्पन्न की है। तुम्हारी छोटी माता धारिणी देवी अब अपने दोहद को पूर्ण करे।

दोहद की संपन्नता

(৬২)

तए णं से अभए कुमारे तस्स पुव्वसंगइयस्स सोहम्मकप्पवासिस्स देवस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्टतुट्ठे सयाओ भवणाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणामेव सेणिए राया तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल जाव अंजिलं कट्टु एवं वयासी - भावार्थ - तब अभयकुमार को अपने पूर्व जन्म के मित्र देव से यह सुनकर बड़ा ही हर्ष और परितोष हुआ। वह अपने भवन से निकला। राजा श्रेणिक के पास आया और हाथ जोड़कर, यथाविधि प्रणाम कर, उनसे बोला -

(৬६)

एवं खलु ताओ! मम पुळ्वसंगइएणं सोहम्मकप्पवासिणा देवेणं खिप्पामेव सगज्जिया सविज्जुया (सफुसिया) पंचवण्ण-मेह-णिणाओ-वसोहिया दिळा पाउससिरी विउळ्विया। तं विणेउ णं मम चुल्लमाउया धारिणी देवी अकालदोहलं।

भावार्थ - पिताश्री! मेरे पूर्व भव के मित्र, सौधर्म कल्पवासी देव ने गर्जना, विद्युत और बरसती हुई बूँदों से युक्त, पाँच वर्णों के मेघों की ध्विन से युक्त, तीव्र वर्षा ऋतु की शोभा को, विक्रिया द्वारा- वैक्रिय लब्धि द्वारा प्रादुर्भूत किया है। अतः मेरी छोटी माता धारिणी देवी अपने दोहद को पूर्ण करे।

(७७)

तए णं से सेणिए राया अभयस्स कुमारस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हड्दुट्ठ जाव कोडुंबियपुरिसे सद्दावेड, सद्दावेत्ता एवं वयासी - ''खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! रायगिहं णयरं सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर० आसित्तसित्त जाव सुगंधवरगंधियं गंधवट्टिभूयं करेह य कारवेह य करित्ता य कारवित्ता य मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह।'' तए णं ते कोडुंबियपुरिसा जाव पच्चप्पिणंति।

भावार्थं - राजा श्रेणिक अभयकुमार से यह सुनकर बहुत हर्षित एवं प्रसन्न हुआ। उसने अपने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और कहा - देवानुप्रियो। शीघ्र ही राजगृह नगर के तिराहों, चौराहों, चौकों, राजमागों, सामान्य पथों आदि में सर्वत्र पानी का छिड़काव कर, उन्हें विविध पुष्पादि द्वारा सुरिभमय बनाओ। मेरे आदेशानुरूप ऐसा कर मुझे वापस सूचित करो। कौटुम्बिक पुरुषों ने राजा के आदेशानुरूप सब व्यवस्था करवाई और वापस राजा को वह निवेदित किया।

.. (७५)

तए णं सेणिए राया दोष्घंपि कोडुंबियपुरिसे सहावेड, सहावेचा एवं वयासी-

खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! हय-गय-रहजोह पवरकलियं चाउरंगिणिं सेण्णं सण्णाहेह सेयणयं च गंधहत्थिं परिकप्पेह। तेवि तहेव जाव पच्चिप्पणंति।

भावार्थ - फिर राजा श्रेणिक ने कौटुम्बिक पुरुषों को दुबारा बुलाया और कहा कि देवानुप्रियो! अश्व, गज, रथ एव पदाति से युक्त, चतुरंगिणी सेना को तथा सेचनक नामक गंध हस्ती को तैयार करवाने की व्यवस्था करो। कौटुम्बिक पुरुषों ने वैसा कर राजा को अवगत कराया।

(30)

तए णं से सेणिए राया जेणेव धारिणी देवी तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धारिणिं देविं एवं वयासी - एवं खलु देवाणुप्पिए! सगज्जिया जाव पाउससिरी पाउब्भूया, तं णं तुमं देवाणुप्पिए! एयं अकालदोहलं विणेहि।

भावार्थ - ऐसा होने पर राजा श्रेणिक धारिणी देवी के यहां आया और बोला - देवानुप्रिये! शोभामय वर्षा ऋतु प्रादुर्भत हुई है, बादल गरज रहे हैं, बिजली चमक रही है, बूँदे गिर रही है। तुम अपने दोहद को सुसंपन्न करो।

(50)

तए णं सा धारिणी देवी सेणिएणं रण्णा एवं वृत्ता समाणी हृद्वतुद्वा जेणामेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मज्जणघरं अणुप्पविसइ २ ता अंतो अंतेउरंसि ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउय-मंगल-पायच्छिता किं ते वरपाय-पत्तणेउर जाव आगासफालिय-समप्पभं अंसुयं-णियत्था सेयणयं गंधहत्थिं दुरूढा समाणी अमयमहिय-फेणपुंज-सण्णिगासाहिं सेयचामर-वालवीयणीहिं वीइज्ज-माणी २ संपत्थिया।

शब्दार्थ - णियत्था - धारण किया, सण्णिगासा - सदृश, समान।

भावार्थ - महाराज श्रेणिक द्वारा यों कहे जाने पर रानी धारिणी बहुत प्रसन्न और परितुष्ट हुई। वह स्नानघर में प्रविष्ट हुई, स्नान किया, यावत् स्नान सम्बन्धी सम्पूर्ण विधि पूर्ण की। नूपुर, करधनी, हार, बाजूबंद आदि मणिरत्न जटित आभरण धारण किए। आकाश एवं स्फटिक जैसे उज्ज्वल, निर्मल वस्न धारण किए। गंध हस्ति पर सवार हुई तथा उसने प्रस्थान किया। उस पर अमृत-मंथन से उत्पन्न झागों जैसे उज्ज्वल, निर्मल चँवर डुलाए जाने लगे।

(59)

तए णं से सेणिए राया ण्हाए कयबलिकम्मे जाव सस्सिरीए हत्थिखंधवरगए सकोरंट-मल्ल दामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं चउचामराहिं वीइज्जमाणे धारिणिं देविं पिट्ठओ अणुगच्छइ।

भावार्थ - राजा श्रेणिक ने भी स्नान किया, दैनंदिन मांगलिक कर्म संपादित किए। वह अत्यंत शोभित, उत्तम हाथी पर सवार हुआ। छत्र-वाहक उस पर कोरण्ट पुष्प की मालाओं से सज्जित छत्र धारण किए हुए थे एवं चँवर डुला रहे थे। राजा ने रानी धारिणी का अनुगमन किया।

(57)

तए णं सा धारिणी देवी सेणिएणं रण्णा हत्थिखंध-वरगएणं पिट्ठओ २ समणुगम्म-माणमग्गा हय-गय-रह-जोह-किलयाए चाउरंगिणीए सेणाए सिद्धं संपरिवुडा महया भडचडगर वंदपरिक्खिता सिव्विड्ढीए सव्वज्जुईए जाव दुंदुभि-णिग्धोस-णाइयरवेणं रायगिहे णयरे सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर जाव महापहपहेसु णागरजणेणं अभिणंदिज्जमाणी २ जेणामेव वेभारगिरिपव्वए तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वेभारगिरि कडग-तड-पायमूले आरामेसु य, उज्जाणेसु य, काणणेसु य, वणेसु य, वणसंडेसु य, रुक्खेसु य, गुच्छेसु य, गुम्मेसु य, लयासु य, वल्लीसु य, कंदरासु य, दरीसु य, चुण्ढीसु य, दहेसु य, कच्छेसु य, णईसु य, संगमेसु य, विवरएसु य, अच्छमाणी य, पेच्छमाणी य, मज्जमाणी य, पत्ताणि य, पुष्फाणि य, फलाणि य, पत्लवाणि य, गिण्हमाणी य, माणे-माणी य, अग्धायमाणी य, परिभुंजमाणी य, परिभाएमाणी य, वेभारगिरिपायमूले दोहलं विणेमाणी सव्वओ समंता आहिंडइ। तए णं सा धारिणी देवी (तंसि अकालदोहलंसि विणीयंसि सम्माणियदोहला) विणीयदोहला संपुण्णदोहला संपण्णदोहला जाया यावि होत्था।

शब्दार्थ - जोह - योद्धा, भड - सुभट-योद्धा, चडगर- चटकर-राज चिह्नधारी पुरुष, वंद - समूह, परिक्खता - धिरी हुई, दुंदिभिणिग्धोसणाइयरवेणं - बजते हुए नगाडों की आवाज सहित, उज्जाणेसु - पुष्प प्रधान वृक्ष, लता युक्त उद्यानों, काणणेसु - पर्वतीय तलहटी में फैले हुए वृक्षों के बीच, वणेसु - नगर से दूरवर्ती सुंदर वृक्षों से युक्त वनभूमि, वणसंडेसु - एक जातीय आमादि पेड़ों से युक्त बगीचों, गुच्छेसु - गुच्छाकार लता समूहों, गुम्मेसु - सहज सुसज्ज लता मंडपों, लयासु - चंपकादि लताओं के मण्डपों, वल्लीसु - नागर बेलादि के झुरमुटों, कंदरासु - पर्वतों की बड़ी बड़ी गुफाओं, दरीसु - लघु गुफाओं, चुण्डीसु - अल्पजलयुक्त सरोवरों, दहेसु - पानी के गहरे गड्ढों, कच्छेसु - नदी तदों, विवरएसु - स्वाभाविक झरनों के जल से आपूरित गर्तों, अच्छमाणी च - क्षण भर विश्राम करती हुई, पेच्छमाणी - देखती हुई, मज्जमाणी - सम्मार्जन करती हुई, पल्लवाणि- कोमल पत्ते, माणेमाणी - पसंद करती हुई, अग्धायमाणी - सूंघती हुई, परिभुंजमाणी - परिभोग- सुखभोग करती हुई, सळ्वओ - सब ओर, आहिडड - घूमती है।

भावार्थ - उत्तम हाथी पर सवार अपने पीछे-पीछे चलते राजा श्रेणिक सहित रानी धारिणी आगे बढ़ने लगी। वह चतुरंगिणी सेना सुभटों एवं राज चिह्न धारक पुरुषों से चारों ओर से घिरी थी। इस प्रकार समृद्धि, द्युति, वैभव आदि राजसी ठाट-बाट एवं नगारों के निर्धोष के साथ, राजगृह नगर के राजमागों, तिराहों, चौराहों आदि में से होती हुई चलती गई। नागरिक-वृंद उसका स्थान-स्थान पर अभिनंदन करते रहे। इस प्रकार वह वैभारगिरि की ओर आई। पर्वत की तलहटी में विद्यमान पुष्पाच्छादित सुहावने वृक्षों, उद्यानों काननों, वनों तथा लता कुंजों, कंदराओं, गुफाओं, पानी के गतों, झरनों, नदी तटों इत्यादि का अवलोकन करती हुई, निमज्जन-स्नान आदि करती हुई, सुरिभत पुष्पों के सौरभ सुस्वादु फल आदि के परिभोग का आनंद लेती हुई, चारों और परिभ्रमण करने लगी।

इस प्रकार उसने अत्यंत आनंदपूर्वक अपना दोहद परिसंपन्न किया।

(**53**) - 1 - 12 - 4 - 5 - 6

तए णं सा धारिणी देवी सेयणय-गंधहत्थि-दूरूढा समाणी सेणिएणं हत्थिखंध-वरगएणं पिहुओ २ समणुगम्म-माणमग्गा हय-गय जाव रवेणं जेणेव रायगिहे णयरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता रायगिहं णयरं मज्झंमज्झेणं जेणामेव सए भवणे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता विउलाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं जाव विहरइ।

भावार्थ - फिर रानी धारिणी सेचनक हस्ती पर आरूढ होकर, वहाँ से खाना हुई। राजा श्रेणिक उसका अनुसरण करने लगा। यों चतुरंगिणी सेना से घिरी हुई, वह राजगृह नगर के बीच से होती हुई, अपने महल में आ गई। मानव जीवन संबंधी उत्तम, विपुल भोगों का भोग करती हुई पूर्ववत् रहने लगी।

देव को विदाई

(28)

तए णं से अभए कुमारे जेणामेव पोसहसाला तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पुळ्वसंगइयं देवं सक्कारेइ सम्माणेइ स० २ त्ता पडिविसज्जेइ।

भावार्थ - अभयकुमार पौषधशाला में आया, अपने पूर्वजन्म के मित्रदेव का सत्कार किया। उसे ससम्मान विदा किया।

(**5**X)

तए णं से देवे सगज्जियं पंचवण्ण-मेहो व सोहियं दिव्वं पाउससिरिं पडिसाहरइ २ जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए।

भावार्थ - तब उस देव ने गर्जना सहित पाँच वर्णों के मेघों से शोभित दिव्य वर्षा ऋतु की छटा का प्रतिसंहनन किया, उसे वापस समेटा। वैसा कर वह जिस दिशा से आया था, उसी दिशा की ओर चला गया।

गर्भ की सुरक्षा

(58)

तए णं सा धारिणी देवी तंसि अकालदोहलंसि विणीयंसि सम्माणियदोहला तस्स गब्भस्स अणुकंपणहाए जयं चिहुइ, जयं आसयइ, जयं सुवइ, आहारं पि य णं आहारेमाणी णाइतित्तं णाइकडुयं णाइकसायं णाइअंबिलं णाइमहुरं जं तस्स गढभस्स हियं मियं पत्थयं देसे य काले य आहारं आहारेमाणी णाइचिंत्तं, णाइसोयं णाइदेण्णं णाइमोहं णाइभयं णाइपरित्तासं ववगयचिंता-सोयमोह-भय-परित्तासा उउ-भयमाणसुहेहिं भोयणच्छायण-गंध-मल्लालंकारेहिं तं गब्भं सुहंसुहेणं परिवहइ।

शब्दार्थ - अणुकंपणद्वाए - अनुकंपा के लिए, जयं - यतनापूर्वक, सावधानी से, चिट्ठइ - खड़ी होती, आसयइ - बैठती, सुवइ - सोती, आहारेमाणी - आहार करती हुई, णाइतित्तं - अधिक तिक्त-तीखा, कडुयं - कड़वा, कसायं - कसैला, अंबिलं - खट्टा, महुरं-मधुर, पत्थय- आरोग्यकर, देण्णं - दैन्य-दीनता, परित्तासं - परित्रास-आकस्मिक भय, उउ-भयमाण-सुहेहिं - ऋतु अनुकूल सुखप्रद, अच्छायण - वस्न, परिवहइ - वहन करती-पालन करती रही।

भावार्थ - रानी धारिणी ने अपने अकाल दोहद के पूर्ण होने पर अपने आपको बहुत सम्मानित माना। वह अपने अन्तस्थित गर्भ पर अनुकंपा कर, उसे जरा भी बाधा न पहुँचे, यह सोच कर खड़ा होना, बैठना, सोना, खाना-पीना आदि सभी कार्य बड़ी यतना-जागरूकता के साथ करती। वह भोजन ग्रहण करते समय ध्यान रखती कि यह अधिक तीखा, कड़ुआ, कसैला, मीठा न हो। वह देश और काल के अनुरूप हो, गर्भ के लिए हितकर हो। वह अधिक चिंता, शोक, दैन्य, मोह, भय और परित्रास का भाव मन में नहीं लाती। इन सबसे रहित होकर वह ऋतुओं के अनुकूल पथ्य भोजन, वस्न, माला, अलंकार आदि का उपयोग करती। इस प्रकार वह सुखपूर्वक गर्भ को वहन करने लगी।

मेघकुमार का जन्म

(59)

तए णं सा धारिणी देवी णवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धडमाण य राइंदियाणं वीइक्कंताणं अद्धरत्त-कालसमयंसि सुकुमालपाणिपायं जाव सळ्वंगसुंदरं दारगं पयाया।

शब्दार्थ - अद्भरत - अर्द्धरात्रि, सब्बंग - सर्वांग, पयाया - जन्म दिया।

भावार्थ - रानी धारिणी ने नौ माह तथा साढे सात रात-दिन पूर्ण होने पर अर्द्धरात्रि के समय हाथ-पैर आदि सभी सुंदर अंगों से सुशोभित शिशु को जन्म दिया।

(55)

तए णं ताओ अंगपडियारियाओ धारिणि देविं णवण्हं मासाणं जाव दारगं पयायं पासंति २ त्ता सिग्धं तुरियं चवलं वेइयं जेणेव सेणिए राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सेणियं रायं जएणं विजएणं वद्धावेंति २ त्ता करयल परिगाहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी -

भावार्थ - अंगपरिचारिकाओं ने देखा, रानी धारिणी ने पुत्र को जन्म दिया है। वे अत्यंत हर्षित होकर अतिशीघ्र, वेगपूर्वक राजा के पास आई। उन्हें जय-विजय शब्दों द्वारा वर्धापित किया। हाथ जोड़ कर, मुस्तक झुका कर, नमन करते हुए, इस प्रकार बोली।

(32)

एवं खलु देवाणुप्पिया! धारिणी देवी णवण्हं मासाणं जाव दारगं पयाया, तं णं अम्हे देवाणुप्पियाणं पियं णिवेएमो पियं भे भवउ। तए णं से सेणिए राया तासि अंगपिडयारियाणं अंतिए एयमद्ठं सोच्चा णिसम्म हद्वतुद्ध० ताओ अंगपिडयारियाओ महुरेहिं वयणेहिं विउलेण य पुष्फगंधमल्लालंकारेणं सक्कारेइ सम्माणेइ स० २ त्ता मत्थयधोयाओ करेइ पुत्ताणुपुत्तियं वित्तं कप्पेइ २ ता पिडिविसज्जेइ।

शब्दार्थ - मत्थयधोयाओ - दासत्व से मुक्त, वित्तिं - जीविका, कप्पेइ - प्रदान की। भावार्थ - हे देवानुप्रिय! देवी धारिणी ने पुत्र को जन्म दिया है। हम आपको यह प्रिय संदेश निवेदित करती हैं। आपके लिए यह प्रीतिप्रद हो।

राजा श्रेणिक उन परिचारिकाओं से यह सुनकर बहुत प्रसन्न एवं उल्लसित हुआ और उनको मधुर वचन, प्रचुर पुष्प, सुगंधित द्रव्य, मालाओं एवं अलंकारों द्वारा सत्कारित एवं सम्मानित किया। उनको दासत्व से मुक्त कर दिया तथा उनके लिए पुत्र-पौत्रों पर्यंत-भावी पीढ़ियों तक के लिए, आजीविका बांध दी। ऐसा कर उन्हें विदा किया।

विवेचन - प्राचीन काल में इस देश में दासप्रथा और दासीप्रथा प्रचलित थी। दास-दासियों की स्थिति लगभग पशुओं जैसी थी। उनका क्रय-विक्रय होता था। बाजार लगते थे। जीवन पर्यंत उन्हें गुलाम होकर रहना पड़ता था। उनका कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं था। कोई विशिष्ट हर्ष का प्रसंग हो और स्वामी प्रसन्न हो जाये तभी दासता अथवा दासीपन से उनको मुक्ति मिलती थी। राजा श्रेणिक का प्रसन्न होकर दासियों को दासीपन से मुक्त कर देना इसी प्रथा का सूचक है।

जन्मोत्सव

(03)

तए णं से सेणिए राया (पञ्चूसकालसमयंसि) कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी - खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! रायगिहं णयरं आसिय जाव परिगीयं करेह २ ता चारग-परिसोहणं करेह २ ता माणुम्माण-वद्धणं करेह २ ता एयमाणत्तियं पञ्चप्पिणह जाव पञ्चप्पिणंति।

शब्दार्थ - पच्चूसकालसमयंसि - प्रातःकाल के समय, परिगीयं - गीत ध्वनियुक्त, चारगपरिसोहणं - कारागार से बंदी जनों को मुक्त करना, माणुम्माणवद्धणं - माप-तौल की वस्तुओं के मूल्य में कमी।

भावार्थ - राजा श्रेणिक ने कोटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और कहा कि राजगृह नगर को सम्मार्जन, जलसेचन-छिड़काव आदि से तथा पुष्पों की सुगंध से, गीत-ध्विन से, आनंदोत्साह युक्त वातावरणमय बनाओ। कारागार से कैदियों को मुक्त कर दो। यह सब कर मुझे ज्ञापित करो।

(93)

तए णं से सेणिए राया अट्ठारस-सेणिप्पसेणीओ सदावेइ २ ता एवं वयासी-गच्छह णं तुब्धे देवाणुप्पिया! रायगिहे णयरे अब्धितरबाहिरिए उस्सुक्कं उक्करं अभडप्पवेसं अदंडिम-कुदंडिमं अधिरमं अधारणिज्जं अणुद्धयमुइंगं अमिलाय-मल्तदामं गणियावर-णाडइज्जकिलयं अणेगतालायराणुचरियं पमुइय-पक्की-

लियाभिरामं जहारिहं ठिइवडियं दसदिवसियं करेह २ ता एयमाणित्तयं पच्चिप्पणह तेवि करेंति २ तहेव पच्चिप्पणंति।

शब्दार्थ - अट्ठारस - अठारह, सेणिप्पसेणिओ - कुंभकारादि जातियाँ, उपजातियाँ, ठिइवडियं - राजकुल परंपरानुसार पुत्र जन्मोत्सव पर की जाने वाली विशिष्ट रीतिरिवाजें, उस्सुकं - शुल्क-चुंगी की माफी, उक्करं - करमुक्तता, अभडण्पवेसं - बेगार लेने हेतु नियुक्त राज्याधिकारियों का अप्रवेश, अदंडिमकुदंडिमं - दण्डयोग्य अपराधियों से जुर्माना च लेना, अधिरमं - ऋण मुक्त कराना, अधारणिज्जं - चाहने वालों के लिए राज्य द्वारा ऋण की व्यवस्था, अणुद्धयमुइंगं - मृदंग आदि वाद्य निरंतर बजाए जाना, अमिलायमल्लदामं - ताजे फूलों से बनी मालाएँ, णाडइज्जकिलयं - नृत्य से सुशोभित, तालायराणुचरियं - ताल देने में कुशल दर्शक युक्त, पमुइय - प्रमुदित, पक्कीलिय - प्रक्रीडित-हास्य विनोद युक्त, जहारिहं - यथायोग्य, ठिइवडियं - स्थितियुक्त।

भावार्थ - राजा श्रेणिक ने अठारह जातियों एवं उपजातियों के लोगों को बुलाया और कहा - देवानुप्रियो! राजगृह के भीतरी और बाहरी भाग में राजवंश की परंपरा के अनुसार पुत्र जन्मोत्सव के उपलक्ष में कोई चुंगी एवं कर नहीं लिया जाए। बेगार लेने हेतु नियुक्त राजपुरुष किसी के यहाँ प्रवेश न करें। दंडनीय अपराधियों से जुर्माना न लिया जाए। जिनके भी जो ऋण हैं, वे राज्य की ओर से अदा कर दिए जायें, जरूरत मंदों को राज्य की ओर से ऋण दिया जाये। निरंतर मृदंग आदि बजते रहें, ताजे फूलों की मालाएँ, स्थान-स्थान पर लटकाई जाएँ। अनेक सहदय दर्शकों द्वारा दी जाती तालध्विन अनुगत कुशल गणिकाओं द्वारा अनवरत नृत्य किए जाते रहें। आमोद-प्रमोद एवं हास-परिहासमय सुंदर वातावरण बना रहे। दस दिनों के लिए ऐसी यथेष्ट व्यवस्था करो, करवाओ एवं मेरे आदेश के पालन की सूचना दो।

उन्होंने ऐसा कर राजा को निवेदित किया।

(53)

तए णं से सेणिए राया बाहिरियाए उवट्ठाणसालाए सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे सइएहि य साहस्सिएहि य सयसाहस्सिएहि य जाएहि य दाएहि य भाएहि य दलयमाणे २ पडिच्छेमाणे २ एवं च णं विहरइ। शब्दार्थ - सइएहि - सैकड़ों, साहस्सिएहि - हजारों, सयसाहस्सिएहि - लाखों, जाएहि - द्रव्यराशियों द्वारा, दाएहि भागेहि - दान योग्य भागों द्वारा, दलयमाणे - देते हुए, पडिच्छेमाणे - भेंट रूप में स्वीकार करते हुए।

भावार्थ - फिर राजा श्रेणिक बाहरी सभा-भवन में आया। पूर्वाभिमुख होकर श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठा। उसने सैंकड़ों, हजारों एवं लाखों की द्रव्य राशि का संविभागानुरूप दान किया। अधीनस्थ राजाओं, सामंतों एवं श्रेष्ठिजनों द्वारा दिए गए उपहारों को ग्रहण किया।

ववजात शिशु के संस्कार (६३)

तए णं तस्स अम्मापियरो पढमे दिवसे जायकम्मं करेंति २ ता बिइयदिवसे जागिरयं करेंति २ ता तइए दिवसे चंदसूर दंसणियं करेंति २ ता एवामेव णिळ्वते असुइजायकम्मकरणे संपत्ते बारसाहदिवसे विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेंति २ ता मित्त-णाइ-णियग-सयण-संबंधि-परिजणं बलं च बहवे गणणायग-दंडणायग जाव आमंतेंति।

शब्दार्थ - पढमे - प्रथम, जायकम्मं - जात कर्म-नाल काटना, बिइय - दूसरे, जागरियं - रात्रि जागरण, तइए - तीसरे, चंदसूरदंसणियं - चन्द्रमा और सूर्य के दर्शन, णिव्वत्ते - संपन्न, असुइ - अशुद्ध, उवक्खडावेंति - तैयारी करवाते हैं, णाइ - पारिवारिकजन, णियग - पुत्रादि, संबंधि - ससुराल पक्ष के व्यक्ति, परिजणं - दास-दासी आदि सेवक-वृंद, आमंतेंति - आमंत्रित करते हैं।

भावार्थ - माता-पिता ने बालक के जन्मोपरांत पहले दिन उसका जात-कर्म किया, दूसरे दिन जागरिका तथा तीसरे दिन चंद्र-सूर्य के दर्शन कराए। इस प्रकार अशुचि जातकर्मादि संस्कार संपन्न हुए। बारहवें दिन बड़े परिमाण में अशन, पान, खाद्य एवं स्वाद्य पदार्थ तैयार करवाए। वैसा कर मित्रों, बंधु-बांधवों, पुत्रादि निकटतम पारिवारिकजनों, अन्यान्य संबंधियों, सेवक-सेविकाओं, सैनिकों, गणनायकों, दण्डनायकों आदि को आमंत्रित किया।

(83)

तओ पच्छा ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ता सव्वालंकार-

विभूसिया महइमहालियंसि भोयणमंडवंसि तं विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं मित्तणाइ० गणणायग जाव सिद्धं आसाएमाणा विसाएमाणा परिभाएमाणा परिभुंजेमाणा एवं च णं विहरइ।

शब्दार्थ - तओ पच्छा - तत्पश्चात्, महड्महालयंसि - अत्यधिक विशाल, भोयण-मंडवंसि- भोजन मंडप में, आसाएमाणा - आस्वादित कराते हुए, विसाएमाणा - विशेष आग्रह पूर्वक खिलाते हुए, परिभाएमाणा - मनुहार करते हुए।

भावार्थ - तदनंतर वे स्नान सम्बन्धी सम्पूर्ण विधि पूर्ण कर, अलंकारों से विभूषित होकर, विशाल भोजन-मंडप में आये। तैयार कराए गये अशन, पान आदि को आमंत्रित जनों के साथ आस्वादित किया। आदर एवं मनुहार पूर्वक खिलाया एवं खाया।

नामकरण

(EX)

जिमिय-भुत्तत्ता-गया वि य णं समाणा आयंता चोक्खा परमसुइभूया तं मित्तणाइ-णियग-सयण-संबंधि-परियणं बलं च बहवे गणणायग जाव विउलेणं पुष्फवत्थगंध्रमल्लालंकारेणं सक्कारेंति सम्माणेंति स० २ ता एवं वयासी - ''जम्हा णं अम्हं इमस्स दारगस्स गब्भत्थस्स चेव समाणस्स अकाल मेहेसु दोहले पाउब्भूए तं होउ णं अम्हं दारए मेहे णामेणं मेहकुमारे।'' तस्स दारगस्स अम्मापियरो अयमेयास्त्वं गोणणं गुणणिष्फणणं णामधेज्जं करेंति।

शब्दार्थ - जिमिय - जीमे हुए-भोजन किए हुए, भुत्तुत्ततर - भोजन के पश्चात्, आयंता- पानी से कुल्ला, चोक्खा - मुख आदि की सफाई, परमसुइभूया - अत्यंत स्वच्छ, गढ्भत्थस्स- गर्भावस्था के समय, गोण्णं - गुणानुरूप, गुणिष्फण्णं - गुणानिष्पन्न, णामधेज्जं- नामधेय-नाम।

भावार्थ - भोजन करने के बाद उन्होंने आचमन किया, मुखादि को साफ किया, अत्यन्त स्वच्छ हुए तथा आमंत्रित जनों को पर्याप्त, पुष्प, सुगंधित पदार्थ, मालाएँ, अलंकार आदि द्वारा सत्कारित एवं सम्मानित किया और बोले - यह बालक जब गर्भ में था तभी माता को असमय में मेघ दर्शन का दोहद उत्पन्न हुआ, इसलिए इस बालक को 'मेघकुमार' नाम दें। इस प्रकार माता-पिता ने उस शिशु का गुणानुरूप, गुण निष्पन्न मेघकुमार नाम रखा।

बालक का लालन-पालन

(33)

तए णं से मेहे कुमारे पंचधाई-परिगाहिए तं जहा - खीरधाईए, मंडणधाईए, मज्जणधाईए, कीलावणधाईए, अंकधाईए अण्णाहि य बहूहिं खुज्जाहिं चिलाइयाहिं वामणि-वडिभ-बब्बीर-वउिस-जोणिय-पल्हिवय-ईसिणिय धोरुगिणी-लासिय-लउिसय-दिमिलि-सिंहिलि-आरिब-पुलिंदि-पक्किण-बहिल-मुरुंडि-सबिर-पारसीहिं-णाणा देसीहिं विदेस-परिमंडियाहिं इंगिय-चितिय-पत्थिय-वियाणियाहिं सदेस-णेवत्थ-गिहय-वेसाहिं णिउण कुसलाहिं विणीयाहिं चेडियाचक्कवाल-विरसधर-कंचुइज्ज-महयरगवंद-परिक्खित्ते हत्थाओ हत्थं साहरिज्जमाणे, अंकाओ अंकं परिभुज्जमाणे परिगिज्जमाणे उवलालिज्जमाणे रम्मंसि मणिकोट्टिम-तलंसि परिमिज्जमाणे २ णिव्वाय-णिव्वाधायंसि गिरि-कंदर-मल्लीणेव चंपगपायवे सुहं सुहेणं वहुइ।

शब्दार्थ - पंचधाईपरिग्गिहिए - पाँच धायों द्वारा परिगृहीत, खीर - दूध, कीलावण - खेल कराना, अंक - गोद, अण्णाहि - अन्य, खुज्जा - कुबड़ी, चिल्लाइया - किरात देश में उत्पन्न, वामणि - बौनी, वडिभ - विकलांग, चेडिया चक्कवाल - दासी समूह, विरसधर- प्रयोग द्वारा नपुंसक किए हुए पुरुष, कंचुइज - अंतःपुर के वृद्ध कर्मचारी, महयर - अन्तःपुर के कार्यों की देखभाल करने वाले, परिक्खित - धिरा हुआ, साहरिज्जमाणे - लिया जाता हुआ, परिभुज्जमाणे - सुखानुभव करता हुआ, परिगिज्जमाणे - गा-गाकर बहलाया जाता हुआ, उवलालिज्जमाणे - लाड़-प्यार से खिलाया जाता हुआ, मिणकोद्दिमतलंसि - मिणयों से जुड़े हुए महल के आंगन पर, परिमिज्जमाणे - चलाया जाता हुआ, णिळ्वाय - निर्वात-वायु रहित, णिळ्वाय - बाधा रहित, अल्लीणे - स्थित, पायवे - पादप, वृक्ष, वृद्धइ - बढ़ता है। भावार्थ - दूध पिलाने वाली, वस्न-आभूषण आदि पहनाने वाली, स्नान कराने वाली,

क्रीड़ा कराने वाली तथा गोद में रखने वाली - इन पंच विध धायों ने बालक को यथोचित रूप में संभाला। इनके अतिरिक्त बालक मेघकुमार कुबड़ी, बौनी एवं विकलांग दासियों तथा किरात, वकुस, यवन (यूनान) परहनिक, ईशनिक, धौरुकिन, ल्हासक, लकुस, द्रविड़, सिंहल, अरब, पुलिंद, पक्कण, बहल, मुरुंडि, सबर, फारस (ईरान) - इत्यादि विभिन्न देशों की, परदेश—अपने से भिन्न देशवर्ती, राजगृह नगर को सुशोभित करने वाली इंगित-मुखादि के संकेत, चिंतित-मनोभाव,प्रार्थित-अभिलिषत को जानने में कुशल, अपने-अपने देश की वेशभूषा से युक्त, निपुणातिनिपुण तथा विनीत दासियों, अंतःपुर में नियुक्त नपुंसकों, वृद्ध सेवकों तथा व्यवस्थापकों के समुदाय से घरा हुआ रहने लगा। वह उन द्वारा एक हाथ से दूसरे हाथ में, एक गोद से दूसरी गोद में गा-गाकर बहलाया जाता हुआ, अंगुली थामकर चलना सिखाया जाता हुआ, क्रीड़ा पूर्वक लालन-पालन किया जाता हुआ, सुंदर मणिमंडित आंगन पर घुमाया जाता हुआ, समशीतोष्ण वातावरण युक्त पर्वत गुफा में बढ़ते चंपक वृक्ष की तरह, वह सुखपूर्वक बड़ा होने लगा।

(03)

तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स अम्मापियरो अणुपुव्वेणं णामकरणं च पजेमणगं च एवं चंकमणगं च चोलोवणयं च महया-महया इड्ढी सक्कार समुदएणं करिंसु।

शब्दार्थ - पजेमणगं - अन्नप्राशन क्रिया-शिशु के मुँह में प्रथम बार अन्न देना, चंकमणगं- इधर-उधर चलाना, चोलोवणयं - शिखा धारण-चोटी रखना, इड्ढी - ऋदि।

भावार्थ - मेघकुमार के माता-पिता ने क्रमशः उसका नामकरिण, अन्नप्राशन, पाद-चलन, शिखाधारण आदि संस्कार अत्यन्त ऋदि तथा सत्कारपूर्वक संपन्न किए।

विविध कलाओं की शिक्षा

(85)

तए णं तं मेहं कुमारं अम्मापियरो साइरेगट्ट-वासजायगं चेव गब्भट्टमे वासे सोहणंसि तिहि-करण-मुहुत्तंसि कलायरियस्स उवणेति। तए णं से कलायरिए मेहं कुमारं लेहाइयाओ गणियप्पहाणाओ सउणरुय-पज्जवसाणाओ बावत्तरिं कलाओ सुत्तओ य अत्थओ य करणओ य सेहावेइ सिक्खावेइ। शब्दार्थ-साइरेग - सातिरेक-अधिक सहित, सोहणंसि - शुभ, तिहि - तिथि, कलायरियस्स- कलाचार्य के, लेहाइयाओ - लेख आदि, गणियप्पहाणाओ - गणित प्रधान, सउणरुय - पक्षियों की बोली, पज्जवसाणाओ - पर्यंत, बावत्तरिं - बहत्तर, सुत्तओ - सूत्र रूप में, अत्थओ - अर्थ रूप में, करणओ - प्रयोग रूप में, सेहावेइ - सिद्ध करवाता है, सिक्खावेइ - सिखाता है।

भावार्थ - तदनंतर जब मेघकुमार गर्भवास समय सिंहत आठ वर्ष से कुछ अधिक का हुआ, तब माता-पिता शुभ तिथि, करण और मुहूर्त में उसे कलाचार्य के पास ले गए। कलाचार्य ने मेघकुमार को लेखन से लेकर पक्षियों के शब्द ज्ञान तक की बहत्तर कलाओं का, जिनमें गणित कला मुख्य थी, सूत्र, अर्थ एवं प्रयोग के रूप में शिक्षण दिया, उन्हें आत्मसात् करवाया।

बहत्तर कलाओं के नाम

(33)

तं जहा - १. लेहं २. गणियं, ३. रूवं ४. णटं ५. गीयं ६. वाइयं ७. सरगयं द्व. पोक्खरगयं ६. समतालं १०. जूयं ११. जणवायं १२. पासयं १३. अट्ठावयं १४. पोरेकच्चं १४. दगमिट्टयं १६. अण्णिविहें १७. पाणिविहें १६. विलेवणिविहें २०. सयणिविहें २१. अज्जं २२. पहेलियं २३. मागिहियं २४. गाहं २४. गीइयं २६. सिलोयं २७. हिरण्णजुत्तिं २६. सुवण्णजुत्तिं २६. चुण्णजुत्तिं ३०. आभरणिविहें ३१. तरुणीपिडिकम्मं ३२. इत्थिलक्खणं ३३. पुरिसलक्खणं ३४. हयलक्खणं ३४. गयलक्खणं ३६. गोणलक्खणं ३७. कुक्कुड-लक्खणं ३४. हयलक्खणं ३६. दंडलक्खणं ४०. असिलक्खणं ४९. मिणिलक्खणं ४२. कागिणिलक्खणं ४३. वत्थुविज्जं ४४. खंधारमाणं ४४. णगरमाणं ४६. वूहं ४७. पिडवूहं ४६. चारं ४६. पिडचारं ४०. चक्कवूहं ६९. गरुलवूहं ५२. सगडवूहं ६३. जुद्धं ६४. णिजुद्धं ६४. जुद्धाइजुद्धं ६६. अट्ठिजुद्धं ६७. मुट्ठिजुद्धं ६६. वट्टखेडं ६७.

णालियाखेडं ६८. पत्तच्छेज्जं ६९. कडगच्छेज्जं ७०. सज्जीवं ७१. णिज्जीवं ७२. सउणहअमिति।

शब्दार्थ - वे कलाएं इस प्रकार हैं - १. लेहं - लेख-लिपिज्ञान, २. गणियं -अंकगणित, रेखा गणित, बीज गणित आदि का अध्ययन, ३. रूवं - चित्रांकन, ४. णहं -नाट्य, ५. गीयं - गान-विद्या, ६. वाइयं - वाद्य वादन, ७. सरगयं - संगीत के षड्ज, ऋषभ आदि स्वरों का ज्ञान, इ. पोक्खरगयं - मृदंग विषयक ज्ञान, ६. समताल - गीतानुरूप ताल प्रयोग का बोध, १०. जूयं- द्यूत, ११. जणवाय - लोगों के साथ हार-जीत मूलक वाद-विवाद, १२. पासयं - पासा-द्यूत क्रीड़ा का उपकरण विशेष १३. अद्वावयं - चौपड़, १४. पोरेकच्चं - नगर-रक्षा मूलक कार्य, १५. दगमट्टियं - जल एवं मिट्टी के संयोग से वस्तु का निर्माण, १६, अण्णविहिं - अन्नोत्पादन एवं पाकविधि का ज्ञान, १७, पाणविहिं - पानी को उत्पन्न संस्कारित और शुद्ध करने का ज्ञान, १८. वत्थविहिं - वस्न विषयक ज्ञान, १६. विलेवणविहिं - चंदनादि चर्चनीय पदार्थों का ज्ञान, २०. सयणविहिं - शैय्या एवं शयन विषयक ज्ञान, २१. अज्जं - आर्या आदि मात्रिक छंदों का बोध २२. पहेलियं - प्रहेलिका बनाना, सुलझाना २३. मागहियं - मागधी भाषा में पद-रचना २४. गाहं- प्राकृत में गाथा आदि छंदो में पद्य निर्माण २५. गीइयं - गीतिका २६. सिलोयं - अनुष्टुप आदि छंद में श्लोक बनाना २७. हिरण्णजुत्तिं - रजत निर्माण २८. सुवण्णजुत्तिं - स्वर्ण निर्माण २६. सुण्णजुत्ति-काष्ठादि वनौष्धियों के समुचित संयोजन से विविध रसायनात्मक निर्माण ३०. आभरणविहिं -आभरण विषयक ज्ञान ३१. तरुणी पडिकम्मं - तरुणी परिकर्म-युवा स्त्री के सौन्दर्य वर्द्धन एवं प्रसाधन का ज्ञान ३२. इत्थिलक्खणं - स्त्री के सामुद्रिक शास्त्रोक्त शुभाशुभ लक्षणों का ज्ञान ३३. पुरिसलक्खणं - पुरुष के शुभाशुभ लक्षणों का बोध ३४. हयलक्खणं - अश्व लक्षण ३५. गय लक्खणं - गज लक्षण ३६. गोण लक्खणं - गो-गाय-बैल लक्षण ३७. कुक्कुडलक्खणं - कुक्कट लक्षण ३८. छत्त लक्खणं - छत्र लक्षण ३९. दंडलक्खणं - दण्ड लक्षण ४०. असिलक्खणं- खड्ग लक्षण ४१. मणिलक्खणं - मणि लक्षण ४२. कागिणी लक्खणं - चक्रवर्ती के काकणि नामक रत्न विशेष के लक्षण ४३. वत्थुविज्ञं - वास्तु विद्या-भवन निर्माण संज्ञक विद्या ४४. खंधारमाणं - सेना की छावनी (पड़ाव) का बोध ४५. णगरमाणं - नगर निर्माण-ज्ञान ४६. वृहं - व्यूह (मोर्चा) सेना का विशेष आकार में परिस्थापन ४७. पडिवृहं - प्रतिद्वंदियों के व्यूह से रक्षा हेतु व्यूह-रचना ४८. चारं - सैन्य-

संचालन ४६. पडिचारं - शत्रु सेना के प्रतिरोधार्थ सैन्य सज्जा ५०. चक्कवूहं - चक्रव्यूह - चक्र के आकार में सैन्य-स्थापन ५१. गरुल्लवूहं - गरुड के आकार में सैन्य-व्यवस्थापन ५२. सगडवूहं - गाड़े के आकार में स्थापना ५३. जृद्धं - युद्ध कला ५४. णिजुद्धं - मल्लवत् विशेष युद्ध ५४. जुद्धाइजुद्धं - आमने-सामने शस्त्रास्त्रों से लड़ना १६. अद्विजुद्धं - शरीर के अस्थि प्रधान बलिष्ठ भागों से टक्कर मारना १७. मुट्टिजुद्धं - मुष्ठि प्रहार पूर्वक लड़ना १८. बाहुजुद्धं - भुजाओं से आधात पूर्ण युद्ध १६. लयाजुद्धं - यथावसर कंटीली, तीक्ष्ण लताओं से लड़ना ६०. ईसत्थं - इषु शास्त्र-दिव्य बाण विद्या का ज्ञान ६९. छरुप्यवायं- आवश्यक होने पर खड्ग की मूठ से प्रहार करना ६२. धणुव्वयं - धनुर्विद्या का ज्ञान ६३. हिरण्णपागं - चांदी विषयक रासायनिक ज्ञान ६४. सुत्वण्णपागं - स्वर्ण विषयक रासायनिक ज्ञान ६४. सुत्तखेडं - धागों से विशेष प्रकार की क्रीड़ा का बोध ६६. वट्टखेडं - गोलाकार धूमने के खेल विशेष का ज्ञान ६७. णालियाखेडं - द्यूत में हारने की स्थिति में पासों के विपरीत प्रयोग का ज्ञान ६८. पत्तच्छेजं - पत्तों के बीच स्थित किसी एक पत्ते का छेदन ६६. कडगच्छेजं - कटक, कुण्डल आदि का छेदन ७०. सज्जीवं - मृत (मूर्च्छित) को जीवित के समान दिखला देना ७१. णिजीवं - जीवित को मृत के समान दिखला देने का कौशल ७२. सऊण्डवं - पक्षियों की बोली को शुभाशुभ रूप में पहचानना।

भावार्थ - मेघकुमार ने नैसर्गिक प्रतिभा, लगन एवं उद्यम द्वारा सूत्रोक्त बहत्तर कलाओं का जिनका एक राजा के जीवन के विविध पक्षों से संबंध होता है, शिक्षण पाया तथा इनमें कौशल एवं पारगामित्व प्राप्त किया।

विवेचन - भगवान् महावीर के युग में यद्यपि, लिच्छवि, विज्ञ, मल्ल आदि कितपय गणराज्य भी थे किन्तु एकतंत्रात्मक राज्यों का बाहुल्य था जिनमें राजा ही सर्वोपिर होता था। राजा अत्यन्त योग्य, विद्वान्, कलामर्मज्ञ, ज्ञान-विज्ञान वेत्ता, विविध लौकिक विषयों में निपुण साम-दाम-दंड-भेद आदि नीतियों में निष्णात, शारीरिक दृष्टि से समर्थ, बलिष्ठ, युद्ध-विद्या में अत्यन्त प्रवीण, चक्रव्यूह आदि सैन्य संस्थापन और मोर्चों के गठन में दक्ष, मनोविनोद के विविध साधनोपकरणों में विज्ञ, संगीत, काव्य नाट्य आदि अनेक अनुपम विशेषताओं और गुणों से विभूषित हो, यह आवश्यक माना जाता था। इसीलिए कहा गया है -

बालोऽपि नावमन्तव्यो, मनुष्य इति भूमिपः। महती देवता होषा, नर रूपेण तिष्ठति।।

www.jainelibrary.org

अर्थात् राजा यदि बालक भी हो तो भी उसे मनुष्य जानकर तिरस्कार नहीं करना चाहिये, क्योंकि वह वस्तुत: मनुष्य के रूप में एक देवता है। इसी देवत्व की कल्पना को सिद्ध करने के लिए राजा में अद्भुत योग्यता वांछनीय थी। यही कारण है कि राजकुमारों के लालन-पालन एवं शिक्षा पर अत्यधिक ध्यान दिया जाता था।

इन सूत्रों (६६ से ६६ तक) में मेघकुमार के शैशव, लालन-पालन और शिक्षा प्राप्ति का वर्णन आया है, जिससे यह भली भांति ज्ञात होता है। सूत्र ६६ में अंतःपुर की दासियों का वर्णन बड़ा ही महत्वपूर्ण है। उस समय समृद्ध एवं विशाल राज्यों के अधिनायकों के अंतःपुर में देश-विदेश की दासियां होती थीं। राजकुमारों का लालन-पालन उनके बीच बड़े ही सुखमय, स्फूर्तिमय, सौम्य वातावरण में होता था। भिन्न-भिन्न देशों की दासियाँ अपने-अपने देशों की वेशभूषा में रहती थीं। उनकी अपनी विशेष उपयोगिता थी। दूर देश से लाई गई वे दासियां अपने स्वामी के प्रति बहुत ही समर्पित एवं विश्वास पात्र होती थीं। राजकुमारों को स्वदेशी दासियों के साथ-साथ उन दासियों द्वारा भी लालित-पालित होने का अवसर मिलता था। जिससे वे सहज रूप में देश-विदेश के रहन-सहन, वेश-भूषा, संस्कार इत्यादि का परिचय पा लेते थे। जो विस्तारवादी एवं महत्त्वाकांक्षी राज्य के अधिनायक के लिए निश्चय ही आवश्यक और लाभप्रद होता है। दासियों में जो बौनी, कुबड़ी, विकलांग थीं, उनकी भी उपयोगिता थी। राजकुमारों के समक्ष सुंदर, सुसज्ज एवं सुललित दृश्य ही न रहे वरन् असुंदर, विकृत और हीनांग दृश्य भी उनकी अनुभूति में आते जाएं, जिससे उनके समक्ष प्रजाजनों का, संसार की विविधता का सजीव रूप विद्यान रहे। इसका अभिप्राय यह है कि राजप्रासाद में ही राजकुमारों को लोक के समग्र ज्ञान की झलक खेल-खेल में ही प्राप्त होती जाय, ऐसा प्रयास रहता था।

यहाँ यह भी विशेष रूप से ज्ञातव्य है कि जिन विभिन्न देशों से आनीत (लाई हुई) दासियों का उल्लेख हुआ है, उससे यह प्रकट होता है कि श्रेणिक आदि भारतीय नरेशों का वर्चस्व स्वदेश तक व्याप्त नहीं था वरन् दूर-दूर तक उनकी समृद्धि, प्रभाव, वैभव एवं गौरव को स्वीकार किया जाता था। तात्त्विक दृष्टि से प्रकृष्ट पुण्योदय के परिणाम स्वरूप प्राप्त होने वाले भोगमय जीवन का यह उदाहरण भी है। किन्तु आगे आने वाले मेघकुमार के उस प्रसंग से, जहाँ वह श्रमण-प्रव्रज्या स्वीकार करता है, उस राज्य वैभव-सम्पत्ति तथा सुख-भोग की व्यर्थता भी सिद्ध हो जाती है।

सूत्र ६६ में बहत्तर कलाओं के अंतर्गत ऐसी कर्म कलाओं का भी उल्लेख हुआ है, जो साधारणजनों के दैनंदिन जीवन से संबद्ध हैं। अन्नोत्पत्ति, मृत्तिका एवं जलादि संयोग से वस्तु निर्माण-जलोत्पत्ति-कूप खनन, विभिन्न भोज्य, खाद्य, स्वाद्य पदार्थों का परिपाक, भवन-निर्माण आदि ऐसे कार्य हैं, जिनका एक राजा के जीवन से सीधा संबंध नहीं है किन्तु यह आवश्यक है कि राजा को इन कार्यों में होने वाले परिश्रम का अनुभव हो, जिससे उसकी महत्ता का आकलन कर सके तथा उन लोगों के प्रति उस में उदारता एवं सहानुभूति का संचार रहे।

कलाचार्य का सम्मान

(900)

तए णं से कलायरिए मेहं कुमारं लेहाइयाओ गणियप्पहाणाओ सउण-रुयपज्जवसाणाओ बावत्तरिं कलाओ सुत्तओ य अत्थओ य करणओ य सेहावेइ सिक्खावेइ सेहावित्ता सिक्खावित्ता अम्मापिऊणं उवणेइ। तए णं मेहस्स कुमारस्स अम्मापियरो तं कलायरियं महुरेहिं वयणेहिं विउलेणं वत्थ-गंध्रमल्लालंकारेणं सक्कारेंति सम्माणेंति, स० २ ता विउलं जीवियारिहं पीइदाणं दलयंति २ ता पडिविसज्जेंति।

शब्दार्थ - पीइदाणं - प्रीतिदान-प्रसन्नता पूर्वक सम्मान पूर्ण उपहार।

भावार्थ - तदनंतर कलाचार्य-कला शिक्षक मेघकुमार को गणित प्रधान, लिपि ज्ञान से लेकर पक्षियों की बोली की पहचान पर्यंत बहत्तर कलाएं मूल रूप, अर्थ एवं प्रयोग पूर्वक पढ़ा कर, सिद्ध करवा कर माता-पिता के पास लाए।

मेघकुमार के माता-पिता ने प्रसन्न होकर कला शिक्षक का मधुर वचनों द्वारा तथा प्रचुर वस्त्र, गंध, माला तथा अलंकारों द्वारा सत्कार-सम्मान किया। उन्हें आजीविका के योग्य पर्याप्त उपहार-पुरस्कार दिया और विदा किया।

(१०१)

तए णं से मेहे कुमारे बावत्तरिकलापंडिए णवंगसुत्तपडिबोहिए अडारस

विहिप्पगारदेसीभासा विसारए गींयरई गंधव्व-णट्कुसले हयजोही गयजोही रह-जोही बाहुजोही बाहुप्पमदी अलं भोग समत्थे साहसिए वियालचारी जाए यावि होत्था।

शब्दार्थ - णवंग - दो कान, दो आँखें, दो नासिका रन्ध्र-नथुने, जिह्ना, त्वचा एवं मनशरीर के ये नौ अंग, सुत्त - सुप्त-अविकसित पडिबोहिए - प्रतिबोधित-जागृत-विकसित,
अहारस-विहिप्पगार- अठारह विविध प्रकार की, देसीभासाविसारए - लोक भाषाओं में
निपुण, गीयरई - संगीत में अभिरुचिशील, गंधव्वणद्दकुसले - गंधवों की तरह नाट्य कला में
कुशल, हयजोही - अश्व पर सवार होकर युद्ध करने में सुयोग्य, गयजोही - हाथी पर
आरूढ़ होकर युद्ध करने में समर्थ, रहजोही - रथ पर चढ़कर युद्ध करने में सक्षम, बाहुजोहीभुजाओं द्वारा युद्ध करने में प्रवीण, बाहुप्पमदी - भुजाओं द्वारा शत्रु का मर्दन करने में समर्थ,
अलं - पर्याप्त, भोग समत्थे - भोग समर्थ, साहिसए-साहसी, विद्यालचारी- विकालचारी रात में भी चल पड़ने वाला।

भावार्थ - मेघकुमार बहत्तर कलाओं में पंडित-विशेषज्ञ हो गया। उसके शरीर के अंग-प्रत्यंग अत्यधिक स्फूर्तिमय तथा विकसित हो गए। वह अठारह प्रकार की लोक भाषाओं में निपुण होगया। संगीत में अभिरुचिशील हुआ, नाट्यकला में गंधवों के सदृश कुशल हो गया, गज-स्थादि युक्त युद्धों में, बाहु प्रधान द्वन्द्व-युद्ध में वह निष्णात हो गया, अपनी भुजाओं द्वारा शत्रु का मान मर्दन करने में शक्ति संपन्न हुआ। साथ ही साथ सुखोपभोग में समर्थ, प्रत्येक कार्य में साहसशील तथा असमय में भी जहाँ कहीं भी जाने में निर्भीक हुआ।

विवाह-संस्कार

(907)

तए णं तस्स मेहकुमारस्स अम्मा पियरो मेहं कुमारं बावत्तरिकलापंडियं जाव वियालचारिं जायं पासंति २ ता अट्ट पासायविंडिसए कारेंति अब्भुग्गय-मूसिय-पहिंसए विव मणि-कणग-रयण-भित्तचित्ते वाउद्धुय-विजय-वेजयंती पडागा-छत्ताइच्छत्तकलिए तुंगे गगणतल-मिलंघमाण-सिहरे जालंतर-रयण-पंजरुम्मिल्लियव्व मणि-कणग-थूभियाए वियसिय-सयपत्त-पुंडरीए तिलय- रयणद्धयचंदच्चिए णाणा-मणि-मयदामालंकिए अंतो बहिं च सण्हे तवणिज-रुइल-वालुयापत्थरे सुहफासे सस्सिरीयरूवे पासाईए जाव पडिरूवे।

शब्दार्थ - पासायविडंसए - उत्तम प्रासाद-महल, तविणिज - स्वर्ण, अब्भुग्गयमूसिय - ऊंचे, मनोहर, पहिसए - हंसते हुए, वाउद्ध्य - हवा से हिलती हुई, विजय
वेजयंती - विजयवैजयन्ती- विजय सूचक ध्वजा, पडागा - पताका-छोटी ध्वजा, छत्ताइच्छत्तकिलिए - छोटे और बड़े छत्रों से शोभित, तुंगे - अत्यन्त उच्च, अभिलंघमाणं - लांघते हुए,
सिहरे - शिखर, जालंतररयणपंजर - रत्नों से जड़े हुए झरोखों के छिद्र, वियसिय विकसित-खिले हुए, सण्हे - चिकने, अद्ध्यचंदिच्चए - अर्द्ध चन्द्राकार सोपानों-सीढ़ियों से
युक्त, रुइल - रुचिर-सुन्दर, पत्थरे - आंगण, सुहफासे - सुखमय स्पर्श युक्त, सिस्सिरीयरूवेशोभामयरूपयुक्त, पासाईए - प्रसन्नता प्रद, पडिरूवे - सुन्दर आकृतियुक्त।

भावार्थ - मेघकुमार के माता-पिता ने जब यह देखा कि कुमार बहत्तर कलाओं में निपुण, साहसी और समर्थ हो गया है, तब उन्होंने आठ महल बनवाए। वे महल बड़े ही सुन्दर, उन्नत और दीप्तिमय थे। आभा से ऐसा प्रतीत होता था मानो वे हँस रहे हों। वे स्वर्ण मिणयों और रत्नों से विविध रूप में खिनत-जटित थे। उन पर लहराती हुई विजय सूचक बड़ी-बड़ी ध्वजाएं और पताकाएं बहुत ही सुहावनी लगती थीं। उन पर छोटी-बड़ी अनेक छिन्नयाँ बनी थीं। वे प्रासाद इतने ऊंचे थे मानो आकाश का उल्लंघन कर रहे हों। उनके झरोखों में तरह-तरह के रत्न जड़े थे। उनकी स्तूपिकाएं-गुम्बज रत्नों से, मिणयों से शोभित थी। उनके रत्न-जटित, अर्द्धचन्द्रकार सोपान बहुत ही मनोरम थे। उनके आगन में स्वर्णमयी बालुका बिछी थी। उसका स्पर्श अत्यन्त ही सुखप्रद था। वे प्रासाद बड़े ही दर्शनीय और मनोहर थे, उन्हें देखते ही चित्त में अतीव प्रसन्नता होती थी।

(fop)

एगं च णं महं भवणं कारेंति अणेग-खंभ-सय-सण्णिविद्वं लीलिहिय-सालभंजियागं अब्भुग्गय-सुकय-वइर-वेइयातोरणवररइयसाल-भंजिया सुसिलिह-विसिहलहसंठिय पसत्थवेठितय खंभ-णाणा-मणि-कणग-रयणखचिय उज्जलं बहुसमसुविभत्त णिचिय-रमणिजभूमिभागं ईहामिय जाव भत्तिचित्तं खंभुगय-वयर वेड्या परिगयाभिरामं विज्ञाहर-जमल-जुयल-जंतजुत्तंपिव अच्ची-सहस्स-मालणीयं रूवग-सहस्स कलियं भिसमाणं भिक्निसमाणं चक्खुल्लोयणलेसं सुहफासं सस्सिरीयरूवं कंचण-मणि-रयण-थूभियागं णाणाविह-पंचवण्ण-घंटा पडाग-परिमंडियग्ग-सिहरं धवल-मरीचि-कवयं विणिम्मुयंतं लाउल्लोइय-महियं जाव गंधविद्दभूयं पासाईयं दिस्सिणिजं अभिरूवं पडिरूवं।

शब्दार्थ - महं - महान्-विशाल, लीलड्डिय - क्रीड़ारत, णिचिय - सुंदर रूप में निर्मित-रचित, विजाहर-जमल-जुयल-जंतजुत - विद्याधरों के जोड़ों से युक्त, अच्ची सहस्स मालणीयं - सहस्त्रों किरणों से देदीप्यमान, भिसमाणं - भावित होता हुआ-चमकता हुआ, भिक्किसमाणं - विशेष रूप से भासित होता हुआ, चक्खुल्लोयण-लेसं - नेत्रों द्वारा देखने योग्य, परिमंडिय - सुशोभित, अग्गसिहरं- शिखर का ऊपरी भाग, मरीचि-कवयं - खेत किरणों का समूह, विणिम्मुयंतं - छोड़ता हुआ-फैलाता हुआ, लाउल्लोइयमहियं - विभिन्न कुसुमों की सुगंध से परिव्याप्त।

भावार्थ - राजा श्रेणिक ने मेघकुमार के लिए विशाल भवन का निर्माण कराया। वह सैंकड़ों स्तंभों पर निर्मित था। उस पर अनेक भाव-भंगिमायुक्त पुतिलयों-शाल भंजिकाओं की आकृतियाँ उकेरी हुई थीं। ऊंची सुंदर वज्र रत्न निर्मित वेदिकाएं तथा तोरण द्वार थे। उसके भीतर खम्भे वैडूर्य रत्न निर्मित तथा विविध मणिरत्न खचित थे, अत्यन्त उज्जवल थे। उसका भूमि भाग सर्वथा समतल, विशाल और अति रमणीय था। उस भवन पर अनेक पशु-पक्षी, मनुष्य आदि के भिन्न-भिन्न प्रकार के चित्र बने थे। वे भवन अत्यन्त उज्जवल आभा से देदीप्यमान थे। देखते ही दर्शकों के नेत्र उनमें रम जाते थे। उसके शिखरों पर नाना प्रकार के घंटे, ध्वजाएं, फहराती थीं जिनमें घटियाँ लगी थी जिससे वह बड़ा सुहाना लगता था। वह भवन अत्यन्त खेत एवं चमकीला था। ऐसा लगता था कि उससे खेत किरणें प्रस्फुटित हो रही हों। वह अत्यंत सुगंधित, बहुविध पुष्पों के सौरभ से महकता था। इस प्रकार वह भवन बड़ा रमणीय और कमनीय था।

आठ श्रेष्ठ कन्याओं के साथ प्राणिग्रहण

(१०४)

तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स अम्मा पियरो मेहं कुमारं सोहणंसि तिहिकरण-णक्खत्त-मुहुत्तंसि सिरिसियाणं सिरिसव्वयाणं सिरिसत्त्याणं सिरिस लावण्ण-रूव-जोव्वण-गुणोववेयाणं सिरिसएहिंतो रायकुलेहिंतो आणिल्लियाणं पसाहणहंग-अविहववहु-ओवयण मंगल-सुजंपिएहिं अट्टिहें रायवर-कण्णाहिं सिद्धिं-एग-दिवसेणं पाणिं गिण्हाविंसु।

शब्दार्थ - करण - ज्योतिष के अनुसार एक दिन के भाग, सरिसियाणं - शारीरिक दृष्टि से सदृश, सरिसव्याणं - समान या समुचित आयु युक्त, सरिसव्याणं - समान त्वचा युक्त-सुकुमारता युक्त, लावण्ण-रूव-जोव्वण-गुणोववियाणं - समान लावण्य, रूप, यौवन एवं गुण युक्त, सरिसएहिंतो- सदाचार आदि गुणों में अपने समान, रायकुलेहिंतो - राजकुलों से, आणिल्लियाणं - लाई हुई, अट्टंग-मस्तक, वक्षस्थल, उदर, पृष्ठ, दो भुजाएं, दो जंघाएं- ये आठ अंग, पसाहण - प्रसाधन-शुभ लक्षण युक्त-सुसज्जित, अविहववह - अविधवा- सुहागिन स्त्रियां, ओवयण - दिध, अक्षत आदि मांगिलक पदार्थों द्वारा शुभोपचार, मंगल सुजंपिएहिं - मंगलगान करती हुई, रायवरकण्णाहिं - श्रेष्ठ राज कन्याओं के साथ, एगदिवसेणं- एक दिन में ही, पाणि गिण्हाविंसु - पाणिग्रहण करवाया।

भावार्थ - मेघकुमार के माता-पिता ने शुभ तिथि, करण, नक्षत्र एवं मुहूर्त में उसका आठ श्रेष्ठ राज कन्याओं के साथ एक ही दिन पाणिग्रहण संस्कार कराया। वे राज-कन्याएं शारीरिक दृष्टि से राजकुमार के समान, अवस्था में उसके अनुरूप, कान्ति में समकक्ष, लावण्य, रूप यौवन एवं गुणों में राजकुमार के सर्वथा सदृश तथा समान राज कुलों में उत्पन्न थीं। आठ अंगों में आभूषण धारण की हुई सुहागिन नारियों द्वारा किये गये शुभोपचार तथा मंगलगान के बीच विवाह-संस्कार सम्पन्न हुआ।

स्बेहोपहार

(৭০২)

तए णं तस्स मेहस्स अम्मापियरो इमं एयारूवं पीइदाणं दलयंति-अट्ट हिरण्णकोडीओ अट्ट सुवण्णकोडीओ गाहाणुसारेण भाणियव्वं जाव पेसण-कारियाओ अण्णं च विपुलं धण-कणग-रयण-मणि-मोत्तिय-संख-सिलप्प-वाल-रत्तरयण-संतसार-सावएजं अलाहि जाव आसत्तमाओ कुलवंसाओ पकामं दाउं पकामं भोतुं पकामं परिभाएउं।

शब्दार्थ - अड हिरण्णकोडीओ - आठ करोड़ रजत मुद्राएं, अड सुवण्ण कोडीओ - आठ करोड़ स्वर्ण मुद्राएं, गाहाणुसारेण - गाथाओं के अनुसार, भाणियव्वं - कथन करना चाहिए, पेसणकारियाओ- प्रेषणकारिका-कार्य सम्पादन हेतु बाहर भेजी जाने वाली सेविकाएं अथवा धान्य आदि पीसने वाली सेविकाएँ, अण्णं च - अन्य और भी, पवाल - मूंगा, रत्तरयण - लाल रतन, संतसार-सावएजं - उत्तम सार भूत द्रव्य, अलाहिं - पर्याप्त, आसत्तमाओ - सात तक, कुलवंसाओ - पीढ़ियां, पकामं - अत्यन्त, दाउं - देने के लिए, भोतुं - भोगने के लिए, परिभाएउं - परिभाग हेतु, बन्धु-बान्धवों में विभक्त करने हेतु।

भावार्थ - मेघकुमार के माता-पिता ने इन नव परिणीता आठ वधुओं को आठ करोड़ रजत मुद्रा, आठ करोड़ स्वर्ण मुद्रा, पेसणकारिका आदि सेविकाएं तथा और भी अत्यधिक धन, स्वर्ण, रत्न, मिण मोती, शंख, मूंगें, लालें आदि सारभूत पर्याप्त द्रव्य स्नेहोपहार में दिया, जो उनके लिए सात पीढ़ियों तक दान, भोग तथा बन्धु-बान्धवों में विभाजन-वितरण की दृष्टि से पर्याप्त था। (यहां अन्यत्र टीका आदि में प्रतिपादित गाथाओं के अनुसार स्नेहोपहार विषयक विस्तृत वर्णन ग्राह्य है।)।

(१०६)

तए णं से मेहे कुमारे एगमेगाए भारियाए एगमेगं हिरण्णकोडिं दलयइ एगमेगं सुवण्णकोडिं दलयइ जाव एगमेगं पेसणकारिं दलयइ अण्णं च विउलं धण-कणग जाव परिभाएउं दलयइ। शब्दार्थ - एगमेगाए - प्रत्येक, भारियाए - पत्नी के लिए, अण्णं - अन्यान्य।

भावार्थ - मेघकुमार ने प्रत्येक पत्नी को एक-एक करोड़ रजत मुद्राएं, एक-एक करोड़ स्वर्ण मुद्राएं, प्रेषणकारिका दासियां तथा विपुल धन, स्वर्ण, रत्न आदि प्रदान किये जो सात पीढियों तक उनके लिए दान, भोग एवं विभाग-वितरण आदि में पर्याप्त रह सकें।

(909)

तए णं से मेहे कुमारे उप्पिं पासायवरगए फुट्टमाणेहिं मुइंग-मत्थएहिं वरतरूणि संपउत्तेहिं बत्तीसइ बद्धएहिं णाडएहिं उविगज्जमाणे-उविगजमाणे उवलालिज्जमाणे-उवलालिज्जमाणे सद्द-फिरस-रस रूव-गंध-विउले माणुस्सए कामभोगे पच्चणु-भवमाणे विहरइ।

शब्दार्थ - उप्पिं - ऊपर, पासायवरगए - उत्तम भवन स्थित, फुट्टमाणेहिं - स्फुटित होते हुए-निकलते हुए, मुइंग-मत्थएहिं - मृदर्गों के मस्तकं-अग्रभाग, संपउत्तेहिं - संप्रयुक्त किए हुए, बत्तीसइ बद्धएहिं - बत्तीस प्रकार के, णाडएहिं - नाटकों द्वारा, उविगिज्जमाणे - उपगीयमान-गाए जाते हुए, उवलालिज्जमाणे - उपलालित किया जाता हुआ-लडाया जाता हुआ, पच्चणुभवमाणे - प्रत्यनुभव करता हुआ-भोगता हुआ।

भावार्थ - मेघकुमार अपने महल के ऊपरी भाग में शब्द, रस, रूप, गंध विषयक उत्तम भोग भोगता हुआ रहने लगा। वहाँ सुन्दर मृदंगों से निकलती हुई ध्वनि के साथ तरुणियों द्वारा किये जाते हुए बत्तीस प्रकार के नाटकों का तद्गत् संगान (गायन) का आनंद लेता रहता, मनोरंजन करता रहता।

भगवान् महावीर स्वामी का पदार्पण

(9°¤)

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे पुळाणुपुळिं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे सुहंसुहेणं विहरमाणे जेणामेव रायगिहे णयरे गुणसिलए चेइए जाव विहरइ।

शब्दार्थ - पुव्वाणुपुव्विं - अनुक्रम से-तीर्थंकर परंपरा के अनुरूप, चरमाणे - चलते हुए।

भावार्थ - उस काल-वर्तमान अवसर्पिणी के चौथे आरे के अन्त में, जब राजा श्रेणिक मगध का सम्राट था, भगवान् महावीर स्वामी तीर्थंकर परंपरा के अनुरूप चलते हुए, ग्रामानुग्राम सुखपूर्वक विचरण करते हुए राजगृह नगर के गुणशील नामक चैत्य में पधारे। वहाँ यथोचित स्थान ग्रहण कर अवस्थित हुए।

तए णं से रायगिहे णयरे सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर० महया बहुजण सद्देइ वा जाव बहवे उग्गा भोगा जाव रायगिहस्स णयरस्स मज्झंमज्झेणं एगदिसिं एगाभिमुहा णिग्गच्छंति, इमं च णं मेहे कुमारे उप्पिंपासायवरगए फुट्टमाणेहिं मुयंग-मत्थएहिं जाव माणुस्सए कामभोगे भुंजमाणे रायमग्गं च आलोएमाणे एवं च णं विहरइ।

शब्दार्थ - बहुजण सदेइ - बहुत से लोगों के शब्द-कोलाहल, उग्गा - उग्र-भगवान् ऋषभदेव द्वारा अवस्थापित आरक्षक वंशोत्पन्न, भोगा - भगवान् ऋषभदेव द्वारा अवस्थापित उच्चपदस्थ भोग कुलोत्पन्न, आलोएमाणे - अवलोकन करता हुआ!

भावार्थ - उस समय का प्रसंग है, राजगृह नगर के चौराहों राजमार्गों, आदि में बहुत से लोगों का शब्द-कोलाहल हो रहा था। अनेक उग्र कुल एवं भोगकुलोत्पन्न तथा अन्य सामंत आदि विशिष्ट जन एक दिशा की ओर गमनोन्मुख थे। उस समय मेघकुमार अपने प्रासाद के ऊपर स्थित था। मृदंगें बज रही थीं, संगीत चल रहा था। वह उनका आनंद लेता हुआ, राजमार्ग का अवलोकन कर रहा था।

(990)

तए णं से मेहे कुमारे ते बहवे उग्गे भोगे जाव एगदिसाभिमुहे णिग्गच्छमाणे पासड़, पासित्ता कंचुड़ज-पुरिसं सद्दावेड्, सद्दावेत्ता एवं वयासी-''किण्णं भो देवाणुप्पिया! अज्ञ रायगिहे_णयरे इंदमहेड़ वा खंदमहेड़ वा एवं रुद्द-सिव-वेसमण-णाग-जक्ख-भूय-णई-तलाय-रुक्ख-चेड्डय-पव्वय-उज्जाण-गिरिजत्ताइ वा जओ णं बहवे उग्गा भोगा जाव एगदिसिं एगाभिमुहा णिग्गच्छंति?''

शब्दार्थ - इंदमहेइ - इन्द्रमहोत्सव, खंदमहेइ - स्कंद-स्वामी कार्तिकेय महोत्सव, रुद्द-रुद्र, सिव- महादेव, वेसमण - वैश्रमण - कुबेर, णाग - नागदेव, जक्ख - यक्ष, भूय -भूत, णई - नदी, तलाय - तड़ाग - तालाब, जनाइ - यात्रा आदि, जओ - जिसके कारण। भावार्थ - जब मेघकुमार ने देखा कि बहुत से उग्रवंशीय, भोगवंशीय आदि विशिष्ट जन एक दिशा की ओर जा रहे हैं तो उसने कंचुकी पुरुष को बुलाया और कहा कि देवानुप्रिय! क्या आज राजगृह नगर में इन्द्र, स्कन्द, रुद्र, शिव, कुबेर आदि किन्हीं देवों से अथवा किसी नदी, सरोवर, पर्वत यात्रा आदि से संबद्ध कोई महोत्सव है, जिससे ये लोग एक ही दिशा की ओर जाते हुए दिखलाई दे रहे हैं?

(999)

तए णं से कंचुइज-पुरिसे समणस्स भगवओ महावीरस्स गिहया-गमण-पिवत्तीए मेहं कुमारं एवं वयासी-णो खलु देवाणुप्पिया! अज्ज रायगिहे णयरे इंदमहेड वा जाव गिरिजताइ वा जं णं एए उग्गा जाव एगिदिसं एगिभिमुहा णिगाच्छंति एवं खलु देवाणुप्पिया! समणे भगवं महावीरे आइगरे तित्थगरे इहमागए इह संपत्ते इह समोसढे इह चेव रायगिहे णयरे गुणसिलए चेइए अहापिडिस्तवं जाव विहरइ।

शब्दार्थ - आगमणपवित्तिए - आने का वृत्तांत, समोसढे - समवसृत हुए हैं-पधारे हैं। भावार्थ - तब कंचुकी ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के आगमन का वृत्तांत जानकर मेधकुमार को इस प्रकार कहा-देवानुप्रिय! आज राजगृह नगर में इन्द्र महोत्सव एवं पर्वत यात्रा आदि से संबद्ध कोई महोत्सव नहीं है। लोग किसी महोत्सव को उद्दिष्ट कर नहीं जा रहे हैं। धर्म-तीर्थ के एतद्युगीन आद्य-प्रणेता, श्रमण भगवान् महावीर स्वामी समवसृत हुए हैं, पधारे हैं। वे गुणशील चैत्य में यथोचित अवग्रह मर्यादानुमोदित स्थान याचित कर विराजे हैं।

(997)

तए णं से मेहे कुमारे कंचुइजपुरिस्स अंतिए एयमट्टं सोच्चा णिसम्म हह तुहे कोडुंबिय पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी-खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! चाउग्गघंटं आसरहं जुत्तामेव उवट्टवेह तहत्ति उवणेंति।

शब्दार्थ - चाउन्घंटं - चारों और घंटाओं से युक्त, आसरहं - अश्वरथ, जुत्तामेव - जोडकर, उवड्रवेह - उपस्थित करो।

भावार्थ - मेघकुमार कंचुकी से यह सुनकर बहुत हर्षित और प्रसन्न हुआ। उसने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और उनसे कहा-देवानुप्रियो! शीघ्र ही चातुर्घण्ट अश्वरथ को जुड़वा कर यहाँ उपस्थित करो। कौटुंबिक पुरुषों ने वैसा ही किया।

मेघकुमार द्वारा भगवान् की पर्युपासना (११३)

तए णं से मेहे ण्हाए जाव सव्वालंकार विभूसिए चाउग्घंटं आसरहं दुरूढे समाणे सकोरंट-मल्लदामेणं छत्तेणं धरिजमाणेणं महया भड-चडगर-विंद-परियाल-संपरिबुडे रायगिहस्स णयरस्स मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता जेणामेव गुणिसलए चेइए तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स छत्ताइच्छत्तं पडागाइपडागं विजाहर-चारणे जंभए य देवे ओवयमाणे उप्पयमाणे पासइ, पासित्ता चाउग्घंटाओ आसरहाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ताः समणं भगवं महावीरं पंचविहेणं अभिगमेणं अभिगच्छइ तंजहा-१. सचित्ताणं दव्वाणं विउसरणयाए २. अचित्ताण दव्वाणं अविउसरणयाए, ३. एगसाडियं उत्तरासंगकरणेणं, ४. चक्खुष्फासे अंजलिपग्गहेणं, ४. मणसो एगत्ती करणेणं। जेणामेव समणे भगवं महावीरे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरे तिकखुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स णच्चासण्णे णाइदूरे सुस्सूसमाणे णमंसमाणे पंजलिउडे अभिमुहे विणएणं पज्जुवासइ।

शब्दार्थ - ओवयमाणे - नीचे उतरते हुए, उप्पयमाणे - ऊपर जाते हुए, पच्चोरुहड़ - नीचे उतरता है, पंचिवहेण - पांच प्रकार के, अभिगमेणं - सावद्य-व्यापार के परित्याग पूर्वक अभिगच्छड़ - सामने जाता है, सिचत्ताणं - सिचत - प्राणयुक्त, दव्वाणं - द्रव्यों का, विउसरणयाए-व्युत्सर्जन-त्याग, अचित्ताणं - अचित्त, एगसाडिय - एक शाटिक-दुपट्टा, उत्तरासंग करणेणं - मुंह पर से कंधों पर डालते हुए, चक्खुप्फासे - दृष्टिगोचर होते ही, अंजलिपग्गहेणं - हाथ जोड़कर, एगत्तीकरणेणं - एकाग्र करके, पज्जुवासड़ - पर्युपासना करता है।

भावार्थ - तब मेघकुमार ने स्नान किया। सुंदर वस्त्र एवं अलंकारों से विभूषित हुआ। वातुर्घण्ट अश्वरथ पर सवार हुआ। राजगृह के बीच से वह निकला। उस पर कोरण्ट पुष्प की मालाएँ लगी हुई है ऐसा छत्र तना था। अनेक सामंत, थोद्धा, श्रेष्ठिजन एवं नागरिक वृंद से वह घिरा था। वह चल कर गुणशील चैत्य में पहुँचा। वहाँ छत्रों पर छत्र और पताकाओं पर पताकाएं आदि, भगवान् महावीर के अतिशयों को देखा। साथ ही साथ यह भी देखा कि विद्याधर चारण मुनि तथा जृंभक देव नीचे उतर रहे हैं, ऊपर जा रहे हैं। यह सब देखकर वह अश्वरथ से नीचे उतरा और पांच प्रकार के अभिगम पूर्वक श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के सम्मुख आया। वे पांच प्रकार के अभिगम इस प्रकार हैं - उसने १. पुष्पादि सचित्त द्रव्यों का त्याग किया, २. वस्त्र आदि अचित्त द्रव्यों को सुव्यवस्थित किया, ३. दुपट्टे (बिना सिला हुआ कंधों पर डालने का सफेद वस्त्र) को मुँह पर से कन्धों पर रखा, ४. भगवान् महावीर पर दृष्टि पड़ते ही हाथ जोड़े तथा ५. मन को उनकी ओर एकाग्र किया।

यों पांच अभिगम पूर्वक वह भगवान् महावीर स्वामी के सान्निध्य में आया। उनको तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा पूर्वक (सिरसावर्त पूर्वक) वंदन, नमस्कार किया तथा न उनसे अधिक दूर एवं न अधिक निकट स्थित होकर हाथ जोड़ता हुआ नमस्कार करता हुआ विनयपूर्वक उनकी पर्युपासना करने लगा।

दीशा की भावना का उद्भव

(११४)

तए णं समणे भगवं महावीरे मेहस्स कुमारस्स तीसे य महइमहालियाए परिसाए मञ्झगए विचित्तं धम्ममाइक्खइ -

''जहा जीवा बज्झंति मुच्चंति जह य संकिलिस्संति। धम्मकहा भाणियव्वा जाव परिसा पडिगया।।''

शब्दार्थ - विचित्तं - विचित्र-विविध प्रकार से, आइक्खड़- आख्यात (कथन) करते हैं, बज्झंति- बद्ध होते हैं, मुच्चंति - मुक्त होते हैं, जह - यथा, संकिलिस्संति - घोर कष्ट पाते हैं, भाणियव्वा - कहना चाहिये।

भावार्थ - तब श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने मेधकुमार एवं अतिविशाल परिषद् के

www.jainelibrary.org

बीच, जीव किस प्रकार कर्मबद्ध होते हैं, किस प्रकार कर्म-मुक्त होते हैं तथा किस प्रकार स्वकृत कर्मों के कारण घोर कष्ट पाते हैं इत्यादि का विवेचन किया। अन्य आगमों में इस संदर्भ में आया हुआ वर्णन यहाँ ग्राह्म है। उपदेश सुनकर जन समूह वापस लौट गया।

प्रवज्या का संकल्प

(११५)

तए णं से मेहे कुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म हट्ट तुट्टे समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ णमंसइ, वं० २ ता एवं वयासी-''सदहामि णं भंते! णिगांधं पावयणं एवं पत्तियामि णं, रोएमि णं, अब्भुट्टेमि णं भंते! णिगांधं पावयणं, एवमेयं भंते! तहमेयं भंते! अवितहमेयं भंते! इच्छिमेयं भंते! पडिच्छियमेयं भंते! इच्छिय-पडिच्छियमेयं भंते! से जहेव तं तुब्भे वयह, जं णवरं देवाणुप्पिया! अम्मापियरो आपुच्छामि, तओ पच्छा मुंडे भवित्ता णं पव्वइस्सामि।'' ''अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं करेह।''

शब्दार्थ - सद्दामि - श्रद्धा करता हूँ, णिगांथं - निर्मंथ-राग-द्वेषादि ग्रंथि रहित, पावयणं - प्रवचन, पत्तियामि - प्रतीति करता हूँ, रोएमि - रुचि करता हूँ, अब्भुद्धेमि - अभ्युत्थित-पालनार्थ उद्यत होता हूँ, एवमेयं - ऐसा ही है, तहमेयं - तथ्यपूर्ण-युक्ति युक्त, अवितहमेयं - अवितथ-सत्य प्रत्यक्षादि प्रमाणों से अबाधित, इच्छिय - इष्ट-अभिलिषत, पिडिच्छिय - प्रतीच्छित-विशेष रूप से वांछित, वयह- कहते हैं, णवरं - केवल, आपुच्छामि- पूछ लूँ, पश्चात्, मुंडे - मुंडित, पव्वइस्सामि- प्रव्रज्या ग्रहण करूंगा, अहासुहं - यथा-सुख, पिडिच्छं - विलम्ब।

भावार्थ - मेघकुमार श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से धर्म का श्रवण कर बहुत ही हर्षित और परितुष्ट हुआ। उसने भगवान् को विधिवत् तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा पूर्वक वंदन किया, नमस्कार किया और कहा - भगवन्! मेरे मन में निर्प्रंथ प्रवचन के प्रति श्रद्धा, प्रतीति एवं अभिरुचि उत्पन्न हुई है। मैं उस दिशा में आगे बढ़ने हेतु उद्यत हूँ। भगवन्! निर्प्रंथ प्रवचन जैसा आपने उपदिष्ट किया, वैसा ही है। वह तथ्य, सर्वथा रात्य, अबाधित है। वह अत्यंत वांछित

है। वह वैसा ही है, जैसा आफ्ने फरमाया। भगवन्! केवल इतना सा निवेदन है, मैं माता-पिता की आज्ञा ले लूँ, तत्पश्चात् मुंडित होकर प्रव्रज्या ग्रहण करूँगा।

भगवान् ने कहा - देवानुप्रिय! जिससे तुम्हें सुख हो, तुम्हारी आत्मा को शांति प्राप्त हो, वैसा करो। विलम्ब मत करना।

विवेचन - मेघकुमार अपने युग के महान् समृद्धिशाली, वर्चस्वी, तेजस्वी और शक्तिशाली मगध नरेश श्रेणिक का पुत्र था। उसके वैभव की सीमा नहीं थी। आठ-आठ सुंदर पत्नियों का वह पित था। दिन-रात संगीत, नाट्य, खान-पान एवं भोग-विलास आदि सभी ऐहिक सुखों की सुविधाएँ उसे प्राप्त थीं।

राजगृह में भगवान् महावीर का पदार्पण होने पर वह पहली बार उनके दर्शन करता है। भगवान् के अतिशय, उनके त्याग, तपोमय-तेजोमय विराट् व्यक्तित्व, अद्भूत वैराग्य छटा तथा निश्चल प्रशांत-भाव को देखता है। यह भी देखता है कि संयम के समक्ष दिव्य शक्तियाँ भी नतमस्तक हैं। भीतर ही भीतर वह सहसा आंदोलित हो उठता है। श्रद्धा, आदर और भिक्त से भगवान् के चरणों में झुक जाता है। भगवान् की धर्म-देशना सुनता है। एक ही बार में इतना प्रभावित होता है कि वैभव और मोहमाया मय जगत् का परित्याग कर संयममय जीवन अपनाने को उत्साहित हो उठता है।

बड़ा आश्चर्य है, विपुल भोगमय जीवन जीने वाले व्यक्ति के मन में सहसा यह परिवर्तन क्यों आ जाता है?क्योंकि दूसरी ओर ऐसा भी देखा जाता है कि दीर्घकाल पर्यंत धर्म-प्रवचन-श्रवण करते रहने पर भी मन नहीं बदलता। संसार में रमा रहता है। वहाँ धर्म-प्रवचन कुछ काल के लिए मन के रंजक मात्र रह जाते हैं। मेघकुमार भी एक मानव था, दूसरे भी मानव हैं। फिर इतना बड़ा अंतर क्यों है, धार्मिक जगत् के समक्ष एक प्रश्न है?

यद्यपि पूर्वतन संस्कार कर्मों का हलकापन-पतलापन इत्यादि तो इसके कारण हैं ही किंतु इन सबसे बढ़ कर एक महत्त्वपूर्ण कारण उपदेष्टा का स्वयं का जीवन है। परम त्यागी, वैरागी, सद्व्रती, तपोनिष्ठ, साधना-निष्णात, आर्जव, मार्दव, औदार्य आदि गुणों से संपन्न उपदेष्टा के मुँह से जो वाणी निकलती है, उसमें चाहे शाब्दिक आलंकारिकता या बाह्य सुंदरता न भी हो तो भी एक ऐसा ओज एवं तेज होता है कि सहसा वह श्रोतृवृंद पर प्रभाव डालती है। भगवान् महावीर स्वामी का व्यक्तित्व ऐसी ही अपरिसीम आध्यात्मिक विराद्ताओं से संवलित था। यही कारण है कि उनकी धर्म-देशना तत्काल श्रोताओं को प्रभावित करती। केवल मेघकुमार ही नहीं,

समय-समय पर जब-जब, जहाँ-जहाँ उनकी धर्म देशनाएँ होतीं, अनेक राजामहाराजा, सामंतगण, श्रेष्ठिजन आदि तत्क्षण प्रभावित होते और संयममय साधु-जीवन अपना लेते।

माता-पिता से निवेदन

(११६)

तए णं से मेहे कुमारे समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वं० २ ता जेणामेव चाउग्घंटे आसरहे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छिता चाउग्घंटं आसरहं दुरूहइ, दुरूहित्ता महया भड-चड-गर-पहकरेणं रायगिहस्स णयरस्स मज्झंमज्झेणं जेणामेव सए भवणे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चाउग्घंटाओ आसरहाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणामेव अम्मापियरो तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अम्मापिऊणं पायवर्डणं करेइ, करेता एवं वयासी-''एवं खलु अम्मयाओ! मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मे णिसंते, सेवि य मे धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए।''

शब्दार्थ - अम्मापिऊणं - माता-पिता के, पायवडणं - पाद-वंदन-चरणों में प्रणाम, अम्मयाओ- माता-पिता, णिसंते - श्रवण किया, अभिरुइए - अभिरुचित-रुचिपूर्व।

भावार्थ - मेघकुमार ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वंदन नमस्कार किया। वह अपने चातुर्घण्ट अश्वरथ पर आरूढ़ हुआ। सामंतों योद्धाओं एवं विशिष्टजनों के समूह के साथ राजगृह नगर के बीचोंबीच चलता हुआ, अपने भवन में पहुँचा। रथ से उतरा तथा वहाँ से चलकर जहाँ माता-पिता थे, वहाँ आया। उनके चरणों में वंदन किया और निवेदन किया-माताश्री-पिताश्री! मैंने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास धर्म का श्रवण किया है। उसमें मेरी इच्छा-अभिलाषा और अभिरुचि उत्पन्न हुई है।

(999)

तए णं तस्स मेहस्स अम्मापियरो एवं वयासी-धण्णोसि तुमं जाया। संपुण्णोसि० कयत्थोसि० कयलक्खणोसि तुमं जाया! जण्णं तुमे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मे णिसंते, से वि य ते धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए।

शब्दार्थ - जाया-पुत्र, संपुण्णो - पुण्यवान, कयलक्खणो - कृतलक्षण-शुभलक्षण युक्त। भावार्थ - मेघकुमार का कथन सुनकर माता-पिता ने कहा - पुत्र! तुमने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से धर्म का श्रवण किया, तुम्हारे मन में धर्म के प्रति इच्छा, अभिलाषा और अभिरुचि उत्पन्न हुई, तुम वास्तव में धन्य, पुण्यशाली, कृतार्थ और भाग्यशाली हो।

(995)

तए णं से मेहे कुमारे अम्मापियरो दोच्चंपि तच्चंपि एवं वयासी-एवं खलु अम्मयाओ! मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मे णिसंते, से वि य मे धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए, तं इच्छामि णं अम्मयाओ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए मुंडे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए।

शब्दार्थ - अब्भणुण्णाए - अभ्यनुज्ञात-आज्ञा पाकर।

भावार्थ - मेघकुमार ने अपने माता-पिता को दूसरी बार, पुनः तीसरी बार इस प्रकार कहा-माताश्री-पिताश्री! मैंने भगवान् महावीर स्वामी के पास जो धर्म श्रवण किया है, वह इच्छित, वांछित और अभिरुचिकर है। मैं आपसे आज्ञा प्राप्त कर, गृहत्याग कर, भगवान् महावीर स्वामी के पास अनगार धर्म श्रमण-दीक्षा ग्रहण करना चाहता हूँ।

माता की भाव-विह्नलता (११६)

तए णं सा धारिणी देवी तं अणिट्ठं अकंतं अप्पियं अमणुण्णं अमणामं असुयपुव्वं फरुसं गिरं सोच्चा णिसम्म इमेणं एयारूवेणं मणो-माणिसएणं महया पुत्तदुक्खेणं अभिभूया समाणी सेयागय-रोमकूव-पगलंत-विलीणगाया सोयभर-पवेवियंगी णित्तेया दीण-विमण-वयणा करयल-मिलयव्व कमलमाला

तक्खण-ओलुग्ग-दुब्बल-सरीरा-लावण्ण-सुण्ण-णिच्छाय-गयसिरीया पिसिढिल-भूसण- पडंतखुम्मिय-संचुण्णियधवलवलय-पब्भट्ट-उत्तरिजा सूमाल-विकिण्ण-केसहत्था मुच्छावस-णट्ट-चेयगरुई परसुणियत्तव्व चंपगलया णिव्वत्तमहेव इंदलट्ठी विमुक्क-संधिबंधणा कोट्टिमतलंसि सव्वंगेहिं धसित पडिया।

शब्दार्थ - अणिट्ठं - अनिष्ट, अकंतं - अकान्त-अकमनीय, अप्पियं - अप्रिय, अमणुण्णं - अमनोज्ञ, अमणामं - अमनोरम, असुयपुद्धं - अश्रुतपूर्व-पहले नहीं सुना हुआ, फरुसं - परुष, कठोर, अभिभूया- अभिभूत-प्रभावित, सेय - स्वेद-पसीना, पगलंत -प्रगलन्त-स्रवित होते (झरते) हुए, सोय - शोक, भर - भार, पवेवियंगी - प्रकंपित अंग, णित्तेया - निस्तेज, दीण - दैन्य युक्त, विमण- विमनस्क-उदास, करयल मिलय - हाथों से मसली हुई, तक्खण - तत्क्षण, ओलुग्ग - अवरुग्ण-रुग्णतायुक्त, लावण्णसुण्ण -लावण्यरहित, णिच्छाय - द्युतिविहीन, गयसिरीया - गनश्रीका-शोभारहित, पसिदिल -प्रशिथिल-अत्यंत ढीले, **पडंत -** गिरते हुए, **खुम्मिय -** चक्कर खाती हुई, **संचुण्णिय** -संचूर्णित-टूटे हुए, पञ्भट्ट - प्रभृष्ट-खिसक गया, विकिण्ण - विकीर्ण-फैले हुए, केसहत्थ-केशपाश, मुच्छावस - मूर्च्छा-बेहोशी के कारण, णडुचेयगरुई - चेतना के नष्ट हो जाने से निढाल, परसुणियत्त - कुल्हाड़ों से काटी हुई, णिव्वत्तमहेव - महोत्सव के समाप्त हो जाने पर, इंदलट्ठी - इंद्रस्तंभ, विमुक्क - श्लिथत-शिथिलता युक्त, संधिबंध - शरीर के जोड़, कोट्टिमतलंसि - मणि रत्न जटित आंगन पर, सव्वंगेहिं - सभी अंगों से, धसत्ति- धड़ाम से। भावार्थ - मेघकुमार ने जो कहा, रानी धारिणी ने वैसा कभी सुना ही नहीं था। उसको वह बड़ा अनिष्ट, अवांछित, अमनोज्ञ प्रतीत हुआ। ऐसी बात सुनते ही उसके मन पर पुत्र के वियोग का दुःख छा गया। उसके शरीर पर पसीना आ गया, रोम कुपों से चूते स्वेद कणों से उसका शरीर व्याप्त हो गया। शोक से उसके अंग कांपने लगे। वह निस्तेज-सी हो गई। उसके चेहरे पर दीनता एवं उदासीनता छा गई। वह हाथों से मसली हुई कमल माला सी प्रतीत होने लगी। उसका शरीर तत्क्षण रुग्ण एवं दुर्बल जैसा हो गया। उसका लावण्य आभा और श्री विहीन हो गया। उसके आभूषण ढीले पड़कर गिरने लगे। उसके उज्ज्वल वलय-कंगन खिसक कर भूमि पर गिर पड़े और चूर चूर हो गए। उसका उत्तरीय वस्त्र खिसक गया। सुकोमल

केश राशि बिखर गयी। मूर्च्छा के कारण वह निढाल हो गई। कुठार से काटी गई चंपक लता जैसी प्रतीत होने लगी। इन्द्र-महोत्सव के समाप्त हो जाने पर, इन्द्र स्तंभ के समान वह शोभाविहीन हो गई। उसके शरीर के जोड़ ढीले पड़ गए तथा वह रत्न-जटित आंगन पर धड़ाम से गिर पड़ी।

(9२०)

तए णं सा धारिणी देवी ससंभमो-वित्तवाए तुरियं कंचणिभंगार-मुह विणिग्गय-सीयल जल-विमलधाराए परिसिंचमाणा णिव्वाविय-गायलद्ठी उक्खेवण-तालविंट वीयणग-जिणयवाएणं सफुसिएणं अंतेउर-परियणेणं आसासिया समाणी मुत्ताविल-सिण्णिगास-पवडंत-अंसुधाराहिं सिंचमाणी पओहरे कलुण-विमणदीणा रोयमाणी कंदमाणी तिप्पमाणी सोयमाणी विलवमाणी मेहं कुमारं एवं वयासी।

शब्दार्थ - ससंभ - अकस्मात, घबराहट के साथ, उवित्तयाए - उडेले गए, भिंगार - झारी, उक्खेवण - उत्क्षेपण-विशेष रूप से हवा करने वाले, तालविंट - ताड़ के पते से बने, वीयणग - वीजनक-पंखा, सफुसिएणं - जलकणयुक्त, अंतेउर-परियणेणं - अंतःपुर की दासियों द्वारा, आसासिया- आश्वासित-होश में लाई गई, मुत्ताविल - मोतियों की माला, सिण्णिगास - सदृश, अंसु-अश्रु, पओहरे- पयोधर-स्तन, कलुण - कारूण्य युक्त, रोयमाणी-रोती हुई, कंदमाणी - उच्च स्वर से क्रन्दन करती हुई, तिप्पमाणी - पसीना तथा लार गिराती हुई, सोयमाणी - हृदय से शोक करती हुई, विलवमाणी- आर्तस्वर से विलाप करती हुई।

भावार्थ - दासियों ने जब यों देखा तो उन्होंने तत्काल, शीघ्रता से, हड़बड़ाहट के साथ, सोने की झारी से रानी पर शीतल जल की निर्मल धारा से पानी छिड़का, जिससे उसका शरीर शीतल हो गया। ताड़ के पत्तों से बने हुए पंखे से उन्होंने रानी पर हवा की। वह हवा जलकणों के मिश्रण से बड़ी शीतल थी। रानी होश में आई, उसकी आँखों से मोतियों की माला के समान आँसुओं की धारा बहती हुई, उसके स्तनों पर गिरने लगी। वह दयनीय, उदास और दीनता पूर्ण दिखाई देने लगी। वह रदन एवं क्रंदन करने लगी। उसकी देह से पसीना टपकने लगा। हृदय शोक-संविम्न हो गया। वह विलाप करती हुई मेधकुमार से बोली।

(939)

तुमं सि णं जाया! अम्हं एगे पुत्ते इट्ठे कंते पिए मणुण्णे मणामे थेजे वेसासिए सम्मए बहुमए अणुमए भंडकरंड समाणे रयणे रयणभुए जीवियउस्साए हिययाणंदजणणे उंबरपुष्फं व दुल्लहे सवणयाए किमंग पुण पासणयाए, णो खलु जाया! अम्हे इच्छामो खणमिव विष्यओगं सिहत्तए, तं भुंजाहि ताव जाया। विपुले माणुस्सए कामभोगे जाव ताव वयं जीवामो, तओ पच्छा अम्हेहिं, कालगएहिं परिणय-वए विष्ट्य-कुलवंस-तंतु-कर्जंमि णिरावयक्खे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइस्सिस।

शब्दार्थ - थेजे - स्थिरताप्रद, वेसासिए - वैश्वासिक-विश्वसनीय, संमए - सम्मत-अनुकूल कार्यकारी, बहुमए - बहुमान्य, अणुमए - सर्वमान्य, भंडकरंडग - रत्नमंजूषा-जवाहिरात की पेटी, उस्सासए - उच्छ्वास-प्राणवाय, उंबरपुष्फं - उदुंबर पुष्प-गूलर का फूल, सवणयाए - सुनने से, पासणयाए- देखने से, विष्पओगं - विप्रयोग-विरह, वियोग, सहित्तए-सहन करने के लिए, भुंजाहि- भोगो, तओ पच्छा - तत्पश्चात, कालगएहिं - कालगत होने पर-मृत्यु प्राप्त करने पर, परिणयवए - अवस्था के परिपक्व-वृद्ध हो जाने पर, विद्य-कुलवंस-तंतु - वंश वृद्धि कर, णिरावयक्खे - सांसारिक कार्यों से निरपेक्ष-निवृत्त होकर।

भावार्थ - माता ने कहा - तुम मेरे इकलौते पुत्र हो। बड़े ही इष्ट, प्रिय और मनोज्ञ हो। मेरे चित्त में स्थिरता और विश्रांति उत्पन्न करने वाले हो। तुम सभी के चहेते हो। रत्न-मंजूषा के समान बहुमूल्य हो। जीवन के लिए प्राण स्वरूप, हृदय के लिए आनंद प्रद हो। जिस प्रकार उदुम्बर के फूल के संबंध में सुनना ही दुर्लभ है, देखने की तो बात ही क्या, तुम वैसे ही दुर्लभ हो। पुत्र! हम क्षण भर भी तुम्हारा वियोग नहीं चाहते। जब तक हम जीवित हैं, तब तक तुम प्रचुर सांसारिक काम-भोगों का आनंद लो। हमारे कालगत हो जाने पर, पुत्र-पौत्रादि कुल परंपरा के संवर्धित हो जाने पर, वृद्धावस्था में, जब समस्त सांसारिक अपेक्षाओं से विमुक्त हो जाओ तब श्रमण भगवान महावीर स्वामी के समीप जाकर, गृहस्थ धर्म का परित्याग कर, प्रव्रज्या स्वीकार करना।

ऐहिक भोग : असार, नश्वर

(922)

तए णं से मेहे कुमारे अम्मापिऊहिं एवं वुत्ते समाणे अम्मापियरो एवं वयासी-तहेव णं तं अम्मयाओ! जहेव णं तुम्हे ममं एवं वयह - तुमं सि णं जाया! अम्हं एगे पुत्ते तं चेव जाव णिरावयक्खे समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव पव्वइस्सिस एवं खलु अम्मयाओ! माणुस्सए भवे अधुवे अणियए असासए वसण-सउवह्वाभिभूए विज्जलया-चंचले अणिच्चे जलबुब्बुय-समाणे कुसग्ग-जल-बिंदु-सण्णिभे संझब्भराग-सिरसे सुविणदंसणोवमे सडण-पडण-विद्धंसण धम्मे पच्छा पुरं च णं अवस्स-विप्पजहणिजे, से के णं जाणइ अम्मयाओ! के पुव्विं गमणाए के पच्छा गमणाए? तं इच्छामि णं अम्मयाओ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव पव्वइत्तए।

शब्दार्थ - माणुस्सए भवे - मनुष्य भव, अधुवे - अधुव, अणियए - अनियत, असासय - अशाश्वत, वसण-सउवद्द्वाभिभूए - सैकड़ों व्यसनों विपत्तियों के उपद्रवों से युक्त, विज्ञुलया-चंचले- बिजली की तरह क्षण-भंगुर, संझब्भराग-सिरसे - सायंकालीन आकाश के रंग के समान मिट जाने वाला, सुविण-दंसणोवमे - स्वप्न-दर्शन के तुल्य, सडण-पडण - सड़ना-गिरना, विद्धंसण - विध्वस्त होना, विप्यजहणिजे - त्यागने योग्य, के - कौन?

भावार्थ - माता द्वारा यों कहे जाने पर वह मेघकुमार बोला - माताश्री! आप जो कहती हैं कि मैं आपका एक मात्र प्रिय पुत्र हूँ, वृद्धावस्था में दीक्षा ग्रहण करूँ, यह बात एक अपेक्षा से ठीक है किंतु इस संदर्भ में मेरा निवेदन है कि यह मनुष्य जीवन अशाश्वत और नश्वर है। न जाने कितनी आपदा-विपदाओं से भरा है। जिस प्रकार बिजली क्षण भर में विलुप्त हो जाती है, वैसे ही मनुष्य जीवन क्षण-भंगुर है। यह पानी के बुलबुले, दूब की नोक पर पड़ी ओस की बूँद के समान नश्वर है। संध्याकालीन आकाश में व्याप्त मेघों की लालिमा जैसा शीघ्र ही मिट जाने वाला है। यह स्वप्न-दर्शन की तरह अयथार्थ है। रोगों, उपद्रवों से सड़ना गिरना इसका स्वभाव

है। फिर कौन जानता है कि कौन संसार से पहले जाएगा और कौन बाद में जाएगा? इसलिए माताश्री! मैं आपसे आज्ञा लेकर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास प्रव्रज्या ले लूँ, यही मेरी भावना है।

(473)

तए णं तं मेहं कुमारं अम्मापियरो एवं वयासी-इमाओ ते जाया! सिरिसियाओ सिरित्तयाओ सिरिसव्वयाओ सिरिस-लावण्ण-रूव-जोव्वण-गुणोववेयाओ सिरिसेहिंतो रायकुलेहिंतो आणियल्लियाओ भारियाओ, तं भुंजाहि णं जाया! एयाहिं सिद्धं विउले माणुस्सए कामभोगे, तओ पच्छा भुत्तभोगे समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव पव्वइस्सिस।

भावार्थ - तब माता पिता ने मेघकुमार से कहा - पुत्र! तुम्हारी ये पत्नियाँ, तुम्हारे ही अनुरूप, लावण्य, यौवन, वय तथा गुणों से संपन्न हैं। हमारे सदृश राजकुलों में जन्मी हैं। इनकें साथ तुम मनुष्य जीवन के विपुल काम भोगों का सेवन करो। भोगों को भोगने के अनंतर, भगवान् महावीर स्वामी से श्रमण-प्रव्रज्या ग्रहण कर लेना।

(928)

तए णं से मेहे कुमारे अम्मापियरं एवं वयासी - तहेव णं अम्मयाओ! जं णं तुब्धे ममं एवं वयह-इमाओ ते जाया! सिरिसियाओ जाव समणस्स जाव पव्वइस्सिस, एवं खलु अम्मयाओ! माणुस्सगा काम भोगा असुई असासया वंतासवा पित्तासवा खेलासवा सुक्कासवा सोणियासवा दुरुस्सास-णीसासा दुरुयमुत्त-पुरीस-पूय-ब्रह्टपिडपुण्णा उच्चार-पासवण-खेल-जल्ल-सिंघाणग-बंत-पित्त-सुक्क-सोणियसंभवा अधुवा अणियया असासया सडण-पडण-विद्धंसण-धम्मा पच्छा पुरं च णं अवस्स विप्पजहणिजा, से के णं अम्मयाओ! जाणइ के पुव्विं गमणाए के पच्छा गमणाए? तं इच्छामि णं अम्मयाओ! जाव पव्वइत्तए। शब्दार्थ - असुई - अशुचि-अपवित्र, असासया - अशास्वत, वंत - वमन, खेल -

कफ, सुक्क - वीर्य, सोणिय - रक्त, आसत - झरने वाले, दुरुस्सास-णीसासा - दूषित उच्छ्वास-निःश्वास, दुरूय- दूषित-कुत्सित, मुत्त - मूत्र, पुरीस - मल, पूय- मवाद, उच्चार- मल, पासवण - मूत्र, जल्ल - शरीर का मल, सिंघाणग - नासिका मल।

भावार्थ - यह सुनकर मेघकुमार ने माता पिता से कहा - आप मुझे सदृश गुणयुक्त पित्नयों के साथ सुखोपभोग के अनंतर भगवान् महावीर स्वामी से दीक्षा लेने का जो कह रहे हैं, उस संबंध में मेरा आप से निवेदन है कि मनुष्य जीवन विषयक ये काम-भोग, इनके आधारभूत शरीर अपवित्र वमन, पित्त, श्लेष्म, शुक्र, रक्त इत्यादि के निर्झर हैं - इनसे ये दूषित पदार्थ झरते रहते हैं। वे इन दूषित पदार्थों तथा दूषित उच्छ्वास-निःश्वास आदि से भरे हैं। दूषित पदार्थों से ही वे उत्पन्न होते हैं। ये अनियत, अशाश्वत, जीर्ण-शीर्ण तथा नष्ट होने वाले हैं। पहले या बाद में - ये अवश्य ही छूटने वाले हैं। इसलिए कौन जाने, कौन पहले चला जाए, कौन बाद में जाए? इसलिए प्रव्रज्या लेने को मैं उत्कंठित हूँ।

(१२५)

तए णं तं मेहं कुमारं अम्मापियरो एवं वयासी - ''इमे ते जाया! अज्जय-पज्जय-पिउपज्जयागए सुबहु हिरण्णे य सुवण्णे य कंसे य दूसे य मणिमोत्तिय संख-सिलप्पवाल-रत्तरयण संतसारसावएज्जे य अलाहि जाव आसत्तमाओ कुलवंसाओ पगामं दाउं पगामं भोतुं पगामं परिभाएउं, तं अणुहोहि ताव जाव जाया! विपुलं माणुस्सगं इहिसक्कार समुदयं, तओ पच्छा अणुभूयकल्लाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए जाव पव्यइस्सिस!''

शब्दार्थ - अज्जय - पितामह, पज्जय - प्रिपतामह, पिउज्जय - पिता का प्रिपतामह, कंसे - कांसी, पगामं - प्रकाम-अत्यंत, दाउं - देने के लिए, भोतुं - भोगने के लिए, परिभाएउं - वितीर्ण करने (बांटने) के लिए, अणुहोहि - अनुभव करो, समुद्रयं - भाग्योदय, अणुभूयकल्लाणे - सर्व कल्याणकारी पुण्य कार्यों का अनुभव कर-आनंद लेकर।

भाषार्थ - तत्पश्चात् माता-पिता ने मेघकुमार से कहा - पुत्र! पितामह, प्रपितामह आदि पूर्व पुरुषों से चले आते चाँदी, सोना, कांसी, मणि, मुक्ता, शंख, बहुमूल्य पाषाण, विद्वम (मूंगा), लाल रत्न तथा और भी सारभूत द्रव्य तुम्हें प्राप्त हैं, जो सात पीढ़ियों तक भी प्रचुर

भोग, दान और परिभाजन-वितरण आदि के लिए पर्याप्त हैं। इसलिए तुम ऋद्धि, वैभव, सत्कार एवं समृद्धि का अनुभव करो-दान, भोग एवं वितरण में उपयोग करो। इस प्रकार अपने द्वारा किए गये समुचित कल्याणमय कार्यों का अनुभव करने के पश्चात् भगवान् महावीर स्वामी के पास दीक्षा ग्रहण कर लेना।

(१२६)

तए णं से मेहे कुमारे अम्मापियरं एवं वयासी-''तहेव णं अम्मयाओ! जं णं तं वयह-इमे ते जाया। अज्जग-पज्जग-पिउपज्जयागए जाव तओ पच्छा अणुभूयकल्लाणे जाव पव्वइस्सिस, एवं खलु अम्मयाओ! हिरण्णे य सुवण्णे य जाव सावएज्जे अग्गिसाहिए चोरसाहिए रायसाहिए दाइयसाहिए मच्चुसाहिए अग्गिसामण्णे जाव मच्चुसामण्णे सडण-पडण-विद्धंसणधम्मे पच्छा पुरं च णं अवस्स-विप्पजहणिज्जे, से के णं जाणइ अम्मयाओ! के पुव्चिं जाव गमणाए? तं इच्छामि णं जाव पव्यइत्तए।''

शब्दार्थ - अग्गिसाहिए - अग्निसाध्य-आग द्वारा जलाए जाने योग्य, खोरसाहिए - चोरीं द्वारा चुराए जाने योग्य, रायसाहिए - राजा द्वारा जब्त किए जाने योग्य, दाइयसाहिए - हिस्सेदारीं द्वारा बंटाए जाने योग्य, मच्चुसाहिए - मरने के बाद अपने नहीं रहने योग्य, अग्गिसामण्णे - अग्नि के वशवर्ती, मच्चुसामण्णे - मौत के वशवर्ती।

भावार्थ - मेघकुमार ने माता-पिता से कहा - पितामह, प्रिपतामह आदि पूर्वजों से आगत धन-वैभव आदि के प्रचुर दान, भोग एवं वितरण के अनंतर प्रव्रज्या लेने की जो बात आपने कही, वह ठीक है, परंतु हिरण्य, स्वर्ण आदि सारा धन-वैभव ऐसा है, जिसे अग्नि जला सकती है, चोर चुरा सकते हैं, राजा जब्त कर सकते हैं, बंधु-बांधव बँटा सकते हैं। मृत्यु हो जाने पर यह सब छूट जाता है। यह धन-वैभव, अग्नि एवं मृत्यु आदि के लिए सामान्य है, तद्वशवर्ती है। पुद्गल पर्याय होने से सड़ने-गलने एवं जीर्ण शीर्ण होने योग्य हैं। पहले या पश्चात् थोड़े समय में या अधिक समय में, यह अवश्य ही छूट जाता है। और यह कौन जानता है कि भोक्ता पहले जाएगा या भोग्य वैभव? इसीलिए में प्रव्रजित हो जाना चाहता हूँ।

(१२७)

तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स अम्मापियरो जाहे णो संचाएंति मेहं कुमारं बहू हिं विसयाणुलोमाहिं आघवणाहि य पण्णवणाहि य सण्णवणाहि य विण्णवणाहि य आघवित्तए वा पण्णवित्तए वा सण्णवित्तए वा विण्णवित्तए वा ताहे विसय पडिकूलाहिं संजम-भउव्वेय-कारियाहिं पण्णवणाहिं पण्णवमाणा एवं वयासी।

शब्दार्थ - णो संचाएंति - नहीं सकते हैं-समर्थ नहीं होते हैं, विसयाणुलोमाहिं - विषयानुकूल, आघवणाहि - प्रतिपादन द्वारा, पण्णवणाहि - प्रज्ञापना द्वारा-विशेष रूप से कथन द्वारा, सण्णवणाहि- संज्ञापना-सम्यक् ज्ञापन द्वारा-भलीभाँति समझा कर, विण्णवणाहि- विज्ञापना-पुनः पुनः युक्तिपूर्वक समझा कर, विसयपडिकूलाहिं - सांसारिक विषयों के प्रतिकूल, संजमभउळ्वेय-कारियाहिं - संयम के प्रति भय और उद्देग उत्पादक।

भावार्थ - जब मेघकुमार के माता-पिता उसको सांसारिक विषयों के अनुकूल-सांसारिक विषयों के प्रति आकर्षण उत्पन्न करने वाले अनेक प्रकार के कथनों द्वारा समझा नहीं सके तो वे विषयों के प्रतिकूल तथा संयम के प्रति भय और उद्देग उत्पन्न करने वाले बहुविध वचनों से समझाते हुए इस प्रकार कहने लगे।

(१२८)

एस णं जाया! णिग्गंथे पावयणे सच्चे अणुत्तरे केवलिए पडिपुण्णे णेयाउए संसुद्धे सल्लगत्तणे सिद्धिमग्गे मुत्तिमग्गे णिज्जाणमग्गे णिव्वाणमग्गे, सव्य-दुक्खप्पहीणमग्गे, अहीव एगंतदिट्ठीए, खुरो इव एगंतधाराए, लोहमया इव जवा चावेयव्वा, वालुयाकवले इव णिरस्साए, गंगा इव महाणई पडिसोयगमणाए, महासमुद्दो इव भुयाहिं दुत्तरे तिक्खं चंकिमयव्वं गरुअं लंबेयव्वं, असिधारव्ययं चरियव्वं।

शब्दार्थ - अणुत्तरे - सर्वश्रेष्ठ, केविलिए - सर्वज्ञ प्रतिपादित, णेयाउए - न्याय-संगत, सल्लगत्तणे- मायादि शल्यों-कांटों को काटने वाला, सिद्धि मग्गे - सिद्धत्व-प्राप्ति का मार्ग, मृतिमग्गे - मुक्ति-प्राप्त करने का मार्ग, णिज्ञाणमग्गे-कर्मों से छूटने का मार्ग, णिव्वाणमग्गे-

मोक्ष-मार्ग, सव्वदुक्खण्पहीणमग्गे- सभी दुःखों के प्रहाण-नाश का मार्ग, अहीव - सर्प की तरह, एगंतिदृष्टीए - निश्चल दृष्टि युक्त, खुरो - छुरा या उस्तरा, एगंत धाराए- एक समान धारायुक्त, लोहमया- लोहे की तरह, जवा - जौ, चावेयव्वा- चबाने के तुल्य, वालुयाकवले- बालू के ग्रास जैसे, णिरस्साए - नीरस-स्वादिवहीन, पिडसोयगमणाए- बहाव के विपरीत चलना, भुयाहिं - भुजाओं द्वारा, दुत्तरे - दुस्तर-किठनाई से तरने योग्य, तिक्खं - तीक्ष्ण-तेज धार, चंकिमियव्वं - आक्रमण करने जैसा, गरूअं- भारी बोझ, लंबेयव्वं - लटकाने जैसा, असिधारव्वयं - तलवार की धार पर, चरियव्वं - चलना।

भावार्थ - पुत्र! निर्ग्रंथ प्रवचन सत्य, सर्वोत्तम, सर्वज्ञ भाषित, न्यायसंगत एवं सर्वथा शुद्ध है। वह माया-मोहादि शल्यों को काटने वाला है। सिद्धि, मुक्ति एवं निर्वाण का पथ है। समस्त दुःखों को क्षय करने वाला है। सर्प जिस तरह अपने लक्ष्य पर एकान्ततः दृष्टि लगाए रहता है, उसी प्रकार वह संयम रूप अध्यात्मदृष्टि परक है। परन्तु वह (संयम) क्षुर (उस्तरे) की तरह एक समान धार युक्त है। उसका पालन करना मानो लोहे के जौ चबाने जैसा है। वह बालू के ग्रास की तरह नीरस है। जैसे महानदी गंगा के प्रवाह के विपरीत चलना, समुद्र को भुजाओं से तैरना, भाले आदि तीक्ष्ण शक्षों की नोक पर आक्रमण (आधात) करना, गले में भारी बोझ लटकाना, तलवार की धार पर चलना कठिन है-वैसे ही संयम पथ पर चलना बहुत ही दुष्कर है।

(389)

णो खलु कप्पइ जाया! समणाणं णिग्गंथाणं आहाकम्मिए वा उद्देसिए वा, कीयगडे वा, ठिवयए वा, रइयए वा, दुब्भिक्खभत्ते वा, कंतारभत्ते वा, वद्दलियाभत्ते वा, गिलाणभत्ते वा, मूलभोयणे वा, कंदभोयणे वा, फलभोयणे वा, बीयभोयणे वा, हरियभोयणे वा, भोत्तए वा, पायए वा। तुमं च णं जाया! सुह-समुचिए णो चेव णं दुह-समुचिए णालं सीयं णालं उण्हं णालं खुहं णालं पिवासं णालं वाइय-पित्तिय-सिंभिय-सण्णिवाइय, विविहे रोगायंके उच्चावए गामकंटए बावीसं परीसहोवसग्गे उदिण्णे सम्मं अहियासित्तए। भुंजाहि ताव जाया! माणुस्सए काम भोगे तओ पच्छा भुत्तभोगी समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव पव्यइस्सिस।

शब्दार्थ - कप्पड़ - कल्पता है-ग्राह्य है, आहाकम्मिए - आधाकर्मिक-साधुओं के लिये संकल्पित, उद्देसिए - साधुओं के उद्देश्य से बनाया गया, कीयगडे - साधु के निमित्त मूल्य से गृहीत, ठवियए - स्थापित-साधु के लिये रखा हुआ, रइयए - रचित-फूटे हुए मोदक आदि के चूरे को फिर साधु के लिए मोदक आदि के रूप में तैयार करना, दुब्भिक्खभत्ते - दुष्काल के समय साधु के लिए बनाया गया भोजन, कंतारभत्ते - निर्जनवन में आगतजनों के लिए बनाया गया भोजन, वद्दलियाभत्ते - वर्षाकाल में याचकों के लिये बनाया गया भोजन, गिलाणभत्ते -रोगी के लिए बनाया गया भोजन, भोत्तए- खाने के लिए, पायए- पाने योग्य, सहसम्चिए -सुख समुचित-सुख पाने योग्य, दुहसमुचिए - दुःख सहने योग्य, णालं - असमर्थ, सीयं -शैत्य-सर्दी, उण्हं - गर्मी, पिवासं - प्यास, वाइय-पित्तिय-सिंभिय- वात, पित्तं एवं कफ से उत्पन्न होने वाले रोग, सण्णिवाइय - सिन्नपातिक-वातादि तीनों दोष के संयोग से उत्पन्न प्रलापादि रोग, रोगायंके - रोग तथा आतंक-अकस्मात घातक बीमारियाँ, उच्चावए - छोटे-बड़े अनेक प्रकार के, गामकंटए- इन्द्रियप्रतिकूल, परीसह - परीषह-कर्म निर्जरा हेतु भूख प्यासादि के कष्टों को सहना, उवसगी- उपसर्ग-अन्यों द्वारा दिए जाने वाले कष्ट, उदिण्णें -उदीर्ण-उदयाविल प्रविष्ट-उदय में आए हुए, सम्मं-सम्यक्, अहियासित्तए-सहन करने के लिए। भावार्थ - पुत्र! श्रमणों-निर्ग्रन्थों को आधाकर्मिक, औद्देशिक, कयक्रीत, स्थापित, रचित तथा मूल, कंद, बीज, फल, हरित आदि अग्राह्म तथा सदोष आहार लेना, सेवन करना नहीं कल्पता। पुत्र! तुम तो सुख भोगने योग्य-सुखाभ्यासी हो, दुःख भोगने योग्य-दुःखाभ्यासी नहीं हो। सदी, गर्मी, भूख, प्यास, वात-पित्त-कफादि जनित रोग, इन्द्रिय प्रतिकूल परीषहों एवं उपसर्गों को सहना तुम्हारे द्वारा संभव नहीं है। अतः तुम सांसारिक काम-भोगों का भोग करो।

(930)

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास प्रव्रज्या ग्रहण कर लेना।

तए णं से मेहे कुमारे अम्मापिऊहिं एवं वुत्ते समाणे अम्मापियरं एवं वयासी-तहेव णं तं अम्मयाओ! जं णं तृब्धे ममं वयह-एस णं जाया! णिग्गंथे पावयणे सच्चे अणुत्तरे पुणरिव तं चेव जाव तओ पच्छा भृत्तभोगी समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव पव्वइस्सिस, एवं खलु अम्मयाओ! णिग्गंथे पावयणे कीवाणं कायराणं कापुरिसाणं-इहलोग-पडिबद्धाणं परलोग-णिप्पिवासाणं दुरणुचरे पाययजणस्स णो चेव णं धीरस्स णिच्छियस्स ववसियस्स एत्थ किं दुक्करं करणयाए? तं इच्छामि णं अम्मयाओ। तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव पव्वइत्तए।

शब्दार्थ - कीवाणं - पौरुषहीनों के, कायराणं - कायरों के, कापुरिसाणं - उत्साहहीनों के, इहलोगपडिबद्धाणं - ऐहिक सुखों में जकड़े हुए-जनों के, परलोग-णिप्पिवासाणं - पारलौकिक सुख की इच्छा न रखने वालों के लिए, दुरणुचरे - दुःखपूर्वक पालन किया जाने वाला, पाययजणस्स - मनोबल रहित सामान्यजनों के लिए, धीरस्स - धैर्यशाली के लिए, णिच्छियस्स - जीवादि नव तत्त्वों में निष्ठाशील के लिए, ववसियस्स - व्यवसित-उद्यमशील के लिए, दुक्करं - दुष्कर।

भावार्थ - माता-पिता द्वारा यों कहे जाने पर, मेघकुंमार ने उनसे कहा कि निर्ग्रन्थ प्रवचन के सत्य, श्रेष्ठ आदि होने का, उसके पालने में अनेकानेक कठिनाइयों के आने का तथा भुकत भोग होने के अनन्तर प्रव्रज्या स्वीकार करने का, जो आपने कहा, वह आपकी दृष्टि से ठीक है परंतु पिताश्री! माताश्री! इस निर्ग्रंथ प्रवचन का पालन करना उनके लिए दुष्कर है, जो पुरुषार्थहीन, कायर, उत्साह-शून्य, ऐहिक सुखों की आकांक्षा वाला तथा मनोबल रहित है। जिनकी जीवादि नव तत्त्व में निष्ठा हो, जो उद्यमशील हों, उनके लिए क्या दुष्कर है? आप आज्ञा प्रदान करें, मैं श्रमण भगवान महावीर स्वामी से दीक्षा स्वीकार कर लूँ, यही मेरी अन्तर्भावना है।

एक दिवसीय राज्याभिषेक (१३१)

तए णं तं मेहं कुमारं अम्मापियरो जाहे णो संचाइंति बहूहिं विसयाणुलोमाहि य विसयपिडिकूलाहि य आघवणाहि य पण्णवणाहि य सण्णवणाहि य विण्णवणाहि य आघवित्तए वा पण्णवित्तए वा सण्णवित्तए वा विण्णवित्तए वा ताहे अकामए चेव मेहं कुमारं एवं वयासी-''इच्छामो ताव जाया! एगदिवसमिव ते रायसिरिं पासित्तए।''

शब्दार्थ - अकामाइं - न चाहते हुए, रायसिरिं - राज्यश्री-राजा के रूप में शोभा। भावार्थ - जब माता-पिता मेघकुमार को विषयानुकूल तथा विषय प्रतिकूल अनेक प्रकार के कथनों द्वारा समझा नहीं पाए, संसार में रहने को सहमत नहीं कर पाए, तब उन्होंने न चाहते हुए भी कहा कि पुत्र! हमारी यह इच्छा है कि एक दिन के लिए भी हम तुम्हें राजा के रूप में सुशोभित देखें।

(937)

तए णं से मेहे कुमारे अम्मा पियर-मणुवत्तमाणे तुसिणीए संचिद्धः। शब्दार्थ - अणुवत्तमाणे - अनुवर्तन करता हुआ-मानता हुआ। भावार्थ - मेघकुमार ने माता-पिता की इच्छा को मौन भाव से स्वीकार किया।

राज्याभिषेक

(933)

तए णं से सेणिए राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी -खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! मेहस्स कुमारस्स महत्थं महग्धं महरिहं विउलं रायाभिसेयं उवडुवेह। तए णं ते कोडुंबिय-पुरिसा जाव तेवि तहेव उवडुवेंति।

शब्दार्थ - महत्थं - विशिष्ट राज्य-वैभव युक्त, उवहवेह - तैयारी करो, महिरहं -महान् पुरुषों के योग्य, रायाभिसेयं - राज्याभिषेक।

भावार्थ - मेघकुमार की मौन स्वीकृति प्राप्त कर राजा श्रेणिक ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और कहा - देवानुप्रियो! राज्य-वैभवादि रूप महान् अर्थयुक्त, बहुमूल्य एवं कुलीन पुरुषों के राज्याभिषेक में प्रयोजनीय सामग्री, विपुल परिमाण में तैयार करो। कौटुंबिक पुरुषों ने वैसा ही किया।

ं (१३४)

तए णं से सेणिए राया बहूहिं गणणायग-दंडणायगेहि य जाव संपरिवुडे मेहं कुमारं अद्वसएणं सोवण्णियाणं कलसाणं, एवं रुप्पमयाणं कलसाणं, सुवण्ण-रुप्पमयाणं कलसाणं, मणिमयाणं कलसाणं, सुवण्णमणिमयाणं कलसाणं, रुप्पमणिमयाणं कलसाणं, सुवण्ण-रुप्प-मणिमयाणं कलसाणं, भोमेज्जाणं

www.jainelibrary.org

कलसाणं सब्बोदएहिं सब्बमिट्टयाहिं सब्बपुष्फेहिं सब्बगंधेहिं सब्बमल्लेहिं सब्बोसहीहि य सिद्धत्थएहि य सिब्बड्ढीए सब्बज्जुईए सब्बबलेणं जाव दुंदुभि-णिग्धोस-णाइयरवेणं महया महया रायाभिसेएणं अभिसिंचइ २ ता करयल जाव कट्टु एवं वयासी -

शब्दार्थ - सोवण्णियाणं - स्वर्ण निर्मित कलश, रुप्पमयाणं - रजतनिर्मित, भोमेज्जाणं-मृत्तिका निर्मित, सब्वोदएहिं - सब प्रकार के जल से, सब्वमिट्टयाहिं - सब प्रकार की मिट्टी से, सिद्धत्थएहि - सफेद सरसों से, सब्विड्ढीए - सब प्रकार की ऋदियों द्वारा, अभिसिंचइ-अभिषेक करता है।

भावार्थ - अनेक गणनायक, दंडनायक आदि राज्याधिकारियों तथा विशिष्टजनों से घिरे हुए राजा श्रेणिक ने स्वर्ण, रजत, मणि, स्वर्ण-रजत, स्वर्ण-मणि, रजत-मणि, स्वर्ण-रजत-मणि तथा मृत्तिका प्रत्येक के १० कलाशों - कुल आठ सौ चौसठ कलाशों में पूरित जल द्वारा, सब प्रकार की मृत्तिकाओं, पुष्पों, गंधों, मालाओं, औषधियों तथा श्वेत सरसों द्वारा एवं सब प्रकार की ऋदि, द्युति, सैन्य बल के साथ, नगाड़ों के निर्धोष से उत्पन्न ध्वनि के बीच, महामहिमान्वित राज्याभिषेक संपन्न किया तथा हाथ जोड़कर मस्तक झुकाकर, परस्पर मिलाए हुए हाथों को प्रणमन् की मुद्रा में मस्तक पर घुमाते हुए, उसने (श्रेणिक राजा ने) कहा।

(१३५)

''जय-२ णंदा! जय-२ भद्दा! जय-णंदा! भद्दं ते, अजियं जिणेहि जियं पालयाहि, जियमज्झे वसाहि, अजियं जिणेहि, सत्तुपक्खं, जियं च पालेहि मित्तपक्खं, जाव भरहो इव मणुयाणं, रायगिहस्स णगरस्स अण्णेसिं च बहूणं गामागरणगर जाव सण्णिवेसाणं'' आहेवच्चं जाव विहराहि त्तिकट्टु जय जय सद्दं पउंजंति। तए णं से मेहे राया जाए महया जाव विहरइ।

शब्दार्थ - णंदा - आनंदप्रद, भद्दा - भद्र-कल्याणमय, जयणंदा - जगत् के लिए आनंदप्रद, अजियं - अजित-जिन्हें नहीं जीता गया है, जिणेहि - जीतो, जियं - जित-जिन पर विजय प्राप्त कर लो, पालयाहि - पालन करो, जियमज्झे - विजितों-जिन्हें जीत चुको उनके मध्य, वसाहि - वास करो, सतुपक्खं - शत्रु-पक्ष, मित्तपक्खं - मित्र-पक्ष, भरहो -

भरत चक्रवर्ती, मणुयाणं - मनुजानां- मनुष्यों के, अण्णेसिं - दूसरों के, सण्णिवेसाणं -व्यापारिक केन्द्रों का, आहेवच्चं - आधिपत्य-स्वामित्व, विहराहि - विचरण करो, पउंजंति -प्रयुक्त करते हैं-बोलने में प्रयोग करते हैं।

भावार्ध - हे आनंदप्रद, कल्याणमय, लोकानंद दायक पुत्र! तुम्हारी जय हो, कल्याण हो। अपराजितों को, शत्रुओं को जीतो। जिन्हें जीत लिया है, उनका तथा मित्र-पक्ष का पालन करो। चक्रवर्ती भरत की ज्यों राजगृह के तथा अन्य अनेक गांवों, नगरों, सन्निवेशों आदि में स्थित मनुष्यों पर शासन करो। इस प्रकार राज्य करते रहो। राजा द्वारा ऐसा कहे जाने पर सब ओर से उसका जय-जयकार किया जाने लगा।

इस प्रकार मेघकुमार राजा हुआ। वह पर्वतों में महाहिमवान् की तरह शोभायमान हुआ।

(१३६)

तए णं तस्स मेहस्स रण्णो अम्मापियरो एवं वयासी - ''भण जाया! किं दलयामो किं पयच्छामो किं वा ते हियइच्छिए सामत्थे (मंते)?''

शब्दार्थ - भण - कहो, दलयामो - दें, पयच्छामो - भेंट करें, हियइच्छिए - हार्दिक इच्छा, सामत्थे - मनोवांछित।

भावार्थ - तब मेघकुमार के माता-पिता ने उससे कहा - पुत्र! हम तुम्हें क्या दें, क्या भेंट करें? तुम्हारी हार्दिक इच्छा और मनःकामना क्या है, बतलाओ?

संयमोपकरण की अभ्यर्थना

(१३७)

तए णं से मेहे राया अम्मा-पियरो एवं वयासी - इच्छामि णं अम्मयाओ! कुत्तियावणाओ रयहरणं पडिग्गहं च (आणियं) उवणेह कासवयं च सद्दावेह।

शब्दार्थ - कुत्तियावणाओ - कुत्रिकापण से-त्रैलोक्यवर्ती वस्तुओं के प्राप्त होने का देवाधिष्ठित विक्रय-केन्द्र, स्यहरणं - रजोहरण-ओघा, पडिग्गहं - पात्र, उवणेह - मंगा कर दें, कासवयं - काश्यप-नाई को।

भावार्थ - तब राजा मेघकुमार ने माता-पिता से इस प्रकार कहा - मेरे लिए कुत्रिकापण से रजोहरण पात्र मंगवा कर दें तथा मुंडन हेतु नाई को बुलवा दें, मैं यह चाहता हूँ।

(१३८)

तए णं से सेणिए राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी -गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! सिरिधराओ तिण्णि सयसहस्साइं गहाय दोहिं सयसहस्सेहिं कुत्तियावणाओ रयहरणं पडिग्गहं च उवणेह सयसहस्सेणं कासवयं सद्दावेह। तए णं ते कोडुंबियपुरिसा सेणिएणं रण्णा एवं वृत्ता समाणा हट्टतुट्टा सिरिधराओ तिण्णि सयसहस्साइं गहाय कुत्तियावणाओ दोहिं सयसहस्सेहिं रयहरणं पडिग्गहं च उवणेंति सयसहस्सेणं कासवयं सद्दावेंति।

शब्दार्थ - गच्छह - जाओ, सिरिघराओ - श्रीगृह-खजाने से, तिण्णि - तीन, सयसहस्साइं - लाख, गहाय - लेकर, दोहिं - दो से।

भावार्थ - राजा श्रेणिक ने कौटुंबिक पुरुषों को बुलाया और कहा - तुम लोग खजाने से तीन लाख स्वर्ण मुद्राएँ लेकर, दो लाख द्वारा कुत्रिकापण से रजोहरण और पात्र ले आओ तथा एक लाख नाई को देकर बुला लाओ।

कौटुंबिक पुरुष यह आज्ञा पाकर बहुत ही हर्षित और प्रसन्न हुए। उन्होंने खजाने से तीन लाख स्वर्ण मुद्राएँ लीं। दो लाख द्वारा कुत्रिकापण से रजोहरण एवं पात्र लिए और एक लाख नाई को देकर बुलाया।

विषेचन - इस सूत्र में प्रयुक्त "कुत्तियावण" शब्द बड़ा महत्त्वपूर्ण है। इसका संस्कृत रूप 'कुत्रिकापण' होता है। यह कु + त्रि + क् + आपण - के मेल से बना है। 'कु' का अर्थ पृथ्वी है। 'त्रि' तीन का सूचक है। इसके पश्चात् आया हुआ 'क' स्वार्थिक प्रत्यय है जो संज्ञा शब्दों के स्व-अपने अर्थ का ज्ञापक होता है। अर्थात् इस प्रत्यय के जुड़ने पर अर्थ में कोई अन्तर नहीं आता। जैसे 'बाल' शब्द में 'क' प्रत्यय जुड़ने पर 'बालक' बनता है। बाल और बालक - दोनों समानार्थक हैं। इसी प्रकार त्रि के साथ क प्रत्यय के योग से 'त्रिक्' बनेगा, जो 'तीनों लोकों का परिज्ञापक है। 'आ समन्तात पण्यन्ते-विक्रीयन्ते वस्तूनि यस्मिन् तद् आपणं' - जहाँ वस्तुएँ - विविध पदार्थ बेचे जाते हैं, उसे 'आपण' कहा जाता है। अर्थात् आपण का तात्पर्य 'दुकान' से हैं।

ऐसा माना जाता है कि प्राचीनकाल में देवप्रभाव युक्त ऐसी दुकानें होती थी, जिनमें तीनों लोकों में पायी जाने वाली वस्तुएँ मिलती थीं। दूसरे शब्दों में, प्रत्येक प्रकार की, छोटी से छोटी वस्तु से लेकर बड़ी से बड़ी वस्तु वहाँ मिलती थी।

इस देवाधिष्ठित दुकान में दीक्षार्थी योग्य सभी उपकरण सुलभता से मिल जाने से अन्य दुकानों की अपेक्षा इसका महत्त्वपूर्ण स्थान था। दुकान के संचालक योग्य मनुष्य होते थे। लाभ आदि का भागीदार वह होता था। भगवान् की विद्यमानता में एवं उनके शासनकाल के कुछ काल तक वे दुकानें प्रायः साधु के विचरण क्षेत्र में अनेक स्थानों पर हुआ करती थी। देव सहायता से अन्यत्र मिलने वाली वस्तुएं भी वहाँ पर उपस्थित कर दी जाती थी। आवश्यकता होने पर देव औदारिक पुद्गलों से वस्तु का निर्माण भी कर सकते थे।

विवेचन - दीक्षा आदि मंगल प्रसंगों पर नौकर आदि लोगों को भी प्रसन्नता से विपुल सम्पत्ति उपहार रूप में प्रदान की जाती थी। इसी कारण से यहाँ भी इस दीक्षा के मंगल प्रसंग पर नाई को एक लाख स्वर्णमुद्राएं प्रदान की गई। इस प्रकार देने में राजाओं के और भी अनेक उद्देश्य हुआ करते थे।

यहाँ पर रजोहरण एवं पात्र संयम के प्रमुख उपकरण होने से इनका नाम बताया है। उपलक्षण से संयमोपयोगी सभी उपकरणों का इसमें ग्रहण होना समझ लेना चाहिए।

प्रव्रज्या की पूर्वभूमिका

(38)

तए णं से कासवए तेहिं कोडुंबियपुरिसेहिं सद्दाविए समाणे हट्टतुट्ट जाव हयहियए ण्हाए कयबलिकम्मे कयकोउयमंगल-पायच्छित्ते सुद्धप्पावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवरपरिहिए अप्पमहम्घाभरणालंकियसरीरे जेणेव सेणिए राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सेणियं रायं करयलमंजलिं कट्टु एवं वयासी-''संदिसह णं देवाणुप्पिया! जं मए करणिज्जं।''

तएणं से सेणिए राया कासवयं एवं वयासी- ''गच्छाहि णं तुमं देवाणुप्पिया! सुरभिणा गंधोदएणं-णिक्के हत्थपाए पक्खालेहि सेयाए चडप्फालाए पोत्तीए मुहं बंधिता मेहस्स कुमारस्स चडरंगुल-वज्जे णिक्खमण-पाउगो अग्गकेसे कप्पेहि।'' शब्दार्थ - सुद्धप्यावेसाइं - शुद्ध एवं राजभवन में प्रवेश योग्य, संदिसह - आज्ञा प्रदान करें, करिणज्जं-करने योग्य, णिक्के - भलीभाँति, पक्खालेहि - प्रक्षालित करो, सेयास - श्वेत, चउप्फालाए- चार तह(पुट) युक्त, पोत्तीए - वस्त्र द्वारा, चउरंगुल-वज्जे - चार अंगुल छोड़कर, णिक्खमणपाउग्गे - दीक्षा के योग्य, अग्गकेसे- बढ़े हुए बालों को, कप्पेहि-काट दो।

भावार्थ - कौटुंबिक पुरुषों के माध्यम से राजा द्वारा बुलाए जाने पर, नाई बहुत ही प्रसन्न हुआ। उसने स्नान किया। नित्य-नैमित्तिक क्रियाएँ तथा मंगलोपचार कर, उसने शुद्ध, मांगलिक वस्न पहने एवं अल्प भार वाले व बहुमूल्य आभूषण धारण किए तथा राजा श्रेणिक जहाँ था, वहाँ आया। राजा के समक्ष हाथ जोड़ कर, सिर झुकाकर, अंजलिपुट को मस्तक के चारों ओर घुमाता हुआ बोला-'देवानुप्रिय! जो मेरे द्वारा करणीय है, उस संबंध में आज्ञा दीजिए।'

तब राजा श्रेणिक ने नाई को इस प्रकार कहा - ''देवानुप्रिय! जाओ सुगंधित सुरिभमय उत्तम जल से हाथ-पैर धो लो, चार तह किए हुए सफेद वस्त्र से मुँह को बांध लो तथा मेघकुमार के प्रव्रज्या योग्य चार अंगुल बालों को छोड़कर, शेष बढ़े हुए बालों को काट दो।''

विवेचन - यहाँ पर चार अंगुल छोड़ कर के दीक्षा के योग्य बाल काटने का बताया गया है। इसका आशय यह है कि पूरे मस्तक में चार-चार अंगुल ऊंचाई जितने बाल रखें। इससे ज्यादा ऊंचाई बालों की जो थी उसको काट कर कम कर दिया। जिससे उन मस्तक पर रहे हुए वालों का दीक्षा के समय लोच हो सके। आगे के पाठ में मेघकुमार के दीक्षा के समय पंचमुष्टिक लोच करना बताया है।

(980)

तए णं से कासवए सेणिएणं रण्णा एवं वुत्ते समाणे हट्टतुट्ठ जाव हियए जाव पिडसुणेइ २ ता सुरिभणा गंधोदएणं हत्थपाए पक्खालेइ २ ता सुद्धवत्थेणं मुहं बंधइ २ ता परेणं जत्तेणं मेहस्स कुमारस्स चउरंगुलवज्जे णिक्खमण-पाउग्गे अग्ग केसे कप्पइ।

शब्दार्थ - पडिसुणेड़ - स्वीकार करता है, परेणं जत्तेणं - अत्यंत सावधानी पूर्वक। भावार्थ - राजा श्रेणिक द्वारा यों कहे जाने पर नाई मन में बड़ा हर्षित हुआ। राजा का आदेश स्वीकार किया। उसने सुगंधित जल से हाथ पैर धोए। शुद्ध वस्त्र से मुँह को बांधा और अत्यंत सावधानी से मेघकुमार के मस्तक के दीक्षोपयोगी चार अंगुल प्रमाण बाल छोड़कर शेष संवर्धित केशों को काटा।

(989)

तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स माया महिरहेणं हंसलक्खणेणं पडसाडएणं अग्गकेसे पडिच्छइ २ त्ता सुरिभणा गंधोदएणं पक्खालेइ २ त्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं चच्चाओ दलयइ २ ता सेयाए पोत्तीए बंधइ २ ता रयण-समुग्गयंसि पिक्खिवइ २ ता मंजूसाए पिक्खिवइ २ ता हार-वारिधार-सिंदुवार-छिण्णमुत्ता विलप्पगासाइं अंसूइं विणिम्मुयमाणी २ रोयमाणी २ कंदमाणी २ विलवमाणी २ एवं वयासी - ''एस णं अम्हं मेहस्स कुमारस्स अङ्भुदएसु य उस्सवेसु य पब्वेसु य तिहीसु य छणेसु य जण्णेसु य पव्वणीसु य अपच्छिमे दिसणे भविस्सइ ति कट्ट उस्सीसामूले ठवेइ।''

शब्दार्थ - हंसलक्खणेणं - हंस के समान श्वेत, सुकोमल, पडसाइएणं - उज्ज्वल वस में, चच्चाओ - चर्चित कर-छिड़क कर, रयणसमुग्गयंसि - रत्निडिनियां, पिक्खियंड - रखती है, मंजूसाए- पेटी, सिंदुवार - निर्गुण्डी के श्वेत पुष्प, छिण्णमुत्ताविल - टूटी हुई मोतियों की माला, पब्वेसु - समारोह मूलक विशेष पर्वो पर, जण्णेसु-दया-दान-साधर्मिक वात्सल्यादि के विशेष अवसरों पर, पञ्चणीसु- कार्तिकादि में आयोज्यमान कौमुदी-महोत्सवों में, अपिच्छिमे - अपश्चिम-अंतिम, उस्सीसामूले - सिरहाने या तिकये के नीचे।

भावार्थ - तब मेघकुमार की माता ने उन केशों को बहुमूल्य तथा हंस के समान उज्ज्वल वस्त्र में ग्रहण किया। उन्हें सुरिभत गंधोदक से प्रक्षालित किया। फिर उन पर सरस गोशीर्ष चंदन के छींटे दिए, सफेद वस्त्र में बांध डिबिया में रख कर पेटी में रखा। जल की धारा, निर्गुण्डी पुष्प तथा मोतियों के टूटे हार के समान अपनी आँखों से आँसू बहाती हुई रुदन, क्रंदन एवं विलाप करती हुई वह बोली - ये केश, राज्य-लक्ष्मी आदि लाभ रूप समारोहों, विशेष उत्सवों, पवा, तिथियों, क्षणों, दया-दान-साधर्मिक वात्सल्यादि रूप विशेष आयोजनों एवं कौमुदी-महोत्सव आदि प्रसंगों पर, मेघकुमार के लौकिक जीवन के अंतिम दर्शन के प्रतीक होंगे। यों कह कर रानी धारिणी ने उस मंजूषा को अपने सिरहाने के नीचे रखा।

www.jainelibrary.org

विवेचन - ''केशों को डिबिया आदि में रखने का एवं उत्सव आदि में उनको देख कर संतुष्ट होना'' माता-पिता की मेघकुमार पर रहे हुए मोहभाव की अधिकता का दर्शक है।

(१४२)

तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स अम्मापियरो उत्तरावक्कमणं सीहासणं रयावेंति मेहं कुमारं दोच्चंपि तच्चंपि सेयपीयएहिं कलसेहिं ण्हावेंति २ त्ता पम्हल-सुकुमालाए गंध-कासाइयाए गायाइं लूहेंति २ त्ता सरसेणं गोसीस-चंदणेणं गायाइं अणुलिंपंति २ त्ता णासाणीसासवायवोज्झं जाव हंसलक्खणं पडगसाडगं णियंसेंति २ त्ता हारं पिणद्धेंति २ त्ता अद्धहारं पिणद्धेंति २ त्ता एगाविलं मुत्ताविलं कणगाविलं रयणाविलं पालंबं पायपलंबं कडगाइं तुडिगाइं केऊराइं अंगयाइं दसमुद्दिया-णंतयं कडिसुत्तयं कुंडलाइं चूडामणि रयणुक्कडं मऊडं पिणद्धेंति २ ता दिव्वं समुणदामं पिणद्धेंति २ ता ददर-मलय सुगंधिए गंधे पिणद्धेंति।

शब्दार्थ - उत्तरावक्कमणं - उत्तराभिमुख, लूहेंति - पोंछा, णियसेंति - पहनाते हैं, पिणढेंति- धारण कराते हैं, पालंबं - कंठाभरण, पायपलंबं - गले से पैरों तक लटकने वाला अलंकार विशेष, कडगाइं - कड़े, तुडिगाइं - भुजाओं पर पहनने का आभूषण विशेष, केऊराइं - बाजुओं पर धारण करने योग्य आभूषण, अंगद - केयूरों के ऊपर धारणीय अलंकरण, खूडामणि - शिरोभूषण, रयणुक्कंड- रत्नों से जड़ा हुआ, दहरमलयसुगंधिए - मलयाचल पर होने वाले चंदन विशेष के धिसे हुए लेप से।

भावार्ध - मेघकुमार के माता-पिता ने उत्तराभिमुख सिंहासन रखवाया। फिर मेघकुमार को दो-तीन बार सफेद एवं पीले - चांदी-सोने के कलशों में भरे जल से स्नान करवाया। रोयेदार-अत्यंत कोमल, सुगंधित, काषायरंग में रंजित तौलिए से पोंछवाया। फिर गोशीर्ष चंदन से उसके शरीर पर लेप करवाया। नासिका से निकलते श्वास का भी जो भार न सह सके, ऐसे अत्यंत बारीक हंस जैसे श्वेत, सुकोमल वस्त्र उसे पहनाए। फिर उसको अट्ठारह लड़ों का हार, नौ लड़ों का अर्द्धहार, एकावलि, मुक्तावलि, कनकावलि, रत्नावलि, प्रालम्ब, पाद प्रालम्ब, कटक, तुटिक, केयूर, अंगद, दस अंगुलियों में मुद्रिकाएँ, करधनी, कुण्डल, चूडामणि तथा रत्न जटित मुकुट पहनाया। तदनंतर पुष्पमाला धारण करवाई एवं मलयगिर चंदन का लेप करवाया।

(६४१)

तएणं तं मेहं कुमारं गंठिम-वेढिम-पूरिम-संघाइमेण-चउव्विहेणं-मल्लेणं कप्परुक्खगं पिव अलंकियविभूसियं करेंति।

शब्दार्थ- गंठिम - सूत आदि से गूंथी हुई, वेढिम - वेष्टिम-विशेष सज्जा के साथ संरचित, पूरिम- पुष्पादि से परिपूरित, संघाइमेणं - परस्पर संयोजित, कप्परुक्खगं - कल्पवृक्ष। भावार्थ - तदनंतर मेघकुमार को उन्होंने चार प्रकार की पुष्पादि की विशिष्ट मालाओं द्वारा कल्पवृक्ष के सदृश अलंकृत, विभूषित किया।

(१४४)

तएणं से सेणिए राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेद्ग, सद्दावेत्ता एवं वयासी "खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! अणेग-खंभसय-सण्णिविट्ठं लीलिट्ठिय-साल भंजियागं ईहामिय-उसभ-तुरय-णर-मगर-विहग-वालग-किण्णर-रुरु-सरभ-चमर-कुंजर-वणलय-पउमलय-भत्तिचित्तं घंटा वलि-महुर-मणहर-सरं सुभ-कंत-दिसिणिजं णिउणोविय मिसिमिसिंत-मणि-रयण-घंटियाजाल-परिक्खितं खम्भुग्गय-वइरवेइया-परिगयाभिरामं विज्ञाहर-जमल-जंतजुत्तं पिव अच्ची-सहस्स-मालणीयं रूवग-सहस्स-कलियं भिसमाणं भिक्भिसमाणं चक्खुल्लोयण-लेस्सं सुहफासं सस्सिरीयरूवं सिग्घं तुरियं चवलं वेइयं पुरिस सहस्सवाहिणीं सीयं उवद्रवेह।"

शब्दार्थ - मिसिमिसिंत - देदीप्यमान-चमकते हुए, रूवगसहस्सकितयं - हजारों चित्रों से सुशोभित, भिसमाणं - चमकती हुई, भिब्भिसमाणं - विशेष रूप से चमकती हुई, पुरिससहस्सवाहिणीं- एक सहस्र पुरुषों द्वारा वहन की जाने वाली, सीयं - शिविका-पालकी।

भावार्थ - इसके बाद राजा श्रेणिक ने कौटुंबिक पुरुषों को बुलाया और उनको आज्ञा दी कि तुम सैकड़ों स्तंभों से युक्त, क्रीड़ा करती हुई शाल भंजिकाओं (पुतिलयों) से सुशोभित, ईहामृग, वृषभ, अश्व आदि के चित्रांकन से विशिष्ट, घंटाविलयों की कर्णप्रिय ध्विन से मनोहर, शुभ, कांत एवं दर्शनीय, निपुण कारीगरों द्वारा निर्मित, देदीप्यमान मणिरत्नमय घुंघरुओं के समूह

से वेष्टित वेदिका युक्त, विविध रत्नों से खिचत होने के कारण सूर्य किरणों से अधिक द्युतिमय, देखते ही नेत्राकर्षक, सुखजनक स्पर्शयुक्त, शोभामय शिविका को शीघ्र अविलंब तैयार कराकर उपस्थित करो। वह पालकी एक सहस्र पुरुषों द्वारा वहन की जाती हो।

(१४५)

तए णं ते कोडुंबिय पुरिसा हट्टतुट्ट जाव उवडवेंति। तए णं से मेहे कुमारे सीयं दुरूहड, दुरूहित्ता सीहासण-वरगए पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे।

भावार्थ - कौटुंबिक पुरुष राजा का कथन सुनकर बड़े हर्षित हुए और उन्होंने आज्ञानुरूप शिविका तैयार करवा कर वहाँ मंगवा दी। मेधकुमार शिविका पर आरूढ हुआ तथा उस में स्थित सिंहासन पर पूर्वाभिमुख होकर बैठ गया।

(१४६)

तएणं तस्स मेहस्स कुमारस्स माया ण्हाया कयबलिकम्मा जाव अप्प-महग्वा-भरणा-लंकिय-सरीरा सीयं दुरूहइ, दुरूहित्ता मेहस्स कुमारस्स दाहिणे पासे भद्दासणंसि णिसीयइ। तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स अंबधाई रयहरणं च पडिग्गहगं च गहाय सीयं दुरूहइ, दुरूहित्ता मेहस्स कुमारस्स वामे पासे भद्दा-सणंसि णिसीयइ।

शब्दार्थ - दाहिणेपासे - दाहिनी ओर, अंबधाई - धाय माता।

भावार्थ - तत्पश्चात् मेघकुमार की माता जो स्नान, नित्यकरणीय मांगलिक उपचार संपन्न कर चुकी थी, विविध आभूषण धारण कर चुकी थी, उस शिविका पर आरूढ हुई। वह मेघकुमार के दाहिनी ओर भद्रासन पर बैठी। तदनंतर मेघकुमार की धायमाता रजोहरण और पात्र लिए हुए शिविका पर आरूढ हुई तथा मेघकुमार के बांयी ओर भद्रासन पर बैठी।

(989)

तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स पिट्ठओ एगा वरतरुणी सिंगारागार-चारुवेसा संगय-गय-हसिय-भणिय-चेट्टिय-विलास-संलावुल्लाव णिउणजुत्तो-वयारकुसला आमेलग-जमल-जुयल-वट्टिय-अब्भुण्णय-पीण-रइय-संठिय- पओहरा हिमं-रयय-कुंदेंदुपगासं सकोरेंट मल्लदाम धवलं आयवत्तं गहाय सलीलं ओहारेमाणी-ओहारेमाणी चिद्रइ।

शब्दार्थ - पिडुओ - पीछे, वरतरुणी - सुंदर युवती, सिंगारागार - श्रृंगार के आगार जैसी, चारुवेसा - मनोहर वेश युक्त, संगय - संगत-समुचित, गय - गित, चेड्रिय - चेब्टित-चेष्टाएँ, संलाव - पारस्परिक वार्तालाप, उल्लाव - वाक्पटुता, जुत्तोवयार - अवसरानुरूप व्यवहार-निपुण, आमेलग - परस्पर मिले हुए, जमल - एक समान, जुयल - दोनों, विट्य - गोल, अब्भुण्णय - ऊँचे उठे हुए, पीण- पुष्ट, रइय - रितद-प्रीतिप्रद, संठिय - संस्थित-विशिष्ट आकार युक्त, पओहरा - प्रयोधर-स्तन, हिम - बर्फ, रयथ - रजत-चाँदी, आयवत्तं - आत पत्र-छत्र, गहाय - ग्रहण कर, सलीलं - लीला पूर्वक, ओहारेमाणी - धारण करती हुई, चिटुइ - खड़ी होती है।

भावार्थ - मेघकुमार के पीछे गति, हसित, वचन, चेष्टित, विलास, संलाप उल्लाप आदि में कुशल अति रूपवती, श्रृंगार रस की साक्षात् प्रतिमूर्ति जैसी युवती, बर्फ, रजत, कुंद, पुष्प तथा चंद्रमा के समान उज्ज्वल एवं कोरंट पुष्प की श्वेत मालाओं से युक्त छत्र लेकर विशिष्ट भाव-भंगिमापूर्वक खड़ी हुई।

(985)

तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स दुवे वरतरुणीओ सिंगारागार-चारुवेसाओ जाव कुसलाओ सीयं दुरूहंति २ ता मेहस्स कुमारस्स उभओ पासं णाणा मणि-कणग-रयण महरिह-तवणिज्जुज्जल विचित्त दंडाओ चिल्लियाओ सुहुमवरदीह-वालाओ संख-कुंद-दग-रयय अमयमहिय फेणपुंज सण्णिगासाओ चामराओ गहाय सलीलं ओहारेमाणीओ २ चिद्ठंति।

शब्दार्थ - चिल्लियाओ - दीप्ति से चमचमाते हुए, दीह - दीर्घ-लम्बे।

भावार्थ - साक्षात् श्रृंगार-सदृश चारु-सुन्दर वेश युक्त, कार्य कुशल, दो सुंदर युवितयाँ शिविका पर आरूढ हुई तथा अनेक मणिरत्न-स्वर्ण निर्मित बहुमूल्य, उज्ज्वल, दण्डयुक्त, दीप्ति से चमचमाते हुए, सूक्ष्म, श्रेष्ठ, लम्बे बालों से युक्त एवं शंख, कुंद, रजत एवं मथित-अमृत फेन के सदृश धवल चंवरों को डुलाती हुई मेघकुमार के दोनों ओर खड़ी हुई।

(386)

तए णं तस्स मेहकुमारस्स एगा वरतरुणी सिंगारा जाव कुसला सीयं जाव दुरूहइ, दुरूहित्ता मेहस्स कुमारस्स पुरओ पुरित्थमेणं चंदप्पभ-वइर-वेरुलिय विमल दंडं तालविंटं गहाय चिट्ठइ।

भावार्थ - उसके बाद पूर्वोक्त सुंदर रूप चारुवेश, कार्यकुशलता इत्यादि विशेषताओं से युक्त एक युवा स्त्री शिविका पर आरूढ हुई। वह चंद्रकांत वज्र तथा वैडूर्य रत्नमय, निर्मल दंडयुक्त, ताड़ के पत्तों से बने पंखे को अपने हाथों में लिए मेघकुमार के समीप पूर्व दिशा में खड़ी हुई।

(१५०)

तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स एगा वरतरुणी जाव सुरूवा सीयं दुरूहइ, दुरूहित्ता मेहस्स कुमारस्स पुळ्व-दिक्खणेणं सेयं रययामयं विमल-सिलल-पुण्णं मत्तगय-महामुहा-कितिसमाणं भिंगारं गहाय चिड्ड ।

शब्दार्थ - मत्तगयमहामुहाकितिसमाणं - मदोन्मत्त हाथी के विशाल मुख की आकृति के समान।

भावार्थ - एक रूपवती युवा स्त्री शिविका पर आरूढ हुई तथा पूर्व-दक्षिण-आग्नेय कोण में निर्मल जल से परिपूर्ण, उन्मत्त हाथी के मुख जैसी, रजतमय झारी को लेकर खड़ी हुई।

(१५१)

तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स पिया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी - खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! सरिसयाणं सरित्तयाणं सरिव्वयाणं एगाभरण-गहिय-णिज्ञोयाणं कोडुंबिय-वरतरुणाणं सहस्सं सद्दावेह जाव सद्दावेति। तए णं ते कोडुंबियवर तरुण पुरिसा सेणियस्स रण्णो कोडुंबिय पुरिसेहिं सद्दाविया समाणा हट्टा ण्हाया जाव एगाभरण-गहियणिज्ञोया जेणामेव सेणिए राया तेणामेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सेणियं रायं एवं वयासी - "संदिसह णं देवाणुप्पिया! जं णं अम्हेहिं करणिजं।"

शब्दार्थ-पिया - पिता, णिज्जोय-पगड़ी, वरतरुणाणं-उत्तम युवाओं को, संदिसह - आज्ञा दें। भावार्थ - मेधकुमार के पिता ने कौटुंबिक पुरुषों को बुलाया और कहा कि शीघ्र ही एक हजार युवा सेवकों को बुलाओ, जो दैहिक कांति एवं वय में समान हों और एक जैसे गहने एवं पगड़ियाँ धारण किए हुए हों। कौटुंबिक पुरुष वैसा ही करते हैं। श्रेणिक राजा के कौटुंबिक पुरुषों द्वारा बुलाए गए युवा सेवक प्रसन्न हुए। उन्होंने स्नानादि आवश्यक कार्य किए। एक जैसे आभरण, गहने तथा पगड़ियाँ पहनीं और राजा श्रेणिक के पास आए तथा निवेदन किया - 'देवानुप्रिय! हमारे लिए जो करणीय हो, उसकी आज्ञा दीजिये।'

(१५२)

तए णं से सेणिए राया तं कोडुंबिय-वरतरुण सहस्सं वयासी - गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! मेहस्स कुमारस्स पुरिस सहस्स वाहिणीं सीयं परिवहेह।

तए णं तं कोडुंबिय-वरतरुण-सहस्सं सेणिएणं रण्णा एवं वुत्तं संतं हट्ठं तुट्ठं तस्स मेहस्स कुमारस्स पुरिस-सहस्स-वाहिणिं सीयं परिवहइ।

शब्दार्थ - परिवहेह - उठाओ।

भावार्थ - राजा श्रेणिक ने उन एक हजार युवा सेवकों से कहा कि जाओ और सहस्र पुरुषों द्वारा वहन करने योग्य शिविका को उठाओं।

उन युवा सेवकों ने राजा श्रेणिक द्वारा यों आज्ञा दिए जाने पर बडी प्रसन्नता पूर्वक उस पालकी का परिवहन किया।

(१५३)

तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स पुरिस-सहस्स-वाहिणि सीयं दुरूढस्स समाणस्स इमे अट्टड-मंगलया तप्पढमयाए पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्टिया, तंजहा-सोत्थिय-सिरिवच्छ-णंदियावत्त-वद्धमाणग-भद्दासण-कलस-मच्छ-दप्पण जाव बहवे अत्थित्थिया जाव ताहिं इट्टाहिं जाव अणवरयं अभिणंदंता य अभिथुणंता य एवं वयासी -

शब्दार्थ - तप्पढमयाए - सर्व प्रथम, अहाणुपुव्वीए - यथाक्रम, संपद्विया - संप्रस्थित-

रवाना किए गए, सोत्थिय - स्वस्तिक-चतुष्कोण-मांगलिक चिह्न विशेष, सिरिवच्छ - श्रीवत्स, णांदियावत्त- नंदिकावर्त-प्रत्येक दिशा में नव कोणयुक्त स्वस्तिक विशेष, वद्धमाणक - वर्धमानक, भद्दासण - भद्रासन, कलस - कलश, मच्छ - मीन युग्म, दप्पण - दर्पण, अत्थित्थिया - अर्थार्थी-याचक, अणवरयं - अनवरत-निरंतर, अभिथुणंता - संस्तवन करते हुए।

भावार्थ - एक हजार पुरुषों द्वारा उठायी गई पालकी में मेघकुमार के बैठ जाने पर स्वस्तिक, श्रीवत्स, नंदिकावर्त्त आदि आठ मंगल द्रव्य अनुक्रम से मेघकुमार के आगे-आगे रवाना किए गए। बहुत से धनार्थी याचक आदि प्रिय और मधुर वाणी से निरंतर अभिनंदन संस्तवन करते हुए बोलने लगे।

(१५४)

''जय जय णंदा! जय जय भद्दा! जय जय णंदा! भद्द ते, अजियाइं जिणाहिं इंदियाइं, जियं च पालेंहि समणधम्मं, जियविग्घोऽविय वसाहि तं देव। सिद्धिंमज्झे, णिहणाहि रागदोसमल्ले, तवेणं धिइ-धिणय-बद्ध-कच्छे, मद्दाहि य अट्टकम्मसत्तू झाणेणं उत्तमेणं सुक्केणं अप्पमत्तो पावय वितिमिर-मणुत्तरं केवलं णाणं, गच्छ य मोक्खं परमपयं सासयं च अयलं, हंता परीसहचमूं णं अभीओ परीसहो वसग्गाणं, धम्मे ते अविग्धं भवउ-त्तिकट्टुपुणो २ मंगल-जय जय सदं पउंजंति।

शब्दार्थ - जियं - जीते हुए, प्राप्त किए हुए, समणधामं - मुनि धर्म, जियविग्धो - जितविष्न-विष्नों को जीत कर, वसाहि - वास करो, सिद्धिंमज्झे - सिद्धत्व की आराधना में, णिहणाहि - नाश करो, राग दोसमल्ले - राग-द्रेष रूपी मल्लों-पहलवानों का, धिइ - धृति-धैर्य, धण्णिय - धनिक, बद्धकच्छे - कमर बाँधकर, मद्दाहि - मर्दन करो, सत्तू - शत्रुओं को, झाणेणं - ध्यान द्वारा, पावय - प्राप्त करो, वितिमिरम - अज्ञानान्धकार रहित, हंता - नष्ट कर डालो, परीसह चम् - परीषहों की सेना, अभीओ - अभीत-निर्भय, अविग्धं - विष्न रहित, भवउ - होवें।

भावार्थ - हे आनंदप्रद! कल्याणकारिन्! लोकमंगल दायिन्! आपकी जय हो! आपका कल्याण हो। अविजित इन्द्रियों को जीतो! प्राप्त मुनि धर्म का पालन करो। राजकुमार! विघ्नों को जीत कर सिद्धि-मार्ग में निवास करो। तप एवं धैर्य रूप धन का संचय कर उत्साह के साथ

राग-द्वेष रूपी मल्लों को पछाड़ डालो। अप्रमत्त होकर उत्तम शुभ ध्यान द्वारा आठ कर्म रूपी शत्रुओं का मर्दन कर डालो। अज्ञानांधकार रहित सर्वोत्तम केवलज्ञान प्राप्त करो। शाश्वत, अविचल मोक्ष रूप परमपद को अधिगत (प्राप्त) करो। परीषहों की सेना को नष्ट कर डालो। परीषहों और उपसर्गों से निर्भय रहो। आपकी धर्म-साधना निर्विध्न चलती रहे। यों कह कर वे बार-बार मंगलमय जय-जय शब्द का उद्घोष करने लगे।

(१५५)

तए णं से मेहे कुमारे रायगिहस्स णयरस्स मज्झंमज्झेणं णिगाच्छइ, णिगाच्छिता जेणेव गुणसिलए चेइए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता पुरिस-सहस्स-वाहिणीओ सीयाओ पच्चोरुहइ।

भावार्थ - मेघकुमार राजगृह नैगर के बीच से होता हुआ गुणशील चैत्य में पहुँचा, एक सहस्र पुरुषों द्वारा वहन की जाती शिविका-पालकी से नीचे उतरा।

(१५६)

तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स अम्मापियरो मेहं कुमारं पुरओ कट्टु जेणामेव समणे भगवं महावीरे तेणामेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेंति २ त्ता वंदीत णमंसीत, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी - एस णं देवाणुप्पिया! मेहे कुमारे अम्हं एगे पुत्ते इट्ठे कंते जाव जीविय-ऊसासए हियय-णंदिजणए उंबरपुष्फं पिव दुल्लहे सवणयाए किमगं पुण दिस्सणयाए? से जहाणामए उप्पलेइ वा, पउमेइ वा, कुमुदेइ वा, पंके जाए जले संविद्धए णोविलप्पइ पंकरएणं, णोविलप्पइ जलरएणं, एवामेव मेहे कुमारे कामेसु जाए भोगेसु संवुद्धहे णोविलप्पइ कामरएणं, णोविलप्पइ भोगरएणं, एस णं देवाणुप्पिया! संसार भउव्विगो भीए जम्मण-जर-मरणाणं इच्छड़ देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए। अम्हे णं देवाणुप्पियाणं सिस्सभिक्खं दलयामो। पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिया! सिस्सभिक्खं।

शब्दार्थ - उप्पल - नीलकमल, पउम - पद्म-सूर्य से विकसित होने वाला कमल,

कुमुद - चंद्र से विकसित होने वाला श्वेत कमल, जलरएणं - जल के मैलेपन से-गंदले पानी से, जम्मण-जर-मरणाणं - जन्म, बुढ़ापा और मृत्यु, सिस्सभिक्खं - शिष्य रूप भिक्षा।

भावार्थ - मेघकुमार के माता-पिता उसको आगे किए हुए भगवान् महावीर के पास आए। तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा पूर्वक वंदन किया। वंदन कर वे यों बोले-भगवन्! मेघकुमार हमारा इकलौता पुत्र है, जो जीवन (प्राणों) में श्वासोच्छ्वास के समान प्रिय, हृदय के लिए आनंदप्रद तथा उदुम्बर-पुष्प की ज्यों दुर्लभ है। जैसे उत्पल, पद्म या कुमुद कीचड़ में उत्पन्न होता है किंतु कीचड़ या जल की गंदगी से उपलिप्त नहीं होता। उसी प्रकार काम-भोगों में जन्मा, भोगों में बड़ा हुआ, हमारा यह पुत्र काम-भोग रूप कालुष्य से अलिप्त है। देवानुप्रिय! वह संसार के जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु रूप भय से उद्धिग्न है। वह आपके पास प्रव्रजित होकर अनगार धर्म स्वीकार करना चाहता है। हम आपको शिष्य रूप भिक्षा दे रहे हैं। आप इसे स्वीकार करें।

विवेचन - इस सूत्र में तथा पिछले कई सूत्रों में मेघकुमार का इकलौते पुत्र के रूप में जो उल्लेख हुआ है, वह माता धारिणी की दृष्टि से है क्योंकि राजा श्रेणिक के अनेक रानियाँ थीं, अनेक पुत्र थे। परंतु रानी धारिणी के मेघकुमार एक मात्र पुत्र था। इस सूत्र में माता-पिता दोनों मेघकुमार को भगवान् महावीर स्वामी के समक्ष इकलौते पुत्र के रूप में प्रस्तुत करते हैं। यह मातु प्रधान उक्ति (कथन) है।

(৭५७)

तए णं से समणे भगवं महावीरे मेहस्स कुमारस्स अम्मापिऊहिं एवं वुत्ते समाणे एयमद्ठं सम्मं पडिसुणेइ।

तएणं से मेहे कुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियाओ उत्तरपुरच्छिमं दिसीभागं अवक्कमइ २ त्ता सयमेव आभरणमल्लालंकारं ओमुयइ।

शब्दार्थ - अवक्कमइ - अवक्रांत होता है-आता है, सयमेव - स्वयमेव-अपने आप ही, ओमुयइ- उतारता है।

भावार्थ - मेघकुमार के माता-पिता के इस कथन को श्रमण भगवान् महावीर स्वामी सम्यक् स्वीकार करते हैं। मेघकुमार भगवान् महावीर स्वामी के पास उत्तर-पूर्व दिशा भाग-ईशान कोण में उपस्थित होता है। स्वयं ही अपने आभरणों, मालाओं और अलंकारों को उतार देता है।

(१५८)

तएणं से तस्स मेहकुमारस्स माया हंसलक्खणेणं पडसाडएणं आभरण-मल्लालंकारं पडिच्छइ २ ता हार-वारिधार-सिंदुवार-छिण्ण-मृत्तावलिप्पगासाइं अंसूणि विणिम्मुयमाणी २ रोयमाणी २ कंदमाणी २ विलवमाणी २ एवं वयासी-जइयव्वं जाया! घडियव्वं जाया! परक्किमयव्वं जाया! अस्सिं च णं अद्ठे णो पमाएयव्वं, "अम्हंपि णं एसेव मग्गे भवउ-" तिकद्दु मेहस्स कुमारस्स अम्मापियरो समणं भगवं महावीरं वंदंति णमंसंति, वंदित्ता णमंसित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया।

शब्दार्थ - जड़यव्वं - यत्न करना चाहिए, घडियव्वं - घटित-क्रियान्वित करना चाहिए, परक्कमियव्वं - पराक्रम करना चाहिए, पमाएयव्वं - प्रमाद करना चाहिए।

भावार्थ - मेघकुमार की माता धारिणी ने हंस के समान उज्ज्वल वस्त्र में आभरणों, मालाओं और अलंकारों को ग्रहण किया। उसकी आँखों से टूटी हुई मोतियों की माला से गिरते मोतियों की ज्यों आँसू ढलकने लगे। वह रुदन, क्रंदन और विलाप करती हुई बोली - पुत्र! जो चारित्र तुमने प्राप्त किया है, उसके पालन में सदा यत्नशील रहना, उसे क्रियान्वित करने की सदैव चेष्टा करते रहना, आत्म पराक्रम पूर्वक निभाते जाना, कभी प्रमाद मत करना। हमें भी कभी यह मार्ग प्राप्त हो, ऐसी भावना है। यों कह कर उन्होंने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वंदन और नमन किया तथा जिस दिशा की ओर से आए थे, उस दिशा की ओर वापस लौट गए।

अनगार-दीक्षा

(१५६)

तए णं से मेहे कुमारे सयमेव पंचमुद्धियं लोयं करेड़, करेत्ता जेणामेव समणे भगवं महावीरे तेणामेव उवागच्छड़, उवागच्छित्ता समण भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेड़, करेत्ता वंदड़ णमंसड़, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी-आलित्ते णं भंते! लोए, पलित्ते णं भंते! लोए, आलित्तपलित्ते णं भंते! लोए जराए मरणेण य। से जहाणामए केइ गाहावई अगारंसि-झियायमाणंसि जे तत्थ भंडे भवइ अप्पभारे मोल्लगुरुए तं गहाय आयाए एगंतं अवक्कमइ-एस मे णित्थारिए समाणे पच्छा पुरा हियाए सुहाए खमाए णिस्सेसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ - एवामेव ममवि एगे आयाभंडे इट्ठे कंते पिए मणुण्णे मणामे एस मे णित्थारिए समाणे संसारवोच्छेयकरे भविस्सइ, तं इच्छामि णं देवाणुप्पियाहिं सयमेव पव्वावियं सयमेव मुंडावियं सेहावियं सिक्खावियं सयमेव आयार-गोयर-विणय-वेणइय-चरण-करण-जायामाया-वत्तियं धम्ममाइक्खियं।

शब्दार्थ - आलित्ते - आलिप्त-चारों ओर से लीपा हुआ, पिलत्ते - प्रिलिप्त-विशेष रूप से लिप्त, गाहावई - गाथापित-बड़ा व्यापारी, अगारंसि - घर में, झियाय-माणंसि - आग लग जाने पर, भंडे - वस्तु, अप्पभारे - थोड़े भार से युक्त-हल्की, मोल्ल-गुरुए - बहुमूल्य, गहाय - ग्रहण कर, आयाए - लेकर, णिल्थारिए - निःसृत करता है-निकालता है, खमाए - समुचित सुख-सामर्थ्य हेतु, णिस्सेसाए - निःश्रेयस-कल्याण के लिए, आणुगामियत्ताए - आने वाले समय में, आयाभंडे - आत्मरूप वस्तु, संसारवोच्छेयकरे - संसार का उच्छेद-नाश करने वाली, पव्वावियं - प्रव्रजित, मुंडावियं - मुंडित, सेहावियं - सेधित-सूत्रार्थ ग्राहित, सिक्खावियं - शिक्षित, आयार - मर्यादानुसार आचरण, गोयर - भिक्षाटन, विणय-अभिवादनादि क्रियोपचार, वेणइय - वैनयिक-विनय जनित कर्मक्षय आदि, चरण - महाव्रतादि साध्वाचार, करण - पिंडविशुद्धि आदि, जाया - तप-संयम आदि में प्रवृत्ति रूप जीवन यात्रा, माया - मात्रा—संयम निर्वाह हेतु आहारादि के परिमाण का ज्ञान, आइक्खियं - आख्यात-प्ररूपित करें।

भावार्थ - फिर मेघकुमार ने स्वयं ही पंचमुष्टिक लोच किया। वैसा कर वह श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के निकट आया। उनकी तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा की, वंदन एवं नमन किया तथा इस प्रकार निवेदन किया - भगवन्! यह लोक जरा तथा मरण आदि से आलिप्त-प्रलिप्त है। जैसे किसी गाथापित के घर में आग लग जाय तो वह उसी वस्तु को जो भार में हल्की हो तथा बहुमूल्य हो, एकांत स्थान में रखता है, वह जानता है कि यह मेरे लिए आगे-पीछे भविष्य में सुखप्रद होगी, निर्वाह में उपयोगी एवं कल्याण कर होगी। उसी प्रकार मेरी भी यह आत्मा रूपी वस्तु मेरे लिए इष्ट, कांत, प्रिय एवं मनोज्ञ है। संसार नाश के लिए,

जन्म-मरण को मिटाने के लिए सक्षम होगी। इसीलिए आप स्वयं मुझे प्रव्रजित एवं मुण्डित करें। मुझे सूत्र एवं अर्थ का ज्ञान दें, शिक्षित करें एवं मेरे लिए साधु-सम्मत आचार-धर्म का विस्तार से प्रतिपादन करें।

(9६0)

तए णं समणे भगवं महावीरे मेहं कुमारं सयमेव पव्वावेइ सयमेव आयार जाव धम्ममाइक्खइ-एवं देवाणुप्पिया! गंतव्वं चिट्ठियव्वं णिसीयव्वं तुयट्टियव्वं भुंजियव्वं भासियव्वं एवं उट्टाए उट्टाय पाणेहिं भूएहिं जीवेहिं सत्तेहिं संजमेणं संजमियव्वं अस्सिं च णं अट्ठे णो पमाएयव्वं।

तए णं से मेहे कुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए इमं एयारूवं धम्मियं उवएसं णिसम्म सम्मं पडिवज्जइ तमाणाए तह गच्छइ तह चिट्ठइ जाव उट्टाए उट्टाय पाणेहिं भूएहिं जीवेहिं सत्तेहिं संजमइ।

शब्दार्थ - गंतव्वं - चलना चाहिए, चिट्ठियव्वं - खड़े होना चाहिए, णिसीयव्वं - बैठना चाहिए, तुयट्टियव्वं - प्रमार्जन पूर्वक सोना चाहिए, भुंजियव्वं - आहार करना चाहिए, भासियव्वं - बोलना चाहिए, उट्टाए - उत्थित, उट्टाय - उठकर, संजिपयव्वं - संयम पूर्वक वर्तन-व्यवहार करना चाहिए, अस्सिं - हममें, आणाए - आज्ञा पूर्वक।

भावार्थ - तब श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने उसे प्रव्रर्जित किया तथा आचार विषयक धर्म का प्रतिपादन किया और कहा कि देवानुप्रिय! तुम्हें युग प्रमाण भूमि को देखते हुए चलना चाहिए। निर्वद्य एवं प्रमार्जित भूमि में खड़े होना चाहिए, बैठना चाहिए। बिछौने का तथा शरीर के वाम दक्षिण पाश्वों का प्रमार्जन कर सोना चाहिए। संयमोद्दिष्ट शरीर-रक्षण हेतु भोजन करना चाहिए। हित-परिमित एवं निर्वद्य भाषा बोलनी चाहिए। इस प्रकार अप्रमत्त-सावधान होकर प्राण (विकलेन्द्रिय), भूत (वनस्पतिकाय) जीव (पंचेन्द्रिय) और सत्त्व (चार स्थावर) की रक्षा करके संयम का पालन करना चाहिए। इस साधना पथ में प्रमाद नहीं करना चाहिए।

मेघकुमार ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से यह धार्मिक उपदेश सुना, भली भांति स्वीकार किया, उनके आज्ञानुरूप यतनापूर्वक चलने, खड़े होने आदि में तत्पर हुआ तथा सभी प्राणियों के प्रति संयम पूर्वक व्यवहार करने में उद्यत हुआ।

www.jainelibrary.org

मेघकुमार का उद्वेग

(१६१)

जं दिवसं च णं मेहे कुमारे मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए तस्स णं दिवसस्स पच्चावरण्हकालसमयंसि समणाणं णिग्गंथाणं अहाराइणियाए सेजासंथारएसु विभज्जमाणेसु मेहकुमारस्स दारमूले सेज्जासंथारए जाए यावि होत्था।

तए णं समणा णिगंथा पुव्वरत्तावरत्त-काल-समयंसि वायणाए पुच्छणाए परियट्टणाए धम्माणुजोगचिंताए य उच्चारस्स य पासवणस्स य अइगच्छमाणा य णिगाच्छमाणा य अप्पेगइया मेहं कुमारं हत्थेहिं संघटेंति एवं पाएहिं सीसे पोट्टे कायंसि अप्पेगइया ओलंडेंति-अप्पेगइया पोलंडेंति अप्पेगइया पाय-रय-रेणु-गुंडियं करेंति। एवं महालियं च णं रयणिं मेहेकुमारे णो संचाएइ खणमवि अच्छिं णिमीलित्तए।

शब्दार्थ - पच्चावरण्ह-कालसमयंसि - सायंकाल के समय, अहाराइणियाए - दीक्षा पर्याय के अनुक्रम से, विभाजमाणेसु - विभाजन किए जाने पर, दार मूले - द्वार के समीप, पुव्वरत्तावरत्त-काल समयंसि - रात्रि के पूर्व और अन्तिम भाग में, परियद्दणाए - परिवर्तना पूर्वक पठित सूत्रों की आवृत्ति के लिए, धम्माणुजोगचिंताए - धर्म की व्याख्या पर चिंतन के निमित्त, अइगच्छमाणा - प्रवेश करते हुए, णिग्गच्छमाणा - निकलते हुए, अप्येगइया - कितिपय, हत्थेहिं - हाथों से, संघटेंति - टकराते हैं, पोट्टे- पेट से, ओलंडेंति - लांघते हैं, पोलंडेंति - बार-बार लंघन करते हैं, पायरयरेणु गुंडियं - पैरों की धूल से धूसरित, महालियं रयणी - लम्बी रात में, अच्छिं - नेत्र, णिमीलित्तए - बंद करने के लिए।

भावार्थ - जिस दिन मेघ कुमार मुंडित होकर अनगार धर्म में प्रव्रजित हुआ, उसी दिन सायंकाल दीक्षा पर्याय के अनुक्रम से साधुओं के शैय्या संस्तारकों का विभाजन किया गया तो मेघकुमार का शैय्या संस्तारक दरवाजे के नजदीक हुआ। रात्रि के प्रथम और अंतिम समय में वाचना, पृच्छना एवं परिवर्तना तथा धर्मानुयोग की चिंतना हेतु उच्चार-प्रस्वण परठने के निमित्त कतिपय मुनि जब बाहर जाते, वापस लौटते तब मेघ कुमार के हाथों से टकरा जाते, किन्हीं के

पैर उसके मस्तक से, किन्हीं का पेट से टकरा जाता है। कतिपय उसको लांघकर निकलते, बार-बार ऐसा होता। किन्हीं-किन्हीं के पैरों की धूल उसके लग जाती। इस प्रकार उस लम्बी रात में मेघकुमार पल भर के लिए भी अपनी आँखें बंद नहीं कर सका।

विवेचन - जैन धर्म में चारित्र का स्थान सर्वोपरी है। वहाँ कुलीनता, वैभव, पद, प्रसिद्धि इत्यादि लौकिक विशेषताओं का महत्त्व नहीं है। यही कारण है कि प्रव्रजित हो जाने पर साधु संघ में सब एक समान हो जाते हैं। कोई राज परिवार से आया हो अथवा अतिसाधारण घर से आया हो, पूर्वावस्थाओं के आधार पर कोई अंतर नहीं माना जाता।

साम्यवाद का यह एक अति उत्तम आध्यात्मिक रूप है साधु-संघ में मर्यादागत निर्वद्य सुविधाओं की दृष्टि से, उनके विभाग की दृष्टि से दीक्षा-पर्याय की ज्येष्ठता का ध्यान रखा जाता है। जो साधु दीक्षा में बड़े होते हैं, विभाग में उनकी अनुकूलता का विशेष ध्यान रखा जाता है। चारित्र रूप रत्न के पर्यायाधिक्य के कारण उनके लिए यह प्रचलित है। इसी समतामूलक विभाग परंपरा के कारण राजकुमार मेघ के साथ शय्या संस्तारक के विभाग में पूर्वोद्धिखित व्यवहार हुआ जो श्रमण मर्यादा की दृष्टि से सर्वथा उचित था। संयम-साधना आत्म-बल के परीक्षण की कसौटी है। सहसा राजपरिवार से आने के कारण मेघ कुमार को वह अमनोज्ञ प्रतीत हुआ क्योंकि वह तो उसके संयम स्वीकार का पहला ही दिन था। वह वैराग्यवान् तो था, किन्तु अभ्यास की परिपक्वता अभी बाकी थी, जो आगे भगवान् महावीर द्वारा दिए गए आत्मावबोध से प्रस्फुटित हुई।

(१६२)

तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पजित्था एव खलु अहं सेणियस्स रण्णो पुत्ते धारिणीए देवीए अत्तए मेहे जाव सवणयाए, तं जया णं अहं अगारमज्झे वसामि तया णं मम समणा णिग्गंथा आढायंति परिजाणंति सक्कारेंति सम्माणेंति अट्ठाइं हेऊइं पिसणाइं कारणाइं वागरणाइं आइक्खंति इट्ठाहिं कंताहि वग्णूहिं आलवेंति संलवेंति, जप्पभिइं च णं अहं मुंडे भिवत्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए तप्पभिइं च ण ममं समणा णो आढायंति जाव णो संलवेंति, अदुत्तरं च णं मम समणा णिग्गंथा राओ पुट्यरत्तावरत्तकाल-

समयंसि वायणाए पुच्छणाए जाव महालियं च णं रितं णो संचाएमि अच्छिं णिमिलावेत्तए, तं सेयं खलु मज्झं कल्लं पाउप्पभायाए रयणीय जाव तेयसा जलंते समणं भगवं महावीरं आपुच्छित्ता पुणरित अगारमज्झे विसत्तए-तिकट्टु एवं संवेहेइ, संवेहेता अट्ट-दुहट्ट-वसट्ट-माणस-गए णिरय पिड्रक्वं च णं तं रयणिं खवेइ, खवेत्ता कल्लं पाउप्पभायाए सुविमलाए रयणीए जाव तेयसा जलंते जेणामेव समणे भगवं महावीरे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तिक्खुत्तो आयाहिणं प्याहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता जाव पज्जवासइ।

शब्दार्थ - समुप्पजित्था - उत्पन्न हुआ, रण्णो - राजा का, अत्तए - आत्मज, आढायंति - आदर करते, अडाइं - जीवादि पदार्थों को, हेऊइं - न्याय युक्ति द्वारा, पिसणाइं - प्रश्नों को, वागरणाइं - विवेचन, विश्लेषण को, जप्पिभइं - जब से, तप्पिभइं - तब से, अदुत्तरं - अनंतर, सेयं - श्रेयस्कर, मज्झं - मेरे लिए, कल्लं - कल, पाउप्पभायाए रयणीए - रात्रि के व्यतीत होने पर प्रातःकाल, तेयसा - तेज से जलते-प्रज्वलित होने पर, आपुच्छिता - आज्ञा लेकर, अद्दुहदृवसट्टे - आर्तध्यान एवं दुःख से पीड़ित, णिरयपडिस्त्वं - नरक के समान, खवेइ - बिताता है।

भावार्थ - तब मेघकुमार के मन में ऐसा भाव उत्पन्न हुआ-''मैं राजा श्रेणिक का पुत्र हूँ, धारिणी का आत्मज हूँ। जब मैं घर में था, तब श्रमण निर्ग्रन्थ मेरा आदर सत्कार एवं सम्मान करते थे। जीवाजीवादि पदार्थ, तद्विषयक प्रश्न आदि युक्ति पूर्वक समझाते थे, विश्लेषण करते थे। इष्ट एवं प्रिय वाणी से आलाप-संलाप करते थे। जब से मैं मुंडित होकर अनगार धर्म में प्रव्रजित हुआ हूँ, साधुगण न मेरा आदर करते हैं और न प्रिय वाणी से आलाप संलाप ही करते हैं। इतना ही नहीं पिछली रात के पहले और अन्तिम समय में वाचना, पृच्छना आदि हेतु मुनियों का आना-जाना रहा, जिससे मैं उनसे अनेक प्रकार के टकराव आदि से दुःखित हुआ। इस लम्बी रात्रि में मैं अपनी आँखें भी बंद नहीं कर पाया। मेरे लिए यही श्रेयस्कर है कि मैं कल, रात्रि व्यतीत होने पर प्रातःकाल सूर्योदय के पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से पूछ कर आज्ञा लेकर पुनः गृहवास हेतु चला जाऊँ।'' इस प्रकार चिंतन-मंथन में लगा रहा। उसका मन आर्त्तध्यान और दुःख में निमन्न रहा। नरकवास की तरह उसने किसी तरह रात्रि बिताई। सवेरा होने पर, सूरज निकल जाने के बाद वह भगवान् महावीर स्वामी के पास आया। उनको

तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा पूर्वक वंदन नमन किया, उनकी पर्युपासना करने लगा, उनकी सिन्निधि में स्थिर हुआ।

(१६३)

तए णं 'मेहाइ' समणे भगवं महावीरे मेहं कुमारं एवं वयासी-''से णूणं तुमं मेहा! राओ पुव्वरत्तावरत्त-कालसमयंसि समणेहिं णिगंथेहिं वायणाए पुच्छणाए जाव महालियं च णं राइं णो संचाएसि मुहत्तमिव अच्छिं णिमिल्लावेत्तए, तए णं तुब्भे मेहा! इमे एयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्ञित्था—जया णं अहं अगार-मज्झे वसामि तया णं मम समणा णिगंथा आढायंति जाव संलवेंति, जप्पभिइं च णं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वयामि तप्पभिइं च णं मम समणा णो आढायंति जाव णो परियाणंति अदुत्तरं च णं मम समणा णिगंथा राओ अप्पेगइया वायणाए जाव पायरयरेणुगुंडियं करेंति, तं सेयं खलु मम कल्लं पाउप्पभायाए समणं भगवं महावीरं आपुच्छित्ता पुणरिव अगार मज्झे आविसत्तए त्तिकटु एवं संपेहेसि २ ता अट्ट-दुहट्ट-वसट्ट-माणसे जाव र्याणं खवेसि २ त्ता जेणामेव अहं तेणामेव हव्वमागए, से णूणं मेहा! एस अट्टे समट्टे? हंता अट्टे समट्टे।

भावार्थ - श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने मेघकुमार को संबोधित कर कहा - ''मेघ! रात के पहले एवं अंतिम समय में जब श्रमण निर्ग्रन्थ वाचना, पृच्छना हेतु आते-जाते थे, तब उनसे टकराए जाने आदि से तुम मुहूर्त भर भी आँखें बंद नहीं कर सके। तब तुम्हारे मन में ऐसा विचार आया कि जब मैं घर में था तब सभी श्रमण निर्ग्रन्थ मेरा आदर करते थे, मधुरतापूर्वक आलाप-संलाप करते थे। जब से मैं अनगार धर्म में प्रव्रजित हुआ हूँ, न मेरा आदर करते हैं और न मधुरवाणी में बात ही करते हैं। इतना ही नहीं रात में मुनिगण वाचना, पृच्छना के निमित्त जाते-आते समय मुझ से टकराते रहे। उनके पैरों की धूल मुझ से लगती रही। अतः प्रातःकाल श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास जाकर, उनकी आज्ञा लेकर घर चला जाऊँ-तुम्हारे मन में ऐसा ऊहापोह होने लगा। तुम आर्त्तध्यान से, दुःख से उद्दिग्न हो उठे। तुमने नरकावास की तरह रात्रि बिताई। रात व्यतीत कर शीघ्र ही तुग यहाँ आ गए। मेघ! क्या यह बात सही है?'' मेघकुमार बोला - ''भगवन्! जैसा आप फरमाते हैं, वह यथार्थ है।''

प्रतिबोध हेतु पूर्वभव का आख्यान (१६४)

एवं खलु मेहा! तुमं इओ तच्चे अईए भवगगहणे वेयहृगिरि-पायमूले वणयरेहिं णिव्वत्तिय-णामधेज्ञे सेय संखदलउज्जल-विमल-णिम्मल दिहघण-गोखीरफेण-रयणियरप्ययासे सत्तुस्सेहे णवायए दसपिरणाहे सत्तंगपईद्विए सोमे सिमए सुरूवे पुरओ उदग्गे समूसियिसरे सुहासणे पिट्ठओ वराहे अइया कुच्छी अच्छिद्दकुच्छी अलंबकुच्छी पलंबलंबोदराहरकरे धणुपट्ठागिइ-विसिट्ठपुट्टे अल्लीण-पमाण जुत्त-विद्य-पीवर-गत्तावरे अल्लीण-पमाण-जुत्त-पुच्छे पिट्ठपुण्ण-सुचारु-कुम्म-चलणे, पंडुर-सुविसुद्ध-णिद्ध-णिरुवहय-विंसितिणहे छदंते सुमेरुप्पभे णामं हत्थिराया होत्था।

शब्दार्थ - इओ - इससे, तच्चे - तीसरे, अइए - अतीत, भवगाहणे - भवग्रहण के समय, वेयहिगिरि-पायमूले - वैताद्य पर्वत की तलहटी में, वणयरेहिं - वनचरों द्वारा, णिट्यित्तयणामधेजे - नाम रखा हुआ, संखदल - शंख का चूर्ण, दिह - दिध, घण - शरदऋतु का मेघ, गोखीरफेण - गाय के दूध का झाग, रयणियरप्पयासे - चन्द्रमा के समान प्रकाश युक्त, सत्तुस्सेहे - सात हाथ ऊँचे, णवायए - नौ हाथ लंबे, दसपरिणाहे - दस हाथ प्रमाण मध्य भाग युक्त, सत्त्रगंपइडिए - परिपूर्ण सप्त अंग युक्त, सोमे - सौम्य, सिपए - प्रमाणोपेत अंग सिहत, उदगो - उदग्र-उच्च, समूसियसिरे - उन्नत मस्तक युक्त, सुहासणे - सुंदर स्कंधादि युक्त, पिट्ठओ - पिछला भाग, वराहे - सूअर, अइया कुच्छी - बकरी के समान कुक्षि युक्त, अच्छिद - छिद्रवर्जित, पलंब-लंबोदराहरकरे - लम्बे पेट अधर तथा सूंड युक्त, धणुपट्ठागिइ - धनुष के पृष्ठ भाग की आकृति, पुट्टे - पीठ, अल्लीण - सुसंघटि, विट्टेयट - गोलाकार, पीवर - परिपुष्ट, गत्तावरे - अन्य अवयव, कुम्म चलणे - कछुए के समान पैर, पंडुर - श्वेत, णिद्ध - चिकना, णिरुवहय - निरुपहत-अछिन्न-भिन्न, छहंते - छह दांत युक्त, हत्थे राया - हाथियों का राजा।

भावार्थ - मेघ! तुम इस भव से पूर्व अतीत काल में, तीसरे भव में वैताद्ध्य पर्वत की तलहटी में तिराज थे। वनचरों ने तुम्हारा नाम सुमेरुप्रभ रखा था। तुम्हारा वर्ण श्वेत था। तुम शंख, चूर्ण, दिध, गोदुग्ध के फेन, चंद्र, जल कण, रजत के समान निर्मल, उज्ज्वल, श्वेत थे। तुम सात हाथ ऊँचे, नौ हाथ लम्बे एवं मध्यभाग दस हाथ के परिणाह-परिधि घेराव वाले थे। तथा अपने सुगठित सातों अंगों (चार पैर, सूंड, पूंछ, जननेन्द्रिय) से युक्त बड़े सुहावने थे। तुम्हारी देह का अग्र भाग, पृष्ठ भाग, मस्तक, निम्न भाग, कुक्षि इत्यादि सभी प्रमाणोपेत, पृष्ट और सुभग-सौभाग्यशाली थे। तुम्हारी सूंड लबी और सुहावनी थी। छह दांतों से तुम बड़े मनोज प्रतीत होते थे। तुम्हारे बीसों नाखून श्वेत, निर्मल, स्निग्ध और निरुपहत थे।

तत्थ णं तुमं मेहा! बहूहिं हत्थीहि हत्थिणियाहि य लोट्टएहि य लोट्टियाहि य कलभेहि य कलभियाहि य सिद्धं संपरिवुडे हित्थि-सहस्सणायए देसए पागडी पट्टवए जूहवई वंदपरियट्टए अण्णेसिं च बहूणं एकल्लाणं हत्थिकलभाणं आहेतुच्चं जाव विहरसि।

शब्दार्थ - लोटएहि - छोटी अवस्था के हाथियों से, लोटियाहि - छोटी अवस्था की हथनियों से, कलभेहि - हाथी के बच्चों से, हित्थे-सहस्सणायए - एक हजार हाथियों के अधिपति, देसए - मार्ग दर्शक, पागड़ी - अग्रगामी, पड़वए - प्रस्थापक-विविध कार्य नियोजक, जूहवई - यूथपति-हस्ति समूह नायक, वंदपरियट्टए - वृंद परिवर्धक-हस्ति समूह के उन्नायक, अण्णेसिं - दूसरों के, एकछाणं - एकाकी।

भावार्थ - मेघ! तुम तब बहुत से बड़े हाथियों-हथनियों, छोटे हाथियों-हथनियों तथा बच्चों से घिरे रहते थे। एक हजार हाथियों के नायक, मार्ग दर्शक एवं अग्रगामी थे। अकेले घूमने वाले हाथियों के बच्चों का भी लालन-पालन करते थे। इस प्रकार तुम विहरणशील थे।

(१६६)

तए णं तुमं मेहा! णिच्चप्पमत्ते सइं पललिए कंदप्परई मोहणसीले अवितण्हे कामभोग तिसिए बहूहिं हत्थीहि य जाव संपरिवुडे वेयह गिरिपायमूले गिरीसु य दरीसु य कुहरेसु य कंदरासु य उज्झरेसु य णिज्झरेसु य वियरएसु य गद्दासु य पल्लवेसु य चिल्ललेसु य कडगेसु य कडयपळ्ळलेसु य तडीसु य वियडीसु य टंकेसु य कूडेसु य सिहरेसु य पब्भारेसु य मंचेसु य मालेसु य काणणेसु य वणेसु य वणसंडेसु य वणराईसु य णईसु य णईकच्छेसु य जूहेसु य संगमेसु य वावीसु य पोक्खरिणीसु य दीहियासु य गुंजािलयासु य सरेसु य सरपंतियासु य सरसरपंतियासु य वणयरेहिं दिण्णिवयारे बहूिहं हत्थीिह य जाव सिद्धं संपरिवुडे बहुिवह-तरु-पल्लव-पउर-पाणियतणे णिब्भए णिरुव्विग्गे सुहंसुहेणं विहरिस।

शब्दार्थ - णिच्चप्पमत्ते - नित्य प्रमत्त-मस्त, सइं - सदा, पलिलए - क्रीडाशील, कंदप्परई - कामक्रीड़ा में प्रीतिशील, मोहणसीले - विषयासक्त, अवितिण्हे - काम-भोग में अविरक्त, कामभोगतिसिए - काम-भोग में सतृष्ण, कुहरेसु - पर्वतों के अन्तराल भाग में, उज्झरेसु - पर्वत के ऊपरी भाग से गिरने वाले झरनों पर, णिज्झरेसु - पर्वत के नीचे के भाग से गिरने वाले झरनों पर, विवरएसु - नदी के तट प्रदेश से बहते हुए जल में, पल्लवेसु - छोटे जलाशयों में, चिल्ललेसु - कीचड़ युक्त, छोटे तालाबों में, कडगेसु - पर्वत तटों पर, कड़य पल्ललेसु - पर्वतों के निकटवर्ती छोटे तालाबों में, वियडीसु - छिन्न-भिन्न तटों पर, टंकेसु - एक दिशा की ओर टूटे हुए पर्वतों पर, कूड़ेसु - पर्वत शिखरों पर, पक्सरेसु - कुछ झुके हुए पर्वतों के भागों में, मंचेसु - बड़े-बड़े सपाट शिला खंडों पर, मालेसु - खंतों की रक्षार्थ बनाई गई मचानों में, णाईकड़छेसु - नदी तटवर्ती वृक्ष समूहों में, जूहेसु - बंदर आदि प्राणि समूह के आवास स्थानों में, वाबीसु - चतुष्कोण युक्त बावड़ियों में, पोकखरिणीसु - कमल युक्त गोलाकार जलाशयों में, वीहियासु - दीर्घाकार वापियों में, गुंजालियासु - वक्राकार वापी में, सरपंतियासु - तालाबों की कतारों में, सरसर पंतियासु - परस्पर संलग्न सरोवरों की कतारों में, वण्यदेहिं - भीलादि वनवासीजनों द्वारा, दिण्णविद्यारे - विचरण करने की छूट, पउर - प्रसुर, तणे - तुण-घास, णिक्टियंगे - उद्देग रहित।

भावार्थ - मेघ! तुम निरंतर मस्ती के साथ क्रीड़ा परायण, काम भोग में अभिरत, अतृप्त सतृष्ण बने हुए, वैताद्य पर्वत की तलहटी में, पर्वतों की गुफाओं में, कंदराओं में, झरनों पर वनों में, सरोवरों में, वापियों में, नदी-तटवर्ती वृक्षों के झुरमुटों में, पुष्करिणियों में क्रीडारत रहते थे। भील आदि वनचरों ने विचरण हेतु तुम्हें छूट दे रखी थी। तुम अनेकानेक हाथियों के साथ वृक्षों के पल्लव, पानी, घास आदि का स्वेच्छा पूर्वक उपभोग करते हुए भय तथा उद्देग रहित होकर सुख पूर्वक विचरणशील थे।

(৭६७)

तए णं तुमं मेहा! अण्णया कयाइ पाउस-विस्तारत्त-सरय-हेमंत-वसंतेसु कमेण पंचसु उऊसु समइक्कंतेसु गिम्हकाल-समयंसि जेट्टामूलमासे पायव-घंस-समुद्विएणं सुक्कतण-पत्त-कयवर-मारुय-संजोगदीविएणं महाभयंकरेणं हुयवहेणं वण-दवजाला- संपलित्तेसु, वणंतेसु धूमाउलासु दिसासु महावायवेगेणं संघट्टिएसु छिण्णजालेसु आवयमाणेसु पोल्लरुक्खेसु अंतो-अंतो झियायमाणेसु मय-कुहिय-विणड्ट-किमियकदमणई वियरग-ज्झीण्ण-पाणीयंतेसु वणंतेसु भिंगारक-दीणकंदियरवेसु खर-फरुस अणिइ-रिइवाहीत्त विददुमगोसु दुमेसु तण्हावस-मुक्क-पक्ख पयडिय जिब्भ-तालुय-असंपुडिय-तुंडपक्खिसंघेसु ससंतेसु गिम्ह-उम्ह-उण्ह वाय खरफरुस-चंडमारुय सुक्कतण पत्तकयवर वाउलि-भमंत-दित्त-संभंत-सावयाउल-मिगतण्हा बद्ध-चिंधपट्टेसु गिरिवरेसु संवट्टिएसु, तत्थ-मिय-पसय-सरीसिवेसु अवदालिय-वयण विवर-णिल्लालियग्गजीहे महंत-तुंबइय-पुण्ण कण्णे संकुचिय थोर-पीवरकरे-ऊसियणंगुले पीणाइय-विरस-रडियसद्देणं फोडयंतेव अंबरतलं पायदद्दरएणं कंपयंतेव मेइणितलं विणिम्मुयमाणे य सीयारं सञ्जओ समंता वल्लि-वियाणाइं छिंदमाणे रुक्खसहस्साइं तत्थ सुबहूणि णोल्लायंते विणट्टरहेव्व णरवरिंदे वायाइद्धेव्व पोए मंडलवाएव्व परिन्भमंते अभिक्खणं २ लिंडणियरं पमुंचमाणे २ बहूहिं हत्थीहि य जाव सद्धिं दिसोदिसिं विप्पलाइत्था।

शब्दार्थ - अण्णया - अन्य समय, कयइ - कदापि, समइक्कंतेसु - व्यतीत होने पर, गिम्हकालसमयंसि - ग्रीष्मकाल के समय, जेट्टामूलमासे - जेठ के महीने में, पायव-घंस-समृद्धिएणं - वृक्षों के घर्षण से उत्पन्न, कयवर - कचरा, दीविएणं - प्रज्विलत, हुयवहेणं-अनि द्वारा, वणदव - दावानि - वन की आग, धूमाउलासु - धुँए से व्याप्त, महावायवेगेणं-वायु के भयंकर आधात से, आवयमाणेसु - फैल जाने पर, पोल्लरुक्खेसु - खोखले वृक्षों में, झियायमाणेसु - जलते हुए, मय - मृत, कुहिय - दुर्गंधित, किमि - कृमि-कीड़े,

कद्दम - कीचड़, झीण - क्षीण, भिंगारक - झिल्ली नामक कीट विशेष, खर फरुस -अत्यंत कर्कश, रिष्ट - काक, वाहीत्त - काँव-काँव की आवाज, विद्दुमगोसु - अग्नि के ज्वलन से मूंगे की ज्यों लाल दीखने वाले अग्रभागों से युक्त, तण्हावस - प्यास के कारण, मुक्क पक्ख - शिथिल पंख युक्त, पयडिय - प्रकटित - बाहर निकले हुए, जिब्भ-ताल्य-जिह्ना तालु, असंपुडिय - खुले हुए, तुंड - मुख, ससंतेसु - तेज श्वास छोड़ते हुए, गिम्ह उण्ह - ग्रीष्म ऋतु की उष्णता, उण्हवाय - प्रचण्ड सूर्य की किरणों से जनित संताप, वाउलि-वात्या - चक्रवात, दित्त - त्रस्त-डरे हुए, संभंत - संभ्रातियुक्त, सावया - सिंहादि जंगली प्राणी, आउल - व्याकुल, मिगतण्हा - मृग तृष्णा-मृगमरीचिका, चिंधपट्टेसु - ध्वजा वस्त्र युक्त, संविद्दिएसु - एकत्र सम्मिलित, तत्थ - त्रासयुक्त, मिय - मृग, पसय - जंगली चौपाए प्राणी, सरीसिबेसु - सरीसृप-पेट के बल रेंग कर चलने वाले, अवदालिय - खुले हुए, णिल्लालियगाजीहे - जीभ को बहार निकाले हुए, महंततुंबइय-पुण्णकण्णे - भय से व्याकुल होने के कारण तुम्बिकाकार कर्ण युक्त, धोर - स्थूल, पीवर - पृष्ट, कर - सूंड, णंगुले -पूंछ, पीणाइय - बिजली की गर्जना के समान भयानक, विरस - अप्रिय, रिडयसदेणं -चिंघाड़ शब्द द्वारा, फोडयंतेव - फोड़ता हुआ सा, पाय-दहरएणं - पाद के आघात द्वारा, मेइणितलं - भूमितल को, विणिम्मुयमाणे - छोड़ता हुआ, सीयारं - जल कण, सव्वओ समंता - सब ओर, विल्लिवियाणाई - विस्तृत लता समूह, छिंदमाणे - छिन्न-भिन्न करता हुआ, णोल्लायंते - कंपाता हुआ, विणहुरहे - जिसका राष्ट्र-राज्य नष्ट हो गया हो, णरवरिंदे-नरवरेन्द्र-महानराजा, वाचाइद्धे - प्रचण्ड पवन से हिलाए गए, पोए - पोत, मंडल वाएव्य -गोलाकार वायु की तरह, अभिक्खणं - क्षण-क्षण-पुनः-पुनः, लिंडणियरं - अत्यधिक लीद, पमुंचमाणे - छोड़ता हुआ, विप्पलाइत्था - भागने लगा।

भावार्थ - एक बार का प्रसंग है, वर्षा-शरद्-हेमंत और बसंत ऋतुएं क्रमशः व्यतीत हुई। प्रीष्म ऋतु का आगमन हुआ। जेठ का महीना था। वृक्षों की पारस्परिक रगड़ से आग उत्पन्न हो गई। सूखे पत्तों, घास एवं कचरे से, तेज हवा से आग अत्यंत भयंकर हो गई। उस दावानल की ज्वालाओं से वन सुलग उठा। दिशाएं धुएँ से भर गई। प्रचण्ड वायु का वेग बढता गया, जिससे अनि की ज्वालाएँ चारों ओर फैलने लगीं। खोखले वृक्ष भीतर ही भीतर जल उठे। भरे हुए मृगादि पशुओं के शव सभी ओर फैल गए। उनके कारण नदी नालों का जल सड़ने लगा। भृंगारक पक्षी दैन्य पूर्वक क्रंदन करने लगे। वृक्षों पर बैठे कौवे कर्कश ध्वनि में काँव-काँव करने

लगे। आग में जलते हुए पेड़ों के अग्र भाग मूंगे के समान लाल दिखाई देने लगे। प्यास से व्याकुल होने के कारण पिक्षयों के पंख शिथिल हो गए। वे जीभ और तालु बाहर निकाल कर तेज सांस लेने लगे। ग्रीष्मकाल की गर्मी, सूरज के ताप, प्रचण्ड वायु, शुष्क घास, पत्ते तथा कचरे से युक्त चक्रवात के कारण भागते हुए, घबराए हुए सिंहादि जंगली प्राणियों के कारण पर्वतीय भाग आकुलतामय वातावरण से व्याप्त हो उठे। त्रास युक्त मृग, अन्यान्य पशु तथा सरीसृप इधर-उधर तड़फने लगे।

मेघ! उस भयंकर अवसर पर तुम्हारा अर्थात् तुम्हारे पूर्व जन्म के सुमेरप्रभ नामक गजराज का मुख विवर फट गया। जिह्ना बाहर निकल आई। बड़े-बड़े दोनों कान भय जनित स्तब्धता के कारण तुंबिका की ज्यों ऊपर उठ गए। तुम्हारी परिपृष्ट और स्थूल सूंड संकुचित हो गई। तुमने अपनी पूंछ को ऊँचा कर लिया। बिजली की गर्जना के समान घोर विघाड़ से तुम आकाश को फोड़ते हुए से, चारों ओर लताओं को छिन्न-भिन्न करते हुए, जिसका राष्ट्र नष्ट हो गया हो, उस नरेन्द्र की तरह तूफान से हिलाए गए जहाज के समान विचलित होते हुए, भय के कारण बार-बार लीद करते हुए घबराहट से बहुत से हाथियों के साथ विभिन्न दिशाओं विदिशाओं में इधर-उधर भागने लगे।

(१६६)

तत्थ णं तुमं मेहा! जुण्णे जरा-जजारिय-देहे आउरे झंझिए पिवासिए दुब्बले ।कलंते णडुसुइए मूढदिसाए सयाओ जूहाओ विष्पहूणे वणदव-जाला-पारखे उण्हेण य तण्हाए य खुहाए य परब्भाहए समाणे भीए तत्थे तसिए उळ्यिणे संजाय-भए सठ्यओ समंता आधावमाणे परिधावमाणे एगं च णं महं सरं अप्पोदयं पंकबहुलं अतित्थेणं पाणियपाए उइण्णो।

शब्दार्थ - जुण्णे - जीर्ण, जरा-जजरिय-देहे - जराजर्जरित शरीर-बुढापे से दुर्बल बने शरीर वाले, आउरे - आतुर, झंझिए - क्षुधा पीड़ित, पिवासिए - प्यासे, व्याकुल, किलंते- क्लांत, णहसुइए - स्मृति विहीन, मूडदिसाए - दिशाओं के ज्ञान से शून्य, विष्पहूणे - बिहुई हुए, वणदवजाला पारखे - दावागि की ज्वालाओं से संतम, परब्भाहए - पराभूत, ताथे - त्रस्त, संजायभए - भय युक्त, आधावमाणे - दौड़ता हुआ, अप्योवयं - थोड़े पानी वाले. अतिरक्षेणं - अतीर्थेन-बिना घाट के, उइण्णो - उतर गए।

भावार्थ - मेघकुमार! तब तुम जीर्ण - शीर्ण, जराजर्जरित, आकुल-व्याकुल, भूखे-प्यासे, दुर्बल, परिश्रांत, स्मृति रहित और दिग्मृढ होकर अपने समूह से पृथक् हो गए। दावानल की ज्वालाओं से व्यथित होने लगे। गर्मी, प्यास और भूख से अत्यन्त पीड़ित होकर बहुत ही घवरा गए। त्रस्त होकर इधर-उधर दौड़ते हुए तुम एक ऐसे तालाब में जिसमें पानी बहुत कम था, कीचड़ ही कीचड़ था, बिना घाट के ही उतर गए।

(988)

तत्थ णं तुमं मेहा! तीर-मइगए पाणियं असंपत्ते अंतरा चेव सेयंसि विसण्णे। तत्थ णं तुमं मेहा! पाणियं पाइस्सामित्तिकट्टु हत्थं पसारेसि, से वि य ते हत्थे उदगं ण पावइ। तए णं तुमं मेहा! पुणरिव कायं पच्चुद्धिरस्सामि-त्तिकट्टु बिलयतरायं पंकंसि खुत्ते।

शब्दार्थ - तीरमइगए - किनारे से दूर गए हुए, अंतरा चेव - बीच में ही, विसण्णे - फंस गये, हृत्थं - सूँड को, पच्चुद्धिरस्सामि - निकालूं, बिलियतरायं - गहरे, खुत्ते-फंस गए। भावार्थ - मेघ! तुम वहाँ किनारे से दूर चले गए। किन्तु पानी तक नहीं पहुँच सके। बीच में ही फंस गए। 'मैं पानी पीऊँ' यों विचार कर तुमने पानी लेने हेतु अपनी सूंड को फैलाया किन्तु वह पानी तक नहीं पहुँच सकी। तब तुमने पुनः 'अपनी देह को बाहर निकालूं' यह सोच कर बहुत जोर लगाया परन्तु कीचड़ में और गहरे फंस गए।

(960)

तए णं तुमं मेहा! अण्णया कयाइ एगे चिरणिज्नूढे गय वर जुवाणए सगाओ जूहाओ कर-चरण दंतमुसल-प्यहारेहिं विष्यरद्धे समाणे तं चेव महद्दहं पाणीयं पाएउं समोयरेइ।

तए णं से कलभए तुमं पासइ, पासित्ता तं पुट्ववेरं सुमरइ २ त्ता आसुरुत्ते रहे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे जेणेव तुमं तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्तः तुमं तिक्खेहिं दंतमुसलेहिं तिक्खुत्तो पिट्ठओ उच्छुभइ २ त्ता पुट्ववेरं णिज्जाएइ २ त्ता हट्ठ तुट्ठे पाणियं पियइ २ त्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए।

शब्दार्थ - चिरणिज्जूढे - बहुत काल पूर्व समूह से निष्कासित, गयवर जुवाणए - उत्तम युवा हाथी, कर - सूँड, पहारेहिं - प्रहारों द्वारा, विष्परद्धे - विशेष रूप से पीड़ित, आसुरुत्ते - शीध्र ही क्षुड्ध, रुद्धे - रुष्ट, कुविए - कुपित, चंडिक्किए - प्रचण्ड क्रिया युक्त, उच्छुभड़ - बींध डालता है, णिज्जाएड़ - निर्यातित करता है-निकालता है।

भावार्थ - तदनंतर, हे मेघ! एक श्रेष्ठ युवा हाथी, जिसको तुमने, जब वह बहुत छोटा था, अपनी सूंड, पैर तथा मूसल के समान दाँतों से मार-मार कर अपने झुंड से निकाल दिया था, वह पानी पीने हेतु उसी सरोवर में उतरा।

उस युवा हाथी की दृष्टि तुम्हारे पर गयी। देखते ही उसे पहले का वैर याद हो आया। वह तत्क्षण तुम्हारे पर बहुत ही क्रोधित हुआ। उसने विकराल रूप धारण किया। क्रोध की आंग से जलता हुआ वह तुम्हारे पास आया तथा तुम्हारी पीठ को उसने अपने मूसल जैसे तीखे दाँतों से तीन बार प्रहार कर बींध डाला। इस प्रकार उसने अपना वैर निकाला। बहुत प्रसन्नता से पानी पीकर, जिधर से आया था, उधर ही चला गया।

(999)

तए णं तव मेहा! सरीरगंसि वेयणा पाउब्भवित्था उज्जला विउला तिउला कक्खडा जाव दुरिहयासा पित्तज्जर-पिरगय-सरीरे दाहवक्कंतीय यावि विहरित्था। तए णं तुमं मेहा! तं उज्जलं जाव दुरिहयासं सत्तराइंदियं वेयणं वेदेसि सवीसं वाससयं परमाउं पालइत्ता अट्टवसट्टदुहट्टे कालमासे कालं किच्चा इहेव जंबुद्दीवे २ भारहे वासे दाहिणद्ध भरहे गंगाए महाणईए दाहिणे कूले विंझगिरिपायमूले एगेणं मत्तवरगंधहित्थणा एगाए गयवरकरेणूए कुच्छिंसि गयकलभए जिणए। तए णं सा गयकलभिया णवण्हं मासाणं वसंतमासिम्म तुमं प्याया।

शब्दार्थ - उज्जला - तीव्र दुःख से जाज्वल्यमान, विउला - सारे शरीर में व्याप्त, तिउला - मन, वचन एवं काय व्यापी, कक्खडा - कठोर, दुरहियासा - असह्य, पित्तज्जरपरिगयसरीरे - पित्त ज्वर युक्त शरीर, दाह वक्कंतीय - दाह से व्याकुल, सत्तराइंदियं - सात रात-दिन, वाससयं - सौ वर्ष, कूले - तट पर, विंझगिरिपायमूले - विन्ध्यपर्वत की तलहटी में, गयवर करेणूए - श्रेष्ठ हिथनी, कुच्छिंसि - कोख में, गयकलभए - हाथी का बच्चा, गयकलभिया - युवा हिथनी।

भावार्थ - मेघ! तुम्हारे शरीर में तीव्र, कठोर एवं असह्य वेदना उत्पन्न हुई। जिसके कारण तुम्हारा शरीर पित्तज्वर के दाह से जल उठा। सात दिन रात तक तुम इस वेदना को भोगते रहे। एक सौ बीस वर्ष की आयु प्राप्त कर, अत्यधिक आर्त्तध्यान एवं घोर विषाद के साथ तुमने प्राण-त्याग किया। फिर इसी जंबूद्वीप भारत वर्ष के अंतर्गत, दक्षिणार्द्ध भरत में गंगा महानदी के दाहिने किनारे पर, विनध्याचल पर्वत की तलहटी में एक मदोन्मत्त उत्तम गंध हस्ती द्वारा एक श्रेष्ठ हथिनी की कोख में, हाथी के बच्चे के रूप में आए। नव मांस पूर्ण होने पर उस तरुण हथिनी ने बसंत मास में तुम्हें जन्म दिया।

विवेचन - आगम में युगलियों का वर्णन आता है। तीन पल्योपम वाले युगलिये ४६ अहोरात्र में, दो पल्योपम वाले युगलिये ६३ (या ६४) अहोरात्र में और एक पल्योपम वाले युगलिये ७६ अहोरात्र में जवान बन जाते हैं। जिस प्रकार स्थिति घटने के साथ-साथ जवानी प्राप्त होने का कालमान युगलियों के बढ़ना बताया है। वैसे ही गर्भ के कालमान में भी अलग-अलग युग में न्यूनाधिक होना असंभव नहीं लगता है। इस दृष्टि से वर्तमान् युग में हाथी के गर्भ का कालमान अधिक होर्ते हुए भी उस युग में नव महीने का कालमान असंभव नहीं है। अथवा आगम लेखन काल में व्यवस्थित आगम संदर्भ उपलब्ध नहीं होने के कारण सर्वानुमित से इस प्रकार का लेखन हो गया हो क्योंकि सर्वज्ञों की वाणी प्रत्यक्षादि विरुद्ध नहीं होती है।

(१७२)

तए णं तुमं मेहा! गब्भवासाओ विष्पमुक्के समाणे गयकलभए यावि होत्था रत्तुष्पल-रत्त-सूमालए जासुमणा-रत्त-पारिजातय-लक्खारस-सरस कुंकुम संझब्भरागवण्णे इट्ठे णियगस्स जूहवइणो गणियायारकणेरु-कोत्थ-हत्थी अणेग-हत्थिसब-संपरिवुडे रम्मेसु गिरिकाणणेसु सुहंसुहेणं विहरसि।

शब्दार्थ - रत्तपारिजातय - रक्त वर्ण का पारिजात संज्ञक वृक्ष, गणियायार - गणिकाओं के समान, कणेरु - तरुण हथिनी, कोत्थ - उदर प्रदेश, हत्थ - सूँड।

भावार्थ - मेघ! तुम गर्भवास से विप्रमुक्त होकर, जन्म लेकर, छोटे हाथी के रूप में विकसित हुए। तुम्हारी देह लाल कमल, जपा कुसुम, रक्तवर्णी पारिजात पुष्प, लाक्षारस और संध्याकालीन मेघों के रंग के समान रक्तवर्ण युक्त एवं सुकुमार थी। अपने यूथपित के तुम अत्यंत प्रिय थे। गणिकाओं जैसी सुंदर युवा हथिनयों के उदर प्रदेश का अपनी सूँड से संस्पर्श करते हुए, सैकड़ों हाथियों से घिरे हुए, पर्वत के रमणीय काननों में सुख पूर्वक विचरण करने लगे।

(१७३)

तए णं तुमं मेहा उम्मुक्क-बालभावे जोव्वणग-मणुप्पत्ते जूहवइणा काल-धम्मुणा संजुत्तेणं तं जूहं सयमेव पडिवज्जिस।

शब्दार्थ - उम्मुक्कबालभावे - बात्यावस्था पार कर, जोव्वणग-मणुप्पत्ते - युवावस्था प्राप्त होने पर, कालधम्मुणा संजुत्तेणं - काल धर्म से संयुक्त होने पर-मरने पर।

भावार्थ - मेघकुमार! तुम बाल्यावस्था को पार कर युवा हुए। जब तुम्हारे यूथ का पति हस्तिराज का देहान्त हो गया तब तुम स्वयं उस यूथ के अधिपति हो गए।

(৭৬४)

तए णं तुमं मेहा! वणयरेहिं णिव्वत्तिय-णामधेज्जे जाव चउदंते मेरुप्पभे हित्थरयणे होत्था। तत्थ णं तुमं मेहा! सत्तंगपइडिए तहेव जाव पडिरूवे। तत्थ णं तुमं मेहा! सत्तसइयस्स जूहस्स आहेवच्चं जाव अभिरमेत्था।

शब्दार्थ - अभिरमेत्था - अभिरमण करने लगे।

भावार्थ - मेघ! वनचरों ने तुम्हारा नाम मेहप्रभ रखा। तुम चार दाँतों से युक्त, श्रेष्ठ हाथी के रूप में विकसित हुए। तुम्हारे सातों अंग सुगठित, परिपूर्ण थे। तुम बहुत ही सुंदर थे। एक हजार हाथियों का आधिपत्य करते हुए सुखपूर्वक अभिरमण करने लगे।

जातिस्मरण ज्ञान का उद्भव

(৭৬২)

तए णं तुमं अण्णया कयाइ गिम्हकालसमयंसि जेट्टामूले वणदवजाला पिलत्तेसु वणंतेसु सुधूमाउलासु दिसासु जाव मंडलवाए व्व परिब्भमंते भीए तत्थे जाव संजायभए बहूहिं हत्थीहि य जाव कलभियाहि य सिद्धं संपरिवुडे सव्वओ समंता दिसोदिसिं विप्पलाइत्था।

तए णं तव मेहा! तं वणदवं पासित्ता अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था-किह णं मण्णे मए अयमेयारूवे अग्गिसंभवे अणुभूयपुट्वे? तए णं तव मेहा! लेस्साहिं विसुज्झमाणीहिं अज्झवसाणेणं सोहणेणं, सुभेणं परिणामेणं, तयावरणिज्ञाणं कम्माणं खओवसमेणं, ईहापोह-मग्गणगवेसणं करेमाणस्स सण्णिपुळ्वे जाईसरणे समुप्यजित्था।

शब्दार्थ - अणुभूयपुव्वे - पहले अनुभव किए हुए, विसुज्झमाणीहिं - विशुद्ध होती हुई, अज्झवसाणेणं - अध्यवसाय, सोहणेणं - शोभन, उत्तम, तयावरणिज्ञाणं - जातिस्मरण ज्ञान को आवृत्त करने वाले, खओवसमेणं - क्षयोपशम द्वारा, ईहा - अर्थाभिमुख वितर्क, अपोह - सामान्य ज्ञान के अनंतर विशेष निश्चयार्थक विचार, मग्गण - मार्गण-यथावस्थित स्वरूप का अन्वेषण, गवेसणं - अन्वेषण से प्राप्त ज्ञान के स्वरूप पर विमर्श, जाइसरणे - जातिस्मरण ज्ञान, समुष्यज्ञितथा - समुत्पन्न हुआ।

भावार्थ - एक बार का प्रसंग है, ग्रीष्मकाल के समय, जेठ के महीने में दावानल की ज्वालाओं से वन प्रदेश जल उठे। सर्वत्र धुआँ फैल गया। तुम उसमें भीत, त्रस्त होकर बहुत से हाथियों और हथिनियों से घिरे हुए, ईधर-उधर भटकते हुए, भिन्न-भिन्न दिशाओं में पलायन करने लगे। मेघ! दावाग्नि को देखकर तुम्हारे मन में ऐसा भाव उत्पन्न हुआ, चिंतन चला-ऐसा प्रतीत होता है, इस प्रकार के अग्नि प्रकोप का मैंने पहले अनुभव किया है। ऐसा सोचते हुए तुम्हारी लेश्याएँ विशुद्ध होने लगीं, अध्यवसाय प्रशस्त होने लगा, योग शुभ होने लगा। जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ, जो संज्ञी जीवों को प्राप्त होता है।

(१७६)

तए णं तुमं मेहा! एयमट्ठं सम्मं अभिसमेसि-एवं खलु मया अईए दोच्चे भवगहणे इहेव जंबुदीवे २ भारहे वासे वेयहृगिरिपायमूले जाव तत्थ णं महया अयमेयारूवे अग्गिसंभवे समणुभूए। तए णं तुमं मेहा! तस्सेव दिवसस्स पच्चावरण्ह-कालसमयंसि णियएणं जूहेणं सिद्धं समण्णागए यावि होत्था। तए णं तुमं मेहा! सत्तुस्सेहे जाव सण्णिजाइस्सरणे चउद्दंते मेरुप्पभे णामं हत्थी होत्था।

शब्दार्थ - अभिरामेसि - अभिज्ञात किया, णियएणं - निजी-अपने, समण्णागए - इकट्ठे हुए, सण्णिजाइस्सरणे - जातिस्मरण युक्त।

भावार्थ - मेघ! तुम्हे भली भाँति यह ज्ञात हुआ कि मैं अपने व्यतीत हुए दूसरे भव में यहीं जंबूद्वीप, भारत वर्ष में वैताद्य पर्वत की तलहटी में विचरणशील था। इसी प्रकार की अग्नि से भयावह स्थिति उत्पन्न हुई। तुम उसी दिन के अंतिम प्रहर में अपने यूथ के साथ एक स्थान पर एकत्र हुए। तब तुम समस्त शारीरिक शक्ति आदि से परिपूर्ण, जाति स्मरण ज्ञान युक्त, मेरुप्रभ हाथी थे।

(900)

तए णं तुज्झं मेहा! अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पजित्था - तं सेयं खलु मम इयाणि गंगाए महाणईए दाहिणिल्लंसि कूलंसि विझगिरिपायमूले दविगसंजायकारणद्वा सएणं जूहेणं महालयं मंडलं घाइत्तए त्तिकट्टु एवं संपेहेसि २ त्ता सुहंसुहेणं विहरसि।

शब्दार्थ - इयाणिं - इस समय, दाहिणिल्लंसि कूलंसि - दक्षिणी किनारे पर, दविगिसंजायकारणद्वा - दावानल से बचाव के लिए, घाइत्तए - वृक्ष, घास आदि उखड़वाना।

भावार्थ - मेघ! तुम्हारे मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि अच्छा यह होगा कि मैं इस समय गंगा महानदी के दक्षिणी तट पर, विन्ध्याचल पर्वत की तलहटी में, दावानल से बचाव हेतु अपने यूथ के साथ वृक्षादि को साफ कर एक विशाल मंडल की रचना करूँ इस प्रकार तुम्हारे मन में विचार-मंथन चलने लगा।

विशाल मंडल की संरचना

(৭৬৯)

तए णं तुमं मेहा! अण्णया कयाइ पढम पाउसंसि महावुद्विकायंसि सण्णिवइयंसि गंगाए महाणईए अदूर सामंते बहूहिं हत्थीहिं जाव कलभियाहि य सत्तिहि य हत्थिसएहिं संपरिवुडे एगं महं जोयण परिमंडल महइमहालयं मंडलं घाएसि जं तत्थ तणं वा पत्तं वा कहं वा कंटए वा लया वा वल्ली वा खाणुं वा रुक्खे वा खुवे वा तं सळ्वं तिक्खुत्तो आहुणिय आहुणिय पाएणं उद्ववेसि

www.jainelibrary.org

हत्थेणं गेण्हिस एगंते एडेसि। तए णं तुमं मेहा! तस्सेव मंडलस्स अदूरसामंते गंगाए महाणईए दाहिणिल्ले कूले विंझगिरि-पायमूले गिरीसु य जाव विहरिस।

शब्दार्थ - पढम पाउसंसि - वर्षाकाल के प्रारम्भ में, महावुडिकायंसि - अत्यधिक वर्षा होने पर, सण्णिवइयंसि - सन्तिकट, जोयण - एक योजन के घेरे वाला, घाएसि - वृक्ष घास आदि साफ कराना, कट्टं - काष्ठ, कंटए - काँटे, खाणुं - स्थाणु, ठूंठ, खुवे - छोटी झाड़ियाँ आदि, आहुणिय - हिलाकर, उट्टवेसि - उखाडता है, एडेसि - डालता है।

भावार्थ - हे मेघ! एक बार तुमने वर्षा ऋतु के प्रारंभ में, अत्यधिक वर्षा होने पर, गंगा महानदी के समीप बहुत से हाथियों हथिनियों से परिवृत होकर एक बहुत बड़ा मंडल बनाया, जिसका घेरा एक योजन का था। वहाँ जो भी तृण, पत्र, काष्ठ, कण्टक, लता-वल्ली, सूखें ठूंठ, पेड़ आदि थे उन सबकों तुमने तीन-तीन बार हिला-हिला कर उखाड़ डाला तथा सूंड से गृहीत कर एक ओर ले जाकर डाल दिया।

तदनंतर तुम उसी मंडल से न बहुत दूर न अधिक निकट आस-पास, गंगा महानदी के दक्षिणी तट पर, विन्ध्याचल पर्वत की तलहटी में विचरण करते हुए रहने लगे।

(30P)

तए णं तुमं मेहा! अण्णया कयाइ मज्झिमए विरसा-रत्तंसि महावुद्विकायंसि सिण्णवइयंसि जेणेव से मंडले तेणेव उवागच्छिस उवागच्छित्ता दोच्चंपि मंडलं घाएसि, एवं चिरमे-वासा-रत्तंसि महा-वुद्विकायंसि सिण्णवइय-माणंसि जेणेव से मंडले तेणेव उवागच्छिस उवागच्छित्ता तच्चंपि मंडलघायं करेसि जं तत्थ तणं वा जाव सुहंसुहेणं विहरिस।

शब्दार्थ - वरिसा-रत्तंसि - बरसाती रात में, महावुद्धिकायंसि - घनघोर वर्षा, सण्णिवइयंसि - होने पर, चरिम वासा-रत्तंसि - अंतिम बरसाती रात में।

भावार्थ - मेघ! किसी दूसरे समय जब वर्षा ऋतु का मध्यकाल था, एक बरसाती रात में घनघोर वर्षा हुई। तुम जहाँ मण्डल था, वहाँ आए और दूसरी बार उस मंडल को घास-पात, झाड़-झंखाड़ आदि हटाकर साफ किया। इसी प्रकार वर्षा ऋतु के अतिम समय में जब एक रात अत्यधिक वृष्टि हुई तब फिर उस मंडल में आए और उसकी तृणादि हटाकर सफाई की एवं तुम सुखपूर्वक विचरण करने लगे।

(950)

अह मेहा! तुमं गइंदभावम्मि वट्टमाणो कमेणं णलिणि-वण-विवह-णगरे हेमंते कुंद-लोद्ध-उद्धुत-तुसार-पउरम्मि अइक्कंते अहिणवे गिम्ह समयंसि पत्ते वियद्दमाणे वणेसु वणकरेणु-विविह-दिण्णकय पंसुवघाओ तुमं उउय-कुसुम-कय चामर-कण्णपूर परिमंडियाभिरामो मयवस-विगसंत कड-तडिकलिण्ण-गंधमदवारिणा सुरभि-जणियगंधो करेणु परिवारिओ उउ-समत्त-जणियसोहो काले दिणयर-करपयंडे परिसोसिय-तरुवर-सिहर-भीमतर-दंसणिजे भिंगार-रवंत-भेरवरवे-णाणाविह पत्तकट्ठ तण-कय वरुद्धत पड़मारुयाइद्ध-णहयल-दुमगणे वाउलिया-दारुणतरे तण्हावस-दोस दूसिय-भमंत विविह-सावय-समाउले भीम दरिसणिज्ञे वट्टंते दारुणिम्म गिम्हे मारुयवस-पसर-पसरिय-वियंभिएणं, अब्भहिय-भीम भेरव-रवप्पगारेणं महुधारा-पडिय-सित्त-उद्धायमाण धगधगंत-सद्दुद्धएणं दित्ततर-सफुलिंगेणं धूममालाउलेणं सावय-सयंत करणेणं अब्भहिय-वण दवेणं जालालोविय-णिरुद्ध-धूमंधकारभीओ आयवालोय महंत-तुंबइयपुण्णकण्णो आकुंचिय थोर पीवरकरो भयवस भयंत दित्त णयणो वेगेण महामेहोळ्य पवणोल्लियमहल्लरूवो जेणेव कओ ते पुरा दवग्गिभय-भीयहियएणं अवगय-तण-प्यएसरुक्खो रुक्खोद्देसो दवग्गि-संताण-कारणहाए जेणेव मंडले तेणेव पहारेत्थ गमणाए। एक्को ताव एस गमो।

शब्दार्थ - गइंदभाविम्म - गजेन्द्र भाव में, वट्टमाणो - वर्तमान, णिलिणि - कमिलिन, विवहणगरे - विनाश करने वाले, हेमंते - हेमंत ऋतु आने पर, लोद्ध - हेमंत में विकसित होने वाला-लोध्र नामक वृक्ष विशेष, तुसार - वर्फ, पउरिम्म - प्रचुरता युक्त, अहिणवे - नूतन, वियट्टमाणे - इधर-उधर घूमते हुए, पंसुवधाओ - क्रीडावश धूली प्रहार, उउयकुसुम-ऋतुज पुष्प-ग्रीष्म ऋतु में होने वाले फूल, मयवस - मद के कारण, विगसंत - प्रफुल्लित होते हुए, कडतड- कपोल-स्थल, किलिण्ण - आई-गीले, उउसमत्त - ऋतु के अनुकूल, पयंडे- प्रचण्ड, परिसोसिय - परिशोषित-शुष्क बने हुए, सिहर - शिखर, भेरव रवे - भयंकर शब्द, उद्धुत- ऊपर उड़ाए गए, पउमारुय - प्रतिकूल वायु, आइद्ध - व्यान्त, णहयल-

नम तल, वाउलिया - वातुलिका-चक्रवात, दारुणतरे - अति भयंकर, दोस दूसिय - वेदना पीड़ित, वहंते - वर्तमान, वियंभिएण - प्रबल बने हुए, अब्भहिय - अत्यधिक, महुधारा - मधुधारा, उद्धायमाण - बढ़ते हुए, सद्दुद्धुएणं - शब्दायमान, दित्ततर सफुलिंगेणं - अत्यंत दीप्त-चिनगारियों से युक्त, सावयसयंत करणेणं - सैकड़ों जंगली प्राणियों का अंत करने वाले, जालालोविय - अग्नि की ज्वालाओं से आच्छादित, आयवालोय - अग्नि जनित ताप का अवलोकन, पवणोल्लिय - प्रचण्ड वायु द्वारा प्रेरित, अवगय - अपगत-दूर किए गए, संताणकारणहाए - त्राण पाने के लिए, पहारेत्थ - निश्चय किया, गम - आलापक-पाठ।

भावार्थ - मेघ! तुम जब इस प्रकार हाथी के रूप में थे, तब कमिलिनियों के वन को विध्वस्त करने वाले, कुंद लोघ एवं तुषार से रवेत बने, हेमंत ऋतु के समाप्त हो जाने पर क्रमशः ग्रीष्म काल आया, उस समय तुम वनों में विचरण करते थे। क्रीइारत हथिनियाँ तुम्हारे पर प्रेमवश धूलि फेंकती थी। उस ऋतु में होने वाले विविध पुष्पों से रचित, चामर जैसे कर्ण भूषणों से तुम बड़े ही सुशोभित और मनोज्ञ प्रतीत होते थे। तुम्हारे गण्डस्थल मद के झरने से गीले बने रहते थे और तुम इस मद जल के कारण अत्यंत सौरभमय थे। ग्रीष्म ऋतु की प्रचण्ड किरणें सर्वत्र फैल रही थी। वृक्षों के शिखर सूख गए थे। बड़ा ही दुःसह वातावरण था। क्रिल्लियों का झींगार (शब्द) भयानक लगता था। पत्ते, लकड़ियाँ, तिनकों के कचरे को उड़ाए लिए चलने वाले प्रतिकृल वायु द्वारा गगनतल और वृक्ष आच्छादित हो गए थे। घोर प्यास की वेदना के कारण जंगली प्राणी इधर-उधर भटक रहे थे। इस प्रकार वह जंगल बड़ा भीषण प्रतीत होता था। अकस्मात् लगे दावानल ने उसकी दारणता को और ही बढ़ा दिया। वायु प्रकोप से यह दावानल और तेजी से धधकने लगा। वृक्षों से चूने वाली मधु धाराओं से सिंचित होता हुआ वह दावानल और अधिक बढ़ता गया। इसमें सुलगती, चमकती चिनगारियाँ उड़ रही थी, सब ओर धुएँ की कतारें फैल रही थीं।

मेघ! इस दावानल की भीषण ज्वालाओं से तुम आच्छादित, अवरुद्ध हो गए। इच्छानुसार चलने का सामर्थ्य तुम में नहीं रहा। धूम जनित अंधकार से तुम अत्यंत भयभीत हो गए। अग्नि के भीषण ताप के कारण तुम्हारे दोनों कान रहेंट की तुम्बिकाओं के समान खड़े हो गए। तुम्हारी स्थूल सूँड संकुचित हो गई। तुम भौंचक्के से इधर-उधर देखने लगे। तुमने दावानल से त्राण पाने हेतु जहाँ पहले वृक्ष-तृणादि हटाकर मंडल बनाया था, उसी ओर जाने का निश्चय किया।

इस संबन्ध में यह एक गम (वर्णन) है, पाठ का एक प्रकार है।

(959)

तए णं तुमं मेहा! अण्णया कयाइं कमेणं पंचसु उऊसु समइक्कंतेसु गिम्हकाल समयंसि जेट्टामूले मासे पायवसंघं ससमुद्धिएणं जाव संविट्टएसु मिय-पसु-पिक्ख-सरीसिवेसु दिसोदिसिं विप्पलायमाणेसु तेहिं बहूहिं हत्थीहि य सिद्धं जेणेव मंडले तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

भावार्थ - मेघ! किसी एक समय जब क्रमशः पाचीं ऋतुएँ बीत गईं, ग्रीष्म ऋतु का समय आया, तब जेठ के महीने में पेड़ों के परस्पर संघर्षण से दावाग्नि उत्पन्न हुई। वह सर्वत्र फैलती गई। मृग, पशु, पक्षी, सरीसृप-रेंगने वाले प्राणी इधर-उधर भागने लगे। तब तुमने बहुत से हाथियों के साथ पूर्व रचित मण्डल की ओर जाने का विचार किया।

(यह दूसरा गम - आलापक है।)

(957)

तत्थ णं अण्णे बहवे सीहा य वग्घा य विगा य दीविया य अच्छा य तरच्छा य पारासरा य सरभा य सियाला विराला सुणहा कोला ससा कोकंतिया चित्ता चिल्लला पुळ्य पविद्वा अग्गिभय विद्दुया एगयओ बिलधम्मेणं चिट्ठंति। तए णं तुमं मेहा! जेणेव से मंडले तेणेव उवागच्छिस २ ता तेहिं बहूहिं सीहेहिं जाव चिल्ललेहि य एगयओ बिलधम्मेणं चिट्ठसि।

शब्दार्थ - वग्धा - व्याघ्र, विगा - वृक-भेड़िया, दीविया - द्वीपी-चीते, अच्छा - रींछ-भालू, तरच्छा - व्याघ्र विशेष, पारासरा - वन्य जन्तु विशेष, सियाला - श्रृंगाल-गीदड़, विराला - जंगली बिलाव, सुणहा - जंगली कुत्ते, कोला - सूअर, ससा - खरगोश, कोकंतिया - लोमड़ियाँ, चित्ता - चीतल, चिल्लला - जंगली गधे, पुव्वपविद्वा - पूर्व प्रविष्ट, अगिभयविद्वुया - अग्नि के भय से दौड़कर आए हुए, बिलधम्मेणं चिट्ठंति - बिल धर्म से स्थित हुए।

भावार्थ - उस मण्डल में दूसरे बहुत से शेर, बाध, भेड़िए, चीते, भालू, तरच्छ, पारासर, सरभ (अष्टापद), गीदड़, वन बिलाव, जंगली, कुत्ते, सूअर, खरगोश, लोमड़ियाँ, चीतल, जंगली गधे अग्नि से भयभीत होकर दौड़ते हुए, जिसको जहाँ स्थान मिला, वहाँ सब उसी तरह स्थित हुए जैसे बिल में मकोड़े भर जाते हैं। मेघ! तब तुम उस मंडल में आए और उन बहुत से सिंहादि प्राणियों के साथ एक ओर जहाँ स्थान मिला, स्थित हुए।

मेराप्रभ द्वारा अनुकंपा एवं फल प्राप्ति (१८३)

तएणं तुमं मेहा! पाएणं गत्तं कंडुइस्सामी त्तिकट्टु पाए उक्खित्ते, तंसि च णं अंतरंसि अण्णेहिं बलवंतेहिं सत्तेहिं पणोलिज्जमाणे २ ससए अणुप्पविट्ठे। तए णं तुमं मेहा! गायं कंडुइत्ता पुणरिव पायं पिडिणिक्खिमिस्सामि त्तिकट्टु तं ससयं अणुपविट्ठं पासिस २ त्ता पाणाणुकंपयाए भूयाणुकंपयाए जीवाणुकंपयाए सत्ताणुकंपयाए से पाए अंतरा चेव संधारिए णो चेव णं णिक्खिते। तए णं तुमं मेहा! ताए पाणाणुकंपयाए जाव सत्ताणुकंपयाए संसारे पिरत्तीकए माणुस्साउए णिबद्धे।

शब्दार्थ - गतं - गात्र-शरीर, कंडुइस्सामी - खुजलाऊँ, उक्खिते - ऊंचा किया, तंसि अंतरंसि - उस अंतराल में, उस समय में, पणोलिज्जमाणे - धकेला गया, अणुपविद्वे -अनुप्रविष्ट हुआ, पडिणिक्खिमिस्सामि - वापस वहीं टिकाऊँ, अंतरा चेव - बीच में ही, संधारिए - रोक लिया, परित्तीकए - परिमित, स्वल्प किया, माणुस्साउए - मनुष्य का आयुष्य।

भावार्थ - मेघ! तुमने तदनंतर अपने पैर से शरीर को खुजलाने हेतु उसे ऊँचा उठाया। उसी समय, उस खाली जगह में अन्य शक्तिशाली प्राणियों द्वारा धकेला जाता हुआ एक खरगोश आ गया। मेघ! तुमने देह खुजलाने के बाद ज्यों ही पैर वापस रखने का विचार किया, त्यों ही तुम्हारी दृष्टि उस खाली स्थान में बैठे हुए खरगोश पर पड़ी। तब तुमने प्राण, भूत, जीव एवं सत्त्व अनुकंपा के भाव से-खरगोश को बचाने की दृष्टि से, पैर को बीच में ही रोक लिया, नीचे नहीं रखा।

मेघ! इस प्राणानुकंपा यावत् सत्त्वानुकंपा के कारण तुमने अपना संसार परिमित-स्वल्प किया तथा मनुष्य का आयुष्य बाँधा।

विवेचन - जीवानुकम्पा एक शुभ भाव है-पुण्य रूप परिणाम है। वह शुभकर्म के बन्ध

का कारण होता है। यही कारण है, जिससे मेरुप्रभ हाथी ने मनुष्यायु का बन्ध किया जो एक शुभ कर्म-प्रकृति है।

शशक एक कोमल काया वाला छोटे कद का प्राणी है-भोला और भद्र। उसे देखते ही सहज रूप में प्रीति उपजती है। आगमोक्त विभाजन के अनुसार शशक पंचेन्द्रिय होने से जीव की गणना में आता है। उसकी अनुकम्पा जीवानुकम्पा कही जा सकती है। हाथी के चित्त में उसी के प्रति अनुकम्पा उत्पन्न हुई थी। फिर मूल पाठ में प्राणानुकम्पा, भूतानुकम्पा और सत्त्वानुकम्पा के उत्पन्न होने का उल्लेख कैसे आ गया? इस प्रश्न का समाधान यह प्रतीत होता है कि शशक के निमित्त से अनुकम्पा का जो भाव उत्पन्न हुआ, वह शशक तक ही सीमित नहीं रहा-विकितित हो गया व्यापक बनता गया और समस्त प्राणियों तक फैल गया। उसी व्यापक दया-भावना की अवस्था में हाथी ने मनुष्यायु का बंध किया।

(१८४)

तए णं से वणदवे अहाइज्जाइं राइंदियाइं तं वणं झामेइ २ त्ता णिहिए उवरए उवसंते विज्झाए यावि होत्था।

शब्दार्थ - अहाइउजाइं - अढ़ाई, राइंदियाइं - रात-दिन, झामेइ - जलाता है, णिड्डिए - क्षीण हुआ, उबरए - उपरत हुआ-समाप्त हुआ, उबसंते - उपशांत, विजझाए -बुझा हुआ।

भावार्थ - वह दावानल अढ़ाई रात-दिन तक जलता रहा। फिर वह क्षीण होता हुआ बुझ गया।

(१८४)

तए णं ते बहवे सीहा य जाव चिल्ललायंत वणदवं णिट्टियं जाव विज्झायं पासंति २ त्ता अग्गिभय विष्पमुक्का तण्हाए य छुहाए य परब्भाह्या समाणा तओ मंडलाओ पडिणिक्खमंति २ त्ता सब्बओ समंता विष्पसरित्था।

शब्दार्थ - परक्भाहया - पराभूत-पीड़ित, विप्यसरित्था - फैल गए।

भावार्थ - जब सिंह आदि बहुत से प्राणियों ने दावानल को शांत हुआ, बुझा हुआ देखा-तब वे अग्नि के भय से रहित हो गए। भूख-प्यास से पराभूत होते हुए, वे उस मंडल से बाहर निकले और भिन्न-भिन्न दिशाओं में चले गए।

(१८६)

तएणं ते बहवे हत्थी जाव छुहाएय परब्भाहया समाणा तओ मंडलाओ पिडिणिक्खमंति २ त्ता दिसोदिसिं विप्पसिरत्था। तए णं तुमं मेहा! जुण्णे जरा-ज्जिरयदेहे सिढिल-विलतया-पिणिद्धगत्ते दुब्बले किलंते जुंजिए पिवासिए अत्थामे अबले अपरक्कमे अचंकमणो वा ठाणुखंडे वेगेण विप्पसिरस्मामि त्तिकट्टु पाए पसारेमाणे विज्जुहए विव रययगिरिपब्भारे धरणि तलंसि सव्वंगेहिं सिण्णिवइए।

शब्दार्थ - सिढिल - शिथिल, विलितया - विलित्वचा-झुरियों से युक्त चमड़ी, पिणिद्ध-आच्छादित, जुंजिए - क्षुधा युक्त, अत्थाने - स्थिरता रहित, अचंकमणो - चलने में असमर्थ, ठाणुखंडे - ठूंठ के टुकड़े के सदृश, विप्परिस्सामि - आगे चलूँ, विज्ञुहए विव - बिजली द्वारा आहत, रययगिरिपब्भारे - रजतगिरी के खंड की तरह, धरणितलंसि - भूतल पर, सद्वंगेहिं - सभी अंगों से, सण्णिवइए - गिर पड़ा।

भावार्थ - तब बहुत से हाथी पीड़ा, क्षुधा आदि से पीड़ित होते हुए उस मंडल से निकले और भिन्न-भिन्न दिशाओं में चले गए। मेघ! तुम उस समय जीर्ण एवं जरा-जर्जर देहंगुकत हो गए थे। तुम्हारे शरीर की चमड़ी शिथिल हो गई थी। उस पर झुरियां लटकने लगी थीं। तुम बहुत ही दुर्बल, क्लांत, क्षुधित, पिपासित, अस्थिर, अशक्त एवं पराक्रम शून्य हो गए थे। चलने-फिरने में असमर्थ होकर ठूंठ जैसे हो गए थे। तुमने 'मैं वेग पूर्वक चलूँ' ऐसा सोचकर अपना पैर फैलाया तो इस प्रकार पृथ्वी तल पर गिर पड़े मानो बिजली गिरने से वैताद्य पर्वत का कोई खण्ड आपतित हो गया हो।

(959)

तए णं तव मेहा! सरीरगंसि वेयणा पाउब्भूया उज्जला जाव दाहवक्कंतीए यावि विहरित। तए णं तुमं मेहा! तं उज्जलं जाव दुरिहयासं तिण्णि राइंदियाइं वेयणं वेयमाणे विहरित्ता एगं वाससयं परमाउं पाइलत्ता इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे रायगिहे णयरे सेणियस्स रण्णो धारिणीए देवीए कुच्छिंसि कुमारत्ताए पच्चायाए। शब्दार्थ - कुमारताए - राजकुमार के रूप में, पच्चायाए - प्रत्यागत-उत्पन्न हुए।

भावार्थ - मेघ! तुम्हारे शरीर में घोर वेदना उत्पन्न हुई। पित्त ज्वर जनित दाह से तुम व्याकुल हो उठे। उस विषम असह्य वेदना से तीन रात-तीन दिन पीड़ित रहते हुए अपना सौ वर्ष का आयुष्य पूर्ण कर यहाँ जंबूद्वीप-भारत वर्ष के अन्तर्गत, राजगृह नगर में श्रेणिक राजा से, रानी धारिणी की कोख में कुमार के रूप में उत्पन्न हुए।

उपालम्भपूर्ण उद्बोधन

(955)

तए णं तुमं मेहा! आणुपुळ्वेणं गढ्भवासाओ णिक्खंते समाणे उम्मुक्क-बालभावे जोळ्वणग-मणुप्पत्ते मम अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पळ्वइए। तं जइ जाव तुमे मेहा। तिरिक्ख-जोणिय-भावमुयगएणं अपडिलद्ध-सम्मत्त-रयणलभेणं से पाए पाणाणुकंपयाए जाव अंतरा चेव संधारिए णो चेव णं णिक्खिते, किमगं पुण तुमं मेहा! इयाणिं विपुलकुल-समुक्भवेणं णिरुवहय-सरीर-दंतलद्ध-पंचिंदिएणं एवं उद्घाण-बल-वीरिय-पुरिसगार-परक्कम-संजुत्तेणं मम अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पळ्वइए समाणे समणाणं णिगांथाणं राओ पुळ्वरत्तावरत्त-काल समयंसि वायणाए जाव धम्माणुओगचिंताए य उच्चारस्स वा पासवणस्स वा अइगच्छमाणाण य णिग्गच्छमाणाण य हत्थसंघट्टणाणि य पायसंघट्टणाणि य जाव रयरेणु-गुंडणाणि य णो सम्मं सहिस खमिस तितिक्खिस अहियासेसि?

शब्दार्थ - तिरिक्खजोणियभाव - तिर्यंचावस्था, अपिडलिद्ध - अप्रतिलब्ध-प्राप्त न किए हुए, लभेणं - लाभ सहित, अंग - कोमल आमंत्रण मूलक संबोधन, विपुलकुल समुक्मवेणं - उच्चकुलोत्पन्न, उद्घाण - आत्मोन्मुख उध्वंगामी चेष्टा विशेष, बल - दैहिक सामर्थ्य, वीरिय - आत्म शक्ति, पुरिसगार - पौरुष-बल एवं वीर्य का उपयोग, परक्कम -कार्य-साधक पुरुषार्थ, खमिस - सक्षम होते हो, तितिक्खिस - दीनता रहित भाव से सहन करते हो, अहियासेसि - शुभ अध्यवसाय एवं निश्चल कायपूर्वक सहते हो। भावार्थ - मेघ! अनुक्रम से यथा समय गर्भवास से तुम बाहर आए। बाल्यावस्था व्यतीत होने पर युवा हुए। तुमने गृहवास का त्याग कर मेरे पास मुण्डित प्रव्रजित होकर अनगार धर्म स्वीकार किया। जरा सोचो, जब तुम तिर्यंचयोनि में थे तब तुमने आज तक प्राप्त न हुए ऐसे सम्यक्त्व रत्न को प्राप्त किया, तब भी तुमने देह खुजलाने हेतु ऊँचे उठाए हुए पैर को, देह खुजलाने के पश्चात् उस बीच खाली जगह में आए हुए खरगोश को देखकर, अनुकंपा से प्रेरित होते हुए अधर में ही रखा, नीचे नहीं टिकाया। मेघ! इस समय तो तुम उच्च कुलोत्पन्न हो। तुम्हें निरुपहत-सर्वांग सुंदर शारीर प्राप्त है। तुम पाँचों परिपूर्ण इन्द्रियों के स्वामी हो। उत्थान, बल, वीर्य, पुरुषार्थ और पराक्रम से युक्त हो। गृह त्याग कर अनगार बने हुए हो, फिर भी तुम रात्रि के पहले और अंतिम समय में वाचना, पृच्छना यावत् धर्मानुयोग के चिंतन, उच्चार-प्रस्रवण के परिष्ठापन हेतु आते-जाते मुनियों के हाथों के संस्पर्श, पैरों की टक्कर एवं उससे गिरते रजकण आदि को क्षोभ तथा दैन्य रहित भाव से स्थिरतः पूर्वक सह नहीं सके?

विवेचन - पन्नवणा आदि सूत्रों (पद १८ द्वार १६) से स्पष्ट होता है कि 'बिना सम्यक्त्व प्राप्त किये संसार परित्त होता ही नहीं है। हाथी के भव में संसार परित्त किया है इसलिये हाथी के भव में ही सर्वप्रथम सम्यक्त्व प्राप्त की, ऐसा समझना चाहिए। मिथ्यात्वीपन में अपनी रक्षा के लिए भले जिसने वनस्पति आदि की बारबार हिंसा की हो किन्तु दावानल से बचने के लिए जब वह मंडल प्राणियों से पूरा भर गया था, उस समय मृत्यु के भय एवं जीने के महत्त्व के अनुभवी उस हाथी को सभी प्राणियों पर अनुकम्पा भाव आये। भले वह जीवों के भेद प्रभेदों को नहीं जानता था. तथापि उसके अन्तर (आत्मा) में जगत् के सभी प्राणियों के प्रति अनुकम्पा के भाव गहरे बन जाने से ही आगमकारों ने सभी प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों के प्रति उसे अनुकम्पा भाव वाला बताया। यदि उसकी अनुकम्पा मात्र एक खरगोश के प्रति ही होती तो दूसरे जानवरों को हटाकर उसकी जगह खरगोश को रख सकता था। वास्तव में उसकी अनुकम्पा सभी के प्रति होने से ही ऐसा नहीं किया। खरगोश को अपने शरीर पर भी रख सका था, किन्तु शरीर पर भी अनेक पशु पक्षी बैठे हुए संभव होने से उसे शरीर पर भी नहीं रख सकता। शरीर पर बैठे हुए प्राणियों के प्रति भी वही अनुकम्पा भाव था। इसलिये 'एक खरगोश को बचा कर संसार परित्त कर लिया' ऐसा नहीं समझना चाहिए एवं आश्चर्य चिकत भी नहीं होना चाहिए। किन्तु ऐसा समझना चाहिए कि सम्यक्त्व के लक्षण 'अनुकम्पा' के प्रति इतना समर्पित हो गया कि उसके पीछे अपना जीवन ही न्योछावर कर दिया। क्षणिक परिस्थिति में ही स्थिर

रहा हो ऐसी बात नहीं। ढाई अहोरात्रि तक पैर्य के साथ तीनों पांचों पर भूखा प्यासा खड़ा रहकर मारणांतिक स्थिति का सामना करता रहा किन्तु अनुकम्पा की उपेक्षा नहीं की। इसी दृढ़ता से उसने सम्यग्दर्शन प्राप्त करके संसार परित्त कर लिया। यह कोई साधारण मनोबल की घटना नहीं थी, इसमें दृढ़ता के उच्च शिखरों को छुआ गया था। इसी के परिणाम स्वरूप संसार परित्त कर पाया था। हाथी के मन में जगत् के सभी प्राणियों के प्रति जो तीव्र अनुकम्पाभाव था जिसमें अमुक प्राणियों के प्रति अनुकम्पाभाव था जिसमें अमुक प्राणियों के प्रति अनुकम्पा भाव और अमुक के प्रति नहीं, ऐसी भेद रेखा नहीं थी। हाथी के इन्हीं भावों को आगमकारों ने 'सभी प्राण, भूत, जीव और सत्त्व की अनुकम्पा' के रूप में स्पष्ट किया है।

(958)

तए णं तस्स मेहस्स अणगारस्स समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म सुभेहिं परिणामेहिं पसत्थेहिं अज्झवसाणेहिं लेस्साहिं विसुज्झमाणीहिं तयावरणिजाणं कम्माणं खओवसमेणं ईहापूहमगगणगवेसणं करेमाणस्स सण्णिपुळ्वे जाईसरणे समुप्पण्णे एयमट्ठं सम्मं अभिसमेइ।

भावार्थ - मुनि मेघकुमार ने श्रमण भगवान् महावीर से ऐसा सुनां, समझा। फलतः शुभ परिणाम, प्रशस्त अध्यवसाय तथा विशुद्ध होती हुई लेश्याओं के फलस्वरूप, जातिस्मरण ज्ञान के आवरक ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम के कारण ईहा, अपोह, मार्गणा और गवेषणा पूर्वक उसके जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ, जिसे संज्ञी जीव ही प्राप्त कर सकते हैं। मेघकुमार ने इस जातिस्मरण ज्ञान द्वारा पूर्वोक्त वृत्तांत भली भाँति अवगत किया।

संयम-संशुद्धिः पुनः प्रव्रज्या (१६०)

तए णं से मेहे कुमारे समणेणं भगवया महावीरेणं संभारियपुव्यभवेजाईसरणे दुगुणाणीय-संवेगे आणंद-अंसुपुण्णमुहे हरिस-वसेणं धाराहय-कदंबकं पिव समूसिय रोम कूवे समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी- अज्जप्यभिई णं भंते! मम दो अच्छीणि मोत्तूणं अवसेसे काए समणाणं

णिगंथाणं णिसट्ठे तिकट्टु पुणरिव समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी - इच्छामि णं भंते! इयाणिं दोच्चंपि सयमेव पव्वावियं सयमेव मुंडावियं जाव सयमेव आयारगोयरं जायामायावत्तियं धम्ममाइक्खह।

शब्दार्थ - संभारिय पुव्वभवे जाइसरणे - पूर्वभववर्ती जाति स्मरण ज्ञान को याद करा दिए जाने पर, दुगुणाणीय संबेगे - दुगुने संबेग-मोक्षाभिलाषा रूप वैराग्य भाव, आणंद- अंसुपुण्णमुहे- आनंद के आँसुओं से परिपूर्ण मुख, धाराहय-कदंबकं - मेघ की धारा से आहत कदंब पुष्प, समूससिय - समुच्छित-उठे हुए, अजप्यभिई - आज से, अच्छीणि - दोनों नेत्र, मोत्तूणं - छोड़कर, णिसट्ठे - अधीन, अर्पित।

भावार्थ - श्रमण भगवान् महावीर स्वामी द्वारा पूर्व भववर्ती जातिस्मरण ज्ञान का स्मरण कराए जाने पर मेघकुमार के मन में दुगुना वैराग्य उत्पन्न हुआ। उसका मुख आनंद के आँसुओं से व्याप्त हो गया। आध्यात्मिक हर्ष के कारण उसके शरीर के रोम-रोम बादलों की जलधारा से आप्लुत कदंब के पुष्पों की तरह विकसित हो उठे। उसने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वंदन, नमन किया और निवेदन किया-भगवन्! आज से मेरी दोनों आँखों के सिवाय, यह सारा शरीर श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए समर्पित है। यों कह कर उसने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को पुनः वंदन, नमन किया और कहा-भगवन्! में दूसरी बार आप से प्रव्रजित एवं मुण्डित होकर अनगार धर्म ग्रहण करना चाहता हूँ। ज्ञानादि आचार, भिक्षाचर्या, पिंड विशुद्धि आदि संयमयात्रा एवं मात्रा प्रमाण युक्त आहार आदि विषयक धर्म के स्वरूप का आप आख्यान करें, उपदेश दें।

(989)

तए णं समणे भगवं महावीरे मेहं कुमारं सयमेव पव्वावेइ जाव जायामाया-वित्तयं धम्ममाइक्खइ-एवं देवाणुप्पिया! गंतव्वं एवं चिट्ठियव्वं एवं णिसीयव्वं एवं तुयद्वियव्वं एवं भुंजियव्वं एवं भासियव्वं उद्घाय २ पाणाणं भूयाणं जीवाणं सत्ताणं संजमेणं संजमियव्वं।

भावार्थ - श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने मेघ कुमार को स्वयं पुनः प्रव्रजित किया। यात्रा-मात्रादि विषयक धर्म का उपदेश करते हुए कहा - देवानुप्रिय! चलने, खड़े होने, बैठने, करवट बदलने, खाने-पीने एवं बोलने में यतना पूर्वक वर्तन करना चाहिए। जागरूकतापूर्वक सभी प्राणियों के प्रति संयम पूर्वक प्रवृत्ति करनी चाहिए।

(987)

तए णं से मेहे समणस्स भगवओ महावीरस्स अयमेयारूवे धम्मियं उवएसं सम्मं पडिच्छइ २ ता तह चिद्वइ जाव संजमेणं संजमइ। तए णं मेहे अणगारे जाए इरियासमिए अणगार-वण्णओ भाणियव्वो।

भावार्थ - मेघ ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का यह धर्मोपदेश भली भांति स्वीकार किया और जैसा पूर्व वर्णित हुआ है, संयम में अनुरत हुआ।

वह ईर्यासमिति आदि सभी नियमोपनियम का पालन करते हुए अणगार धर्म में संलग्न हुआ। तद्विषयक वर्णन अन्य आगम-औपपातिक से ग्राह्य है 🗘।

(**\$3**P)

तए णं से मेहे अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए तहारूवाणं थेराणं सामाइय-माइयाणि एक्कारस अंगाइं अहिजाइ २ त्ता बहुहिं चउत्थ-छट्ट-द्वम-दसम-दुवालसेहिं मासद्ध मासखमणेहिं अप्पाणं भावेमाणे विंहरइ।

शब्दार्थ - तहारूवाणं - कथनी करनी की समानता वाले, थेराणं - स्थविरों के, आइयाणि - आदि, अहिजाइ - अध्ययन करता है, चउत्थ - उपवास, छट्टं - दो दिन का उपवास-बेला, अट्टं - तीन दिन का उपवास-तेला, दसं - चार दिन का उपवास-चौला, दुवालसेहिं - पांच दिन का उपवास-पंचौले से, मासद्ध - अर्द्धमासखमण, मासखमणेहिं - मासखमण से।

भावार्थ - मेघकुमार ने भगवान् महावीर स्वामी के सान्निध्य में रहते हुए सुयोग्य स्थिवरों से, सामायिक से प्रारंभ कर षडावश्यक रूप आवश्यक सूत्र तथा आचारांग सूत्र से लेकर विपाक सूत्र पर्यन्त ग्यारह अंग सूत्रों का अध्ययन किया। वह एक, दो, तीन, चार तथा पाँच दिनों के उपवास, अर्द्धमासिक एवं मासिक उपवास द्वारा आत्मा को भावित-संयमोल्लसित करता हुआ, विहरणशील रहा।

[🕏] मधुरकरजी वाली प्रति - उववाइयसुत्त, सूत्र १७ पृष्ठ ६५-६७

(488)

तए णं समणे भगवं महावीरे रायगिहाओ णयराओ गुणसिलयाओ चेइयाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ।

शब्दार्थ - जणवयविहारं - जन पदों में विचरण।

भावार्थ - तदनंतर भगवान् महावीर स्वामी ने राजगृह नगर के गुणशील चैत्य से प्रस्थान किया तथा वे विविध जनपदों में विचरण करने लगे।

भिश्न-प्रतिमाओं की आराधना

(१८५)

तए णं से मेहे अणगारे अण्णया कयाइ समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी-''इच्छामि णं भंते! तुन्भेहिं अन्भणुण्णाए समाणे मासियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए। अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं करेह।''

शब्दार्थ - मासियं भिक्खुपडिमं - एक मासिक भिक्षु प्रतिमा, उवसंपज्जिता - उपसम्पन्न-अंगीकार कर, अहासुहं - जैसा सुखप्रद प्रतीत हो, पडिबंधं - प्रतिबंध-प्रमाद।

भावार्थ - एक समय का प्रसंग है, मुनि मेघकुमार ने भगवान् महावीर स्वामी को वंदन, नमस्कार कर निवेदन किया - भगवन्! मैं आपसे अभ्यनुज्ञात होकर-आपका आदेश पाकर एक मासिक भिक्षु प्रतिमा को स्वीकार दुर विचरना चाहता हूँ। भगवान् महावीर ने उत्तर दिया- ''देवानुप्रिय! जिससे तुम्हारी आत्मा में सुख हो, वैसा करो। अपनी इच्छा को क्रियान्वित करने में प्रमाद मत करो।''

(११६)

तए णं से मेहे अणगारे समणेणं भगवया महावीरेणं अब्धणुण्णाए समाणे मासियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ, मासियं भिक्खु पडिमं अहासुत्तं अहाकप्यं अहामगां सम्मं काएणं फासेइ पालेइ सोहेइ तीरेइ किट्टेइ सम्मं काएणं फासेत्ता पालित्ता सोहेत्ता तीरेत्ता किट्टेत्ता पुणरिव समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी -

शब्दार्थ - अहासुत्तं - यथा सूत्र-सूत्र प्रतिपादित आचार के अनुसार, अहाकप्यं - यथा कल्प-स्थिवर आदि के लिए निर्धारित कल्प-आचार के अनुसार, अहामग्गं - यथा मार्ग-ज्ञान-दर्शन-चारित्र मूलक मोक्षमार्गानुगत, फासेड़ - स्पर्श करता है-समुचित काल में सिविधि ग्रहण करता है, पालेड़ - पालन करता है, सोहेड़ - शोभित करता है या शोधित करता है, तिरेड़ - तीर्ण करता है-पूर्ण होने पर भी कुछ समय उसमें और स्थिर रहता है, किहेड़ - कीर्तित-भली भाँति परिपालित प्रतिमाओं का आत्मतोष पूर्वक स्मरण करता है।

भावार्थ - भगवान् महावीर स्वामी द्वारा आज्ञा पाकर मेघकुमार मासिक प्रतिमा को स्वीकार कर विचरण करने लगा। वह मासिक प्रतिमा का सूत्र निर्दिष्ट आचार कल्प एवं मार्ग के अनुसार भली भाँति शरीर द्वारा स्पर्श, ग्रहण एवं पालन करता है। अपने वैराग्य एवं तितिक्षापूर्ण आचरण द्वारा शोभित करता है, संतीर्ण एवं संकीर्तित करता है। ऐसा कर वह भगवान् महावीर स्वामी को वंदन, नमस्कार करता है और उनसे कहता है।

(e3P)

"इच्छामि णं भंते! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे दोमासियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जिताणं विहरित्तए।" "अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंध करेह।" जहा पढमाए अभिलावो तहा दोच्चाए तच्चाए चउत्थाए पंचमाए छम्मासियाए सत्त-मासियाए पढमसत्तराइंदियाए दोच्चं सत्तराइंदियाए तइयं सत्तराइंदियाए अहोरा-इंदियाएवि एगराइंदियाएवि।

शब्दार्थ - अभिलावो - आलापक-प्रतिपादन।

भावार्थ - मैं आपसे आज्ञा प्राप्त कर द्वैमासिक भिक्षु प्रतिमा को स्वीकार कर विचरण करना चाहता हूँ। भगवान् ने कहा - देवानुप्रिय! जिससे तुम्हारी आत्मा को सुख प्राप्त हो, वैसा करी किंतु वैसा करने में प्रमाद-विलंब मत करो। जैसे पहली-एक मासिक प्रतिमा का आलापक-वर्णन है, उसी प्रकार तीसरी, चौथी, पांचवी, छठी, एवं सातवीं का है, जो क्रमशः दो तीन, चार, पांच, छह, सात मास परिमित है। पहली से सातवीं प्रतिमाओं का कालमान एक एक मास का है। पूर्व-

पूर्व के मास मिलाने से यहाँ पर २, ३, ४, ६, ७ मास कहा गया है। प्रथम (आठवीं) सात अहोरात्र परिमित, दूसरी (नववीं) सात अहोरात्र परिमित, तीसरी (दसवीं) भी सात अहोरात्र परिमित, ग्यारहवीं एक अहोरात्रि की एवं बारहवीं प्रतिमा एक-रात्रि की परिमित है।

विवेचन - महाव्रती साधक संयम-पथ पर उत्साहपूर्वक बढ़ता रहे, त्याग तितिक्षा, वैराग्य, शम, संवेग आदि में वह उत्तरोत्तर ऊर्ध्वगामी बनता जाए, इसके लिए तपश्चरण मूलक साधना पथ के अनेक आयाम जैन आगमों में वर्णित हुए हैं। उनका एक ही लक्ष्य है, कि मुनि सर्वदा कर्मक्षय की दिशा में तीव्रता से प्रगतिशील रहे। भिक्षु प्रतिमाओं का विधान भी इसी प्रयोजन से किया गया है। वैसे तो एक महाव्रती साधक सभी सावद्य कार्यों का मन, वचन, काय एवं कृत, कारित, अनुमोदित रूप में वर्जन करता ही है, उसका जीवन सर्वथा संयममय होता ही है किंतु उसमें और अधिक सम्मार्जन एवं परिष्कार लाने हेतु प्रतिमा आदि विशेष रूप से सहायक होते हैं। प्रतिमा शब्द प्रतीक का भी बोधक है। भिक्षु प्रतिमाओं में निरूपित क्रम एक विशेष साधना का प्रतीक होता है। दूसरे शब्दों में यों कहा जा सकता है कि एक विशेष साधना उसमें प्रतिबिम्बित होती है।

प्रतिमा का एक अन्य अर्थ "मानदण्ड" भी है। जहाँ साधक किसी एक विशिष्ट अनुष्ठान के उत्कृष्ट परिपालन में संलग्न होता है, वहाँ उस अनुष्ठान का सम्यक् अनुसरण उसका मुख्य ध्येय हो जाता है। उसका परिपालन एक "मानदण्ड" का रूप ले लेता है। इसका अभिप्राय यह है कि वह साधक अपनी साधना द्वारा एक ऐसी स्थिति का निर्माण करता है, जिसे अन्य लोग त्याग प्रधान आचार का मानदण्ड स्वीकार करते हैं।

समवायांग एवं भगवती सूत्र में बारह प्रतिमाओं का उल्लेख है। दशाश्रुतस्कंध सूत्र में बारह भिक्षु प्रतिमाओं का विस्तृत विवेचन है। आत्म-निष्ठा, अनासक्ति, त्याग वैराग्य आदि की दृष्टि से वह अत्यंत प्रेरणाप्रद है। प्रतिमाओं का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है।

पहली भिक्षु प्रतिमा का समय एक मास है। उसको जो साधु स्वीकार करता है, वह शरीर की परिचर्या एवं ममत्व का त्याग कर विचरण करता है। उपसर्ग उत्पन्न होने पर वह देह की

[🗢] समवायांग सूत्र, समवाय-१२/१

[💠] भगवती सूत्र शतक २ उ० १ पृ० ५८-६१।

[🔾] दशा श्रुतस्कन्ध सातवीं दशा पु० ५० से ६९।

ममता का त्याग कर स्थिरता पूर्वक उन्हें सहन करता है। वह भिक्षा में मात्र एक दित्त आहार स्वीकार करता है। दित्त का अभिप्राय यह है कि भिक्षा देते समय दाता द्वारा एक बार में साधु के पात्र में जितना आहार आ जाय वह 'एक दित्त' कहलाता है। जलादि तरल पदार्थों के लिए ऐसा विधान है कि देो समय जितने काल तक उनकी धारा अखंडित रहे, वह एक दित्त है। कहीं-कहीं दित्त का तात्पर्य एक कवल या ग्रास भी है।

वह ध्यान रखे कि परिवार के सभी लोग भोजन कर चुके हों, अतिथि, अभ्यागत आदि को भोजन दे दिया गया हो, गृहस्थ अकेला भोजन करने बैठा हो, ऐसी स्थितियों में ही वह भिक्षा स्वीकार कर सकता है। जहाँ दो, तीन, चार पांच व्यक्ति भोजन करने बैठे हों, वहाँ वह आहार नहीं ले सकता। गर्भवती स्त्री के लिए विशेष रूप से जो पदार्थ बना हो उसके भोजन किए बिना वह उसमें से ग्रहण नहीं कर सकता। यही बात बालकों के लिए बने भोजन के साथ है। अपने बच्चे को स्तन पान कराती माता यदि बच्चे को छोड़कर आहार पानी दे तो वह नहीं ले सकता। भिक्षा के संबंध में इसी प्रकार और भी नियम हैं, जो साधु के संयममय जीवन को निश्चय ही निर्मल बनाते हैं। प्रतिमाधारी भिक्षु उस स्थान पर, जहाँ उसे कोई पहचानता हो, केवल एक ही रात्रि निवास करें। फिर वह विहार कर दे। जहाँ उसे कोई पहचानने वाला न हो, वहाँ एक रात-दो रात निवास कर सकता है। यदि उससे अधिक वह वहाँ निवास करता है तो दीक्षा का छेद या परिहार का प्रायण्चित्त आता है।

प्रतिमाधारी साधु चार प्रयोजनों से भाषा का प्रयोग करता है। १. आहारादि लेने हेतु २. शास्त्राध्ययन एवं मार्ग पूछने हेतु ३. स्थानादि की आज्ञा प्राप्त करने हेतु ४. प्रश्नों या शंकाओं का समाधान करने हेतु। प्रतिमाधारी साधु जहाँ ठहरा हो, यदि कोई वहाँ आग लगा दे तो बचने के लिए उस स्थान से निकलना, अन्य स्थान में जाना, उसके लिए कल्पनीय नहीं है। यदि कोई व्यक्ति उस साधु को आग से निकालने हेतु भुजा पकड़ कर खींचे तो प्रतिमाधारी साधु के लिए उस गृहस्थ को पकड़ कर खाना कल्पनीय नहीं है किंतु ईर्यासमिति पूर्वक बाहर जाना कल्पनीय है। यदि उसके पैर में कील, कण्टक, तिनका, कंकड़ आदि धँस जाय तो उन्हें निकालना उसे नहीं कल्पता। यदि उसके नेत्र में मच्छर, बीज, रजकण आदि पड़ जाएँ तो उन्हें निकालना नहीं कल्पता। यदि प्रतिमाधारी साधु के सामने अश्व, हस्ति, वृषभ, महिष, सूकर, श्वान, व्याघ्र आदि प्राणी या क्रूर स्वभाव के मनुष्य आ रहे हों तो उन्हें देख कर उसे वापस लौटना या पैर भी इधर-उधर करना नहीं कल्पता। प्रतिमाधारी साधु के लिए छाया से धूप में

जाना और धूप से छाया में आना नहीं कल्पता। जहाँ वह हो, वहाँ सदीं, गर्मी आदि जो भी परीषह आएँ, उसे समभाव से सहे।

प्रथम भिक्षु प्रतिमा का यह संक्षिप्त विवेचन है। दूसरी प्रतिमा में उन सब नियमों का पालन करना आवश्यक है, जो प्रथम प्रतिमा में स्वीकृत हैं। इतना अंतर है कि पहली भिक्षु प्रतिमा में एक दित्त जल एवं एक दित्त अन्न का विधान है, वहाँ दूसरी में दो दित्त जल एवं दो दित्त अन्न की मर्यादा है।

पहली प्रतिमा पूर्ण हो जाने पर साधक दूसरी प्रतिमा ग्रहण करता है। उसमें एक मास पहली प्रतिमा का तथा एक मास वर्तमान प्रतिमा का इस प्रकार दोनों मिलाकर दो मास होते हैं। आगे सातवीं प्रतिमा तक ऐ ही क्रम चलता जाता है। उन सभी नियमों का उनमें पालन करना आवश्यक हैं-जो पहली प्रतिमा में विहित है। केवल अन्न एवं जल की दित्तयों की संख्या में क्रमशः वृद्धि होती जाती है।

आठवीं प्रतिमा सात अहोरात्र परिमित है। इसमें यह विधान है कि प्रतिमाधारी एक-एक दिन के अंतर से चतुर्विध आहार त्याग पूर्वक उपवास करे। वह ग्राम, नगर या राजधानी से बाहर निवास करे। शयन या विश्राम के संदर्भ में उसके लिए यह विधान है कि वह उत्तानक-चित लेटे। अथवा पार्श्वशायी-एक पसवाड़े से लेटे या निषद्योपगत-पालथी लगाकर कायोत्सर्ग में बैठा रहे। इसे प्रथम सप्त-रात्रि-दिवा-भिक्षु प्रतिमा भी कहते हैं।

नवीं प्रतिमा भी सात अहोरात्र काल परिमिता है। इस प्रतिमा की आराधना के समय साधक दंडासन, लकुटासन अथवा उत्कुटुकासन में स्थित रहे।

दसवीं प्रतिमा भी सप्त अहोरात्र परिमिता है। इसकी आराधना के समय में साधक गोदोहनिकासन, वीरासन अथवा आप्रकुब्जासन में स्थित रहे।

ग्यारहर्वी प्रतिमा एक अहोरात्र परिमिता है। इसकी विशेषता यह है कि साधक चौविहार षष्ठभक्त-बेला करके ग्राम यावत् राजधानी के बाहर शरीर को किंचित् झुका कर, दोनों पैरों को संकुचित कर तथा दोनों भुजाओं को घुटनों तक लम्बा कर, कायोत्सर्ग करे।

बारहवीं भिक्षु प्रतिमा एक रात्रि परिमिता है। इसमें चौविहार अष्टमभक्त-तेला कर साधु ग्राम यावत् राजधानी के बाहर शरीर को किंचित् आगे की ओर झुकाकर एक पदार्थ पर दृष्टि स्थिर कर-अनिमेष नेत्रों एवं निश्चल अंगों से समस्त इन्द्रियों को गुप्त, नियंत्रित रखता हुआ दोनों पैरों को संकुचित कर एवं दोनों भुजाओं को घुटनों तक लम्बा कर, कायोत्सर्ग में स्थित रहे।

गुणरत्नसंवत्सर तप की आराधना

(98=)

तए णं से मेहे अणगारे बारस भिक्खु-पिडमाओ सम्मं काएणं फासेता पालेता सोहेता तीरेता किहेता पुणरिव वंदइ णमंसइ, वंदिता णमंसिता एवं वयासी - इच्छामि णं भंते! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे गुणर्यणसंवच्छरं तवोकम्मं उवसंपिजताणं विहरित्तए। अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पिडबंधं करेह।

भावार्थ - मुनि मेघकुमार ने बारह भिक्षु प्रतिमाओं का भली भाँति परिपालन एवं आराधन किया। उसने भगवान् को वंदन, नमन कर पुनः निवेदन किया - 'भगवन्! मैं आपसे आज्ञा प्राप्त कर गुणरत्न संवत्सर तप स्वीकार करना चाहता हूँ।' भगवान् ने कहा - 'देवानुप्रिय! जिसमें तुम्हें सुख हो वैसा करो, इसमें प्रमाद, विलंब न करो।'

(33P)

तए णं से मेहे अणगारे पढमं मासं चउत्थं चउत्थेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं दिया ठाणुक्कुडुए सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणे रितं वीरासणेणं अवाउडेणं। दोच्चं मासं छट्ठंछट्ठेणं०। तच्चं मासं अहमं अहमेणं०। चउत्थं मासं दसमंदसमेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं दिया ठाणुक्कुडुए सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणे रितं वीरासणेणं अवाउडेणं। पंचमंमासं दुवालसमं- दुवालसमेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं दिया ठाणुक्कुडुए सूराभिमूहे आयावणभूमीए आयावेमाणे रितं वीरासणेण य अवाउडेणं। एवं खलु एएणं अभिलावेणं छट्ठे चोहसमं चोहसमेणं सत्तमे सोलसमं सोलसमेणं अहमे अहारसमं अहारसमेणं णवमे वीसइमं वीसइमेणं दसमे बावीसइमं बावीसइमेणं एक्कारसमे चउव्वीसइमं चउव्वीसइमं छव्वीसइमं छव्वीसइमं कित्तासमेणं सोलसमे मासे चउत्तीसइमं तीसइमेणं पंचदसमे बत्तीसइमं बत्तीसइमेणं सोलसमे मासे चउत्तीसइमं चउत्तीसइमेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं दिया ठाणुक्कुडुए सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणे रितं वीरासणेण य अवाउडएण य।

शब्दार्थ - अणिक्खित्तेणं - अविश्रांत, दिया - दिन में, ठाणुक्कुडुए - उत्कुटुक आसन से, सूराभिमुहे - सूरज के सामने, आयावणभूमीए - आतापन भूमि में, आयावेमाणे-आतापना लेते हुए, अवाउडए - प्रावरण रहित।

भावार्थ - तदनंतर मुनि मेधकुमार प्रथम मास में निरंतर एकांतर उपवास के तप के साथ रहे। वे दिन में उत्कुटुक आसन में स्थित होकर सूरज के सामने आतापना लेते। रात में प्रावरण (वस्त्र) रहित होकर वीरासन में अवस्थित रहते। इसी प्रकार दूसरे से पाँचवे तक, क्रमशः बेला, तेला, चौला एवं पंचोले का तप करने लगे। दिन के समय उत्कुटुक आसन में स्थित होकर सूरज के सामने आतापना लेते। रात में प्रावरण रहित होकर वीरासन में अवस्थित रहते। इसी आलापक के अनुरूप अविश्रांत रूप में वे छठे मास से लेकर सोलहवें मास तक उत्तरोत्तर बढ़ते हुए क्रम से छह-छह से लेकर सोलह-सोलह उपवास रूप तप करते रहे। पूर्ववत् दिन में सूर्याभिमुख होकर आतापना भूमि में आतापना लेते तथा रात्रि में प्रावरण रहित होकर वीरासन में स्थित रहते।

विवेचन - यहाँ वंर्णित गुण रत्न संवत्सर तप सोलह मास में संपन्न होता है। उसमें तेरह मास सतरह दिन उपवास के होते हैं तथा तिहत्तर पारणा के होते हैं। उसका क्रम इस प्रकार है -

पहले महिने में साधक एकांतर उपवास करता है। यों तप के पन्द्रह दिन तथा पारणे के पन्द्रह दिन होते हैं। दूसरे महिने में वह दस बेले करता है, जिनके बीस दिन तप के होते हैं तथा दस दिन पारणे के होते हैं। तीसरे महीने में वह आठ तेले करता है, जिनके २४ दिन तप के होते हैं एवं आठ दिन पारणे के होते हैं। चौथे महीने में वह छह चौले करता है, जिनके चौबीस दिन तप के तथा छह दिन पारणे के होते हैं। पांचवें महीने में पांच पंचोले करता है जिनके पच्चीस दिन तप के तथा पांच दिन पारणे के होते हैं।

छठे महीने में वह छह-छह दिनों की चार तपस्याएँ करता है, जिनके चौबीस दिन होते हैं एवं चार दिन पारणे के होते हैं। सातवें महीने में सात-सात दिन की तीन तपस्याएँ करता है जिनके इक्कीस दिन होते हैं तथा तीन दिन पारणे के होते हैं। आठवें महीने में आठ-आठ दिन की तीन तपस्याएँ करता है, जिनके चौबीस दिन होते हैं, तीन दिन पारणे के होते हैं। नौवे महीने में वह नौ-नौ दिनों की तीन तपस्याएँ करता है, जिनके सत्ताईस दिन होते हैं, तीन दिन पारणे के होते हैं। दसवें महीने में दस-दस दिन की तीन तपस्याएँ करता है, जिनके तीस दिन होते हैं, तीन दिन पारणे के होते हैं।

ग्यारहवें महीने में वह ग्यारह-ग्यारह दिन की तीन तपस्याएँ करता है, जिनके तैतीस दिन

होते हैं, तीन दिन पारणे के होते हैं। बारहवें महीने में वह बारह-बारह दिन की दो तपस्याएँ करता है, जिनके २४ दिन होते हैं, पारणे के दो दिन होते हैं। तेरहवें महीने में वह तेरह-तेरह दिन की दो तपस्याएँ करता है, जिनके छब्बीस दिन होते हैं, पारणे के दो दिन होते हैं। चौदहवें महीने में वह चौदह-चौदह दिन की दो तपस्याएँ करता है, जिनके अट्टाईस दिन होते हैं, दो दिन पारणे के होते हैं। पन्द्रहवें महीने में पन्द्रह-पन्द्रह दिन की दो तपस्याएं करता है जिनके तीस दिन होते हैं। दो दिन पारणे के होते हैं।

जिस मास में जितने दिन कम है, उससे अगले मास में उतने दिन अधिक समझं लेने चाहिए। इसी प्रकार जिस मास में जितने दिन अधिक है उसके दिन अगले मास में सम्मिलित कर देने चाहिए।

(200)

तए णं से मेहे अणगारे गुणरयण-संवच्छरं तवोकम्मं अहासुत्तं जाव सम्मं काएणं फासेइ पालेइ सोहेइ तीरेइ किट्टेइ अहासुत्तं अहाकप्पं जाव किट्टेता समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता बहूहिं-छट्टट्टम-दसम-दुवालसेहिं मासद्धमासखमणेहिं विचित्तेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

शब्दार्थ - विचित्तेहिं - विभिन्न प्रकार के।

भावार्थ - मुनि मेघकुमार ने गुणरत्न संवत्सर नामक तप का सूत्रानुरूप, कल्पानुरूप, मार्गानुरूप भली भाँति परिपालन किया। फिर वे श्रमण भगवान् महावीर को वंदन, नमन कर उनसे अनुज्ञात होकर बहुत से बेले, तेले, चौले, पंचोले आदि, अर्द्धमासखमण एवं मासखमण आदि विभिन्न प्रकार के तपों द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगे।

(२०१)

तए णं से मेहे अणगारे तेणं उरालेणं विपुलेणं सस्सिरीए णं पयत्तेणं पग्गहिएणं

कल्लाणेणं सिवेणं धण्णेणं मंगल्लेणं उदग्गेणं उदारएणं उत्तमेणं महाणुभावेणं तवोकम्मेणं सुक्के भुक्खे लुक्खे णिम्मंसे णिस्सोणिए किडिकिडियाभूए अहिचम्मावणद्धे किसे धमणिसंतए जाए यावि होत्था, जीवंजीवेणं गच्छइ जीवंजीवेणं चिट्ठइ, भासं भासित्ता गिलायइ, भासं भासमाणे गिलायइ, भासं भासिसामित्ति गिलायइ।

शब्दार्थ - पयत्तेणं - गुरु द्वारा प्रदत्त, पग्गहिएणं - बहुमान पूर्वक अंगीकृत, महाणुभावेणं-महान् प्रभाव युक्त, णिम्मंसे - मांस रहित, णिस्सोणिए - रक्त रहित, किडिकिडियाभूए -कड कड करते हुए, अद्विचम्मावणद्धे - हड्डी-चमड़ी मात्र, किसे - कृश-दुर्बल, धमणिसंतए-स्पष्ट तथा दीख रही नाड़ियों से युक्त, भासं भासमाणे - बोलते-बोलते, गिलायइ - ग्लान हो जाता है, बहुत कष्टानुभव करता है।

भावार्थ - उग्र, विपुल, श्रेयस्कर, कल्याणमय, शिवमय, मंगलमय, अति तीव्र, उत्तम, प्रभावपूर्ण तप द्वारा मेघकुमार का मांस, रक्त सूख गया। उसकी देह सूख कर कांटा हो गई। केवल कड़-कड़ करती हिंडुयों एवं चर्म से ढका हुआ दिखने लगा। वह इतना कृश-दुर्बल हो गया कि उसकी धमनियाँ दिखाई देने लगीं। उसकी शारीरिक शक्ति बिलकुल ही क्षीण हो गई। वह अपने प्राण बल से ही चलता खड़ा होता। बोलते हुए बहुत कष्ट अनुभव करता। ''मैं बोलूं''-इतना सोचते ही ग्लान होने लगता।

(२०२)

से जहाणामए इंगाल-सगडियाइ वा जाव उण्हे दिण्णा सुक्का समाणी ससद्धं गच्छइ ससद्धं चिट्ठइ एवामेव मेहे अणगारे ससद्धं गच्छइ ससद्धं चिट्ठइ उवचिए तवेणं अवचिए मंससोणिएणं हुयासणे इव भासरासि-परिच्छण्णे तवेणं तेएणं तवतेय-सिरीए अईव अईव उवसोभेमाणे उवसोभेमाणे चिट्ठइ।

शब्दार्थ - जहाणामए - यथानामक-जैसे कोई, इंगाल - कोयले, सगडियाइ - गाड़ी, दिण्णा - दी हुई, उवचिए - उपचित-बढ़े हुए, अवचिए - अपचित-घटे हुए, भासरासि-परिच्छण्णे - भस्म-राख की राशि से ढकी हुई।

भावार्थ - जैसे धूप में डाल कर सुखाए गए कोयले, काठ, पत्ते, तिल तथा एरण्ड के

काठ से भरी हुई गाड़ी चलती हुई, ठहरती हुई, खड़-खड़ की आवाज करती है, उसी प्रकार जब मेघकुमार चलता-ठहरता तो उसकी हिड्डियाँ कड़-कड़ करतीं। उसका तप बढ़ रहा था, रक्त-मास घट रहे थे, क्षीण हो रहे थे। वह भस्म की राशि से ढकी हुई आग की तरह दिखाई देता था। तप-तेज और तज्जनित श्री (उससे होने वाली शोभा) से अत्यंत शोभित होता था।

(२०३)

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे आइगरे तित्थगरे जाव पुट्याणुपुट्यं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे सुहंसुहेणं विहरमाणे जेणामेव रायगिहे णयरे जेणामेव गुणसिलए चेइए तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिस्त्वं उग्गहं उगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्याणं भावेमाणे विहरइ।

भावार्थ - उस समय धर्म प्रवर्तक, तीर्थस्थापक भगवान् महावीर स्वामी यथाक्रम ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए, सुखपूर्वक विहार करते हुए राजगृह नगर में गुणशील चैत्य में पधारे। यथोचित अवग्रह-आवास हेतु स्थान की आज्ञा लेकर वहाँ ठहरे, संयम एवं तप से आत्मा को भावित करते रहे।

(२०४)

तए णं तस्स मेहस्स अणगारस्स राओ पुव्वरत्तावरत्त-काल समयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स अयमेयारूवे अज्झित्थए जाव समुप्पज्ञित्था-एवं खलु अहं इमेणं उरालेणं तहेव जाव भासं भासिस्सामित्ति गिलामि, तं अत्थि ता मे उद्घाणे कम्मे बले वीरिए पुरिसक्कार-परक्कमे सद्धा धिई संवेग तं जाव ता मे अत्थि उद्घाणे कम्मे बले वीरिए पुरिसक्कारपरक्कमे सद्धा धिई संवेगे जाव य मे धम्मायरिए धम्मोवएसए समणे भगवं महावीरे जिणे सुहत्थी विहरइ ताव ताव मे सेयं कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव तेयसा जलंते सूरे समणं भगवं महावीरं वंदिता णमंसिता समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णायस्स समाणस्स सयमेव पंच महव्वयाइं आहिता गोयमाइए समणे णिगांथे णिगांथीओ य खामेता तहारूवेहिं कडाईहिं थेरेहिं सद्धिं विउलं पव्ययं सणियं २ दुरूहिता सयमेव मेहघण-

सण्णिगासं पुढविसिलापदृयं पडिलेहिता संलेहणाझूसणाए झूसियस्स भत्तपाण-पडियाइक्खियस्स पाओवगयस्स कालं अणवकंखमाणस्स विहरित्तए।

शब्दार्थ - सुहत्थि - गंध हस्ती, आरुहित्ता - अंगीकार कर, खामेत्ता - क्षमत-क्षमापना कर, कडाईहिं - समाधिमरण में सहयोग करने वाले, थेरेहिं- स्थिवरों से, विउलं पव्वयं- विपुलाचल पर, दुरुहित्ता - चढ़कर, मेहघण-सण्णिगासं - गहरे बादल के समान श्याम वर्णी, पिंडलेहित्ता - प्रतिलेखन कर, संलेहणा झूसणाए - संलेखना स्वीकार कर, भत्तपाण-पिंडयाइक्खियस्स - आहार पानी का प्रत्याख्यान-त्याग कर, पाओवगयस्स -पादपोपगमन अनशन, कालं - मृत्यु, अणवकंखमाणस्स - आकांक्षा-इच्छा न करते हुए।

भावार्थ - तदनंतर अर्द्धरात्रि के समय धर्म जागरण करते हुए मेघकुमार के मन में ऐसा चिंतन, संकल्प उत्पन्न हुआ कि -

उग्र, विपुल तप के कारण मेरा शरीर इतना कृश और दुर्बल हो गया है कि "मैं बोलूं"ऐसा प्रयत्न करते ही ग्लान हो जाता है। अभी मुझमें उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषार्थ,
पराक्रम, श्रद्धा एवं संवेग है। जब तक मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक, जिनेश्वर भगवान् गंधहस्ति
की तरह विचरणशील है, मेरे लिए यही श्रेयस्कर है कि मैं रात बीतने पर, सुप्रभात काल होने
पर, सूर्य के देदीप्यमान होने पर श्रमण भगवान् महाबीर स्वामी को वंदन, नमस्कार कर, उनसे
आज्ञा लेकर, स्वयं ही पांच महाव्रतों को पुनः अंगीकार कर, गौतम आदि श्रमण निर्ग्रन्थों एवं
निर्ग्रन्थिनियों से क्षमत-क्षमापना कर, समाधि मरण में सहयोगी स्थिवरों के साथ विपुलाचल पर
धीरे-धीरे चढ़ूं। स्वयं ही गहरें बादल के समान श्याम पृथ्वी शिलापष्ट का प्रतिलेखन, संलेखना
स्वीकार कर, आहार-पानी का प्रत्याख्यान कर, पांदपोपगमन अनशन धारण करूँ एवं मृत्यु की
कामना न करते हुए स्थित रहूँ।

(**२**0५)

एवं संपेहेड २ ता कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव जलंते जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छड, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेड, करेता वंदइ णमंसइ, वं० २ ता णच्चासण्णे णाइदूरे सुस्सूसमाणे णमंसमाणे अभिमुहे विणएणं पंजलिउडे पज्जुवासइ।

भावार्थ - मेघकुमार ने इस प्रकार चिंतन किया। रात व्यतीत हुई, सवेरा हुआ। जब सूरज की जाज्वल्यमान किरणें भूतल पर फैलने लगी तब मुनि मेघकुमार श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास आया। उनको तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा पूर्वक वंदन नमन किया तथा न उनके बहुत निकट न अधिक दूर योग्य स्थान पर रहकर भगवान् की सेवा करते हुए नमस्कार करते हुए उनके अभिमुख होते हुए, हाथ जोड़ कर पर्युपासना करने लगा।

(२०६)

मेहे ति समणे भगवं महावीरे मेहं अणगारं एवं वयासी - से णूणं तव मेहा! राओ पुव्वरत्तावरत्त-काल-समयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स अयमेयारूवे अज्झित्थिए जाव समुप्पजित्था - एवं खलु अहं इमेणं उरालेणं जाव जेणेव अहं तेणेव हव्वमागए। से णूणं मेहा! अट्ठे समट्ठे? हंता अत्थि। अहासुहं देवाणुष्पिया! मा पडिबंधं करेह।

भावार्थ - भगवान् महावीर स्वामी ने मुनि मेघकुमार से कहा - मेघ! अर्द्ध रात्रि के समय तुम जागते हुए धार्मिक चिंतन, अनुचिंतन में सलग्न थे, तब तुम्हारे मन में ऐसा विचार उठा कि में उत्तमोत्तम तप के कारण दुर्बल, कृश हो गया हूँ। मेरा शरीर इतना क्षीण हो गया है कि अपनी क्रियाएँ करने में भी मुझे असमर्थता का अनुभव होता है, मैं समाधिमरण द्वारा उसे त्याग दूँ, इत्यादि। उसी भाव को लेकर तुम शीघ्र मेरे पास आए हो। मेघ! जो मैं कहता हूँ, क्या वैसा ही हुआ?

भगवन्! ठीक ऐसा ही हुआ। इस पर भगवान् ने कहा - देवानुप्रिय! जो तुम्हें सुखप्रद प्रतीत हो, वैसा ही करो। उसमें प्रमाद, विलंब न करो।

समाधि-मरण

(२०७)

तए णं से मेहे अणगारे समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए समाणे हडु जाव हियए उट्टाए उट्ठेइ, उट्ठेता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेड, करेता वंदइ नमंसइ, वंदिता णमंसिता सयमेव पंच महत्वयाइं

www.jainelibrary.org

आरुहेइ २ त्ता गोयमाइ समणे णिगांथे णिगांथीओ य खामेइ २ त्ता तहारूवेहिं कडाईहिं थेरेहिं सिद्धं विपुलं पव्वयं सिणयं २ दुरूहइ, दुरूहित्ता सयमेव मेहघण-सिण्णगासं पुढिव-सिलापदृयं पिडलेहेइ २ ता उच्चार पासवण-भूमिं पिडलेहे २ ता दब्भसंथारग संथरइ २ ता दब्भसंथारगं दुरूहइ, दुरूहित्ता पुरत्थाभिमुहे संपिलयंकणिसण्णे करयल-पिरगिहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजिलं कट्टु एवं वयासी -

णमोत्थुणं अरहेताणं भगवंताणं जाव संपत्ताणं, णमोत्थुणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव संपाविउकामस्स मम धम्मायरियस्स। वंदामि णं भगवंतं तत्थगयं इहगए पासउ मे भगवं तत्थगए इहगयं-तिकट्टु वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी -

शब्दार्थ - अत्थु - अस्तु-हो, संपत्ताणं - संप्राप्त किए हुए, संपाविउकामस्स - संप्राप्त करने की इच्छा वाले, दब्भसंथारगं - डाभ का बिछौना, संथरइ - बिछाता है, तत्थगयं - वहाँ-गुणशील चैत्य में स्थित, इहगयं - यहाँ-विपुलाचल पर्वत पर विद्यमान। •

भावार्थ - मुनि मेधकुमार श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से आज्ञा प्राप्त कर बहुत हर्षित एवं प्रसन्न हुए। वे अपनी शक्ति संजोकर उठे एवं श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा पूर्वक वंदन, नमस्कार किया। स्वयं ही पाँच महाव्रतों पर आरोहण किया, उच्चारण पूर्वक अंगीकार किया। गौतमादि निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थिनियों से क्षमत-क्षमापना किया। समाधि मरणावस्था में सहयोगी श्रमण मुनियों के साथ विपुलाचल पर धीरे-धीरे चढ़े। सघन मेघ संदृश श्याम वर्ण के पृथ्वी शिलापट्टक की एवं उच्चार प्रस्रवण भूमि का स्वयं प्रतिलेखन किया। उस पर डाभ का आसन बिछाया, उस पर अवस्थित हुआ। फिर पूर्व की ओर मुँह कर, पद्मासन में स्थित होते हुए, नमन की मुद्रा में तीन बार हाथों को मस्तक पर घुमाते हुए बोला -

सिद्धि प्राप्त अरहंत भगवंतों को नमस्कार हो। सिद्धि प्राप्ति के अभिलाषी मेरे धर्माचार्य भगवान् महावीर स्वामी को नमस्कार हो। मैं यहाँ विपुलाचल पर स्थित होता हुआ, उनको वंदन करता हूँ। वहाँ गुणशील चैत्य में स्थित भगवान् मुझको देखें। यों कहकर वंदन-नमस्कार करता हुआ, वह इस प्रकार कहता है।

(२०५)

पुर्व्वं पि य णं मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए सव्वे पाणाइवाए पच्चक्खाए मुसावाए अदिण्णादाणे मेहुणे परिगहे कोहे माणे माया लोहे पेजे दोसे कलहे अब्भक्खाणे पेसुण्णे परपरिवाए अरइरइ मायामोसे मिन्छादंसणसङ्के पच्चक्खाए। इयाणिं पि णं अहं तस्सेव अंतिए सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि जाव मिन्छादंसणसल्लं पच्चक्खामि सव्वं असण-पाण-खाइम-साइमं चउव्विहंपि आहारं पच्चक्खामि जावजीवाए। जं पि य इमं सरीरं इट्ठं कंतं पियं जाव विविहा रोगायंका परीसहोवसग्गा फुसंतीतिकट्टु एयं पि य णं चरमेहिं ऊसासणीसासेहिं वोसिरामि तिकट्टु संलेहणाझूसणाझूसिए भत्तपाण-पडियाइक्खिए पाओवगए कालं अणवकंखमाणे विहरइ।

शब्दार्थ - रोगायंका - बीमारियों का कष्ट, वोसिरामि - व्युत्सर्जन-परित्याग करत्। हूँ, पासउ - देखें।

भावार्थ - पहले भी मैंने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन , परिग्रह, क्रोध, मान, माया लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पर परिबाद धर्म में अरित-अनुनराग-अनुराग रिहतता, अधर्म में रित-अनुरक्तता, मायामृषा, एवं मिथ्यादर्शन शल्य-इन पाप स्थानों का प्रत्याख्यान-त्याग किया है। अब भी मैं भगवान् महावीर स्वामी के समीप समस्त प्राणातिपात यावत् मिथ्यादर्शन शल्य का प्रत्याख्यान करता हूँ। सब प्रकार के अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य रूप चतुर्विध आहार का परित्याग करता हूँ। यह शारीर जो इष्ट, कांत एवं प्रिय है, उसका रोग, परीषह एवं उपसर्ग स्पर्श न कर पाएं, यह चिंतन कर रक्षा की है, उस शारीर का भी मैं अंतिम श्वासोच्छ्वास पर्यंत संलेखना पूर्वक परित्याग करता हूँ। इस प्रकार उसने संलेखना को स्वीकार करते हुए भक्तपान-आहार पानी का परित्याग कर पादपोपगम समाधि मरण स्वीकार किया तथा मृत्यु की आकांक्षा न करता हुआ, आत्म स्वरूप में संस्थित रहा।

विवेचन - जैन दर्शन के अनुसार सांसारिक जीव कर्मों के आवरण से आच्छन हैं। इसी कारण जीव का शुद्ध स्वरूप जो परमानंद, परमज्ञान एवं परमशांति है, अप्रकटित रहता है। जब तक ये कार्मिक बंधन बने रहते हैं, जीव जन्म-मरण के चक्र में भटकता रहता है। भौतिक सुखों की मृग-मरीचिका में वह लिप्त रहता है, अन्तजार्गरण या आत्म-विकास की ओर उसकी गति

नहीं होती। जैन दर्शन उस मार्ग का सांगोपांग विवेचन प्रस्तुत करता है, जिससे जीव इस वैभाविक दशा से स्वाभाविक दशा में आए। तदनुसार कर्मों के प्रवाह का अवरोध तथा पूर्व संचित कर्मों के निर्झरण या नाश द्वारा वह सर्वथा कर्ममुक्त हो सकता है। जब समस्त कर्मों का क्षय हो जाता है, तब वह उनके बंधन से छूट जाता है, उसका लक्ष्य सिद्ध हो जाता है, इसीलिए उसकी संज्ञा मुक्त या सिद्ध होती है।

दर्शन की भाषा में यह शरीर भी एक बंधन है। मुक्तावस्था में यह भी छूट जाता है, किन्तु जब तक साधनावस्था होती है, इसकी उपयोगिता भी है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र की आराधना में यह सहयोगी बनता है। परन्तु ज्यों-ज्यों साधक आध्यात्मिक उन्नति में आगे बढ़ता जाता है, शरीर गौण होता जाता है। तपः क्रम ज्यों-ज्यों वृद्धिगत होता जाता है, शरीर हासोन्मुख होता जाता है। जब साधक यह जान लेता है कि उसका शरीर सर्वथा अशक्त हो गया है वह दैनंदिन कार्यों को कर पाने में सक्षम नहीं है तब वह वैराग्य एवं तपश्चरण पूर्वक उसे भी त्यागने को उद्यत हो जाता है।

घोर तपस्वी मेघ कुमार के जीवन में ऐसा ही घटित होता है। उस समय उसका चिंतन अत्यंत आध्यात्मिक हो जाता है और वह पंडित-मरण या समाधि-मरण स्वीकार करता है। वहाँ मरण महोत्सव बन जाता है। क्योंकि जीवन का चरम, परम लक्ष्य वहाँ सिद्ध हो जाता है। समाधिमरण के लिए जैन धर्म में बड़ा ही सूक्ष्म विवेचन-विश्लेषण हुआ है। वहाँ जीवन और मरण की आकांक्षाओं से पृथक् होकर साधक एक मात्र आत्म-स्वरूप में लीन रहता है। विभावों या परभावों से विमुक्त होकर स्वभाव में सित्ररत रहने की यह बड़ी ही उत्तम, श्रेयस्कर स्थिति है।

जैन शास्त्रों में समाधि मरण के तीन प्रकार बतलाए गए हैं जो-१. भक्तप्रत्याख्यान २. इंगित मरण एवं ३. पादपोपगम के नाम से अभिहित हुए हैं। भक्तप्रत्याख्यान में ऐसा विधान है कि साधक स्वयं शरीर की देखभाल सार-संभाल करता है तथा दूसरों द्वारा समाधि मरणावस्था में दी गई निरवद्य सेवाएं स्वीकार कर सकता है। जो साधक 'इंगित मरण' स्वीकार करता है, वह स्वयं अपनी दैहिक क्रियाओं का निर्वहन करता है स्वयं अपनी सेवा करता है, अन्य किसी द्वारा दी गई निरवद्य सहायता भी स्वीकार नहीं करता। आत्म बल के उद्रेक की दृष्टि से भक्तप्रत्याख्यान की अपेक्षा इंगित मरण का वैशिष्ट्य है। 'पादपोपगम' समाधिमरण की अत्यंत उत्कृष्ट आत्म-बल संभृत भूमिका है। वह वृक्ष की ज्यों शारीरिक दृष्टि से सुस्थिर अविचल हो जाता है अथवा जैसे वृक्ष की कटी हुई डाली भूमि पर निश्चल पड़ी रहती है, उसी तरह उसका

शरीर वैसी स्थिति अपना लेता है। वहाँ न तो वह स्वयं अपने शरीर की किसी प्रकार की देखभाल करता है और न अन्यों द्वारा ही वैसा करवाता है। इसे स्वीकार करने वाला साधक अपनी सब प्रकार की दैहिक चेष्टाओं का परित्याग कर देता है और सर्वथा निश्चेष्ट और निःस्पंद हो जाता है।

पुनश्च समाधिमरण में साधक एकत्व भावना का सम्यक् अनुचिंतन करता हुआ देहातीत अवस्था या सर्वथा आत्ममयता, आत्मरमणशीलता स्वायत्त करने में सर्वथा समुद्यत रहता है।

अन्तःप्रकर्ष की यह सर्वोच्च, सर्वोत्कृष्ट दशा है।

मेघकुमार के जीवन का एक वह भी पक्ष था, जब वह रात-दिन सुखोपभोग में आकंठ निमन था, जिसका रहन-सहन, जीवन ऐहिक सुविधाओं, अनुकूलताओं, प्रियताओं से सर्वथा व्याप्त था। जिसका प्रासाद मानों स्वर्ग का एक खण्ड था। खाद्य, पेय आदि विविध मधुर, सुस्वादु, मनोवांछित पदार्थ हर समय उसके लिए तैयार रहते थे। विविध मोहक सुगंधियों से जिसका आवास महकता था। आठ-आठ सुकोमल, सुंदर रूपवती पत्नियों का वह पित था। दास-दासियों से घिरा रहता था, जो क्षण-क्षण हाथ बांधे उसकी आज्ञा की प्रतीक्षा करते थे। स्वर्ण, मिण, रत्न आदि का उसके यहाँ इतना प्राचुर्य था कि प्रासाद का प्रांगण तक मिणयों से रिवत था।

जीवन का एक दूसरा आयाम यह है, जहाँ उसने वैराग्य वश उन सब भोगों का एकाएक परित्याग कर दिया तथा अपने आप को संवेग, निर्वेद, त्याग, व्रत और तप में प्राण पण से लगा दिया। जिस शरीर पर धूल का कण भी असहा था, उसी शरीर को त्याग, तप द्वारा उसने अस्थि कंकाल जैसा बना दिया। उसे भोग विषवत् प्रतीत होने लगे। आध्यात्मिक आनंद के अमृत का वह आस्वाद ले चुका था। यही कारण है कि उसने देह का आत्म-साधना में पूर्णतः उपयोग किया। जिस बहुमूल्य देह को अज्ञजन तुच्छ भोगों में गंवा देते हैं, उस देह की सच्ची सारवत्ता मेधकुमार ने सिद्ध कर दी। निःसंदेह मृत्यु को उसने महोत्सव का रूप दे दिया। भोग पर त्याग की विजय का यह एक अनुपम उदाहरण है।

(305)

तए णं ते थेरा भगवंतो मेहस्स अणगारस्स अगिलाए वेयावडियं करेंति। शब्दार्थ - वेयावडियं - वैयावृत्य-सेवा-परिचर्या, अगिलाए - ग्लानि रहित। भाषार्थ - वे ज्ञान वृद्ध, शीलवृद्ध, सेवाभावी स्थिविर भगवन्त अग्लान भाव से मुनि मेघकुमार की सेवा-परिचर्या करने लगे।

विवेचन - मुनि मेघकुमार 'पादपोपगम' समाधिमरण स्वीकार कर चुके थे, जहाँ साधक न तो अपने देह की किसी भी प्रकार की देखभाल या परिचर्या करता है और न किन्हीं दूसरों से ही सेवा वैयावृत्य करवाता है। ऐसी स्थिति में स्थिवर भगवंतों द्वारा उनके वैयावृत्य किए जाने का जो उल्लेख हुआ है, वह प्रश्न उपस्थित करता है कि वहाँ तो वैयावृत्य की कोई प्रासंगिकता ही नहीं थी, फिर ऐसा उल्लेख कैसे हुआ?

गंभीरता से चिंतन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि यद्यपि शारीरिक सेवा या परिचर्या वहाँ अपेक्षित नहीं थी, यह सही है, पर साधक के उस अन्तिम काल में जब वह त्याग की चरम पराकाष्ठा पर होता है वातावरण अत्यंत आध्यात्मिक रहे यह आवश्यक है। वे गीतार्थ स्थिवर भगवंत वातावरण को आगम-पाठ धर्मानुगान, तत्त्वानुशीलन इत्यादि द्वारा सर्वथा विशुद्ध पावन बनाते हुए निःसंदेह महती सेवा देते थे, जो वैयावृत्य का आध्यात्मिक रूप था। इसी सूक्ष्म भाव को उदिष्ट कर यहाँ 'वेयावडियं करेंति' इस पद का प्रयोग हुआ है।

(२१०)

तए णं से मेहे अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जिता बहुपडिपुण्णाइं दुवालस-विरसाइं सामण्णपरियागं पाउणिता मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झोसेता सिंहं भत्ताइं अणसणाए छेएता आलोइय पडिक्कंते उद्धियसल्ले समाहिपत्ते आणुपुळ्वेणं कालगए।

शब्दार्थ - अहिजित्ता - अध्ययन करके, सामण्णपरियागं - श्रामण्य पर्याय-चारित्रमय साधु जीवन, पाउणित्ता - पालन कर, झोसेत्ता - क्षीण कर, छेएता - छेद कर, आलोइय पडिक्कंते - आलोचन-प्रतिक्रमण करके, उद्धियसल्ले - शल्यों को अपगत कर।

भावार्थ - मुनि मेघकुमार, जिसने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के सुयोग्य गीतार्थ स्थिविरों से सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया था, लगभग बारह वर्ष के चारित्रमय श्रमण जीवन का पालन किया था, एक मास की संलेखना द्वारा शरीर को क्षीण करते हुए, आत्मशोधन करते हुए, अनशन के साठ भक्त छेद कर-तीस दिन का उपवास कर, आलोचना-प्रत्यालोचना एवं माया-मिथ्यात्व आदि शल्यों का उद्धरण कर समाधि प्राप्त दशा में क्रमशः कालधर्म को प्राप्त किया।

(२११)

तए णं ते थेरा भगवंतो मेहं अणगारं आणुपुव्वेणं कालगयं पासेंति २ ता पिरिणिव्वाण-वित्तयं काउस्सग्गं करेंति २ ता मेहस्स आयारभंडगं गेण्हंति २ ता विउलाओ पव्ययाओ सिणयं २ पच्चोरुहंति २ ता जेणामेव गुणसिलए चेइए जेणामेव समणे भगवं महावीरे तेणामेव उवागच्छंति, उवागच्छिता समणं भगवं महावीरं वंदंति णमंसंति, वंदिता णमंसित्ता एवं वयासी -

शब्दार्थ - परिणिव्वाण-वित्तियं - परिनिर्वाणप्रत्ययिक-मुनि की मृत देह के परिष्ठापन हेतु किया जाने वाला, आयारभंडगं - आचार परिपालन निमित्तक वस्त्र, पात्र आदि उपकरण, पच्चोरुहंति - प्रत्यारोहण करते हैं, नीचे उतरते हैं।

भावार्थ - स्थिवर भगवंतों ने मुनि मेघकुमार को क्रमशः कालगत देखा। तब उन्होंने पिरिनिर्वाण प्रत्यिक कायोत्सर्ग किया। मेघकुमार के उपकरणों को लिया। विपुलाचल से धीरे-धीरे नीचे उतरे और गुणशील चैत्य में भगवान् महावीर स्वामी के पास पहुँचे। भगवान् को उन्होंने वंदन नमन कर इस प्रकार कहा।

(२१२)

एवं खलु देवाणुप्पियाणं अंतेवासी मेहे णामं अणगारे पगइभद्दए जाव विणीए। से णं देवाणुप्पिएहिं अब्भणुण्णाए समाणे गोयमाइए समणे णिगांथे णिगांथीओ य खामेत्ता अम्हेहिं सिद्धं विउलं पव्वयं सिणयं २ दुरूहइ, दुरूहिता सयमेव मेहघण-सिण्णिगासं पुढिवि-सिलापट्टयं पिडलेहेइ २ ता भत्तपाण-पिडयाइक्खिए अणुपुव्वेणं कालगए। एस णं देवाणुप्पिया! मेहस्स अणगारस्स आयारभंडए।

www.jainelibrary.org

शब्दार्थ - अंतेवासी - शिष्य, पगइभद्दए - स्वभाव से भद्र, विणीए - विनीत, अम्हेहिं सिद्धं - हमारे साथ, पडियाइक्खिए - प्रत्याख्यान किया।

भावार्थ - देवानुप्रिय! आपका अन्तेवासी मुनि मेघकुमार जो स्वभाव से भद्र था, विनीत था, आप से आज्ञा लेकर गौतम आदि श्रमण-निर्ग्रन्थों एवं निर्ग्रन्थिनियों से क्षमत-क्षमापना कर विपुलाचल पर चढ़ा। वहाँ स्वयं ही गहरे बादल के सदृश श्याम वर्णिक पृथ्वी शिलापट्ट का प्रतिलेखन किया, आहार पानी का परित्याग किया, क्रमशः वह कालगत हुआ। भगवन्! ये मेघ कुमार के उपकरण हैं।

देवत्व-प्राप्ति

(२१३)

भंते! त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वदासी-एवं खलु देवाणुप्पियाणं अंतेवासी मेहे णामं अणगारे, से णं भंते! मेहे अणगारे कालमासे कालं किच्चा किहं गए, किहं उववण्णे?

शब्दार्थ - कालमासे - मृत्यु का समय आने पर, कालं किच्चा - प्राण त्याग कर, उववण्णे - उत्पन्न हुआ।

भावार्थ - गणधर गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वंदन-नमन कर पूछा-भगवन्! आपका अंतेवासी मुनि मेघकुमार अपना आयुष्य पूर्ण कर देह त्याग कर कहाँ गया, कहाँ उत्पन्न हुआ?

(२१४)

गोयमाइ समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं एवं वयासी-एवं खलु गोयमा! मम अंतेवासी मेहे णामं अणगारे पगइभद्दए जाव विणीए से णं तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ २ ता बारस भिक्खु-पिडमाओ गुणरयणसंवच्छरं तवोकम्मं काएणं फासेत्ता जाव किट्टेत्ता मए अब्भणुण्णाए समाणे गोयमाइ थेरे खामेइ २ ता तहारूवेहिं जाव विउलं पव्वयं

दुरूहइ, दुरूहिता दब्भसंथारगं संथरइ २ ता दब्भसंथारोवगए सयमेव पंचमहळ्यए उच्चारेइ बारसवासाइं सामण्णपरियागं पाउणिता मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसित्ता सिंड भत्ताइं अणसणाए छेदेता आलोइयपिडकंते उद्धियसल्ले समाहिपत्ते कालं मासे कालं किच्चा उद्धं चंदिमसूरगहगणवख्यत्त तारारूवाणं बहूइं जोयणाइं बहूइं जोयणसयाइं बहूइं जोयणसहस्साइं बहूइ जायणसयसहस्साइं बहूइं जोयण-कोडीओ बहूइं जोयणकोडाकोडीआ उद्घ दूर उप्पेइत्ता सोहम्मीसाण-सणंकुमार-माहिंद-बंभ-लंतग-महासुक्क -सहस्सारा-णय-पाणयारणच्चुए तिण्णि य अट्टार-सुत्तरे गेवेज्नविमाणावाससए वीइवइत्ता विजय महाविमाणे देवताए उववण्णे।

शब्दार्थ - उहं - ऊर्ध्व, ऊपर, सूर - सूर्य, उप्पइत्ता - ऊपर जाकर, तिण्णि - तीन, अहारसुत्तरे - अठारह, गेवेज - नवग्रैवेयक, वीइवइत्ता - व्यतिक्रांत कर-लांघ कर।

भावार्थ - श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने गणधर गौतम स्वामी को संबोधित कर कहा-गौतम! मेरा अन्तेवासी मुनि मेघकुमार प्रकृति से भद्र एवं विनीत था। उसने गीतार्थ, योग्य स्थिवरों से सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। बारह भिक्षुप्रतिमांओं एवं गुणरत्न-संवत्सर नामक तप की सम्यक् आराधना की। मुझ से आज्ञा प्राप्त कर, तुम से एवं अन्यान्य स्थिवरों से क्षमत-क्षमापना किया। सुयोग्य वैयावृत्यकारी स्थिवरों के साथ विपुल पर्वत पर आरूढ हुआ। दर्भ संस्थारक लगाया। उस पर स्थित होकर स्वयं ही पांच महाव्रतों का उच्चारण किया। तब तक वह बारह वर्ष का श्रमण पर्याय संपन्न कर चुका था। उसने एक मास की संलेखना द्वारा देह को कृश एवं आत्मा को सबल-स्वस्थ बनाते हुए साठ भक्तों को अनशन द्वारा छेद कर एक मासिक उपवास परिपूर्ण कर, आलोचन-प्रतिक्रमण, शल्य उद्धरण कर समाधि को प्राप्त किया। मृत्यु का समय आने पर देह त्याग कर वह चन्द्र, सूर्य, ग्रहवृद, नक्षत्र, तारागण से बहुत योजन-बहुत, सैकड़ों हजारों, लाखों, करोड़ों एवं कोड़ा-कोड़ी योजन ऊपर जाकर सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, लान्तक, महाशुक्र, सहस्नार, आनत, प्राणत, आरण, अच्युत संज्ञक देवलोकों तथा तीन सौ अठारह नव ग्रैवेयक विमानावासों को व्यतिक्रांत कर-लाँघ कर 'विजय' महाविमान में देव रूप में उत्पन्न हुआ है।

(२१५)

तत्थ णं अत्थेगइयाणं देवाणं तेतीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

शब्दार्थ - ठिई - स्थिति, पण्णत्ता - परिज्ञापित हुई है-बतलाई गई है।

भावार्थ - वहाँ कतिपय देवों की स्थिति तैंतीस सागरोपम बतलाई गई है। उनमें मेघकुमार देव की स्थिति भी तैंतीस सागरोपम की समझनी चाहिये।

(२१६)

तत्थ णं मेहस्सवि देवस्स तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णता। एस णं भंते! मेहे देवे ताओ देवलोयाओ आउक्खएणं ठिइक्खएणं भवक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता किहं गच्छिहिइ, किहं उळ्विजिहिइ?

शब्दार्थ - चयं - देव भव संबंधी शरीर, चड़त्ता - त्याग कर, गच्छिहिइ - जायेगा, उवविजिहिइ - उत्पन्न होगा।

भावार्थ - गणधर गौतम ने पुनः जिज्ञासा की - भगवन्! देव मेघकुमार देवलोक में आयु स्थिति एवं भव का क्षय कर-तत्कारणभूत कर्मों का नाश कर देव संबंधी देह का त्याग कर किस गित में जायेगा, कहाँ उत्पन्न होगा?

अंततः सिद्धत्व-लाभ (२१७)

गोयमा! महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ बुज्झिहिइ मुच्चिहिइ परिणिव्वाहिइ सव्वदुक्खाणमंतं काहिइ।

शब्दार्थ - महाविदेहेवासे - महाविदेह क्षेत्र में, सिज्झिहिइ - सिद्धत्व प्राप्त करेगा, बुज्झिहिइ - विमल केवल ज्ञान के आलोक से लोक एवं अलोक को जानेगा, मुख्यिहिइ - समस्त कर्मों से मुक्त होगा, परिणिव्याहिइ - परिनिर्वृत होगा-सर्व कर्मजनित विकारों से रहित होगा, काहिइ - करेगा।

भावार्थ - गौतम! वह महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध, बुद्ध, मुक्त एवं परिनिर्वृत होगा, समस्त दुःखों का नाश करेगा।

(२१८)

एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं आइगरेणं तित्थगरेणं जाव संपत्तेणं अप्योपालंभ-णिमित्तं पढमस्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णते ति बेमि।

शब्दार्थ - जंबू! धर्म प्रवर्त्तक, तीर्थ प्रवर्त्तक, सिद्धत्व प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने हितैषी गुरु द्वारा अविहितकारी (अविनीत) शिष्य को उपालम्भ (शिक्षा) देने के निमित्तभूत णाया धम्मकहाओं सूत्र के प्रथम ज्ञाता अध्ययन का यह अर्थ कहा है- इस प्रकार आशय निरूपण किया है। जैसा भगवान् ने प्ररूपित किया है, वैसा ही मैं तुम्हें कहता हूँ।

गाहा - महुरेहिं णिउणेहिं वयणेहिं चोययंति आयरिया। सीसे कहिंचि खलिए जह मेहमुणिं महावीरो॥१॥

॥ पढमं अज्झयणं समत्तं॥

गाथा शब्दार्थ - णिउणेहिं - युक्ति युक्त, चोययंति - प्रेरणा प्रदान करते हैं, खलिए-स्खलित-शिथिल होने पर।

भावार्थ - शिष्य के जरा भी स्खलित-संयम-पालन में शिथिल होने पर आचार्य मधुर, युक्ति युक्त वचनों द्वारा उसे उसमें सुस्थिर बने रहने की प्रेरणा प्रदान करते हैं, जैसे भगवान् महावीर स्वामी ने मेघमुनि को प्रेरित किया।

॥ प्रथम अध्ययन समाप्त॥



बीयं अज्झयणं : संघाडे संघाट नामक द्वितीय अध्ययन

(9)

जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं पढमस्स णायज्झयणस्स अयमहे पण्णत्ते बिइयस्स णं भंते! णायज्झयणस्स के अहे पण्णत्ते?

भावार्थ - आर्य जंबू ने आर्य सुधर्मा स्वामी से निवेदन किया कि अनन्त गुण संपन्न, सिद्धि प्राप्त भगवान् महावीर स्वामी ने प्रथम अध्ययन का जो अर्थ-विवेचन प्रतिपादित किया, वह मैं आप से सुन चुका हूँ। भगवन्! कृपया बतलाएँ उन्होंने दूसरे ज्ञाताध्ययन का क्या अर्थ व्याख्यात किया है?

(२)

एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णामं णयरे होत्था वण्णओं । तस्स णं रायगिहस्स णयरस्स बहिया उत्तरपुरित्थमे दिसीभाए गुणसिलए णामं चेइए होत्था वण्णओ ※।

भावार्थ - आर्य सुधर्मा स्वामी बोले - जंबू! उस काल-वर्तमान अवसर्पिणी के चतुर्थ आरे के अंत में, उस समय-जब भगवान् महाबीर स्वामी विराजित थे, राजगृह नामक नगर था। वह राजोचित सभी महिमाओं से मंडित था। राजगृह नगर के बाहर उत्तर पूर्व दिशा भाग में गुणशील नामक चैत्य था। इन तीनों का विस्तृत वर्णन औपपातिक सूत्र से ग्राह्य है।

(३)

तस्स णं गुणसिलयस्स चेड्यस्स अदूरसामंते एत्थ णं महं एगे पडिय-जिण्णुजाणे यावि होत्था विणद्वदेवउले परिसंडिय-तोरणघरे णाणाविह-गुच्छ-गुम्म-लया-विल्ल-वच्छच्छाइए अणेग-वालसय-संकणिजे यावि होत्था।

टिप्पणियां - 💥 उववाइय - सुत्त, सूत्र १ पृष्ठ-१-६, २. उववाइय - सुत्त सूत्र २ पृ० १०-१४

शब्दार्थ - पंडिय - उजड़ा हुआ, उज्जाणे - उद्यान, देवउले - देवायतन, वाल - व्याल-साँप, संकणिजे - शंकनीय - भय की आशंका से युक्त।

भावार्थ - उस गुणशील चैत्य से न अधिक दूर न अधिक समीप-उसके एक भाग में, एक उजड़ा हुआ जीर्ण शीर्ण उद्यान था। उसमें स्थित देवायतन नष्ट हो चुका था। उसके विभिन्न भागों के तोरण टूट चुके थे। अनेक प्रकार के पुष्प-गुच्छ, गुल्म, लता, वल्ली तथा वृक्षों से वह आच्छादित था। सैंकड़ों साँपों आदि के कारण वहाँ भय की आशंका बनी रहती थी।

(8)

तस्स णं जिण्णुजाणस्य बहुमज्झ-देसभाए एत्थ मं महं एगे भग्गकूवए यावि होत्था।

शब्दार्थ - बहुमज्झ-देसभाए - बीचों बीच, भगाकूषए - भग्नकूप-टूटा-फूटा कुआँ। भावार्थ- उस जीर्ण-शीर्ण उद्यान के बीचों-बीच एक बहुत बड़ा टूटा-फूटा कुआँ भी था।

(보)

तस्स णं भगक्ष्वस्स अदूरसामंते एत्थ णं महं एगे मालुयाकच्छए यावि होत्था किण्हे किण्हो भासे जाव रम्मे महामेह-णिउरंबभूए बहूहिं रुक्खेहि य गुच्छेहि य गुम्मेहि य लयाहि य वल्लीहि य तणेहि य कुसेहि य खाणुएहि य संछण्णे पलिच्छण्णे अंतो झुसिरे बाहिं गंभीरे अणेग-वालसय-संकणिजे यावि होत्था।

शब्दार्थ - मालुयाकच्छए - मालुका संज्ञक वृक्षों से युक्त भू भाग, किण्हे - कृष्ण वर्ण युक्त, किण्होभासे - कृष्ण प्रभायुक्त, णिउरंब - समूह, कुसेहि - दर्भ द्वारा, संछण्णे - व्याप्त-छाया हुआ, पिलच्छण्णे - विशेष रूप से आच्छादित, झुसिरे - भीतर से सावकाश-खुला।

भावार्थ - उस टूटे-फूटे कुएं से न ज्यादा दूर और न पास ही मालुका वृक्षों की बहुलता से युक्त भूभाग था। वह कृष्ण वर्ण एवं कृष्ण प्रभा से युक्त था, यावत् अत्यंत रमणीय था। बड़े-बड़े बादलों के समूह जैसे वृक्ष, गुच्छ, गुल्म, लता, वल्ली, तृण, कुश तथा दूंठ आदि से सघनतया आच्छादित था। वह भीतर से सावकाश-खुला तथा बाहर अति सघन था। सैकड़ों साँगों के कारण वहाँ भय की आशंका बनी रहती थी।

धन्य सार्थवाह : परिचय

(ξ)

तत्थ णं रायगिहे णयरे धण्णे णामं सत्थवाहे अहे दित्ते जाव विउल-भत्तपाणे। तस्स णं धण्णस्स सत्थवाहस्स भद्दा णामं भारिया होत्था सुकुमाल पाणिपाया अहीण-पडिपुण्ण-पंचिंदिय-सरीरा लक्खणवंजण-गुणोववेया माणुम्माणप्पमाण-पडिपुण्ण सुजाय-सव्वंग सुंदरंगी सिससोमागारा कंता पियदंसणा सुरूवा करयलपरिमिय-तिविलयमज्झा कुंडलुल्लिहिय-गंडलेहा कोमुइ-रयणियर-पडिपुण्ण सोमवयणा सिंगारागार-चारुवेसा जाव पडिरूवा वंझा अवियाउरी जाणुकोप्परमाया यावि होत्था।

शब्दार्थ - अहे - वैभवशाली, दित्ते - दीप्त-प्रभावशाली, भारिया - पत्नी, वंजण - वैशिष्टय सूचक तिल मस आदि चिह्न, करवल परिमिय - मुष्टिग्राह्म-मुडी में समा सके ऐसी पतली, तियवलिय - तीन रेखाओं-सलवटों से युक्त, मज्झा - मध्य भाग-कटि, उल्लिहिय- घिसी जाती हुई, गंडलेहा - कपोल रेखा, पडिस्तवा - सौंदर्य की प्रतिमूर्ति, वंझा - वन्ध्या - संतान रहित, अवियाउरी - संतानोत्पत्ति में सर्वथा अयोग्य, जाणु-घुटने, कोप्पर-कपूर-कोहनी।

भावार्थ - राजगृह नगर में धन्य नाम का सार्थवाह था। वह अत्यंत धनी एवं प्रभावशाली था। उसके घर में धन-धान्य एवं खाद्य-पेय पदार्थों की विपुलता थी। धन्य सार्थवाह की भद्रा नामक पत्नी थी। उसके हाथ पैर सुकुमार थे। उसके शरीर की पांचों इन्द्रियाँ रचना की दृष्टि सें अखंडित परिपूर्ण तथा अपने अपने विषयों को ग्रहण करने में सक्षम थीं। वह सौभाग्य सूचक हाथ की रेखाओं, व्यंजन वैशिष्ट्य सूचक तिल, मस आदि चिह्न, शील, सदाचार पातिव्रत्य आदि गुणों से युक्त थी। दैहिक विस्तार, वजन ऊँचाई आदि की अपेक्षा से वह परिपूर्ण एवं उत्तम थी, सवाँग सुंदर थी। उसका आकार शिश के सदृश सौम्य, कांत और दर्शनीय था। वह अत्यंत रूपवती थी। उसके शरीर का मध्यवर्ती भाग-किट प्रदेश हथेली के विस्तार जितना अथवा मुडी द्वारा गृहीत किया जा सके उतना-सा था। उसका पेट अपने पर पड़ने वाली तीन रेखाओं-सलवटों से युक्त था। कानों से झूमते हुए कुंडलों से उसके कपोलों पर अंकित अंगराग की

रेखाएं घिसती थी। कार्तिक पूर्णिमा के परिपूर्ण चन्द्र के सदृश उसका मुख सौम्य था। उसकी वेश भूषा इतनी सुंदर थी मानो वह श्रृंगार रस का आगार हो, साक्षात् रूप हो, सौंदर्य की प्रतिमूर्ति हो किन्तु वह वन्ध्या एवं संतानोत्पति के अयोग्य थी। मानो वह अपने घुटनों और कोहनियों की माँ थी क्योंकि वे ही स्तन्यपानार्थ उसके स्तनों का संस्पर्श करते थे।

विवेचन - इस सूत्र में धन्य नामक व्यक्ति के साथ 'सत्थवाहे' शब्द का प्रयोग हुआ है। 'सत्थवाह' का संस्कृत रूप ''सार्थवाह'' है। यह सार्थ तथा वाह-दो पदों से निष्पन्न है। सार्थ में स+अर्थ का योग है। 'अर्थेन सह इति-सार्थः क्षः। सार्थवहतीति सार्थवाहः।'

'अर्थ' शब्द प्रयोजन आकांक्षा, उद्देश्य, कारण आशय कार्य, व्यापार, जायदाद, धन, समृद्धि क्रेय-विक्रेय पदार्थ-तिजारती सामान आदि अनेक भावों का द्योतक है *।

सार्थवाह शब्द का जैनागम तथा कथा साहित्य में स्थान स्थान पर प्रयोग मिलता है। सार्थवाह बड़े व्यापारी के अर्थ में है। सार्थ का एक अर्थ काफिला भी है। प्राचीन काल में जब आवागमन के साधनों का विकास नहीं हुआ था तब व्यापारी एक समूह के रूप में अन्य स्थानों पर व्यापार हेतु जाते थे। उसे 'सार्थ' कहा जाता था। जो सार्थ या काफिले का नायक या प्रधान होता, उसे 'सार्थवाह' कहा जाता। ये सार्थ एक देश के भिन्न-भिन्न भूभागों में व्यापारार्थ जाते थे। जो बड़े सार्थवाह होते, वे पोत, जलयान द्वारा दूर-दूर के देशों में भी जाते। जब कोई सार्थवाह व्यापारार्थ दूर देश की यात्रा पर जाता तब जाने से पूर्व नगर में घोषणा करवा देता कि जिन व्यापारियों को व्यापार हेतु जाना हो, वे अपना माल लेकर उसके जलयान में यात्रा कर सकते हैं। सार्थवाह की ओर से मार्ग में खाद्य सामग्री जल आदि की सुविधा के अतिरिक्त सुरक्षा की भी व्यवस्था रहती। छोटे व्यापारी एकाकी व्यापारार्थ नहीं जा सकते थे। सार्थ के साथ जाने वाले अपनी विक्रेय सामग्री जहाँ-जहाँ लाभ प्राप्त होता, बेचते रहते एवं वहाँ होने वाली सामग्री खरीदते रहते क्योंकि जहाज में वापस लाने की सुविधा थी। सार्थ या काफिले का संचालन काफी श्रमसाध्य एवं व्ययसाध्य होता था। इसीलिए सार्थवाह का समाज में बहुत आदर था। सार्थ या काफिले की व्यवस्था से यह स्पष्ट होता है कि बड़े व्यापारियों की छोटे व्यापारियों के साथ भी बहुत सहानुभूति होती थी एवं वे स्वेच्छा पूर्वक उन्हें व्यापार में सहयोग करना चाहते थे। सामाजिक सौहार्द का यह एक अनुठा रूप था।

^{*} संस्कृत, इंग्लिश डिक्शनरी, पृष्ठ १५०-१५१।

(७)

तस्स णं धण्णस्स सत्थवाहस्स पंथए णामं दासचेडे होत्था सव्वंग सुंदरंगे मंसोवचिए बाल-कीलावण-कुसले यावि होत्था।

शब्दार्थ - दासचेडे - दास पुत्र, मंसोवचिए - मांसोपचित-ताजा-मोटा, बाल कीलावण कुसले - बच्चों को खिलाने में कुशल।

भाषार्थं - धन्य सार्थवाह के यहाँ पंथक नामक दासपुत्र था। वह सर्वांग सुंदर एवं हुष्ट पुष्ट था। बालकों को खेलाने में निपुण था।

(5)

तए णं से धण्णे सत्थवाहे रायगिहे णयरे बहूणं णगर-णिगम-सेट्टि-सत्थवाहाणं अद्वारसण्ह य सेणिप्यसेणीणं बहूसु कजेसु य कुडुंबेसु य मंतेसु य जाव चक्खुभूए यावि होत्था, णियगस्स वि य णं कुडुंबस्स बहूसु य कजेसु जाव चक्खुभूए यावि होत्था।

शब्दार्थ - णिगम - निगम-व्यापारिक केन्द्र, सेणिप्पसेणीणं - श्रेणियों-जातियों, प्रश्रेणियों-उपजातियों के, कुडुंबेसु - कुटुम्ब विषयक कार्यों में, मंतेसु - मंत्रणाओं में, चक्खुभूए -चक्षुभूत-नेत्र के समान मार्ग दर्शक।

भावार्थ - धन्य सार्थवाह राजगृह नगर में अनेकानेक नागरिकों, ब्यापारियों, श्रेष्ठियों, सार्थवाहों, अहारह जाति-उपजाति के पुरुषों के बहुत से कार्यों में, उनके पारिवारिक विषयों में, मंत्रणाओं में मार्गदर्शक था तथा अपने कुटुम्ब के भी इस प्रकार के सभी कार्यों का वह संचालक था।

कुख्यात चोर विजय

(3)

तत्थ णं रायगिहे णयरे विजए णामं तक्करे होत्था पावे चंडालरूवे भीमतर-रूदकम्मे आरुसिय-दित्त-रत्तणयणे खर-फरुस-महल्ल-विगय-बीमच्छदाहिए असंपुडियउट्टे उद्धय-पडणण-लंबंतमुद्धए भमर-राहुवण्णे णिरणुक्कोसे णिरणुतावे

दारुणे पड़भए णिसंसइए णिरणुकंपे अहिट्य एगंतदिष्टि खुरेव एगंतधाराए गिद्धेव आमिस-तिल्लच्छे अगिमिव सव्वभक्खे जलमिव सव्वगाही उक्कंचण-वंचण-माया-णियडि-कूडकवड-साइ-संपओगबहुले चिर-णगर विणट्ट-दुट्ट-सीलायार-चरित्ते जूयप्यसंगी मजप्यसंगी भोजप्यसंगी मंसप्पसंगी दारुणे हिययदारए साहसिए संधिच्छेयए उवहिए विस्संभ-घाई आलीयग-तित्थभेय-लहुहत्थ-संपउत्ते परस्स दव्यहरणंमि णिच्चं अणुबद्धे तिव्यवेरे रायगिहस्स णगरस्स बहुणि अइगमणाणि य णिग्गमणाणि य दाराणि य अवदाराणि य छिडिओ य खंडीओ य णगर-णिद्धमणाणि य संघट्टणाणि य णिव्वट्टमाणि य जूव-खलयाणि य पाणागाराणि य वेसागाराणि य तद्दारहाणाणि य तक्करहाणाणि य तक्करघराणि य सिंगाडगाणि य तियाणि य चउक्काणि य चच्चराणि य णागघराणि य भूवघराणि य जक्खदेउलाणि य सभाणि य पवाणि य पणियसालाणिय सुण्णघराणि य आभोएमाणे २ मग्गमाणे गवेसमाणे बहुजणस्स छिद्देसु य विसमेसु य विहुरेसु य वसणेसु य अब्भुदएसु य उस्सवेसु य पसवेसु य तिहीसु य छणेसु य जण्णेसु य पव्यणीसु य मनपमनस्स य विक्खनस्स य वाउलस्स य सुहियस्स य दुहियस्स य विदेसत्थस्स य विप्पवसियस्स य मगां च छिद्दं च विरहं च अंतरं च मगामाणे गवेसमाणे एवं च णं विहरइ।

शब्दार्ध - तक्करे - तस्कर-चोर, पावे - पापिष्ठ-पाप कर्मकारी, चंडाल रूवे - चण्डाल के समान दिखाई देने वाला, भीमतर - भयानक, रुइकम्मे - क्रूर कर्म करने वाला, आरुस्य - आरुष्ट-क्रुद्ध, खर - तीक्ष्ण, फरुस - स्पर्श, महल्ल - बड़ी, दाढिए - दाढी, असंपुडिय - असंपुटित-परस्पर नहीं मिलने वाले, उद्दे - ओष्ठ-होठ, उद्धुय - हवा से हिलते हुए, पड़ण्ण - बिखरे हुए, मुद्धए - सिर के बाल, णिरणुक्कोसे - निर्दय, णिरणुतावे - पश्चाताप रहित, दारुणे - क्रूर, पड़भए - भयोत्पादक, णिसंसइए - दया रहित, णिरणुकंपे- अनुकंपा स्हित, अहिब्ब - साँप की तरह, एगंतदिद्धि - क्रूर कर्म में एकांत दृष्टि युक्त, आमिसतिल्लाको - मांस लोलुप, सब्बभक्खे - सब कुछ खा जाने वाले, सब्बगाही - सर्वग्राही, उक्कंचण - हीन गुण या मूल्य युक्त वस्तु को अधिक उत्कृष्ट बतलाने में निपुण,

वंचण - ठगी, णियंडि - ढोंगीपन, कुड - माप-तौल में कम ज्यादा करने में चतुर, कवड -वेशभाषा आदि बदलकर छलना, साइसंपओगबहुले - अत्यधिक प्रयोग निपुण, जूयप्पसंगी -द्यूतव्यसनी, मञ्जप्पसंगी - मदिरापान करने वाले, हिययदारए - हृदय विदारक, साहसिए -निःशंकतया चोरी करने वाला, संधिच्छेयए- सेंघ लगाने वाला, उवहिए- मायाचारी, विस्संभघाई-विश्वासघाती. आलीयग - आग लगाने वाला, तित्थपय - धर्म स्थानों को नष्ट-भ्रष्ट करने वाला, लहुहत्थसंपडते - हस्तलाघव युक्त-हाथ की सफाई में निपुण, अङ्गमणाणि - प्रवेश करने के रास्ते, णिग्गमणाणि - निकलने के रास्ते, दाराणि - दरवाजे, अवदाराणि - पीछे के दरवाजे, छिंडिओ - कांटेदार बाड़ के छिद्रों को, खंडिओ - किलों-दुर्गों के छिद्रों-छोटी खिड़िकयों, णगरणिद्धमणाणि - नगर के जल निकास के नाले, संघट्टणाणि - अनेक मार्गों के मिलने के स्थान, णिट्यहणाणि - नवनिर्मित मार्ग, जूवखलयाणि - जुए के अड्डे, पाणागाराणि - शराब खाने, वेसागाराणि - वेश्यालय, णागघराणि - नागदेव के पूजा स्थान, भयघराणि - भूतगृह, जक्खदेउलाणि - यक्षायतन, पवाणि - जल प्रपाएँ-प्याऊ, पणियसालाणि - क्रय-विक्रय के स्थान, सुण्णघराणि - शून्य गृह, आभोएमाणे - चोरी की निगाह से देखता हुआ, मग्गमाणे - खोज करता हुआ, गवेसमाणे - बारीकी से देखता हुआ, छिद्देसु - स्खलना रूप छिद्रों में, विसमेसु - रोगादि विषम दशाओं में, विह्रेसु - संकटयुक्त अवस्था में, वसणेसु - विपत्तिकाल में, अब्भुदएसु - धन-वैभवादि प्राप्त होने के अवसरों में, उस्सवेसु - विवाह आदि उत्सवों पर, पसवेसु - जन्मोत्सवों पर, तिहिसु - विशेष तिथियों में होने वाले उत्सवों पर, छणेसु - आनंदोत्सवों पर, जण्णेसु - यज्ञों में, पट्यणीसु - पर्व दिवसों पर, मत्तपमत्त - उन्माद-प्रमाद युक्त, विक्खित - विक्षिप्त, वाउल- वात रोग युक्त, सुहिय - सुखमन, दुहिय - दुःखित, विदेसत्थ - विदेश गया हुआ, विप्यवसिय - इष्ट जनों से बिछुड़ा हुआ, अंतरं - दूरी।

भावार्थ - राजगृह नगर में विजय नामक चोर था। वह घोर पापकारी, दिखने में चण्डाल जैसा, अत्यंत भयानक और क्रूर था। क्रुद्ध हुए पुरुष की तरह उसकी आँखें लाल रहती थी। उसकी दाढी कड़ी, कठोर, मोटी, विकृत और डरावनी थी। दांत लंबे होने के कारण उसके ओंठ परस्पर मिल नहीं पाते थे। उसके सिर के बाल बड़े-बड़े थे, हवा में उड़ते और बिखरते रहते थे। उसका रंग भंबरे तथा राहु (ग्रह विशेष) के समान काला था। उसके हृदय में जरा भी दया नहीं थी। कोई भी दुष्कर्म कर वह कभी पछताता नहीं था। बहुत ही दारुण था, अतः देखते ही डर लगता था।

वह नृशंस एवं अनुकंपा रहित था। साँप की ज्यों उसकी दृष्टि अपने क्रूर कर्म पर एकाग्रता पूर्वक टिकी रहती थी। छुरे की धार की तरह उसकी प्रवृत्ति दुस्सह थी। गिद्ध के समान मांस लोलुप, अग्नि के समान सर्वभक्षी एवं जल के समान सर्वग्राही था। जब चोरी करता, कुछ भी नहीं छोड़ता। वह प्रवंचना, कपट, छल, माया आदि कलुषित कार्यों में बड़ा ही माहिर था। चौर्य विषयक बहुविध कार्यों के संप्रयोग में निष्णात था। शील, आचार एवं चरित्र से भ्रष्ट था। जुआरी एवं शराबी था। उसके कार्य हृदय विदारक थे। वह साहसी-चोरी करने में निःशंक था। तीर्थ रूप द्रेवद्रोणी (देवस्थान) आदि का भेदन करके उसमें से द्रव्य हरण करने वाला और हस्तलाघव वाला था। पराया द्रव्य हरण करने में सदैव तैयार रहता था तीव्र वैर वाला था।

वह विजय चोर राजगृह नगर के बहुत से प्रवेश करने के मार्गों, निकलने के मार्गों, दरवाजों, पीछे की खिड़िक्यों, छेड़ियों, किलों की छोटी खिड़िक्यों, मोरियों, रास्ते मिलने की जगहों, रास्ते अलग-अलग होने के स्थानों, जुआ के अखाड़ों, मदिरापान के अड़ों, वेश्या के घरों, उनके घरों के द्वारों (चोरों के अड़ों), चोरों के घरों, शृंगाटकों-सिंघाड़े के आकार के मार्गों, तीन मार्ग मिलने के स्थानों, चौकों, अनेक मार्ग मिलने के स्थानों, नागदेव के गृहों, भूतों के गृहों, यक्षगृहों, सभास्थानों, प्याउओं, दुकानों और शून्यगृहों को देखता फिरता था। उनकी मार्गणा करता था—उनके विद्यमान गुणों का विचार करता था, उनकी गवेषणा करता था, अर्थात् थोड़े अनों का परिवार हो तो चोरी करने में सुविधा हो, ऐसा विचार किया करता था। विषम—रोग की तीव्रता, इष्टजनों के वियोग, व्यसन—राज्य आदि की ओर से आये हुए संकट, अध्युदय—राज्यलक्ष्मी आदि के लाभ, उत्सवों, प्रसवपुत्रादि के लाभ, मदन प्रयोदशी आदि तिथियों, क्षण—बहुत लोकों के भोज आदि के प्रसंगों, यज्ञ—नाग आदि की पूजा, कौमुदी आदि पर्वणी में, अर्थात् इन सब प्रसंगों पर बहुत से लोग मद्यपान से मत्त हो गए हों, प्रमत्त हुए हों, अमुक कार्य में व्यस्त हों, विविध कार्यों में आकुल-व्याकुल हों, सुख में हों, दुःख में हों, परदेश गये हों, परदेश जाये हों, परदेश जाने की तैयारी में हों, ऐसे अवसरों पर वह लोगों के छिद्र का, विरह (एकान्त) का और अन्तर (अवसर) का विचार करता और गवेषणा करता रहता था।

(90)

बहिया वि य णं रायगिहस्स णगरस्स आरामेसु य उज्जाणेसु य वावि-पोक्खरणी-दीहिया-गुंजालिया सरेसु य सरपंतिसु य सरसरपंतियासु य जिण्णुजाणेसु य भग्गकूवएसु य मालुयाकच्छएसु य सुसाणेसु य गिरिकंदर-लेण-उवडाणेसु य बहुजणस्स छिद्देसु य जाव एवं च णं विहरइ।

शब्दार्थ - आरामेसु - पुष्प, फल आदि समृद्ध वृक्षों एवं लताओं से युक्त क्रीड़ास्थानों में, दीहिया - दीर्घिका-लम्बे आकार की बावड़ी, गुंजालिया - गुंजालिका-टेढी बनी हुई बावड़ी, सुसाणेसु - श्मशानों में, लेण - पर्वत स्थित पाषाण मण्डप।

भावार्थ - वह विजय चोर राजगृह के बर्हिर्वर्ती आराम, उद्यान, वापी, पुष्करिणी, दीर्घिका, सरोवर, जीर्ण उद्यान, दूटे हुए कुएं, मालुका कच्छ, श्मशान, पर्वत की गुफाएँ, उन पर बने हुए गृह-मण्डप, इत्यादि में अनेक लोगों के छिद्र-गुप्त वृत्तांत देखता, खोजता रहता था।

निःसंतान भद्रा की चिंता (११)

तए णं तीसे भद्दाए भारियाए अण्णया कयाइं पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि कुडुंब-जागरियं जागरमाणीए अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था - ''अहं धण्णेणं सत्थवाहेणं सिद्धं बहूणि वासाणि सद-फरिस-रस-गंध-रूवाणि माणुस्सगाइं कामभोगाइं पच्चणुभवमाणी विहरामि णो चेव णं अहं दारगं वा दारिगं वा पयायामि।

तं धण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ जाव सुलद्धे णं माणुस्सए जम्मजीवियफले तासिं अम्मयाणं जासिं मण्णे णियगकुच्छि-संभूयाइं थणदुद्धलुद्धयाइं महुर-समुल्लावगाइं मम्मण-पयंपियाइं थणमूलकक्खदेसभागं अभिसरमाणाइं मुद्धयाइं थणयं पिबंति तओ य कोमल कमलोवमेहिं हत्थेहिं निण्हिऊणं उच्छंगे णिवेसियाइं देंति समुल्लावए पिए सुमहुरे पुणो २ मंजुलप्य-भणिए। तं णं अहं अधण्णा अपुण्णा अलक्खणा अकयपुण्णा एतो एगमवि ण पत्ता।"

शब्दार्थ - कुडुंबजागरियं - कुटुम्ब विषयक चिंता में, जागरमाणीए - जागती हुई, वासाणि- वर्ष, पच्चणुभवमाणी - अनुभव करती हुई, दारगं - पुत्र, दारिगं - पुत्री, सुलद्धे-सुलब्ध-सफल, लुद्धयाइं - लुब्धक-इच्छुक, महुरसमुल्लावगाइं - मीठी बोली में बोलने वाले, मम्मणपर्यापयाइं - बालसुलभ तुतली बोली में बोलने वाले, थणमूल-कक्ख-देसभागं-स्तनमूल से कक्ष-काँख की ओर, अभिसरमाणाइं - सरकते हुए, मुद्धयाइं - मुग्ध-मनोहर (शिशु), उच्छंगे- गोद में, णिवेसियाइं देंति-सन्निविष्ट करती हैं-रखती हैं, एतो - अब तक।

भावार्थ - धन्य सार्थवाह की पत्नी भद्रा, एक बार आधी रात के समय कुटुम्ब विषयक चिंता में संलग्न थी। उसके मन में यह विचार आया कि मैं बहुत वर्षों से अपने पित के साथ शब्द, रस, गंध आदि मानुषिक काम भोगों का सुखानुभव करती विचर रही हूँ किंतु अब तक मैं एक भी शिशु-पुत्र या पुत्री को जन्म नहीं दे पायी।

वास्तव में वे माताएँ धन्य हैं, भाग्यशालिनी हैं, उन माताओं का मनुष्य जन्म निश्चय ही सफल है, जिनकी कोख से उत्पन्न, स्तनों का दुग्धपान करने में अति उत्सुक, मीठी और तुतलाती बोली में बोलने वाले शिशु स्तनमूल से कक्ष प्रदेश की ओर सरक कर दूध पीते हैं। माताएँ अपने कमल सदृश सुकुमार हाथों में लेकर उन्हें गोदी में बिठाती हैं तथा अत्यंत प्रिय एवं मधुर वाणी में उनसे आलाप करती हैं।

मैं अभागिन हूँ, पुण्यहीना हूँ, अशुभ लक्षणा हूँ क्योंकि मुझे इनमें से कुछ भी प्राप्त नहीं है।

(97)

तं सेयं मम कल्लं पाउप्पभायाए जाव जलंते धण्णं सत्थवाहं आपुच्छित्ता धण्णेणं सत्थवाहेणं अन्भणुण्णाया समाणी सुबहुं विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेत्ता सुबहुं पुष्फ-वत्थ-गंध-मल्लालंकारं गहाय बहूहिं मित्त-णाइ-णियग-सयण-संबंधि-परिजण-महिलाहिं सिद्धं संपरिबुडा जाइं इमाइं रायगिहस्स णयस्स बहिया णागाणि य भूयाणि य जक्खाणि य इंदाणि य खंदाणि य रुद्दाणि य सेवाणि य वेसमणाणि य तत्थ णं बहूणं णागपिडमाण य जाव वेसमणपिडमाण य महिरहं पुष्फच्चणियं करेता जाणुपाय-पिडयाए एवं वइत्तए-जइ णं अहं देवाणुष्पिया! दारगं वा दारिगं वा पयायामि तो णं अहं तुब्भं जायं च दायं च भायं च अक्खयणिहिं च अणुवड्ढेमि तिकट्टु उवाइयं उवाइत्तए।

शब्दार्थ - जाइं - जो, इमाइं - ये, पुष्फच्चिणयं - पुष्पार्चन-पुष्पों द्वारा अर्चना,

वइत्तए - कहूँ-निवेदित करूँ, जायं - याग-पूजा, दायं - दान-धनार्पण, भायं - द्रव्य भाग, अक्खयणिहिं - अक्षय निधि-अक्षयदेव द्रव्य, अणुवड्ढेमि - बढाऊँगी, उवाइयं - उपयाचित-मनौती, उवाइत्तए - मनाऊँ।

भावार्थ - मेरे लिए यह श्रेयस्कर होगा कि प्रातःकाल-सूर्योदय के पश्चात् अपने पित से पूछ कर, उनसे आज्ञा प्राप्त कर, विपुल मात्रा में अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, पुष्प, गंध, मालाएँ आदि तैयार करवा कर-लेकर अपने जातीय, सुहृद संबंधी तथा परिजन वृन्द की महिलाओं से घिरी हुई राजगृह नगर के बाहर नाग, भूत, यक्ष, इन्द्र, स्कन्द, रुद्र, शिव तथा कुबेर - इन देवों के जो प्रतिमायतन हैं, वहाँ मैं बहुमूल्य पुष्पादि द्वारा उनका अर्चन कर, पैरों के बल् घुटने झुका कर-जमीन पर टिका कर, इस प्रकार उनसे निवेदन करूँ - 'देवानुप्रिय! मैं पुत्र या पुत्री को जन्म दूँ तो आपकी पूजा, द्रव्यार्पण तथा अक्षय निधि संवर्द्धन करूंगी'-इस प्रकार मैं अपनी मनौती मनाऊँ।

(93)

एवं संपेहेड, संपेहिता कल्लं जाव जलंते जेणामेव धण्णे सत्थवाहे तेणामेव उवागच्छड, उवागच्छिता एवं वयासी—एवं खलु अहं देवाणुप्पिया! तुब्भेहिं सिद्धं वहूं वासाइं जाव देंति समुल्लावए सुमहुरे पुणो पुणो मंजुलप्पभणिए, तं णं अहं अहण्णा अपुण्णा अकयलक्खणा एतो एगमवि ण पत्ता, तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं जाव अणुवड्ढेमि उवाइयं करेत्तए।

भावार्थ - भद्रा ने पूर्वोक्त रूप में चिंतन किया तथा प्रातःकाल हो जाने पर अपने पित के पास आई एवं उनसे कहा - देवानुप्रिय! तुम्हारे साथ वर्षों से विपुल भोगमय जीवन व्यतीत करती आ रही हूँ किंतु मधुर वाणी में तुतलाते शिशु को जन्म नहीं दे पायी, इसका मुझे बड़ा दुःख है। मैं अत्यंत अधन्या, अभागिन और पुण्यहीना हूँ। इसलिए मैं आपकी आज्ञा प्राप्त कर विपुल अशन-पान-खाद्य-स्याद्य, वस्त्र-पुष्प आदि लेकर देवार्चन कर संतित हेतु मनौती करना चाहती हूँ।

(१४)

तए णं धण्णे सत्थवाहे भद्दं भारियं एवं वयासी - ममं पि य णं खलु

देवाणुप्पिए! एस चेव मणोरहे - कहं णं तुमं दारगं वा दारियं वा पयाएजसि? भद्दाए सत्थवाहीए एयमट्ठं अणुजाणइ।

भावार्थ - यह सुनकर धन्य सार्थवाह ने अपनी पत्नी भद्रा से कहा - देवानुप्रिये! मेरा भी यही मनोरथ है कि किसी प्रकार तुम पुत्र या पुत्री को जन्म दे सको। ऐसा कह कर उसने भद्रा को वैसा करने की अनुज्ञा प्रदान की।

देव-पूजा (१५)

तए णं सा भद्दा सत्थवाही धण्णेणं सत्थवाहेणं अन्भणुण्णाया समाणी हट्टतुट्ट जाव हयहियया विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेइ २ त्ता सुबहुं पुष्फ-वत्थ-गंध-मल्लालंकारं गेण्हइ, गेण्हत्ता सयाओ गिहाओ णिगाच्छइ, णिगाच्छिता रायगिहं णयरं मज्झंमज्झेणं णिगाच्छड. णिगाच्छिता जेणेव पोक्खरिणी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पुक्खरिणीए तीरे सुबहुं पुष्फ जाव मल्लालंकारं ठवेइ, ठवित्ता पुक्खरिणि ओगाहेइ, ओगाहेत्ता जलमजणं करेइ जलकीडं करेन्न, करेत्ता ण्हाया कयबलिकम्मा उल्लपडसाडिगा जाइं तत्थ उप्पलाई जाब सहस्सपत्ताई ताई गिण्हइ २ ता पुक्खरिणीओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहिता तं सुबहुं पुष्फवत्थगंधमल्लं गेण्हइ, गेण्हता जेणामेव णागघरए य जाव वेसमणघरए य तेणामेव उवागच्छड. उवागच्छित्ता तत्थ णं णागपडिमाण य जाव वेसमण-पश्चिमाण य आलोए पणामं करेड़, ईसिं पच्चुण्णमइ २ त्ता लोमहत्थगं परामुसङ २ त्ता णागपडिमाओ य जाव वेसमणपडिमाओ य लोमहत्थेणं पमज्जइ उदगधाराए अब्धुक्खेइ २ ता पम्हलसुकुमालाए गंधकासाईए गायाई लूहेइ २ ता महरिहं वत्थारुहणं च मल्लारुहणं च गंधारुहणं च चुण्णारुहणं च वण्णारुहणं च करेड़ करेता जाव धूवं डहड़ २ त्ता जण्णुपायपडिया पंजलिउडा एवं वयासी - ''ज़ड़ णं अहं दारगं वा दारियं वा पयायामि तो णं अहं जायं च

जाव अणुवह्रहेमि त्तिकट्टु उचाइयं करेड, करेता जेणेव पोक्खरिणी तेणेव उवागच्छड, उवागच्छित्ता विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं आसाएमाणी जाव विहरइ जिमिया जाव सुइभूया जेणेव सए गिहे तेणेव उवागया।

शब्दार्थ - ओगाहेड़ - अवगाहन कर-प्रवेश कर, उल्लपडसाडिगा - गीले वस्त्रों से युक्त, पच्चोरुहड़ - निकलती है, आलोए - दर्शन करती है, ईसिं - कुछ, पच्चुण्णमड़ - झुकती है, लोमहत्थगं - मोर की पाँखों से बने प्रमार्जक-मोरपिच्छी, परामुसड़ - ग्रहण करती है, अब्भुक्खेड़ - अभिसिञ्चित करती है, रुहणं - धारण कराना, चुण्ण - चूर्ण-सुगंधित वनौषधियों का चूरा, डहड़ - जलाती है।

भावार्थ - सार्थवाही धन्या अपने पति की आज्ञा प्राप्त कर अत्यंत प्रसन्न हुई। उसने विपुल अञ्चन, पान आदि तैयार करवाए। बहुविध सुंदर पुष्प, सुगंधित पदार्थ तथा मालाएँ लीं। अपने घर से निकली। राजगृह नगर के बीचोंबीच से चलती हुई, वह सरोवर पर आई। सरोवर के तट पर पुष्प आदि सामग्री को रखा। सरोवर में प्रवेश किया, मार्जन, जल-क्रीड़ा एवं स्नान किया। पुण्योपचार किया। गीली साड़ी धारण किए हुए उसने विविध प्रकार के कमल लिए। सरोवर से बाहर निकली। अनेकानेक सुगंधित पदार्थ, मालाएँ आदि लेकर नाग आदि देवायतनों में आई। वहाँ प्रतिमाओं का दर्शन किया, उन्हें प्रणाम किया। कुछ झुक कर मोरपिच्छी को उठाया और उससे प्रतिमाओं का प्रमार्जन किया। जलधारा से अभिषेक किया। सुकोमल सुगंधित काषाय रंग के वस्त्र से उन्हें पौंछा। बहुमूल्य वस्त्र, मालाएँ, सुगंधित पदार्थ उन्हें समर्पित किए। सुगंधित वनौषधियों के चूर्ण एवं चंदनादि से चर्चित किया। ऐसा कर धूप जलाया। पैरों के बल जमीन पर नीचे घुटने टिकाते हुए, हाथ जोड़कर वह बोली - 'यदि मेरे पुत्र या पुत्री का जन्म हो तो मैं पूजा, द्रव्योपहार एवं अक्षयदेवनिधि का संवर्धन करूंगी।' इस प्रकार मनौती मनाकर वह सरोवर के तट पर आई। वहाँ सहवर्तिनी महिलाओं के साथ अशन-पान-खाद्य-स्वाद्य आदि को ग्रहण किया। फिर शुचिभूत-हाथ, मुँह आदि धोकर अपने घर आई।

पुत्र-लाभ (१६)

अदुत्तरं च णं भद्दा सत्थवाही चाउद्दसद्ध-मुद्दिष्ट-पुण्णमासिणीसु विपुलं असणं

४ उक्खडेइ २ ता बहवे णागा य जाव वेसमाणा य उवायमाणी णमंसमाणी जाव एवं च णं विहरइ। तए णं सा भद्दा सत्थवाही अण्णया कयाइ केणइ कालंतरेणं आवण्णसत्ता जाया यावि होत्था।

भावार्थ - तत्पश्चात् भद्रा चतुर्दशी, अष्टमी तथा पूर्णिमा के दिन विपुल मात्रा में अशन पान आदि तैयार करवा कर नाग आदि देवों को चढाती, उन्हें नमस्कार करती। यह क्रम चलता रहा। कुछ समय बाद भद्रा सार्थवाही गर्भवती हुई।

(99)

तए णं तीसे भद्दाए सत्थवाहीए दोसु मासेसु वीइक्कंतेसु तइए मासे वट्टमाणे इमेयास्त्वे दोहले पाउब्भूए-धण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ जाव कयलक्खणाओ णं ताओ अम्मयाओ जाओ णं विउतं असणं पाणं खाइमं साइमं सुबहुयं पुप्फ-वत्थ-गंधमल्लालंकारं गहाय मित्त-णाइ-णियग-सयण-संबंधि-परियण-महिलियाहि य सिद्धं संपरिवुडाओ रायगिहं णयरं मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छंति, णिग्गच्छित्ता जेणेव पुक्खरिणी तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता पोक्खरिणीं ओगाहेंति २ ता ण्हायाओ कयबलिकम्माओ सव्यालंकार-विभूसियाओ विपुलं असणं ४ आसाएमाणीओ जाव पिंडभुंजेमाणीओ दोहलं विणेति। एवं संपेहेइ, संपेहित्ता कल्लं जाव जलंते जेणेव धण्णे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धण्णं सत्थवाहं एवं वयासी - एवं खलु देवाणुप्पिया! मम तस्स गब्भस्स जाव विणेति, तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी जाव विहरित्तए। अहा सुहं देवाणुप्पिया! मा पिंडबंधं करेह।

भावार्थ - दो महीने व्यतीत हो गए तथा तीसरा माह चल रहा था, तब भद्रा के मन में इस प्रकार का दोहद उत्पन्न हुआ, वह सोचने लगी कि - 'वे माताएँ धन्य हैं, शुभलक्षणा हैं, जो विपुल, अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्न, गंध, माला आदि लेकर मित्र, जातीयजन, संबंधी एवं परिवार की महिलाओं से घिरी हुई, राजगृह नगर के बीचोंबीच से निकलती हुई, पुष्करिणी पर जाती हैं। उसमें अवगाहन एवं स्नान करती हैं, पुण्योपचार कर अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य आदि का उपभोग करती हैं, सहवर्तिनी नारियों को करवाती है। इस प्रकार अपना दोहद पूर्ण

www.jainelibrary.org

करती हैं।' यों विचार कर वह प्रातःकाल, सूर्योदय होने पर अपने पित धन्य सार्थवाह के पास आई और उनसे अपने दोहद का वृत्तान्त बतलाते हुए बोली - मैं आपसे आज्ञा प्राप्त कर उस दोहद को पूर्ण करना चाहती हूँ। सार्थवाह ने कहा - 'देवानुप्रिये! जिससे तुम्हें सुख मिले, उसे अविलंब क्रियान्वित करो।'

(95)

तए णं सा भद्दा सत्थवाही धण्णेणं सत्थवाहेणं अन्भणुण्णाया समाणी हर्द्वतुद्वा जाव विपुलं असणं ४ जाव उवक्खडावेइ, उवक्खडावेत्ता ण्हाया जाव उल्लपडसाडगा जेणेव णागघरए जाव डहइ २ ता पणामं करेइ, करेता जेणेव पोक्खरिणी तेणेव उवागच्छइ। तए णं ताओ मित्तणाइ जाव णगरमहिलाओ भद्दं सत्थवाहिं सन्वालंकार विभूसियं करेंति। तए णं सा भद्दा सत्थवाही ताहिं मित्त-णाइ-णियग-सयण-संबंधि-परियण-णगर-महिलियाहिं सिद्धं तं विपुलं असणं ४ जाव परिभुंजमाणी य दोहलं विणेइ २ ता जामेव दिसिं पाउन्भूया तामेव दिसिं पडिगया।

भाषार्थ - भद्रा दोहद पूर्ति के संबंध में अपने पित से आज्ञा प्राप्त कर बहुत ही प्रसन्न हुई। अपने चिंतनानुरूप अशन, पान, खादिम, स्वादिम, पुष्प, वस्त, गंध, माला आदि की व्यवस्था पूर्वक वह गीले वस्तों में, नारियों से घिरी हुई, नागदेवायतन आदि में गई। वहाँ धूप आदि से पूजोपचार किए। प्रणमन किया। वहाँ से सरोवर के तट पर आई। साथ की महिलाओं ने उसको सब प्रकार के अलंकारों से विभूषित किया। फिर भद्रा ने उन नारियों के साथ विविध अशन, पान आदि का उपभोग किया। इस प्रकार अपने दोहद की पूर्ति की। फिर वह जहाँ से आई थी, वहीं अपने घर लौट गई।

(3P)

तए णं सा भद्दा सत्थवाही संपुण्ण-डोहला जाव तं गब्भं सुहंसुहेणं परिवहइ। तए णं सा भद्दा सत्थवाही णवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्टमाण य राइंदियाणं सुकुमालपाणिपायं जाव दारगं पयाया। भावार्थ - दोहद पूर्ण हो जाने पर भद्रा सार्थवाही गर्भ को सुखपूर्वक वहन करती रही। नौ माह साढे सात दिन-रात परिपूर्ण हो जाने पर उसने सुकुमार हाथ-पैर आदि से युक्त सर्वांग सुंदर पुत्र को जन्म दिया।

(20)

तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो पढमे दिवसे जायकम्मं करेंति, करेत्ता तहेव जाव विपुलं असणं ४ उवक्खडावेंति २ ता तहेव मित्तणाइणियग० भोयावेत्ता अयमेयारूवे गोण्णं गुणणिप्फण्णं णामधेज्जं करेंति - जम्हा णं अम्हं इमे दारए बहूणं णागपडिमाण य जाव वेसमणपडिमाण य उवाइयलद्धे णं तं होउ णं अम्हं इमे दारए देवदिण्णे णामेणं। तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो णामधेज्जं करेंति देवदिण्णेत्ति। तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो जायं च दायं च भायं च अक्खयणिहिं च अणुवड्ढेंति।

भावार्थ - फिर उस बालक के माता-पिता ने जातकर्म आदि संस्कार संपन्न किए। विपुल मात्रा में अशन, पान आदि तैयार करवाए। पूर्ववत् मित्र, जातीयजन, संबंधी आदि को भोजन करवाया। हमें नाग प्रतिमा यावत् वैश्रमण प्रतिमा की मनौती से यह पुत्र प्राप्त हुआ है। इसलिए हम उसी के अनुरूप इसका नाम देवदत्त रखें। यह सोचकर माता-पिता ने उसका नाम देवदत्त रखा। तदनंतर उस शिशु के माता-पिता ने देवों की पूजा, द्रव्यार्पण एवं अक्षयनिधि संवर्धन किया।

बाल-क्रीड़ा

(२१)

तए णं से पंथए दास चेडए देवदिण्णस्स दारगस्स बालग्गाही जाए, देवदिण्णं दारयं कडीए गेण्हइ २ ता बहूहिं डिंभएहि य डिंभियाहि य दारएहि य दारियाहि य कुमारएहि य कुमारियाहि य सिद्धं संपरिवुडे अभिरभमाणे अभिरमइ।

शब्दार्थ - बालगाही - बच्चों की देखभाल करने वाला, कडीए - गोदी में, डिंभएहि-बहुत छोटे बच्चों से, डिंभयाहि - बहुत छोटी बच्चियों से, कुमारएहि - कुछ बड़े बच्चों से, कुमारियाहि - कुछ बड़ी बच्चियों से, अभिरमइ - खेलाता रहता।

www.jainelibrary.org

भावार्थ - पन्थक नामक दास पुत्र को बालक की देखभाल के लिए नियुक्त किया गया। वह उसको गोदी में लेकर बहुत से छोटे-बड़े बच्चे-बच्चियों से घिरा हुआ, उसे खेलाता रहता।

(22)

तए णं सा भद्दा सत्थवाही अण्णया कयाइं देवदिण्णं दारयं ण्हायं कयबलिकम्मं कयकोउय-मंगल-पायच्छित्तं सव्वालंकार विभूसियं करेइ, करेता पंथयस्स दासचेडयस्स हत्थयंसि दलयइ। तए णं से पंथए दास चेडए भद्दाए सत्थवाहीए हत्थाओ देवदिण्णं दारगं कडीए गेण्हड़ २ ता सयाओ गिहाओ पिडिणिक्खमइ २ ता बहूहिं डिंभएहि य डिंभियाहि य जाव कुमारियाहि य सिद्धं संपरिवुडे जेणेव रायमग्गे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता देबदिण्णं दारगं एगंते ठावेइ २ ता बहूहिं डिंभएहि य जाव कुमारियाहि य सिद्धं संपरिवुडे पमत्ते यावि होत्था विहरइ।

भावार्थ - भद्रा सार्थवाही ने किसी एक दिन देवदत्त को स्नान, विविध मंगलोपचार आदि कर सब अलंकारों से विभूषित किया तथा दासपुत्र पन्थक के हाथों में सौंपा।

दासपुत्र पन्थक ने बालक को गोदी में लिया तथा घर से बाहर निकला। बहुत से छोटे-बड़े बच्चे-बच्चियों से घिरा राजमार्ग पर आया। वहाँ उसने देवदत्त को किसी एकान्त स्थान में बिठा दिया। वह स्वयं बहुत से बच्चे-बच्चियों से घिरा हुआ, असावधान होकर खेलने लगा, खेलने में तल्लीन हो गया।

देवदत्त का अपहरण एवं हत्या

(२३)

इमं च णं विजय तक्करे रायगिहस्स णयरस्स बहूणि दाराणि य अवदाराणि य तहेव जाव आभोएमाणे मगोमाणे गवेसमाणे जेणेव देवदिण्णे दारए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता देवदिण्णं दारगं सव्वालंकारविभूसियं पासइ, पासित्ता देवदिण्णस्स दारगस्स आभरणालंकारेसु मुच्छिए गढिए गिद्धे अज्झोववण्णे पंथयं दासचेडं पमत्तं पासइ, पासित्ता दिसालोयं करेइ, करेत्ता देवदिण्णं दारगं गेण्हइ ? त्ता कक्खंसि अल्लियावेइ ? ता उत्तरिज्जेणं पिहेइ ? ता सिग्धं तुरियं चवलं वेइयं रायगिहस्स णगरस्स अवदारेणं णिग्गच्छइ ? ता जेणेव जिण्णुज्जाणे जेणेव भग्गकूवए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता देवदिण्णं दारयं जीवियाओ ववरोवेइ ? ता आभरणालंकारं गेण्हइ ? ता देवदिण्णस्स दारगस्स सरीरगं णिप्पाणं णिच्चेद्ठं जीवियविप्पजढं भग्गकूवए पिक्खवइ ? ता जेणेव मालुयाकच्छए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मालुयाकच्छयं अणुप्पविसइ ? ता णिच्चले णिप्फंदे तुसिणीए दिवसं खिवेमाणे चिट्ठइ।

शब्दार्थ - गढिए - एकाग्र दृष्टि गड़ाए हुए, अज्झोववण्णे - अत्यंत तन्मय, पमत्तं - लापरवाह, दिसालोयं करेड़ - ईधर-उधर देखा, अल्लियावेड़ - दबा लिया-छिपा लिया, पिहेड़ - ढक दिया, जीवियाओ वसरोवेड़ - मार डाला, णिप्पाणं - निष्प्राण-प्राण रहित, णिच्चेडं - चेष्टा रहित, जीवियविष्पजढं - आत्मप्रदेश रहित, पिक्खवड़ - फेंक दिया, खिवेमाणे - व्यतीत करता हुआ।

भावार्थ - उसी समय विजय नामक चोर राजमृह नगर के बहुत से द्वार-अपद्वार यावत् पूर्वोक्त विभिन्न स्थानों की मार्गणा-गवेषणा करता हुआ, वहाँ आ पहुँचा, जहाँ बालक देवदत्त था। उसने देखा - बालक देवदत्त विभिन्न आभूषणों से विभूषित है। उसके मन में गहनों के प्रति अत्यधिक मूर्च्छा-आसिक्त, लोलुपता, तन्मयता का भाव जागा। उसने यह भी देखा कि दास पुत्र पन्थक असावधान है, चारों ओर दिशावलोकन किया, ईधर-उधर देखा, फिर बालक देवदत्त को उठाकर अपनी काँख में दबा लिया। अपने ओढ़े हुए वस्त्र से उसे छिपा लिया। फिर अत्यंत शीघ्र, त्वरित गित से वह राजगृह नगर के पीछे के दरवाजे से वह बाहर निकला। जीर्ण उद्यान में स्थित दूटे-फूटे कुएं पर आया। वहाँ उसने बालक देवदत्त की हत्या कर डाली। उसके सारे गहने उतार लिये। देवदत्त की निष्प्राण, निश्चेष्ट देह को कुएं में डाल दिगा। फिर वह मालुकाकच्छ में गया। वहाँ वह चुपचाप बैठ गया तथा दिन ढलने का इंतजार करने लगा।

विवेचन - बालक निसर्ग से ही सुन्दर और मनमोहक होते हैं। उनका निर्विकार भोला चेहरा मन को अनायास ही अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। मगर खेद है कि विवेकहीन माता-पिता उनके प्राकृतिक सौन्दर्य से सन्तुष्ट न होकर उन्हें आभूषणों से सजाते हैं। इसमें अपनी श्रीमंताई प्रकट करने का अहंकार भी छिपा रहता है। किन्तु वे नहीं जानते कि ऊपर से लादे हुए आभूषणों से सहज सौन्दर्य विकृत होता है और साथ ही बालक के प्राण संकट में पड़ते हैं।

कैसे-कैसे मनोरथों और कितनी-कितनी मनौतियों के पश्चात् जन्मे हुए बालक को आभूषणों की बदौलत प्राण गंवाने पड़े।

आधुनिक युग में तो मनुष्य के प्राण हरण करना सामान्य-सी बात हो गई है। आभूषणों के कारण अनेकों को प्राणों से हाथ धोना पड़ता है। फिर भी आश्चर्य है कि लोगों का, विशेषतः महिलावर्ग का आभूषण-मोह छूट नहीं सका है। प्रस्तुत घटना का शास्त्र में उल्लेख होना बहुत उपदेशप्रद है।

(88)

तए णं से पंथए दासचेडे तओ मुहुत्तंतरस्स जेणेव देवदिण्णे दारए ठिवए तेणेव उवागच्छइ २ ता देवदिण्णं दारगं तंसि ठाणंसि अपासमाणे रोयमाणे कंदमाणे विलवमाणे देवदिण्णस्स दारगस्स सव्वओ समंता मग्गणगवेसणं करेइ, करेत्ता देवदिण्णस्स दारगस्स कत्थइ सुइं वा खुइं वा पउत्तिं वा अलभमाणे जेणेव सए गिहे जेणेव धण्णे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धण्णं सत्थवाहं एवं वयासी - एवं खलु सामी! भद्दा सत्थवाही देवदिण्णं दारयं ण्हायं जाव मम हत्थंसि दलयइ। तए णं अहं देवदिण्णं दारयं कडीए गिण्हामि जाव मगणगवेसणं करेमि। तं ण णज्जइ णं सामी! देवदिण्णे दारए केणइ हए वा अविहेए वा अविदेते वा पायविहिए धण्णस्स सत्थवाहस्स एयमदृठं णिवेदेइ।

शब्दार्थ - अपासमाणे - न देखता हुआ, खुई - छींक, पउत्तिं - प्रवृत्ति, अलभमाणे-प्राप्त नहीं करता हुआ, ण-णज्जड़ - नहीं मालूम, णीए - ले जाया गया, अविहिए - अपहत-अपहरण किया गया, अविक्खित्ते - अविक्षप्त-खड्डे आदि में डाल दिया गया, पावपडिए -पाद पतित-पैरों में गिरा हुआ।

भावार्थ - पन्थक नामक दास पुत्र कुछ देर बाद वहाँ आया, जहाँ बालक को विद्यास था। उस स्थान पर उसे बालक नहीं मिला। तब उसने रोते हुए, क्रंदन करते हुए और विलाप करते हुए बालक देवदत्त की सब ओर खोज की। उसे बालक की आवाज-छींक आदि सुनाई नहीं पड़ी। इस प्रकार बालक की कुछ भी खोज खबर नहीं लगी। तब वह घर पर पहुँचा तथा धन्य सार्थवाह के पैरों पर गिर पड़ा, कहने लगा - स्वामी! भद्रा सार्थवाही ने स्नानादि करवा कर बालक को मुझे सींपा, मैंने उसे गोद में लिया।

इसके पश्चात् उसने समस्त घटना कह सुनाई, जो घटित हुई थी। स्वामी! न मालूम बालक देवदत्त को कोई फुसला कर ले गया हो, किसी ने उसका अपहरण कर लिया हो, खड़े आदि में फेंक दिया हो।

(२५)

तए णं से धण्णे सत्थवाहे पंथयस्स दासचेडयस्स एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म तेण य महया पुत्तसोयणाभिभूए समाणे परसुणियत्ते व चंपगपायवे धसत्ति धरणीयत्तंसि सव्वंगेहिं सण्णिवइए।

शब्दार्थ- पुत्तसोयणाभिभूए - पुत्र-शोक से व्यथित, परसुणियत्ते - कुठार से काटे हुए। भावार्थ - धन्य सार्थवाह दासपुत्र पन्थक से यह सुनकर पुत्र शोक से अत्यंत व्यथित होकर, कुठार से काटे गए चंपक वृक्ष की तरह, निढाल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

वृत्तांत की गवेषणा

(२६)

तए णं से धण्णे सत्थवाहे तओ मुहुत्तंतरस्स आसत्थे पच्छागयपाणे देवदिण्णस्स दारगस्स सव्वओ समंता मगणगवेसणं करेइ देवदिण्णस्स दारगस्स कत्थइ सुइं वा खुइं वा पउत्तिं वा अलभमाणे जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तं महत्थं पाहुडं गेण्हइ २ ता जेणेव णगरगुत्तिया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता महत्थं पाहुडं उवणेइ २ ता एवं वयासी - एवं खलु देवाणुप्पिया! मम पुत्ते भद्दाए भारियाए अत्तए देवदिण्णे णामं दारए इद्ठे जाव उंबरपुष्फंपिव दुल्लहे सवणयाए किमंग पुण पासणयाए?

शब्दार्थ - पच्छागयपाणे - होश में आया, महत्थं - महार्थ-बहुमूल्य, पाहुडं -

www.jainelibrary.org

प्राभृत-भेंट, णगरगुत्तिया - नगर गुप्तिक-नगर की रक्षा करने वाले कोतवाल आदि, उवणेइ - उपनयति-उपनीत करता है, देता है।

भावार्थ - कुछ देर बाद धन्य सार्थवाह होश में आया, कुछ धीरज धारण किया। बालक देवदत्त को सब जगह ढुढवाया किंतु उसका कहीं भी पता नहीं चल सका।

तब वह अपने घर आया। बहुमूल्य भेंट लेकर नगर रक्षकों के पास गया। उन्हें भेंट अर्पित की और उनसे बोला - मेरा पुत्र, भद्रा का आत्मज देवदत्त नामक शिशु हमें अत्यंत इष्ट एवं प्रिय है। उदुंबर के पुष्प की तरह असाधारण है।

(29)

तए णं सा भद्दा देवदिण्णं ण्हायं सव्वालंकारविभूसियं पंथगस्स हत्थे दलाइ जाव पायवडिए तं मम णिवेदेइ, तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया! देवदिण्णस्स दारगस्स सव्वओ समंता मगणगवेसणं कयं।

भावार्थ - मेरी पत्नी भद्रा ने देवदत्त को स्नान कराया, सब प्रकार के आभरणों से विभूषित किया और पन्थक नामक दासपुत्र को खेलाने हेतु सौंपा।

आगे की सारी घटना बतलाते हुए उसने उनसे कहा कि हमने बालक देवदत्त की सब जगह खोज करवा ली, पर वह कहीं नहीं मिला।

(२८)

तए णं ते णगरगोत्तिया धण्णेणं सत्थवाहेणं एवं वुत्ता समाणा सण्णद्ध-बद्ध-विभय-कवया उप्पीलिय-सरासण-पिट्टया जाव गिहया-उहपहरणा धण्णेणं सत्थवाहेणं सिद्धं रायगिहस्य णगरस्स बहूणि अइगमणाणि य जाव पवासु य मग्गणगवेसणं करेमाणा रायगिहाओ णयराओ पिडिणिक्खमंति २ त्ता जेणेव जिण्णुज्जाणे जेणेव भग्गकुवए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता देवदिण्णस्स दारगस्स सरीरगं णिप्पाणं णिच्चेट्ठं जीवविष्पजढं पासंति २ त्ता हा हा अहो अकजमि तिकट्टु देवदिण्णं दारगं भग्गकूवाओ उत्तारेति २ त्ता धण्णस्स सत्थवाहस्स हत्थे दलयंति। शब्दार्थ - सण्णद्ध - तैयार हुए, बद्ध - कमर बांधी, विम्मियकवया - वर्मितकवच-शरीर पर कवच धारण किया, उप्पीलियसरासणपट्टिया - धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाई, आउह -आयुध-धनुष बाण आदि शस्त्र, पहरणा - प्रहरण-तलवार, भाला आदि हथियार, उत्तारेंति -बाहर निकालते हैं।

भावार्ध - धन्य सार्थवाह द्वारा यों कहे जाने पर नगर रक्षक तैयार हुए, कमर कसी, देह पर कवच धारण किया, धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाई। अनेक प्रकार के शस्त्रों से सुसज्जित हुए। सार्थवाह के साथ राजगृह नगर के पूर्वोक्त अनेकानेक स्थानों में खोज करते हुए, गवेषणा करते हुए, नगर के बाहर पहुँचे। जीर्ण उद्यानवर्ती टूटे फूटे कुएं के पास आए। कुएं में देवदत्त के निष्प्राण शरीर को देखा। सहसा उनके मुख से निकल पड़ा - हाय! कितना नृशंस कर्म हुआ। यों कह कर उन्होंने देवदत्त के शरीर को भन्न कूप से बाहर निकाला और धन्य सार्थवाह के हाथों में सौंपा।

चोर की गिरफ्तारी एवं सजा

(38)

तए णं ते णगरगुत्तिया विजयस्स तक्करस्स पयमगा-मणुगच्छमाणा जेणेव मालुयाकच्छए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता मालुयाकच्छयं अणुप्पविसंति २ ता विजयं तक्करं ससक्खं सहोढं सगेवेजं जीवगाहं गेण्हंति २ ता अडि-मुट्टि-जाणु-कोप्पर-पहार-संभगा-महियगत्तं करेंति २ ता अवउडा बंधणं करेंति २ ता देवदिण्णस्स दारगस्स आभरणं गेण्हंति २ ता विजयस्स तक्करस्स गीवाए बंधंति २ ता मालुयाकच्छयाओ पडिणिक्खमंति २ ता जेणेव रायगिहे णयरे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता रायगिहं णयरं अणुप्पविसंति २ ता रायगिहे णयरे सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-महापहपहेसु कसप्पहारे य लयापहारे य छिवापहारे य णिवाएमाणा २ छारं च धूलिं च कथवरं च उवरिं पिक्करमाणा २ मह्या २ सद्देणं उग्धोसेमाणा एवं वयंति-

शब्दार्थ - पयमग्ग-मणुगच्छमाणा - पैरों के निशानों का अनुगमन करते हुए, ससक्खं-

www.jainelibrary.org

साक्ष्य सहित, सहोढं - चुराई गई वस्तुओं के साथ, सगेवेजं - गर्दन बाँधकर, जीवगाहं गेण्हंति - जीवित पकड़ा, अवउड़ा बंधणं - अवकोटक-बंधन-गर्दन और दोनों हाथों को पीठ पीछे बाँधना, कसप्पहारे - कोड़ों के प्रहार, लयापहारे - बेंतों की मार, छिवापहारे - चिकने चाबुकों के प्रहार, णिवाएमाणा - मारते हुए, छारं - राख।

भावार्थ - नगर रक्षक विजय चोर के पैरों के चिह्नों का अनुगमन करते हुए मालुकाकच्छ के निकट आए, उसमें प्रविष्ट हुए। वहाँ उन्होंने विजय चोर को चुराए गए आभूषणों के साक्ष्य के साथ पाया। उसकी गर्दन में रस्सा डालकर जीवित पकड़ा। उसकी हड्डी, मुडी, घुटने, कोहनी आदि पर प्रहार कर उसके शरीर को चूर-चूर कर डाला। गर्दन के सहारे दोनों हाथों को उसकी पीठ पीछे बाँध दिया। बालक देवदत्त के गहनों को ग्रहण किया। पुनश्च, विजय चोर को गर्दन के बल बाँधा। मालुकाकच्छ से बाहर निकले। राजगृह नगर में प्रविष्ट हुए। नगर के तिराहे, चौराहे, चौक, विशाल राजमार्ग, साधारण रास्तों पर चाबुक, बेंत और चिकने कोड़ों से मारते हुए, उस पर राख, धूल और कचरा डालते हुए, वे जोर-जोर से इस प्रकार उद्घोषित करने लगे।

(30)

एस णं देवाणुप्पिया! विजय णामं तक्करे जाव गिद्धे विव आमिसभक्खी बालघायए बालमारए, तं णो खलु देवाणुप्पिया! एयस्स केइ राया वा रायपुत्ते वा रायमच्चे वा अवरज्झइ एत्थडे अप्पणो सयाई कम्माई अवरज्झितित्तिकटु जेणामेव चारगसाला तेणामेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता हडिबंधणं करेंति २ त्ता भत्तपाणिगरोहं करेंति २ त्ता तिसंझं कसप्पहारे य जाव णिवाएमाणा २ विहरंति।

शब्दार्थ - आमिसभक्खी - मांसभक्षी, बालघायए - बालक का हत्यारा, अवरज्झड़-अपराधी, चारगसाला - कारागार, हडिबंधणं - काष्ठ विशेष या बेड़ी में जकड़ना, णिरोह -निरोध-रूवाकट, तिसंझं - त्रिसंध्यं-प्रातः, मध्याह्न एवं सायं-तीन संध्या काल।

भावार्थ - देवानुप्रियो! यह विजय नामक चोर गीध के समान मांसभक्षी हैं, बालघातक एवं बाल मारक है। इसके दण्ड के लिए न कोई राजा, राजपुत्र या राजामात्य जिम्मेदार है। इसमें तो इसके अपने कर्मों का ही अपराध है। यों कहकर वे उसे कारागार में ले आए और बेडी में जकड़ दिया। उसके खान-पान पर रोक लगा दी। प्रातः, मध्याह और सायंकाल उसको चाबुक आदि से पीटते।

देवदत्त का अन्तिम क्रिया-कर्म (३१)

तए णं से धण्णे सत्थवाहे मित्त-णाइ-णियग-सयण-संबंधि परियणेणं सिद्धं रोयमाणे जाव विलवमाणे देवदिण्णस्स दारगस्स सरीरस्स महया इही-सक्कार-समुदएणं णिहरणं करेइ, करेत्ता बहुईं लोइयाइं मयगिकचाईं करेइ, करेत्ता केणइ कालंतरेणं अवगयसोए जाए यावि होत्था।

शब्दार्थ - समुदएणं - जन समूह के साथ, णिहरणं - अन्तिम संस्कार हेतु श्मशान में ले जाना, लोइयाइं- लौकिक, मयगिकच्चाइं - मृतक संबंधी कृत्य-लोकाचार, अवगय सोए- अपगत शोक-शोक रहित।

भावार्थ - धन्य सार्थवाह अपने मित्र, संबंधी पारिवारिक तथा परिजनवृंद के साथ रूदन एवं क्रंदन करते हुए बालक देवदत्त की देह को बड़े वैभव पूर्ण सत्कार समारोह के साथ रमशान में ले गया। वहाँ लौकिक मृतक क्रियाएं की। वापस लौटा। समय बीतने के साथ वह शोक रहित हुआ।

धन्य सार्थवाह : राज दण्ड (३२)

तए णं से धण्णे सत्थवाहे अण्णया कयाई लहुसयंसि रायावराहंसि संपलते जाए यावि होत्था। तए णं ते णगरगुत्तिया धण्णं सत्थवाहं गेण्हंति २ त्ता जेणेव चारगे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता चारगं अणुप्पवेसंति २ त्ता विजएणं तक्करेणं सिद्धं एगयओ हडिबंधणं करेंति।

शब्दार्थ - लहुसयंसि - छोटे से, रायावराहंसि - राजकीय अपराध, संपलते - फंसा हुआ।

भावार्थ - तत्पश्चात् किसी समय धन्य सार्थवाह पर कोई छोटा सा राजकीय अपराध आरोपित हुआ। नगर रक्षक उसे बंदी बनाकर कारागार में ले आए। वहाँ उसको विजय चोर के साथ एक ही बेड़ी-खोड़े में बंद कर दिया।

कारागार में सार्थवाह के घर से भोजन (३३)

तए णं सा भद्दा भारिया कल्लं जाव जलंते विपुलं असणं ४ उक्क्खडेइ २ त्ता भोयणियडए करेइ, करेत्ता भायणाइं पिक्खवइ २ त्ता लंछियमुद्दियं करेइ, करेत्ता एगं च सुरभिवारि पिडपुण्णं दगवारयं करेइ, करेत्ता पंथयं दासचेडं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—गच्छ णं तुमं देवाणुप्पिया! इमं विपुलं असणं ४ गहाय चारगसालाए धण्णस्स सत्थवाहस्स उवणेहि।

शब्दार्थ - भोयणिष्डए - भोजन रखने की पिटारी, भायणाइं - भाजन-पात्र, पिक्खिवइ-रखती है, लंकियमुद्दियं - लांछित-मुद्रित-रेखा आदि के पहचान चिह्न एवं मोहर लगाना, दगवारयं - जल का छोटा-सा घड़ा।

भावार्थ - धन्य सार्थवाह की पत्नी भद्रा ने अगले दिन, प्रातःकाल सूर्योदय के पश्चात् अशन, पान, खाद्य आदि पदार्थ तैयार करवाए। उन्हें रखने हेतु पिटारी मंगवायी। उसमें भोजन के पात्र रखे। उसे बंद कर पहचान हेतु चिह्न बनाए, अपनी मोहर लगाई। सुगंधित पानी से परिपूर्ण छोटा सा घड़ा तैयार किया। दास पुत्र पन्थक को बुलाया और उससे कहा - अपने स्वामी धन्य सार्थवाह के पास यह भोजन पहुँचाओ।

(38)

तए णं से पंथए भद्दाए सत्थवाहीए एवं वुत्ते समाणे हट्टतुट्टे तं भोयणिडगं तं च सुरभि-वर-वारि-पिडपुण्णं दगवारयं गेण्हइ २ त्ता सयाओ गिहाओ पिडिणिक्खमइ २ ता रायगिहं णगरं मज्झंमज्झेणं जेणेव चारगसाला जेणेव धण्णे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता भोयणिडयं ठावेइ २ ता उल्लंछेइ २ ता भायणाइं गेण्हइ २ ता भायणाइं धोवेइ २ ता हत्थसोयं दलयइ २ ता धण्णं सत्थवाहं तेणं विपुलेणं असणेणं ४ पिरवेसइ।

शब्दार्थ - उल्लंछेड़ - चिह्न और मोहर को हटाता है, धोवेड़ - धोता है, हत्थसोयं दलयड़ - हाथ धुलाता है, परिवेसड़ - परोसता है। भावार्थ - भद्रा सार्थवाही द्वारा यों कहे जाने पर पन्थक ने बड़ी प्रसन्नता से भोजन की पिटारी और सुगंधित जल से परिपूर्ण घड़ा लिया। वह घर से निकला राजगृह नगर के बीचों-बीच होता हुआ कारागृह में धन्य सार्थवाह के पास आया। भोजन की पिटारी को रखा। उस पर लगे चिह्न और मुद्रा को हटाया। पात्रों को बाहर निकाला। उन्हें पानी से धोया। सार्थवाह के हाथ धुलाए और उसे भोजन परोसा।

(३५)

तए णं से विजए तक्करे धण्णं सत्थवाहं एवं वयासी-''तुमं णं देवाणुप्पिया! ममं एयाओ विपुलाओ असणाओ ४ संविभागं करेहि।'' तए णं से धण्णे सत्थवाहं विजयं तक्करं एवं वयासी-अवियाइं अहं विजया! एयं विपुलं असणं ४ कागाणं वा सुणगाणं वा दलएजा उक्कुरुडियाए वा णं छड्डेजा णो चेव णं तव पुत्तघायगस्स पुत्तमारगस्स अरिस्स वेरियस्स पडिणीयस्स पच्चामित्तस्स एत्तो विपुलाओ असणाओ ४ संविभागं करेजामि।''

शब्दार्थ - अवियाइं - भले ही, सुणगाणं - कुत्तों को, उक्कुरुडियाए - उत्कृरुटिकाया-कचरे के ढेर पर, छड्डेजा - डाल दूँ, अरि - शत्रु, पडिणीयस्स - प्रत्यनीक-प्रतिकूल विधायी, पच्चामित्तस्स - प्रत्यमित्र-हर तरह से विरोधी।

भावार्थ - विजय चोर ने धन्य सार्थवाह से कहा - देवानुप्रिय! तुम इस भोजन में से मुझे भी हिस्सा दो।

धन्य सार्थवाह चोर से बोला - विजय! इन विपुल अशन, पान आदि भोज्य सामग्री को, कुत्तों को भले ही डालना पड़े, कचरे के ढेर पर भले ही फेंकना पड़े, किन्तु मेरे पुत्र की हत्या करने वाले मेरे शत्रु वैरी, विरोधी, तुमको मैं कदापि हिस्सा नहीं दूँगा।

(३६)

तइ णं से धण्णे सत्थवाहे तं विपुलं असणं ४ आहारेइ २ ता तं पंथयं पडिविसज्जेइ। तए णं से पंथए दासचेडे तं भोयणपिडगं गिण्हइ २ ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए।

www.jainelibrary.org

भावार्थ - फिर धन्य सार्थवाह ने उन विभिन्न प्रकार के भोज्य पदार्थों का आहार किया। पन्थक को वहाँ से वापस रवाना किया। पन्थक ने भोजन की पिटारी ली और वह जिधर से आया था, उधर चला गया।

भोजन का हिस्सा देने की बाध्यता

(३७)

तए णं तस्स धण्णस्स सत्थवाहस्स तं विपुलं असमं ४ आहारियस्स समाणस्स उच्चार पासवणे णं उव्वाहित्था तए णं से धण्णे सत्थवाहे विजयं तक्करं एवं वयासी-एहि ताव विजया! एगंतमवक्कमामो जेणं अहं उच्चारपासवणं परिष्ठवेमि। तए णं से विजए तक्करे धण्णं सत्थवाहं एवं वयासी-तुब्भं देवाणुप्पिया! विपुलं असणं ४ आहारियस्स अत्थि उच्चारे वा पासवणे वा, ममं णं देवाणुप्पिया! इमेहिं बहूहिं कसप्पहारेहि य जाव लयापहारेहि य तण्हाए य छुहाए य परब्भवमाणस्स णत्थि केइ उच्चारे वा पासवणे वा, तं छंदेणं तुमं देवाणुप्पिया! एगंते अवक्कमित्ता उच्चार पासवणं परिष्ठवेहि।

शब्दार्थ - उच्चार पासवणे - मल-मूत्र त्याग, उव्वाहित्था - बाधा शंका उत्पन्न हुई, अवक्कमामो - अवक्रात करें-चलें, परिष्ठवेमि - त्याग करूँ, परब्भवमाणस्स - पराभव पाते हुए, पीड़ित होते हुए, छंदेणं - स्वेच्छा पूर्वक।

भावार्थ - विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य आदि का आहार करने के कारण धन्य सार्थवाह को मल-मूत्र त्याग की शंका उत्पन्न हुई। उसने विजय चोर से कहा-'विजय! आओ एकान्त स्थान में चलें, जिससे मैं मलमूत्र त्याग कर सकूँ।' इस पर विजय चोर सार्थवाह से बोला-'देवानुप्रिय! तुमने विपुल अशन, पान आदि का आहार किया है। इससे तुम्हें मल मूत्र त्याग की शंका हुई है। मैं तो चाबुकों तथा कोड़ों आदि से बुरी तरह पीटा गया हूँ। भूखा और प्यासा हूँ, जिससे मेरे मल-मूत्र त्याग की जरा भी शंका नहीं है। देवानुप्रिय! तुम स्वेच्छा पूर्वक एकांत स्थान में जाकर मल-मूत्र का त्याग कर आओ।'

(३८)

तए णं से धण्णे सत्थवाहे विजएणं तक्करेणं एवं वृत्ते समाणे तुसिणीए संचिद्धइ तए णं से धण्णे सत्थवाहे मुहुत्तंतरस्स बलियतरागं उच्चारपासवणेणं उव्वाहिज्जमाणे विजयं तक्करं एवं वयासी—एहि ताव विजया! जाव अवक्कमामो। तए णं से विजय धण्णं सत्थवाहं एवं वयासी—जइ णं तुमं देवाणुप्पिया! ताओ विपुलाओ असणाओ ४ संविभागं करेहि तओऽहं तुमेहिं सिद्धं एगंतं अवक्कमामि।

शब्दार्थ - बलियतरागं - बलियतर-अति तीव्र।

भावार्थ - विजय चोर द्वारा यों कहे जाने पर धन्य सार्थवाह चुप हो गया। कुछ देर बाद उसके मल-मूत्र त्याग की तीव्र शंका उत्पन्न हुई तब उसने विजय चोर से कहा-आओ एकान्त स्थान में चलें।

विजय चोर सार्थवाह से बोला-'देवानुप्रिय! यदि तुम विपुल अशन, पान आदि में से मुझे हिस्सा दो तो मैं तुम्हारे साथ एकांत स्थान में चलूँ।'

(38)

तए णं से धण्णे सत्थवाहे विजयं एवं वयासी-अहं णं तुन्धं ताओ विपुलाओ असणाओ ४ संविभागं करिस्सामि। तए णं से विजय धण्णस्स सत्थवाहस्स एयमट्टं पडिसुणेइ। तए णं से विजय धण्णेणं सिद्धं एगंते अवक्कमइ उच्चारपासवणं परिद्ववेइ आयंते चोक्खे परमसुइभूए तमेव ठाणं उवसंकिमत्ताणं विहरइ।

शब्दार्थ - आयंते - आचिमत-जल से शुद्धि की, चोक्खे - चोक्ष-स्वच्छ, उवसंकमित्ता-उपसंक्रमण कर-वापस आकर।

भावार्थ - धन्य सार्थवाह विजय चोर से बोला-'मैं तुमको अपने विपुल खान-पान आदि सामग्री में से हिस्सा दे दूँगा।' विजय चोर ने धन्य सार्थवाह का यह कथन सुना। वह उसके साथ एकांत में गया। धन्य सार्थवाह ने मल-मूत्र त्याग किया। जल से शुद्धि की। स्वच्छ एवं पवित्र हुआ। वापस विजय के साथ अपने स्थान पर आ गया।

(80)

तए णं सा भद्दा कल्लं जाव जलंते विपुलं असणं ४ जाव परिवेसेइ। तए णं से धण्णे सत्थवाहे विजयस्य तक्करस्य ताओ विपुलाओ असणाओ ४ संविभागं करेइ। तए णं से धण्णे सत्थवाहे पंथयं दासचेडं विसज्जेइ।

भावार्थ - दूसरे दिन सबेरे, सूरज निकलने पर भद्रा ने खान-पान की विपुल सामग्री भेजी। धन्य सार्थवाह ने विजय चोर को उसमें से हिस्सा दिया। उसने दास पुत्र पन्थक को वापस रवाना किया।

भद्रा की नाराजगी

(84)

तए णं से पंथए भोयणिषडयं गहाय चारगाओ पिडणिक्खमइ २ ता रायगिहं णयरं मज्झंमज्झेणं जेणेव सए गिहे जेणेव भद्दा भारिया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता भद्दं सत्थवाहिणिं एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिए! धण्णे सत्थ-वाहे तव पुत्तघायगस्स जाव पच्चामित्तस्स ताओ विपुलाओ असणाओ ४ संविभागं करेइ। तए णं सा भद्दा सत्थवाही पंथयस्स दास चेडयस्स अंतिए एयमट्टं सोच्चा आसुरुत्ता रुट्टा जाव मिसिमिसेमाणा धण्णस्स सत्थवाहस्स पओसमावज्जइ।

शब्दार्थ - आसुरुत्ता - तत्काल क्रोध से लाल, रुट्टा - रुष्ट-रोष युक्त, मिसिमिसेमाणा-क्रोध वश अन्तर्दाह से जलती हुई, पओसं - प्रद्वेष-अत्यधिक द्वेष, आवजाइ - आपद्यते -प्राप्त होना।

भावार्थ - दासपुत्र पन्थक भोजन की पिटारी को लेकर कारागृह से रवाना हुआ। वह राजगृह नगर के बीचोंबीच होता हुआ, सार्थवाह की पत्नी भद्रा के पास आया। उसने भद्रा से कहा-'देवानुप्रिये! धन्यसार्थवाह तुम्हारे पुत्र के हत्यारे विजय चोर को खान-पान की विपुल सामग्री में से हिस्सा देता है।'

भद्रा सार्थवाही दासपुत्र पन्थक से यह सुनकर तत्काल क्रोध से लाल तथा अत्यंत रोष युक्त हो गई। क्रोधवश अन्तर्दाह से जलने लगी। पति के प्रति उसके मन में भारी द्वेष उत्पन्न हुआ।

कारागृह से मुक्ति

(83)

तए णं से धण्णे सत्थवाहे अण्णया कयाइं मित्तणाइ-णियग-सयण-संबंधिपरियणेणं सएण य अत्थसारेणं रायकजाओ अप्पाणं मोयावेइ २ ता चारगसालाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव अलंकारिय-सभा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता अलंकारियकम्मं करेइ, करेता जेणेव पुक्खरिणी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता अहधोयमिट्टयं गेण्हइ २ ता पोक्खरिणीं ओगाहइ २ ता जलमज्जणं करेइ, करेता ण्हाय कयबलिकम्मे जाव रायगिहं णगरं अणुप्पविसइ २ ता रायगिहस्स णगरस्स मज्झंमज्झेणं जेणेव सए गिहे तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

शब्दार्थ - रायकजाओ - राजदण्ड, मोयावेइ - मुक्त कराता है, अलंकारिय सभा - नापित शाला - नाई की दूकान, अलंकारिय कम्मं - केश, नख आदि की सफाई, धोयमिट्टयं- शारीरिक शुद्धि हेतु प्रयुक्त की जाने वाली सुगंधित मृतिका।

भावार्थ - कुछ समय के बाद धन्य सार्थवाह ने अपने मित्रों पारिवारिकजनों के माध्यम से राजा को बहुमूल्य रत्नादि दिलवाकर राज-दण्ड से स्वयं को मुक्त करा लिया। मुक्त होकर वह कारागृह से रवाना हुआ। नापितशाला में आया। बाल, नाखून आदि कटवाकर दैहिक सज्जा की। फिर वह सरोवर में आया। उसने स्वच्छता हेतु शरीर पर सुगंधित मिट्टी का लेप किया, पुष्करिणी में अवगाहन किया, स्नान किया, नित्य नैमित्तिक पुण्योपचार किए फिर वह राजगृह नगर में प्रविष्ट हुआ। नगर के बीचों बीच होता हुआ वह अपने घर जाने लगा।

मित्रों एवं स्वजनों द्वारा सत्कार

(83)

तए णं तं धण्णं सत्थवाहं एजमाणं पासिता रायगिहे णयरे बहवे णियग-सेट्टि-सत्थवाह-पभिइओ आढंति परिजाणंति सक्कारेंति सम्माणेंति अब्भुट्टेंति सरीरकुसलं पुच्छंति। तए णं से धण्णे सत्थवाहे जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ। जावि य से तत्थ बाहिरिया परिसा भवइ तंजहा-दासाइ वा पेस्साइ वा भियगाइ वा भाइल्लगाइ वा से वि य णं धण्णं सत्थवाहं एजमाणं पासइ, पासित्ता पायवडियाए खेमकुसलं पुच्छंति।

शब्दार्थ - पिभई - प्रभृति-आदि, आढंति - आदर करते हैं, परिजाणंति - स्वागत सूचक शब्दों से परिज्ञापित करते हैं, अब्भुट्टेंति - सम्मान पूर्वक सम्मुख खड़े होते हैं, भियगाइ-मृतक आदि जिनका बाल्यावस्था से पोषण किया गया हो, ऐसे सेवक, भाइल्लागाइ - व्यापारिक हिस्सेदार, खेम - क्षेम-अनर्थ का उत्पन्न न होना, कुसलं - कुशल-अनर्थ का प्रतिघात-मिटना।

भावार्थ - धन्य सार्थवाह को कारागृह से मुक्त हुआ देखकर राजगृह नगर में बहुत से आत्मीयजन, श्रेष्ठि-वृंद तथा सार्थवाह आदि ने उसका आदर, सत्कार और सम्मान किया, सम्मुख खड़े होकर शारीरिक कुशल समाचार पूछा। धन्य सार्थवाह अपने आवास स्थान में पहुँचा। भवन के बाहरी संभा कक्ष में उसके दासों, प्रेष्यों, भृतकों तथा व्यापारिक सहभागियों ने उसके चरणों में गिर कर कुशलक्षेम की पृच्छा की।

(88)

जािव य से तत्थ अब्भंतिरया परिसा भवइ तंजहा-मायाइ वा पियाइ वा भायाइ वा भइणीय वा सािव य णं धण्णं सत्थवाहं एजमाणं पासइ, पासित्ता आसणाओ अब्भृद्वेड २ ता कंठाकंठियं अवयासिय बाहण्पमोक्खणं करेड।

शब्दार्थ - कंठाकंठियं अवयासिय - गले से गला लगाकर मिलते हुए, बाहण्यमोक्खणं-वाष्प प्रमोक्षण-हर्ष के आँसू गिरना।

भावार्थ - सार्थवाह के भवन के आन्तरिक सभा कक्ष में उसके माता-पिता, भाई-बहिन आदि ने जब सार्थवाह को आता हुआ देखा तो अपने स्थान से खड़े हुए। गले से गला लगाकर मिले। उनकी आँखों से हर्ष के आँसू बहने लगे।

भद्राःकोप-शांति

(8%)

तए णं से धण्णे सत्थवाहे जेणेव भद्दा भारिया तेणेव उवागच्छइ। तए णं

सा भद्दा धण्णं सत्थवाहं एजमाणं पासइ-पासित्ता णो आढाइ णो परियाणाइ अणाढायमाणी अपरिजाणमाणी तुसिणीया परम्मुही संचिद्धइ। तए णं से धण्णे सत्थवाहे भद्दं भारियं एवं वयासी-किं णं तुब्भं देवाणुप्पिए! ण तुड्डी वा ण हरिसे वा णाणंदे वा जं मए सएणं अत्थसारेणं रायकजाओ अप्पाणं विमोइए।

शब्दार्थ - परम्पुही - पराङ्मुखी-मुख फेरकर, तुद्धी - तुष्टि-परितोष।

भावार्थ - धन्य सार्थवाह अपनी पत्नी भद्रा के यहाँ आया। भद्रा ने जब सार्थवाह को आता हुआ देखा तो उसका कुछ भी आदर स्वागत सम्मान नहीं किया। वह चुपचाप मुंह फेर कर स्थिर रही। धन्य सार्थवाह ने तब अपनी पत्नी से कहा-'देवानुप्रिये! द्रव्यादि भेंट करवा कर मैं राजदंड से मुक्त हुआ हूँ। यह देखते हुए भी तुम्हें न परितोष है, न हर्ष है, न आनंद ही है।

.(४६)

तए णं सा भद्दा धण्णं सत्थवाहं एवं वयासी-कहं णं देवाणुप्पिया! मम तुड़ी वा जाव आणंदे वा भविस्सइ? जेणं तुमं मम पुत्तघायगस्स जाव पच्चामित्तस्स ताओ विपुलाओ असणाओ ४ संविभागं करेसि।

भावार्थ - भद्रा ने अपने पति धन्य सार्थवाह से कहा-'देवानुप्रिय! तुम मेरे पुत्र घाती नितात वैरी विजय चोर को अपने खान-पान की सामग्री में से हिस्सा देते रहे, तब भला मुझे परितोष और आनंद कैसे हो?'

(89)

तए णं से धण्णे भद्दं एवं वयासी-णो खलु देवाणुप्पिए! धम्मोत्ति वा तवोत्ति वा कयपडिकइयाइ वा लोगजत्ताइ वा णायएइ वा घाडिएइ वा सहाएइ वा सुहित्ति वा ताओ विपुलाओ असणाओ ४ संविभागे कए णण्णत्थ सरीर चिंताए। तए णं सा भद्दा धण्णेणं सत्थवाहेणं एवं वुत्ता समाणी हट्टा जाव आसणाओ अब्भुट्टेइ २ ता कंठाकंठिं अवयासेइ खेम कुसलं पुच्छइ, पुच्छिता ण्हाया जाव पायच्छित्ता विपुलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरइ। शब्दार्थ - कयपडिकइयाइ - कृत-प्रतिकृत-किए हुए उपकार का बदला, लोगजत्ताइ - लोक यात्रा-सांसारिक व्यवहार, णायए - ज्ञातक-पूर्वापर संबंधी जन, नायक-स्वामी, न्यायद-न्याय देने वाला, **घाडिए** - बाल मित्र, सुहित - सुहृद-प्रिय मित्र।

भावार्थ - उसने भद्रा से कहा-'देवानुप्रिये! मैंने अशन-पान आदि का संविभाग विजय चोर को धर्म, तप, प्रत्युपकार एवं लोक यात्रा समझ कर नहीं दिया। न उसको नायक, बालिमित्र सहायक या सुहृद् जानकर ही दिया। केवल शारीरिक शंका-निवृत्ति में सहयोगी मानकर ही उसे दिया। सार्थवाह द्वारा यों कहे जाने पर भद्रा के चित्त में हर्ष, परितोष और आनंद हुआ। अपने आसन से उठी। पति से गले मिली तथा कुशल क्षेम पूछा। तत्पश्चात् उसने स्नान, नित्य-नैमित्तिक शुभोपचार आदि संपन्न किए। पुनश्च, पूर्ववत् अपने विपुल भोगोपभोगमय जीवन में प्रवृत्त रहने लगी।

विजय चोर की दुर्गति (४८)

तए णं से विजय तक्करे चारगसालाए तेहिं बंधेहिं वहेहिं कसप्पहारेहि य जाव तण्हाए य छुहाए य परब्भवमाणे कालमासे कालं किच्चा णरएसु णेरइयताए उववण्णे। से णं तत्थ णेरइए जाए काले कालोभासे जाव वेयणं पच्चणुब्भवमाणे विहरइ। से णं तओ उव्वद्दिता अणादीयं अणवदगं दीहमद्धं चाउरंत संसारकंतारं अणुपरियद्दिस्सइ।

शब्दार्थ - बंध - रस्सी आदि से बांधना, वह - वध-लडी आदि से मारना. णरएसु - नरक में, णेरइयताए - नारक के रूप में, काले - काले वर्ण से युक्त, कालोभासे - अतिशय कालिमा युक्त, वेथणं - वेदना, पीड़ा, पच्चणुब्भवमाणे - अनुभव करता हुआ, उव्विद्या - निकलकर, अणादीयं - अनादिक-आदि रहित, अणवदग्गं - अनवदग्र-अनन्त. दीहमद्धं - लम्बा मार्ग, चाउरंत संसारकंतारं - चतुर्गतिमय संसार रूप महा अरण्य मं. अणुपरियद्दिस्सइ- अनुपर्यटन करेगा।

भावार्थ - वह विजय चोर कारागार में बंधन, बध, चाबुक आदि के प्रहार, भूख-प्यास

इत्यादि द्वारा व्यथित होता हुआ, आयुष्य पूर्ण होने पर मरकर नरक में नारक के रूप में उत्पन्न हुआ। उसका रंग अत्यंत काला था। वहाँ वह घोर वेदना अनुभव करता रहा।

वह विजय चोर का जीव नरक से निकलकर अनादि अनंत चतुर्गतिमय संसार रूप महाअरण्य के लम्बे मार्ग में भटकता रहेगा।

(38)

एवामेव जंबू! जे णं अम्हं णिगांथो वा णिगांथी वा आयरियउवज्झायाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए समाणे विपुलमणि-मोत्तिय-धण-कणग-रयण-सारेणं लुब्भइ से वि य एवं चेव।

शब्दार्थ - लुब्भइ - लुभ्यति-लुन्ध होता है।

भावार्थ - आर्य सुधर्मा स्वामी ने अपने विवेचन का उपसंहार करते हुए कहा-हे जंबू! जो गृहवास का त्याग कर आचार्य अथवा उपाध्याय के पास मुण्डित होकर अनगार धर्म स्वीकार करते हैं, मुंडित होते हैं, वे यदि आगे चल कर मणि, मुक्ता, धन, स्वर्ण रत्न आदि वियुल वैभव में लुब्ध हो जाते हैं तो उनकी दशा भी विजय चोर की तरह दुर्गित प्रदायक होती है।

स्थविर धर्मघोष का पदार्पण

(২০)

तेणं कालेणं तेणं समएणं धम्मधोसा णामं थेरा भगवंतो जाइसंपण्णा कुलसंपण्णा जाव पुव्वाणुपुव्विं चरमाणा जाव जेणेव रायगिहे णयरे जेणेव गुणसिलए चेइए जाव अहापडिस्त्वं उग्गहं उग्गिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति। परिसा णिग्गया धम्मो कहिओ।

भावार्थ - उस काल, उस समय जातिसंपन्न कुलसंपन्न धर्मघोष नामक स्थिवर भगवंत अनुक्रम से, ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए, सुख पूर्वक विहार करते हुए, राजगृह नगर में आए। वहाँ गुणशील नामक चैत्य में यथा योग्य, निर्वद्य स्थान याचित कर रुके, संयम और तप से आत्मानुभावित होते हुए वर्तनशील रहे। उनका पदार्पण जानकर जनसमूह दर्शन, वंदन हेतु आया। उन्होंने धर्म देशना दी। सुनकर लोग चले गए।

धन्य सार्थवाह द्वारा उपदेश-श्रवण (५१)

तए णं तस्स धण्णस्स सत्थवाहस्स बहुजणस्स अंतिए एयमट्टं सोच्चा णिसम्म इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्ञित्था-''एवं खलु थेरा भगवंतो जाइसंपण्णा इहमागया इह संपत्ता, तं इच्छामि णं थेरे भगवंते वंदामि णमंसामि।'' एवं संपेहेइ संपेहित्ता ण्हाए जाव सुद्धप्पावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवरपरिहिए पायविहारचारेणं जेणेव गुणसिलए चेइए जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवागच्छइ २ ता वंदइ णमंसइ। तए णं थेरा धण्णस्स विचित्तं धम्ममाइक्खंति।

भावार्थ - जब धन्य सार्थवाह ने बहुत लोगों से स्थिविर भगवंत धर्मघोष के पदार्पण के सम्बन्ध में सुना तो उसके मन में भी यह भाव उत्पन्न हुआ कि ऐसे उच्च कुलोत्पन्न श्रमण भगवंत यहाँ पधारे हैं, अतः मैं भी उन्हें वंदन, नमन करने जाऊँ।

यों निश्चय कर वह स्नानादि नित्य कर्मों से निवृत्त हुआ। शुद्ध मांगलिक वस्त्र पहने। पैदल चलता हुआ वह गुणशील चैत्य में पहुँचा, जहाँ स्थविर भगवंत विराजमान थे। उनके सम्मुख आकर उन्हें वंदन-नमस्कार किया। श्रमण भगवंत ने धन्य सार्थवाह को विविध रूप में धर्म का उपदेश दिया।

प्रव्रज्या एवं स्वर्ग-प्राप्ति

(42)

तए णं से धण्णे सत्थवाहे धम्मं सोच्चा एवं वयासी-सद्दृहामि णं भंते! णिगांथे पावयणे जाव पव्वइए जाव बहूणि वासाणि सामण्णपरियागं पाउणित्ता भत्तं पच्चक्खाइत्ता मासियाए संलेहणाए सिंहें भत्ताइं अणसणाए छेदेइ २ ता कालमासे कालं किच्चा सोहम्मे कप्पे देवताए उववण्णे। तत्थ णं अत्थेगइयाणं देवाणं चत्तारि पिलओवमाइं ठिई प०। तत्थ णं धण्णस्स वि देवस्स चत्तारि पिलओवमाइं ठिई प०। से णं धण्णे देवे-ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं ठिइक्खएणं भवक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता महाविदेहेवासे सिज्झिहिइ जाव सव्वदुक्खाणमंतं करेहिइ।

शब्दार्थ - अत्थेगइयाणं देवाणं - किन्हीं-किन्हीं देवों की, आउक्खएणं - आयुक्षय - आयुष्य के कर्मदिलकों को नष्ट कर, ठिइक्खएणं - स्थिति क्षय-आयुष्य कर्म की स्थिति का क्षय कर, भवक्खएणं - भवक्षय-देव भव के कारण रूप गति आदि कर्मों का नाश कर, चयं-शरीर, चइत्ता - त्यक्त्वा-त्याग कर, सिज्झिहिइ - सिद्धि - परिनिर्वाण करेगा।

भावार्थ - धन्य सार्थवाह ने धर्म का श्रवण कर स्थविर भगवंत धर्मघोष से कहा-भगवन्! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन में श्रद्धा करता हूँ।

(यावत् संबद्ध पाठ अन्य औपपातिक सूत्र आदि आगमों से ग्राह्य है।)

धन्य सार्थवाह प्रव्रजित हुआ। यावत् उसने बहुत वर्षों तक श्रामण्य पर्याय-साधु जीवन का पालन किया। वैसा कर उसने अंत में आहार का प्रत्याख्यान कर एक मास की संलेखना पूर्वक अनशन के साठ भक्तों का छेदन किया। यों आयुष्य पूर्ण कर वह सौधर्म कल्प में देव रूप में उत्पन्न हुआ। वहाँ किन्हीं किन्हीं देवों की स्थिति चार पल्योपम बतलाई गई है। वहाँ धन्य देव की भी स्थिति चार पल्योपम कही गई है। धन्यदेव आयु, स्थिति एवं भव का क्षय हो जाने पर देह त्याग कर उस देवलोक से महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध होगा यावत् समस्त दु:खों का अंत करेगा।

निष्कर्ष (उपसंहार)

(¥¥)

जहा णं जंबू! धण्णेणं सत्थवाहेणं णो धम्मोत्ति वा जाव विजयस्स तक्करस्स ताओ विपुलाओ असणाओ ४ संविभागे कए णण्णत्थ सरीर सारक्खणद्वाए एवामेव जंबू! जे णं अम्हं णिग्गंथे वा णिग्गंथी वा जाव पव्वइए समाणे ववगय-ण्हाणुमद्दण-पुष्फ-गंध-मल्लालंकारविभूसे इमस्स ओरालिय सरीरस्स णो वण्ण-हेउं वा रूवहेउं वा विसयहेउं वा तं विपुलं असणं ४ आहारमाहारेइ णण्णत्थ णाणदंसणचरित्ताणं वहणयाए से णं इहलोए चेव बहूणं समणाणं समणीणं सावगाण य सावियाण य अच्चणिजे जाव पजुवासणिजे भवइ। परलोए वि य णं णो बहुणि हत्थच्छेयणाणि य कण्णच्छेयणाणि य णासाछेयणाणि य एवं हिययउप्पायणाणि य वसणुप्पायणाणि य उल्लंबणाणि य पाविहिइ अणाईयं च णं अणवदगं दीहमद्धं जाव वीईवइस्सइ जहा व से धण्णे सत्थवाहे। शब्दार्थ - वहणयाए - धारण या पालन के लिए, अच्चिणिजे - अर्चनीय-अर्चन योग्य, पजुवासणिजे - पर्युपासनीय-पर्युपासना योग्य, उप्यायणाणि - उत्पाटन-उखाड़ना, वसणु - वृषण-अण्डकोश, उल्लंबणाणि - उल्लंबन-ऊंचे पेड़ की शाखा में बांध कर लटकाना, पाविहिइ-प्राप्त्यित-प्राप्त करेगा, वीईवइस्सइ - व्यतिव्रजित करेगा-पार करेगा।

भावार्थ - आर्य सुधर्मा स्वामी ने कहा-हे जंबू! जिस प्रकार धन्य सार्थवाह ने विजयचोर को धर्म, तप, प्रत्युपकार इत्यादि समझ कर अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य आदि पदार्थ नहीं दिए वरन् अपनी देह की रक्षा के निमित्त अपने भोजन का हिस्सा उसे दिया। उसी प्रकार साधु-साध्वी यावत् गृहत्याग कर जो अनगार धर्म में प्रव्रजित हैं, जिन्होंने स्नान, उपमर्दन, पुष्प, गंध, माला आदि विभूषा का परित्याग किया है। वे अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य आदि का जो आहार करते हैं, वह अपने औदारिक शरीर के वर्ण, रूप, विषय सुख के लिए नहीं करते। यह शरीर ज्ञान, दर्शन और चारित्र को वहन करने का साधन मात्र है, यह सोचकर आहार करते हैं। वे इस लोक में बहुत से श्रमण-श्रमणी, श्रावक-श्राविका-वृंद द्वारा अर्चनीय यावत् पर्युपासनीय होते हैं। परलोक में वे हस्त, कर्ण एवं नासिका छेदन, हृदय एवं वृषण उत्पाटन, उल्लंबन जैसे घोर कष्ट नहीं पाते। वे अनादि -अनंत दीर्घ यावत् चतुर्गितमय संसार रूप महावन के मार्ग को लांघ जाते हैं, मुक्त हो जाते हैं, जिस प्रकार धन्य सार्थवाह ने किया।

(५४)

एवं खलु जंबू! समणेणं जाव संपत्तेणं दोच्चस्स णायज्झयणस्स अयमहे पण्णते तिबेमि।

भावार्थ - आर्य सुधर्मा स्वामी बोले-श्रमण यावत् अनेकानेक उत्तमोत्तम गुण संपन्न भगवान् महावीर स्वामी ने द्वितीय ज्ञात अध्ययन का यह अर्थ, विवेचन निरूपित किया है, ऐसा मैं कहता हूँ। अर्थात् यह भगवान् महावीर स्वामी का कथन है, जिसे मैं प्रतिपादित कर रहा हूँ। उवणय गाहा-उपनय गाथा -

सिवसाहणेसु आहार-विरिहओं जं ण वट्टए देहो। तम्हा धण्णोव्य विजयं साहू तं तेण पोसेजा।। ॥ बीयं अज्झयणं समत्तं।। शब्दार्थ - सिवसाहणेसु - मुक्ति के साधनों में-प्रतिलेखन आदि क्रियाओं में, आहारविरहिओ - भोजन रहित, वट्टए - प्रवृत्त होता है, पोसेजा - पोषण करें।

भावार्थ - यदि शरीर को आहार न दिया जाए तो वह मुक्ति के साधनभूत संयमोपयोगी क्रियोपक्रमों में प्रवृत्त, समर्थ नहीं होता। अतएव जिस अभिप्राय से धन्य सार्थवाह ने विजय चोर का पोषण किया, उसी भाव से साधु को अपनी देह का पोषण करना चाहिए।

इस प्रकार हे जम्बू! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने द्वितीय ज्ञात-अध्ययन का यह अर्थ कहा है।

विवेचन - व्याख्याकारों ने इस अध्ययन के दृष्टान्त की योजना इस प्रकार की है -उदाहरण में जो राजगृह नगर कहा है, उसके स्थान पर मनुष्य क्षेत्र समझना चाहिए। धन्य सार्थवाह साधु का प्रतीक है, विजय चोर के समान साधु का शरीर है। पुत्र देवदत्त के स्थान पर अनन्त अनुपम आनंद का कारणभूत संयम समझना चाहिए। जैसे पंथक के प्रमाद से देवदत्त का घात हुआ, उसी प्रकार शरीर की प्रमादरूप अशुभ प्रवृत्ति से संयम का घात होता है। देवदत्त के आभूषणों के स्थान पर इन्द्रिय-विषय समझना चाहिए। इन विषयों के प्रलोभन में पड़ा हुआ मनुष्य संयम का घात कर डालता है। हडिबंधन के समान जीव और शरीर का अभिन्न रूप से रहना समझना चाहिए। राजा के स्थान पर कर्मफल समझना चाहिए। कर्म की प्रकृतियां राजपुरुषों के समान हैं। अल्प अपराध के स्थान पर मनुष्याबु के बंध के हेतु समझने चाहिए। उच्चार-प्रसवण की जगह प्रत्युपेक्षण आदि क्रियाएं समझना चाहिए अर्थात् जैसे आहार न देने से विजय चोर उच्चार-प्रस्रवण के लिए प्रवृत्त नहीं हुआ उसी प्रकार यह शरीर आहार के बिना प्रत्युपेक्षण आदि क्रियाओं के प्रवृत्त नहीं होता। पंथक के स्थान पर मुग्ध साधु समझना चाहिए। भद्रा सार्थवाही को आचार्य के स्थान पर जानना चाहिए। किसी मुग्ध (भोले) साधु के मुख से जब आचार्य किसी साधु का अशनादि से शरीर का पोषण करना सुनते हैं, तब वह साधु को उपालंभ देते हैं। जब वह साधु बतलाता है कि मैंने विषयभोग आदि के लिए शरीर का पोषण नहीं किया, परन्तु ज्ञान दर्शन चारित्र की आराधना के लिए शरीर को आहार दिया है, तब गुरु को संतोष हो जाता है।

॥ द्वितीय अध्ययन समाप्त॥

www.jainelibrary.org

अंडे णामं तच्चं अज्झयणं अंडक नामक तीसरा अध्ययन जम्बू स्वामी का प्रश्व

(9)

जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं दोच्चस्स अज्झयणस्स णायाधम्म-कहाणं अयमट्ठे पण्णत्ते तइअस्स अज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते?

भावार्थ - आर्य जंबू ने आर्य सुधर्मा स्वामी से निवेदन किया - भगवन्! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने ज्ञाताधर्मकथा के दूसरे अध्ययन का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है - इस प्रकार व्याख्यात किया है तो कृपया बतलाएँ, उन्होंने तृतीय अध्ययन का क्या अर्थ निरूपित किया?

आयु सुधर्मा द्वारा उत्तर

(२)

एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा णामं णयरी होत्था वण्णओ। तीसे णं चंपाए णयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए सुभूमिभाए णामं उज्जाणे होत्था सब्वोउयपुष्फफल समिद्धे सुरम्मे णंदणवणे इव सुहसुरभि-सीयल-च्छायाए समणुबद्धे।

शब्दार्थ - समणुबद्धे - समनुबद्ध-व्याप्त।

भावार्थ - आर्य सुधर्मा बोले - जंबू! उस काल, उस समय बंपा नामक नगरी थी। (उसका वर्णन औपपातिक सूत्र से ग्राह्य है।) चंपानगरी के बाहर, उत्तर-पूर्व दिशा भाग में, ईशान कोण में, सुभूमिभाग नामक एक उद्यान था। वह सभी ऋतुओं में फूलने-फलने वाले पुष्पों और फलों से समृद्ध तथा सुरम्य था। वह नंदनवन की तरह सुखप्रद, सुरिभमय तथा शीतल छाया युक्त था।

🔻 मयूरी-प्रसव

(३)

तस्स णं सुभूमि-भागस्स उज्जाणस्स उत्तरओ एगदेसंमि मालुयाकच्छए होत्था वण्णओ। तत्थ णं एगावणमऊरी दो पुद्ठे परियागए पिद्ठुंडी पंडुरे णिव्वणे णिरुवहए भिण्णमुद्धिप्पमाणे मऊरी अंडए पसवइ, पसवित्ता सएणं पक्खवाएणं सारक्खमाणी संगोवेमाणी संविद्ठेमाणी विहरइ।

शब्दार्थ - पुढ़े - परिपुष्ट, परियागए - पर्यायागत-क्रमशः प्रसव काल प्राप्त, पिटुंडीपंडुरे-चावलों के चूर्ण पिण्ड के सदृश सफेद, णिव्वणे - निर्वण-छिद्र, क्षत आदि रहित, भिण्ण-मुट्ठिप्पमाणे - भिन्न मुष्टि प्रमाण-बीच में से खाली या पोली मुट्ठी जितने प्रमाण युक्त, पक्खवाएणं-पंखों से ढककर हवा से बचाती हुई, सारक्खमाणी - संरक्षण करती हुई, संगोवेमाणी - संगोपन-उपद्रवों से परिरक्षण करती हुई, संविद्वेमाणी - संवेष्टन-पोषण, संवर्द्धन करती हुई।

भावार्थ - उस सुभूमिभाग नामक उद्यान के उत्तरी भाग में एक मालुकाकच्छ था। (उसका वर्णन औपपातिक सूत्र से ग्राह्य है।) वहाँ एक जंगली मयूरी ने दो अण्डों का प्रसव किया, जो चावलों के चूर्ण-पिण्ड जैसे खेत निर्द्रण एवं निरूपहत थे। प्रमाण में वे बीच से पोली मुडी के समान थे। वह अपनी पाँखों से हक कर उनका संरक्षण, संगोपन एवं संवर्द्धन करती थी।

दो अन्नन्य मित्र

(8)

तत्थ णं चंपाए णयरीए दुवे सत्थवाहदारगा परिवसंति तंजहा - जिणदत्तपुत्ते य सागरदत्तपुत्ते य सहजायया सहविद्वयया सहपंसुकीलियया सहदारदिसी अण्ण-मण्णमणुरत्तया अण्णमण्णमणुळ्ययया अण्णमण्णच्छंदाणुवत्तया अण्णमण्णहिय-इच्छियकारया अण्णमण्णेसु गिहेसु किच्चाइं करणिजाइं पच्चणुक्भवमाणा विहरंति।

शब्दार्थ - सहजायया - समान समय में उत्पन्न, सहविद्यया - साथ ही साथ बढ़े हुए, सहपंसुकीलियया - साथ-साथ धूल में खेले हुए, सहदारदिरसी - सहदारदर्शी-एक ही समय विवाहित अथवा सहदारदर्शी-एक दूसरे के द्वार को देखने वाले, अण्णमण्णं - अन्योन्य- परस्पर, अणुरत्तया - अनुराग युक्त, अणुव्वयया - अनुव्रजक-अनुगमन करने वाले, छंदाणु-वत्तया- छंदानुवर्तक-अभिप्राय का अनुसरण करने वाले, हिययइष्टियकारया - हृदयेप्सितकारक-हृदय की भावना के अनुरूप कार्य करने वाले, किच्चाइं - कृत्य-करने योग्य कार्य, करणिज्ञाइं-आवश्यक कार्य।

भावार्थ - चंपा नगरी में दो सार्थवाह पुत्र रहते थे। उनमें से एक जिनदत्त का पुत्र था तथा दूसरा सागरदत्त का पुत्र था। वे एक ही समय में जन्मे, बड़े हुए, धूल में खेले-कूदे। एक ही समय उनका विवाह हुआ। दोनों का परस्पर अत्यधिक अनुराग था। दोनों एक दूसरे का अनुगमन करते थे। एक दूसरे की इच्छा के अनुरूप कार्य करते थे। एक दूसरे के घर के करणीय एवं आवश्यक कार्यों में साथ रहते थे।

यावज्जीवन साहचर्य की प्रतिज्ञा

(ধ)

तए णं तेसिं सत्थवाहदारगाणं अण्णया कयाइं एगयओ सहियाणं समुवागयाणं सण्णिसण्णाणं सण्णिविद्वाणं इमेयारूवे मिहोकहासमुल्लावे समुप्पज्जित्था-जण्णं देवाणुप्पिया! अम्हं सुहं वा दुक्खं वा पव्यज्ञा वा विदेसगमणं वा समुप्पज्जइ तं णं अम्हेहिं एगयओ समेच्चा णित्थरियव्यं-त्तिकट्टु अण्णमण्ण-मेयारूवं संगारं पडिसुणेंति २ त्ता सकम्मसंपउत्ता जाया यावि होत्था।

शब्दार्थ - सहियाणं - मिले हुए-एकत्र हुए, समुवागयाणं - समुपागत-आए हुए, सिणिसण्णाणं - सिन्निषण्ण-साथ बैठे हुए, सिणिबिद्धाणं - सिन्निषण्ट-सिम्मिलित, मिहोकहासमुल्लावे - मिथः कथा समुल्लाप-परस्पर वार्तालाप, समेच्चा - समेत्य-परस्पर मिलकर, णित्थरियव्वं - निस्तरितव्य-व्यवहार करना चाहिए, संगारं - वैचारिक संकेत, पिडिसुणेंति - प्रतिज्ञा की, सकम्मसंपउत्ता - अपने-अपने कार्यों में संप्रवृत्त।

भावार्थ - तदनंतर, किसी समय वे सार्थवाह पुत्र परस्पर मिले। एक के घर आए, एक साथ बैठे तथा उनके बीच यों वार्तालाप हुआ—हमारे जीवन में सुख, दुःख प्रव्रज्या, विदेशगमन आदि जो भी प्रसंग बनें, उन सबका हम एक साथ ही निर्वाह करें, उनमें एक साथ रहें, यों विचार कर उन्होंने ऐसी प्रतिज्ञा कर ली। फिर वे अपने-अपने कार्यों में लग गए।

गणिका देवदत्ता

(\(\xi\)

तत्थ णं चंपाए णयरीए देवदत्ता णामं गणिया परिवसइ अहा जाव भत्तपाणा चउसिट्ट-कलापंडिया चउसिट्ट-गणिया-गुणोववेया अउणत्तीसं विसेसे रममाणी एक्कवीस-रइगुणप्पहाणा बत्तीसपुरिसोवयार-कुसला णवंगसुत्तपिडिबोहिया अट्ठारस-देसीभासाविसारया सिंगारागार चारुवेसा संगय-गय-हिसय जाव किसियज्झया सहस्सलंभा विदिण्णकृत्तचामर बालवीयणिया कण्णीरहप्पयाया यावि होत्था बहूणं गणिया सहस्साणं आहेवच्चं जाव विहरइ।

शब्दार्थ - गणिया - गणिका, अहा - आढ्य-वैभव संपन्न, गणियागुणोववेया - गणिका गुणोपपेता-गणिका के गुणों से युक्त, विसारया - निपुण, अउणत्तीसं - उनतीस, रममाणी - रमणशील, एक्कवीस - इक्कीस, रइगुणप्पहाणा - रितगुणप्रधाना-काम-क्रीड़ा के गुणों में निष्णात, पुरिसोवयारकुसला - कामशास्त्रोक्त पुरुषोपचार-पुरुषों को प्रसन्न करने के गुणों में दक्ष, णवंग - नवाग-दो कान, दो आँखें, दो नासिका विवर, जिह्ना, त्वचा तथा मन, सुत्त-सुप्त-सोए हुए, प्रडिबोहिया - प्रतिबोधिका-जागृत करने वाली, संगय - समुचित, गय-गित, हिसय- हिसत-हासोपहास, ऊसिय - उच्छित-ऊपर उठी हुई, झया - ध्वजा, सहस्सलंभा- सहस्रलंभा-हजार मुद्राओं से प्राप्य, विदिण्ण - वितीर्ण-राजप्रदत्त, कण्णीरह - कर्णीरथ-पुरुषों द्वारा कन्धों पर (कानों तक) वहन की जाने वाली पालखी, प्रयाया - प्रयाता-चलने वाली, आहेवच्चं - आधिपत्य।

भावार्थ - चंपा नगरी में देवदत्ता नामक अत्यंत समृद्धशालिनी गणिका निवास करती थी। वह चौसठ कलाओं में प्रवीण थी। गणिकोचित्त चौसठ गुणों से युक्त थी। उनतीस प्रकार के रमण विशेष, इक्कीस प्रकार की काम क्रीड़ाएँ, बत्तीस प्रकार के पुरुषोपचार में निपुण थी। पुरुषों के सुषुप्त नवांगों को जागृत करने में समर्थ, अठारह देशी भाषाओं में विशारद, श्रृंगार की साक्षात् प्रतिमा तथा सुंदर वेशयुक्त थी। उसकी गित, हँसी आदि में संगति-शोभनता थी। उसकी ध्वजा फहराती थी - वह चारों ओर विख्यात थी। हजार मुद्राओं से वह प्राप्य थी। राजा द्वारा उसे छत्र, चँवरी-गाय के बालों से बने विशेष चँवर प्रदत्त किए गए थे। वह पुरुषों द्वारा कंधों पर

रखकर वहन की जाने वाली पालकी में बैठकर चलती थी। सहस्रों गणिकाओं का आधिपत्य-नेतृत्व करती थी, उनमें अग्रगण्या थी।

इस प्रकार समृद्धिमय, सुखमय जीवन व्यतीत करती थी।

उद्यान में आमोद-प्रमोद

(७)

तए णं तेसिं सत्थवाहदारगाणं अण्णया कयाइं पुव्वावरण्हकाल समयंसि जिमिय-भुत्ततरा-गयाणं समाणाणं आयंताणं चोक्खाणं परमसुइभूयाणं सुहासण-वरगयाणं इमेयारूवे मिहोकहासमुल्लावे समुप्पज्जित्था - तं सेयं खलु अम्हं देवाणुप्पिया! कल्लं जाव जलंते विपुलं असणं ४ उवक्खडावेत्ता तं विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं धूव-पुष्फ-गंध-वत्थं-गहाय देवदत्ताए गणियाए सिद्धं सुभूमि-भागस्स उज्जाणस्स उज्जाणसिरिं पच्चणुब्भवमाणाणं विहरित्तए-त्तिकट्टु अण्णमण्णस्स एयमट्ठं पिडसुणेंति २ त्ता कल्लं पाउब्भूए कोडुंबियपुरिसे सद्दावेंति २ त्ता एवं वयासी-

शब्दार्थ - पुट्यावरण्ह-कालसमयंसि - मध्याह काल में।

भावार्थ - एक बार का प्रसंग है, मध्याह काल में भोजन, आचमन, हाथ-पैर आदि प्रक्षालन कर वे दोनों सुखद आसनों पर बैठे। उन्होंने परस्पर इस प्रकार बातचीत की। अच्छा हो, कल प्रातः आकाश में सूर्य के देदीप्यमान होने पर, हम लोग विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, धूप, वस्त्र आदि लेकर देवदत्ता गणिका के साथ सुभूमिभाग उद्यान में जाएँ। वहाँ की शोभा का अनुभव करते हुए विचरण करें। दोनों को ही यह रुचिकर प्रतीत हुआ। उन्होंने दूसरे दिन सूर्योदय होने पर अपने सेवकों को बुलाया और कहा।

(۲)

गच्छह णं देवाणुप्पिया! विपुलं असणं ४ उवक्खडेह २ ता तं विपुलं असणं ४ धूवपुष्फं गहाय जेणेव सुभूमिभागे उज्जाणे जेणेव णंदापुक्खरिणी तेणामेव उवागच्छह, उवागच्छित्ता णंदाए पोक्खरिणीए अदूरसामंते थूणामंडवं आहणह

२ ता आसियसम्मजिओवित्तत्तं सुगंध जाव किलयं करेह, करेत्ता अम्हे पडिवाले-माणा २ चिट्ठह जाव चिट्ठंति।

शब्दार्थ - थूणामंडवं - काठ की बल्लियों के आधार पर खड़ा किया गया वस्त्राच्छादित मण्डप-शामियाना, आहणह - तैयार करो, पडिवालेमाणा - प्रतीक्षा करते हुए।

भावार्थ - देवानुप्रियो! जाओ, विपुल अशन-पान-खाद्य-स्वाद्य तैयार करवाओ। तैयार कराये गये अशन-पान आदि तथा धूप-पुष्प आदि सुगंधित द्रव्यों को लेकर सुभूमिभाग उद्यान में और तद्वर्ती नंदा पुष्करिणी पर जाओ। उस पुष्करिणी से न अधिक दूर और न अधिक निकट, शामियाना लगाओ। वहाँ जल का छिड़काव कराओ, सफाई कराओ। सफाई करा कर उसे सुंदर बनाओ। वैसा कर वहाँ हमारी प्रतीक्षा करो। सेवकों ने वैसा किया और उनकी प्रतीक्षा करने लगे।

(3)

तए णं (ते) सत्थवाहदारगा दोच्चंपि कोडुंबियपुरिसे सद्दावेंति २ ता एवं वयासी - खिप्पामेव लहुकरण-जुत्तजोइयं समखुर-वालिहाण-समिलिहिय-तिक्खग्गसिंगएहिं रययामय-घंटसुत्तरज्ञुयपवर-कंचण-खिचय-णृत्थ-पग्गहोवग्ग-हिएहिं णीलुप्पल-कयामेलएहिं पवर-गोणजुवाणएहिं णाणामणि-रयणकंचण-घंटियाजाल-परिक्खितं पवरलक्खणोववेयं जुत्तमेव पवहणं उवणेह। ते वि तहेव उवणेंति।

शब्दार्थ - लहुकरण-जुत्तजोइयं - लघुकरण-युक्तयोजित-हाँकने में निपुण पुरुषों द्वारा योजित, वालिहाण - पूँछ, लिहिय - लिखित-तरासे हुए, तिक्खग्ग - आगे के तीखे भाग, णत्थ पग्गहो-वग्गहिएहिं - नाक में डाली हुई नाथ-नियं एत रज्जु से बंधे हुए, आमेलएहिं -शिरोभूषणों-कलंगियों द्वारा, गोणजुवाणएहिं - युवा बैलों द्वारा, पवहणं - प्रवहन-स्थ (बहली)।

भावार्थ - तत्पश्चात् सार्थवाह पुत्रों ने दूसरी बार सेवकों को बुलाया और उन्हें आदेश दिया कि शीघ्र ही हमारे लिए बैलों का, उत्तम लक्षण युक्त रथ तैयार करो। उस रथ में दो युवा बैल जुते हों, जिनके खुर, पूँछ एक समान हों। तरासे हुए से तीखे सींग हों। छोटी-छोटी चाँदी की घंटियों, घुंघुरुओं से युक्त, स्वर्णजटित सूती रज्जु की नाथ से वे बंधे हों। उनके मस्तक पर नीलकमल की कलंगियाँ लगी हों। वह रथ ऐसा हो जो भिन्न-भिन्न प्रकार के मणि, रत्न और

स्वर्ण जटित घंटियों से युक्त हो। उन बैलों को हाँकने वाला पुरुष अत्यंत निपुण हो। सेवकों ने वैसा ही किया।

(90)

तए णं ते सत्थवाहदारगा ण्हाया जाव अप्पमहम्घाभरणालंकिय सरीरा पवहणं दुरूहंति २ ता जेणेव देवदत्ताए गणियाए गिहे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता गवहणाओ पच्चोरुहंति २ ता देवदत्ताए गणियाए गिहं अणुष्पविसंति। तए णं सा देवदत्ता गणिया ते सत्थवाहदारए एजमाणे पासइ, पासित्ता हट्टतुट्टा आसणाओ अब्भुट्ठेइ २ ता सत्तद्ट पयाइं अणुगच्छइ २ ता ते सत्थवाहदारए एवं वयासी - संदिसंतु णं देवाणुष्पिया! किमिहा-गमणप्पओयणं।

शब्दार्थ - सत्तद्वपयाइं - सात-आठ कदम, पओयणं - प्रयोजन।

भावार्थ - उन सार्थवाह पुत्रों ने स्नान किया। वस्त्र, आभरण धारण किए। रथ पर सवार होकर वे देवदत्ता गणिका के घर के निकट आए। रथ से उतरे और घर में प्रविष्ट हुए। देवदत्ता ने जब उन्हें आते हुए देखा तो वह परितुष्ट और प्रसन्न हुई। सात, आठ कदम चलकर सामने आई और बोली - आज्ञा कीजिए, यहाँ कैसे आना हुआ?

(99)

तए णं ते सत्थवाहदारगा देवदत्तं गणियं एवं वयासी-इच्छामो णं देवाणुप्पिए! तुम्हेहिं सद्धिं सुभूमि-भागस्य उज्जाणस्य उज्जाणिसिरं पच्चणुब्भवमाणा विहरित्तए। तए णं सा देवदत्ता तेसिं सत्थवाहदारगाणं एयमट्ठं पिंडसुणेइ २ त्ता ण्हाया कयबलिकम्मा किं ते पवर जाव सिरिसमाणवेसा जेणेव सत्थवाहदारगा तेणेव समागया।

शब्दार्थ - सिरिसमाणवेसा - श्रीसमानवेशा-साक्षात् लक्ष्मी के तुल्यवेश युक्त।

भावार्थ - वे सार्थवाह पुत्र गणिका देवदत्ता से बोले-देवानुप्रिये! हम तुम्हारे साथ सुभूमिभाग नामक उद्यान में प्राकृतिक सुषमा का अनुभव करते हुए विहार करना चाहते हैं। देवदत्ता ने उनके कथन को स्वीकार किया। उसने स्नान, मांगलिक कृत्य आदि किए यावत् वस्न, अलंकार धारण किए। उसकी वेशभूषा लक्ष्मी के समान थी। वह सार्थवाह पुत्रों के पास आई।

(97)

तए णं ते सत्थवाहदारगा देवदत्ताए गणियाए सिद्धं जाणं दुरूहंति २ त्ता चंपाए णयरीए मञ्झंमञ्झेणं जेणेव सुभूमिभागे उज्जाणे जेणेव णंदापोक्खिरणी तेणेव उवागच्छंति २ त्ता पवहणाओ पच्चोरुहंति २ त्ता णंदापोक्खिरणीं ओगाहेंति २ त्ता जलमज्जणं करेंति जलकीडं करेंति एहाया देवदत्ताए सिद्धं पच्चत्तरंति जेणेव थूणामंडवे तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता थूणामंडवं अणुप्पविसंति २ त्ता सव्वालंकार विभूसिया आसत्था वीसत्था सुहासणवरगया देवदत्ताए सिद्धं तं विपुलं असण ४ धुव-पुष्फ-गंध-वत्थं आसाएमाणा वीसाएमाणा परिभाएमाणा परिभुंजेमाणा एवं च णं विहरंति जिमिय-भुत्ततरागया वि य णं समाणा देवदत्ताए सिद्धं विपुलाइं माणुस्सगाइं कामभोगाइं भुंजमाणा विहरंति।

भावार्थ - वे सार्थवाह पुत्र देवदत्ता गणिका के साथ यान पर आरूढ़ हुए। चम्पानगरी के बीचों-बीच होते हुए वे सुभूमिभाग उद्यान में नंदा पुष्करिणी पर आए। यान से नीचे उतरे। नंदा ने पुष्करिणी में प्रविष्ट होकर जल-मार्जन, जलक्रीड़ा एवं स्नान किया और देवदत्ता के साथ बाहर निकले। शामियाने में आए। सब प्रकार के अलंकारों से अपने को विभूषित किया। आश्वस्त-विश्वस्त होकर सुंदर आसन पर बैठे। उन्होंने देवदत्ता के साथ बहुविध अशन-पान-खाद्य-स्वाद्य पदार्थों तथा धूप, पुष्प गंध, वस्न इनका आस्वादन किया, विशेष आनंद लिया। एवं परस्पर मनुहार पूर्वक परिभोग किया। भोजन आदि का आनंद लेने के अनंतर उन्होंने देवदत्ता के साथ बहुविध मनुष्य जीवन विषयक कामभोगों का सेवन किया।

(**\$**P)

तए णं ते सत्थवाहदारगा पुव्वावरण्हकाल-समयंसि देवदत्ताए गणियाए सिद्धं थूणामंडवाओ पिडणिक्खमंति २ ता हत्थसंगेल्लीए सुभूमिभागे बहुसु आलिघरएसु य कयलीघरेसु य लयाघरएसु य अच्छणघरएसु य पेच्छणघरएसु य पसाहणघरएसु य मोहणघरएसु य सालघरएसु य जालघरएसु य कुसुमघरएसु य उज्जाणिसिरिं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति। शब्दार्थ - हत्थसंगेल्लीए - एक दूसरे के हाथ में हाथ डाले हुए, आलिघरएसु - घरों के आकार में परिणत श्रेणीबद्ध वृक्ष कुञ्जों में, कयलीघरेसु - केले के वृक्षों के झुरमुटों में, अच्छणघरएसु - लोगों के बैठने हेतु बने हुए आसन युक्त परिसरों में, पेच्छणघरएसु - प्रेक्षणगृह-नाटकादि के मंचन हेतु निर्मित रंगशालाओं में, पसाहणघरएसु - प्रसाधन-देह सज्जा आदि करने हेतु बने हुए स्थानों में, मोहणघरएसु - विलास हेतु विनिर्मितकक्षों में, सालघरएसु - शाल वृक्षों के समूह में, जालघरएसु - जालगृह-जालीदार झरोखों से युक्त स्थानों में।

भावार्थ - वे सार्थवाह पुत्र मध्याह्न के समय शामियाने से बाहर निकले। परस्पर हाथों में हाथ मिलाए हुए उद्यान के बहुत से भागों में वृक्षों-लताओं के कुंजों में लोगों के बैठने हेतु बने परिसर, प्रेक्षणगृह, प्रसाधनगृह, विलासगृह आदि में भ्रमण करते हुए उद्यान की शोभा का आनंद लेने लगे।

(98)

तए णं ते सत्थवाहदारगा जेणेव से माल्याकच्छए तेणेव पहारेत्थ गमणाए।
तए णं सा वणमऊरी ते सत्थवाहदारए एज्जमाणे पासइ, पासित्ता भीया तत्था॰
महया-महया सद्देणं केकारवं विणिम्मुयमाणी विणिम्मुयमाणी माल्याकच्छाओ
पडिणिक्खमइ २ त्ता एगंसि रुक्खडालयंसि ठिच्चा ते सत्थवाहदारए माल्याकच्छयं
च अणिमिसाए दिहीए पेहमाणी २ चिहुइ।

शब्दार्थ - केकारवं - मयूर-ध्वनि, रुक्खडालयंसि - वृक्ष की शाखा पर, ठिच्चा - स्थित होकर, अणिमिसाए दिहीए - अनिमिष-अपलक दृष्टि से, पेहमाणी - प्रेक्षमाणा -देखती हुई।

भावार्थ - सार्थवाह पुत्र घूमते-घूमते वहाँ स्थित मालुकाकच्छ की ओर गए। वन मयूरी ने सार्थवाह पुत्रों को आते हुए देखा। वह भयभीत एवं संत्रस्त हो गई। जोर-जोर से शब्द करती हुई, वह मालुकाकच्छ से निकल कर एक वृक्ष की शाखा पर बैठ गई एवं अपलक दृष्टि से सार्थवाह पुत्रों एवं मालुकाकच्छ को देखती रही।

(৭५)

तए णं ते सत्थवाहदारगा अण्णमण्णं सद्दावेंति २ त्ता एवं वयासी-जहा णं देवाणुष्पिया! एसा वणमऊरी अम्हे एजमाणे पासित्ता भीया तत्था तसिया उव्विगा पलाया महया २ सद्देणं जाव अम्हे मालुयाकच्छयं च पेच्छमाणी २ चिट्ठइ तं भवियव्वमेत्थ कारणेणं त्तिकट्टु मालुयाकच्छयं अंतो अणुप्पविसंति २ त्ता तत्थ णं दो पुट्टे परियागए जाव पासित्ता अण्णमण्णं सद्दावेतिं २ त्ता एवं वयासी।

शब्दार्थ - तत्था - त्रस्त, उव्विग्गा - उद्विग्न, पलाया - पलायिता-अपने स्थान से भागी हुई।

भावार्थ - तब उन सार्थवाह पुत्रों ने परस्पर वार्तालाप किया और कहा - यह जंगली मयूरी हमें आता हुआ देखकर भयभीत, त्रस्त एवं उद्विग्न होती हुई भाग गई। अब जोर-जोर से आवाज कर रही है और हमें तथा मालुकाकच्छ को देख रही है। इसका कोई न कोई कारण होना चाहिए। ऐसा विचार कर वे मालुकाकच्छ में प्रविष्ट हुए। वहां दो परिपुष्ट यावत् वृद्धि प्राप्त अंडों को देखा, आपस में बात कर याँ कहा।

अण्डों का अधिग्रहण

(१६)

सेयं खलु देवाणुप्पिया! अम्हं इमे वणमऊरीअंडए साणं जाइमंताणं कुक्कुडियाणं अंडएसु य पिक्खिवावित्तए। तए णं ताओ जाइमंताओ कुक्कुडियाओ ताए अंडए सए य अंडए सएणं पक्खवाएणं सारक्खमाणीओ संगोवेमाणीओ विहिरस्संति। तए णं अम्हं एत्थं दो कीलावणगा मऊरपोयगा भिवस्संति-त्तिकटु अण्णमण्णस्स एयमट्टं पिडसुणेंति २ ता सए सए दासचेडए सद्दावेंति २ ता एवं वयासी-गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! इमे अंडए गहाय सगाणं जाइमंताणं कुक्कुडीणं अंडएसु पिक्खिवह जाव ते वि पिक्खिवेंति।

शब्दार्थ - साणं - स्वकीयं, जाइमंताणं - विशिष्ट जातियुक्त, कुक्कुडियाणं - मुर्गियों के, पक्खिवावित्तए - रखवादें, सए - अपने, कीलावणगा - क्रीडाकारक-क्रीड़ा करने वाले, मऊरपोयगा - मयूर के बच्चे।

भावार्थ - यह अच्छा होगा कि हम वनमयूरी के अण्डों को अपने यहाँ उच्च जातीय मुर्गियों के अण्डों में डलवा दें। वे मुर्गियाँ अपने पंखों के आच्छादन द्वारा इन अण्डों का और अपने अण्डों का हवा से बचाव करेगी, बाह्य उपद्रवों से रक्षा करेगी। परिणाम स्वरूप हमें दो क्रीड़ाकारक मोर के बच्चे प्राप्त होंगे। इस प्रकार दोनों को वैसा करना संगत प्रतीत हुआ और उन्होंने अपने-अपने दासपुत्रों को बुलाया और कहा-तुम इन अण्डों को लेकर उच्च जातीय मुर्गियों के अण्डों में रख दो, यावत् उन दास पुत्रों ने वैसा ही किया।

(৭७)

तए णं ते सत्थवाहदारगा देवदत्ताए गणियाए सिद्धं सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स उज्जाणिसिरं पच्चणुब्भवमाणा विहरित्ता तमेव जाणं दुरूढा समाणा जेणेव चंपा णयरी जेणेव देवदत्ताए गणियाए गिहे तेणेव उवागच्छंति २ त्ता देवदत्ताए गिहं अणुप्पविसंति २ त्ता देवदत्ताए गणियाए विउलं जीवियारिहं पीइदाणं दलयंति २ त्ता सक्कारेंति सम्माणेंति स० २ त्ता देवदत्ताए गिहाओ पिडणिक्खमंति २ त्ता जेणेव सयाइं २ गिहाइं तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सकम्मसंपउत्ता जाया यावि होत्था।

भावार्थ - वे सार्थवाह पुत्र देवदत्ता गणिका के साथ सुभूमिभाग उद्यान में तद्गत प्राकृतिक सुषमा का कुछ समय आनंद लेते रहे। तत्पश्चात् वे अपने रथ पर आरूढ हुए और चंपा नगरी में देवदत्ता गणिका के घर आए। देवदत्ता को प्रसन्नता पूर्वक जीवनोपयोगी विपुल उपहार दिया। उसका आदर-सत्कार किया। वे देवदत्ता के यहाँ से प्रस्थान कर अपने-अपने घरों में आए तथा स्वकार्यों में संलग्न हो गए।

संशय का दुष्परिणाम (१८)

तए णं जे से सागरदत्तपुत्ते सत्थवाहदारए से णं कल्लं जाव जलंते जेणेव से वणमऊरी अंड तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तंसि मऊरी अंडयंसि संकिए कंखिए वितिगिच्छ-समावण्णे भेय-समावण्णे कलुससमावण्णे किण्णं ममं एत्थ कीलावण्ए मऊरीपोयए भविस्सइ उदाहु णो भविस्सइ-तिकट्टु तं मऊरी अंडयं अभिक्खणं २ उळ्वत्तेइ परियत्तेइ आसारेइ संसारेइ चालेइ फंदेइ घट्टेइ खोभेइ अभिक्खणं २ कण्णमूलंसि टिट्टियावेइ। तए णं से मऊरी अंडए अभिक्खणं २ उळ्वत्तिज्जमाणे जाव टिट्टियावेजमाणे पोच्चडे जाए यावि होत्था।

शब्दार्थ - संकिए - शंकित-शंका युक्त, कंखिए - फलाकांक्षा युक्त, वितिगिच्छ-समावण्णे - विचिकित्सा समापन्न-परिणाम में-संदेह युक्त, भेयसमावण्णे - भेद समापन्न-द्रैधपूर्ण बुद्धि युक्त, कलुससमावण्णे - कालुष्यपूर्ण बुद्धि युक्त, उदाहु - अथवा, उठ्वतेइ -उद्वर्तित करता है-अण्डे के नीचे के भाग को ऊपर की ओर करता है, परियत्तेइ - परिवर्तित करता है, घुमाता है, आसारेइ - एक स्थान से दूसरे स्थान पर रखता है, संसारेइ - बार-बार स्थानांतरित करता है, चालेइ - चालित करता है, हिलाता है, फंदेइ - स्पंदित करता है, घट्टेइ - हाथ से छूता है, खोमेइ - जमीन में छोटा गड्डा कर उसमें रखता है, कण्णमूलंसि-कान के पास, टिट्टियावेइ - बजाता है, शब्द करवाता है, पोच्चडे - निःसार-निर्जीव।

भावार्थ - उन दोनों में सागरदत्त सार्थवाह का पुत्र सवेरा होने पर जंगली मयूरी का अण्डा जहाँ रखा था, वहाँ आया। अण्डे के संबंध में उसका मन तरह-तरह की शंकाओं, संशयों एवं संदेहों से आंदोलित हुआ। वह मन ही मन कहने लगा-क्या इस अण्डे से क्रीड़ा कारक मयूर शिशु उत्पन्न होगा अथवा नहीं होगा? यों शंका ग्रस्त होकर वह उस अण्डे को बार-बार ऊँचा-नीचा करने, उलटने-पलटने लगा। कान के पास ले जाकर उसे बजाने लगा। पुनः-पुनः यह क्रम दोहराने से वह अण्डा निर्जीव हो गया।

(3P)

तए णं से सागरदत्तपुत्ते सत्थवाहदारए अण्णया कयाई जेणेव से मऊरी अंडए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता तं मऊरीअंडय पोच्चडमेव पासइ, पासित्ता अहो णं ममं एत्थ कीलावणए मऊरी पोयए ण जाय-त्तिकट्टु ओहयमण जाव झियायइ।

भावार्थ - फिर किसी एक समय सागरदत्त पुत्र, जहाँ मयूरी का अण्डा रखा था, वहाँ आया। आकर देखा कि अण्डा निर्जीव पड़ा है। उसने मन ही मन कहा-अरे क्रीड़ाकारक मयूरी का बच्चा उत्पन्न नहीं हुआ है। उसके मन पर बड़ी चोट पहुँची और वह खेद खिन्न होकर आर्त्तध्यान करने लगा।

www.jainelibrary.org

अश्रद्धा का कुफल

(20)

एवामेव समणाउसो! जो अम्हं णिग्गंथो वा २ आयरिय उवज्झायाणं अंतिए पळाइए समाणे पंचमहळाएसु जाव छज्जीवणिकाएसु णिग्गंथे पावयणे संकिए जाव कलुससमावण्णे से णं इह भवे चेव बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावगाणं साविगाणं हीलणिजे णिंदणिजे खिंसणिजे गरहणिजे परिभवणिजे परलोए विय णं आगच्छइ बहूणि दंडणाणि य जाव अणुपरियट्टए।

शब्दार्थ - हीलणिजे - अवहेलना योग्य, णिंदणिजे - निंदनीय, खिंसणिजे - दुत्कारने योग्य, गरहणिजे - गर्हा-कुत्सा के योग्य, परिभवणिजे - परिभव-तिरस्कार योग्य।

भावार्थ - आयुष्मान् श्रमणो! इस प्रकार जो साधु या साध्वी आचार्य या उपाध्याय से प्रव्रज्या स्वीकार कर पाँच महाव्रतों के विषय में यावत् छह जीव निकाय के संबंध में निर्प्रन्थ प्रवचन के संदर्भ में शंकाशील होते हैं, यावत् बार-बार संसार रूप घोर वन में चक्कर काटते रहते हैं।

श्रद्धाशीलता का सत्परिणाम

(२१)

तए णं से जिणदत्तपुत्ते जेणेव से मऊरी अंडए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तंसि मऊरी अंडयंसि णिस्संकिए सुक्वत्तए णं मम एत्थ कीलावणए मऊरी पोयए भविस्सइ - ति कहु तं मऊरी अंडयं अभिक्खणं २ णो उक्वत्तेइ जाव णो टिट्टियावेइ। तए णं से मऊरी अंडए अणुक्वत्तिज्ञमाणे जाव अटिट्टियाविज्ञमाणे तेणं कालेणं तेणं समएणं उन्भिण्णे मऊरीपोयए एत्थ जाए।

शब्दार्थ - सुव्वत्तए - सुव्यक्त-परिपक्व हो जाने के कारण स्फुट होने की स्थिति प्राप्त, अणुव्वित्तिज्ञमाणे-उलट-पुलट न करने से, उन्भिण्णे - उद्भिन्न-सर्वथा परिपक्व होने पर फूटा। भावार्थ - जिनदत्त सार्थवाह का पुत्र, जहाँ मयूरी का अंडा रखा था, वहाँ आया। अण्डे के संबंध में जरा भी शंका न करते हुए वह मन ही मन कहने लगा-अंडा पकने की स्थिति में

आ गया है। इससे क्रीड़ा कारक मयूरी शावक उत्पन्न होगा। यों सोच कर उसने मयूरी के अण्डे को बिल्कुल भी उलट-पुलट नहीं किया, यावत् न उसे हाथ में लेकर बजाया ही। वैसा न करने से यथा-समय अण्डा फूटा। उसमें से मयूरी का बच्चा निकला।

(22)

तए णं से जिणदत्तपुत्ते तं मऊरीपोययं पासइ, पासित्ता हट्टतुट्टे मऊरपोसए सद्दावेइ, सद्दावेता एवं वयासी-तुब्भे णं देवाणुप्पिया! इमं मऊरपोययं बहूहिं मऊरपोसण-पाओगोहिं दव्वेहिं अणुपुव्वेणं सारक्खमाणा संगोवेमाणा संबद्देह णट्टुल्लगं च सिक्खावेह। तए णं ते मऊरपोसगा जिणदत्तस्स पुत्तस्स एयमट्टं पडिसुणेंति २ ता तं मऊर पोयगं गेण्हंति २ ता जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तं मऊर पोयगं जाव णट्टल्लगं सिक्खावेंति।

शब्दार्थ - मऊरपोसए - मयूरों को पालने वालों को, पाओगोहिं - प्रायोग्य-प्रयोग करने योग्य, णद्दुल्लगं - नाचने की कला।

भावार्थ - जिनदत्त सार्थवाह का पुत्र मयूरी शावक को देखकर बहुत ही प्रसन्न हुआ। उसने मयूर पालकों को बुलाया और कहा - मयूर के परिपोषण में, प्रयोग में आने वाले सभी पदार्थों द्वारा क्रमशः इस मयूर शावक का संरक्षण, संगोपन करते हुए संवर्द्धन करो और इसे नाचने की कला सिखलाओ। मयूर पोषकों ने जिनदत्त का कथन स्वीकार किया। वे मोर के बच्चे को अपने घर ले आए और उसका भली भाँति पालन पोषण किया, यावत् उसे नाचने की कला सिखलाई।

(83)

तए णं से मऊरपोयए उम्मुक्कबालभावे विण्णायपरिणयमेत्ते जोव्वणग-मणपुत्ते लक्खणवंजण गुणोववेए माणुम्माण-प्यमाण पडिपुण्ण-पक्ख-पेहुण-कलावे विचित्त-पिच्छ-सयचंदए णीलकंठए णच्चणसीलए एगाय चप्पुडियाए कयाए समाणीए अणेगाइं णट्टुल्लगसयाइं केकारवसयाणि य करेमाणे विहरइ।

शब्दार्थ - विण्णायपरिणयमेसे - बहुत सूझ-बूझ युक्त, जोव्वणगमणपुत्ते - युवावस्था प्राप्त, लक्खणवंजणगुणोववेए - मयूर के उत्तम लक्षण एवं चिह्न युक्त, पक्ख - पंख, पेहुणकलावे - पिच्छसमूह, सयचंदए - सैकड़ों चन्द्रकों से युक्त, णच्चणसीलए - नर्तनशील-नाचने में कुशल, चप्पुडियाए - चुटकी, कयाए - किये जाने पर, बजाए जाने पर।

भावार्थ - उस मयूरी शावक का बचपन बीता। वह सूझबूझ से युक्त युवा हुआ। उसके शरीर के लक्षण-चिह्न उत्तम थे। वह लंबाई, चौड़ाई, ऊँचाई में समुचित प्रमाण युक्त था। उसका पिच्छकलाप सैकड़ों चन्द्रकों से युक्त था। गला नीला था। वह नाचने में बहुत प्रवीण था। एक चुटकी बजाते ही वह सैकड़ों प्रकार से नाचता और बोलियाँ बोलता।

(28)

तए णं ते मऊरपोसगा तं मऊरपोयगं उम्मुक्क जाव करेमाणं पासित्ता णं तं मऊरपोयगं गेण्हंति २ त्ता जिणदत्तस्स पुत्तस्स उवणेंति। तए णं से जिणदत्तपुत्ते सत्थवाहदारए मऊरपोयगं उम्मुक्क जाव करेमाणं पासित्ता हट्टतुट्टे तेसिं विपुलं जीवियारिहं पीइदाणं जाव पडिविसजेइ।

भावार्थ - जब मयूर पोषकों ने देखा कि मोर का बच्चा युवा हो गया है, यावत् नर्तन कला में अतिकुशल हो गया है, तब वे उसे लेकर जिनदत्त के पुत्र के पास आए। जब सार्थवाह पुत्र ने मयूर शावक को उस उन्नत स्थिति में देखा तो वह बहुत प्रसन्न हुआ। उसने मयूर पालकों को जीवनोपयोगी प्रीतिदान दिया और वहाँ से विदा किया।

(२५)

तए णं से मऊरपोयए जिणदत्त पुत्तेणं एगाए चप्पुडियाए कयाए समाणीए णंगोला-भंगिसरोधरे सेयावंगे अवयारियपइण्णपक्खे उक्खित्त-चंदकाइय-कलावे केक्काइयसयाणि विमुच्चमाणे णच्चइ। तए णं से जिणदत्तपुत्ते तेणं मऊरपोयएणं चंपाए णयरीए सिंघाडग जाव पहेसु सइएहि य साहस्सिएहि य सयसाहस्सिएहि य पणिएहि य जयं करेमाणे विहरइ।

शब्दार्थ - णंगोलाभंग - टेढ़ी की हुई पूँछ, सिरोधरे - गर्दन, सेयावंगे - नेत्रों का सफेद अपांग-प्रांत भाग या कोनों से युक्त, अवयारिय - अवतारित-शरीर से दूर किए, पड़ण्ण - प्रकीर्ण-फैलाए हुए, उक्खित - ऊँचे उठाए हुए, केक्काइयसयाणि - सैकड़ों के कारव, णच्चड़ - नाचता है, पणिएहि - द्यूत की तरह धन की शर्त या बाजी।

भावार्थ - वह श्वेत नेत्र, प्रान्त भाग युक्त तरूण मयूर जिनदत्त पुत्र द्वारा एक चुटकी

बजाते ही अपनी गर्दन को सिंहादि की पूँछ की ज्यों टेढा करके, अपने पंखों को शरीर से पृथक् कर, पिच्छकलाप को छत्राकार ऊँचा कर, सैकड़ों केकारव करता हुआ नाचने लगता।

जिनदत्त पुत्र उस तरूण मयूर को चंपा नगरी के चौराहों, चौकों, विभिन्न मार्गों पर अन्य मयूरों के साथ नर्तन कला आदि की प्रतिस्पर्धा में सैकड़ों, हजारों, लाखों की बाजी लगाकर, उसमें विजय प्राप्त करता।

(35)

एवामेव समणाउसो! जो अम्हं णिगांथो वा २ पव्वइए समाणे पंचसु-महव्वएसु छजीवणिकाएसु णिगांथे पावयणे णिस्संकिए णिक्कंखिए णिव्वि-तिगिच्छे से णं इहभवे चेव बहूणं समणाणं जाव वीइवइस्सइ। एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं णायाणं तच्चस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते-ति बेमि।

भावार्थ - हे आयुष्पान् श्रमणो! इसी प्रकार जो साधु या साध्वी के रूप में प्रव्रजित हैं, पांच महाव्रत, षड्जीवनिकाय तथा निर्प्रन्थ प्रवचन में निःशंक, निराकांक्ष और विचिकित्सा-संशय रहित हैं, वे उसी भव में बहुत से श्रमणों एवं श्रमणियों से सम्मानित-सत्कृत होते हुए संसार रूप महाअरण्य को पार कर लेंगे।

हे जंबू! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने 'णायधम्मकहाओ' के तीसरे अध्ययन का यह अभिप्राय प्रज्ञप्त किया, ऐसा मैं कहता हूँ।

उवणय गाहाओ -

जिणवरभासियभावेसु, भावसच्चेसु भावओ मइमं।
णो कुजा संदेहं, संदेहोऽणत्थहेउत्ति॥ १॥
णिस्संदेहत्तं पुण, गुणहेउं जं तओ तयं कजं।
एत्थं दो सिद्धिसुया, अंडयगाही उदाहरणं॥ २॥
कत्थइ मइदुब्बल्लेण, तिब्बिहायरियविरहओ वा वि।
णेयगहणत्तणेणं, णाणावरणोदएणं च॥ ३॥
हेऊदाहरणासंभवे य, सइ सुद्धु जं ण बुज्झिजा।
सब्वण्णुमय-मिवतहं, तहावि इइ चिंतए मइमं॥ ४॥

अणुवकय पराणुग्गह, परायणा जं जिणा जगप्पवरा। जियरागदोसमोहा य, णण्णहावाइणो तेण॥ ५॥ ॥ तच्चं अज्झयणं संमत्तं॥

शब्दार्थ - भावसच्चेसु - सत्य भावयुक्त-तथ्यमूलक, मइमं - मितमान-बुद्धिमान, कुज्जा-कुर्यात्-करना चाहिए, अणत्थहेउ - अनर्थ का कारण, णिस्संदेहतं - असंदिग्धता, गुणहेउं - गुण का कारण-आत्म कल्याणकारी, तओ - ततः-इस कारण, कजं - करना चाहिए, एत्थं - यहाँ, सिद्धिसुया - श्रेष्ठिपुत्र, अंडयगाही - अण्डों को लेने और पालने वाले, कत्थइ - कहा जाता है, मइदुब्बलेण - मित की दुर्बलता के कारण, विहाय - छोड़कर, आयरियविरहओ - आचिरत विरह-विपरीत आचरण, णेयगहणत्तणेणं - भाव रूप में ग्रहण करना चाहिए, णाणावरणोदएणं - ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से, हेऊदाहरणासंभवे - हेतु और उदाहरण की असंभाव्यता पूर्वक, सइ - भलीभाँति, सुडु - सुष्ठु-समुचित रूप में, बुज्झिजा - जानना चाहिए, सव्वण्णुमय - सर्वज्ञ का अभिमत-उपदेश, अवितहं - अवितथ-सत्य, तहावि - तथापि-उस प्रकार से, अणुवकय पराणुग्गह परायणा - अनुकंपा पूर्वक दूसरों पर अनुग्रह करने वाले, जगप्यवरा - जगत् प्रवर-लोक में सर्वश्रेष्ठ, जियरागदोसमोहा - राग-द्रेष-मोह-विजेता, णण्णाहावाइणो - अन्यथा-सत्यविपरीत प्ररूपणा नहीं करने वाले।

भावार्थ - बुद्धिमान् पुरुष को चाहिए कि वह जिनेश्वर देव द्वारा प्रतिपादित सर्वथा तथ्यमूलक भावों में संदेह न करे। उनमें संदेह करना अनर्थ का हेतु है। १॥

उनमें निःसंदेहता-असंदिग्धता गुण का हेतु है। इसलिए ऐसा ही करना चाहिए। यहाँ अण्डग्राही दो श्रेष्ठी पुत्रों का उदाहरण इसी भाव का द्योतक है।। २॥

मतिदुर्बलता के कारण संदेह सिहत होने से ज्ञानी आचार्यों का संयोग न मिलने से, ज्ञेय विषय की अति गहनता से और ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से होने वाले जीव के विपरीत भाव से तुलनीय है॥ ३॥

हेतु और उदाहरण द्वारा इस तथ्य को भलीभाँति जानना चाहिए, आत्मसात् करना चाहिए। बुद्धिमान् पुरुष को यह विचार करना चाहिए कि सर्वज्ञ द्वारा प्रतिपादित तत्त्व सर्वथा सत्य है॥४॥

जिनेश्वरदेव अनुकंपा पूर्वक औरों पर-समस्त लोगों पर अनुग्रह करने वाले हैं। वे राग-द्रेष एवं मोह को जीत चुके हैं, इसलिए वे अन्यथा भाषी नहीं होते॥ ४॥

॥ तृतीय अध्ययन समाप्त॥

कुम्मे णामं चउत्थं अञ्झयणं कूर्म नामक चतुर्थ अध्ययन

(9)

जड़ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं णायाणं तच्चस्स णायज्झयणस्स अयमडे पण्णत्ते चउत्थस्स णं णायाणं के अडे पण्णत्ते?

भावार्थ - आर्य जंबू ने आर्य सुधर्मा स्वामी से निवेदन किया - भगवन्! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने णायधम्मकहाओं के तीसरे अध्ययन का यह अर्थ—भाव, विवेचन प्रज्ञापित किया है तो कृपया बतलाएं, उन्होंने चौथे अध्ययन का क्या आशय प्रतिपादित किया?

(२)

एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणारसी णामं णयरी होत्था वण्णओ। तीसे णं वाणारसीए णयरीए बहिया उत्तरपुरित्थमे दिसीभाए गंगाए महाणईए मयंगतीरदहे णामं दहे होत्था अणुपुळ्व-सुजाय-वप्प-गंभीर-सीयल-जले अच्छ-विमल-सिलल-पिलच्छण्णे संछण्णपत्त-पुप्फ-पलासे बहुउप्पल-पउम-कुमुय-णिलण-सुभग-सोगंधिय-पुंडरीय-महापुंडरीय-स्वपत्त-सहस्सपत्त-केसर-पुप्फोविचए पासाईए ४।

शब्दार्थ - दहे - हद-गहरी झील, सुजाय - सुन्दर, वध्य - वप्र-तट, पिलच्छण्णे - प्रितच्छन्न-परिपूर्ण, संछण्ण - ढका हुआ, उप्पल - उत्पल-नीलकमल, पउम - पदा-सूर्य की रिश्मियों से विकसित होने वाला कमल, कुमुय - कुमुद-चन्द्रमा की ज्योत्स्ना से विकसित होने वाला कमल, णिलण - निलन-लाल कमल, पुंडरीय - पुंडरीक-सफेद कमल, सयपत्त - सौ पत्तों वाले कमल, सहस्सपत्त - हजार पत्तों वाले कमल, केसर - किंजल्क-परागकण, पासाईए-प्रासादिक-अपनी सुंदरता से मन को लुभाने वाली।

भावार्थ - आर्य सुधर्मा स्वामी ने कहा - हे जंबू! उस काल उस समय वाणारसी (बनारस) नामक नगरी थी। नगरी का वर्णन औपपातिक सूत्र से ग्राह्य है। वाणारसी के उत्तर पूर्व

भाग में ईशान कोण में गंगा महानदी के निकट मृत गंगातीर द्रह नामक बड़ी झील थी। उसके तट यथा क्रम बहुत ही सुंदर बने थे। वह बहुत गहरी थी। शीतल, स्वच्छ, निर्मल जल से भरी हुई थी। वह झील कमल आदि के पत्तों तथा फूलों आदि की पंखुड़ियों से ढकी थी। बहुत से सुंदर सुगंधित उत्पल, पदा, कुमुद, निलन, पुण्डरीक, महापुण्डरीक, शतपत्र एवं सहस्रपत्र संज्ञक कमलों के किंजल्क तथा अन्यान्य पुष्पों से समृद्ध थी, देखते ही मन को हर लेती थी।

(३)

तत्थ णं बहूणं मच्छाण य कच्छभाण य गाहाण य मगराण य सुंसुमाराण य सइयाण य साहस्सियाण य सयसाहस्सियाण य जूहाइं णिब्भयाइं णिरुव्विग्गाइं सुहंसुहेणं अभिरममाणाइं २ विहरंति।

शब्दार्थ - मच्छाण - मत्स्यों का, कच्छभाण - कच्छपाण-कछुओं का, गाहाण -घड़ियालों का, मगराण - मगरमच्छों का, सुंसुमार - सूँस नामक जल-जन्तुओं का, जूहाइं -यूथ-समूह, णिरुव्विग्गाइं - निरुद्विग्न-उद्देग रहित।

भावार्थ - उस झील में सैकड़ों, हजारों लाखों मत्स्य, घड़ियाल, मगरमच्छ तथा सूँस जाति के जलचर जीवों के समूह निर्भय, उद्देग रहित एवं सुखपूर्वक विचरण करते थे।

दो मांस-लोलुप शृगाल

(8)

तस्स णं मयंगतीरद्दहस्स अदूरसामंते एत्थ णं महं एगे मालुयाकच्छए होत्था वण्णओ। तत्थ णं दुवे पावसियालगा परिवसंति पावा चंडा रुद्दा तिल्लच्छा साहसिया लोहियपाणी आमिसत्थी आमिसाहारा आमिसप्पिया आमिसलोला आमिसं गवेसमाणा रितं वियालचारिणो दिया पच्छण्णं चावि चिट्ठंति।

शब्दार्थ - पावसियालगा - पापी श्रृगाल, तिल्लच्छा - इष्ट वस्तु-मांस प्राप्त करने में तत्पर, साहसिया - दुस्साहसी, लोहियपाणी - रक्तरंजित अग्रपाद युक्त, आमिसत्थी - मांसार्थी, आमिसाहारा - मांस भक्षी, आमिसप्पिया - मांसप्रिय, आमिसलोला - मांस लोलुप, रतिं - रात्रि, वियाल - विकाल-संध्या, पच्छण्णं - प्रच्छन्न-छिपे हुए।

भावार्थ - उस मृत गंग तीर द्रह नाम झील से न अधिक दूर, न अधिक निकट एक बड़ा मालुकाकच्छ था। उसका वर्णन द्वितीय अध्ययन के अनुसार यहाँ अभिधेय है। उस मालुकाकच्छ में दो पापी गीदड़ रहते थे। वे पापाचारी, क्रोधी, भयंकर तथा मांस प्राप्त करने में सर्वथा तत्पर तथा दुःसाहसी थे। उनके आगे के पंजे खून से रंगे रहते थे। वे नितांत मांस-लोलुपी थे। रात्रि एवं संध्याकाल में वे मांस की खोज में घूमते थे, दिन में छिपे रहते थे।

दो कछुओं का झील से बहिरागमन

(乂)

तए णं ताओ मयंगतीरदृहाओ अण्णया कयाई सूरियंसि चिरत्थिमियंसि लुलियाए संज्ञाए पविरल-माणुसंसि णिसंत-पडिणिसंतंसि समाणंसि दुवे कुम्मगा आहारत्थी आहारं गवेसमाणा सणियं २ उत्तरंति तस्सेव मयंगतीरदृहस्स परिपेरंतेणं सब्बओ समंता परिघोलेमाणा २ वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति।

शब्दार्थ - सूरियंसि चिरत्थिमियंसि - सूर्यास्त के बहुत समय बाद, लुलियाए - व्यतीत होने पर, पविरलमाणुसंसि - जब विरले ही मनुष्य दिखाई देते हो-सुनसान समय में, णिसंतपिडसंतंसि - सोने का समय होने पर, सब ओर खामोशी छा जाने पर, कुम्मगा - कूर्मक-कछुए, परिपेरंतेणं - आस-पास, परिघोलेमाणा - घूमते हुए, वित्तिं - उदरपूर्ति, कप्येमाणा - चिंता करते हुए।

भावार्थ - किसी समय सूर्यास्त के बहुत बाद, संध्या के बीत जाने पर, जब विरले ही लोगों का आवागमन था, शयनकाल होने से सर्वत्र खामोशी छाई हुई थी, उस मृतगंगतीर नामक झील से दो आहारार्थी कछुए, आहार की खोज में धीरे-धीरे बाहर निकले। उसी झील के आस-पास वे अपने उदरपूर्ति की चिंता में घूमने लगे।

शृगालों की कछुओं पर दृष्टि

(६)

तयाणंतरं च णं ते पावसियालगा आहारत्थी जाव आहारं गवेसमाणा मालुयाकच्छयाओ पडिणिक्खमंति २ त्ता जेणेव मयंगतीरद्दहे तेणेव उवागच्छंति

उवागच्छित्ता तस्सेव मयंगतीरद्दहस्स परिपेरतेणं परिघोलेमाणा वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति तए णं ते पावसियाला ते कुम्मए पासंति २ त्ता जेणेव ते कुम्मए तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

भावार्थ - उसके बाद वे पापी सियार आहार की खोज में मालुकाकच्छ से बाहर निकले, मृतगंगतीर द्रह के निकट आए और उदरपूर्ति की चिंता में उसके इर्द-गिर्द घूमने लगे। उन पापी सियारों की दृष्टि कछुओं पर पड़ी और वे उस ओर जाने में प्रवृत्त हुए।

क्छुओं द्वारा अंगगोपन

(७)

तए णं ते कुम्मगा ते पावसियालए एजमाणे पासंति २ त्ता भीया तत्था तसिया उव्विगा संजायभया हत्थे य पाए य गीवाए य सएहिं २ काएहिं साहरंति २ त्ता णिच्चला णिप्फंदा तुसिणीया संचिद्वंति।

शब्दार्थ - गीवाए - गर्दन, काएहिं - शरीर में, साहरंति - समेट लेते हैं।

भावार्थ - कछुओं ने पापी सियारों को आते हुए देखा, वे भयभीत एवं उद्विग्न हो गए। उन्होंने अपने हाथ, पैर एवं गर्दन को अपने-अपने शरीर में समेट लिया-छिपा लिया। वे निश्चल-हलचल रहित एवं निःशब्द हो गए।

सियारों का दुष्प्रभाव

(5)

तए णं ते पावसियालगा जेणेव ते कुम्मगा तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता ते कुम्मगा सब्बओ समंता उब्बत्तेंति परियत्तेंति आसारेंति संसारेंति चालेंति घटेंति फंदेति खोमेंति णहेहिं आलुंपंति दंतेहिं य अक्खोडेंति णो चेव णं संचाएंति तेसिं कुम्मगाणं सरीरस्स आबाहं वा पबाहं वा वाबाहं वा उप्पाएत्तए छविच्छेयं वा करेत्तए। तए णं ते पावसियालगा एए कुम्मए दोच्चंपि तच्चंपि सब्बओ समंता उब्बर्तेति जाव णो चेव णं संचाएंति करेत्तए ताहे संता तंता परितंता णिव्विण्णा समाणा सणियं २ पच्चोसक्केंति एगंतमवक्कमंति २ त्ता णिच्चला णिप्फंदा तुसिणीया संचिद्वंति।

शब्दार्थ - उब्बत्तेंति - उद्वर्तित-ऊपर करते हैं, परियत्तेंति - परिवर्तित-स्थानांतरित करते हैं, आसारेंति - सरकाते हैं, संसारेंति - हटाते हैं, चालेंति - इधर-उधर पटकते हैं, घट्टेंति - पंजों से छूते हैं, णहेंहिं - नाखूनों से, आलुंपंति - कुरेदते हैं, अक्खोडेंति - दाँतों से विदारित करते हैं, चीरते हैं, संचाएंति - समर्थ होते हैं, आबाहं - थोड़ी पीड़ा, पबाहं - अधिक पीड़ा, वाबाहं - विशेष बाधा, उपाएत्तए - उत्पन्न करने में, छविच्छेयं - चमड़ी उधेड़ने में या अंग भंग करने में, संता - श्रांत, तंता - मानसिक ग्लानि युक्त, परितंता - सर्वथा खेद युक्त, णिळ्ळिण्णा - निर्वित्न-उदासीन, पच्चोसक्केंति - पीछे लौटते हैं।

भावार्थ - वे पापी सियार, जहाँ कछुए थे, वहाँ आए। उन्होंने कछुओं को सब ओर से उलट-पुलट किया, स्थानांतरित किया। इधर-उधर सरकाया हटाया, छुआ, हिलाया, क्षुब्ध किया, नाखूनों से कुरेदा, दाँतों से विदारित किया किंतु उन कछुओं के शरीर में वे जरा भी बाधा और पीड़ा उत्पन्न नहीं कर सके, उनकी चमड़ी को नहीं उधेड़ सके अथवा अंग-भंग नहीं कर सके।

फिर उन पापी सियारों ने कछुओं को दो बार तीन बार इधर उधर उलट-पुलट किया, यावत् वे उन्हें पीड़ा पहुँचाने में समर्थ नहीं हो सके। इससे वे श्रांत, ग्लान, खिन्न और उदासीन होकर एकांत स्थान में चले गए। वहाँ निश्चल, निस्पंद होकर चुपचाप बैठ गए।

अस्थिर कूर्म का सर्वनाश

(3)

तत्थ णं एगे कुम्मगे ते पावसियालए चिरंगए दूरंगए जाणिता सणियं सणियं एगं पायं णिच्छुभइ। तए णं ते पावसियालगा तेणं कुम्मएणं सणियं सणियं एगं पायं णीणियं पासंति २ त्ता ताए उक्किट्टाए गईए सिग्धं चवलं तुरियं चंडं जइणं वेगियं जेणेव से कुम्मए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तस्स णं कुम्मगस्स तं पायं णखेहिं आलुंपंति दंतेहिं अक्खोडेंति तओ पच्छा मंसं च सोणियं च आहारेंति ? ता तं कुम्मगं सव्वओ समंता उक्क्तेंति जाव णो चेव णं संचाएंति करेत्तए ताहे दोच्चंपि अवक्कमंति एवं चत्तारि वि पाया जाव सणियं सणियं गीवं णीणेइ। तए णं ते पावसियालगा तेणं कुम्मएणं गीवं णीणियं पासंति ? ता सिग्धं चवलं तुरियं चंडं णहेहिं दंतेहिं कवालं विहाडेंति ? ता तं कुम्मगं जीवियाओ ववरोवेंति ? ता मंसं च सोणियं च आहारेंति।

शब्दार्थ - चिरंगए - गए हुए बहुत समय बीत जाने पर, दूरंगए - दूर गए हुए, णिच्छुभइ - बाहर निकालता है, णीणियं - बाहर निकाला हुआ, जड़णं - तेजी से, विहार्डेति - विदारित करते हैं, ववरोवेंति - व्यपरोपित करना-वियोजित करना।

भावार्थ - उन कछुओं में से एक कछुए ने जब देखा कि पापी सियारों को गए बहुत समय हो गया है, वे दूर चले गए हैं, तो उसने धीरे-धीरे अपना एक पैर बाहर निकाला। उन दुष्ट सियारों ने उस कछुए को ऐसा करते हुए देखा। वे उत्कृष्ट, त्वरित, अत्यंत वेगयुक्त, विकराल गित से उस कछुए के पास पहुँचे। उन्होंने कछुए के उस पैर को नाखूनों से खरोच डाला। दाँतों से विदीर्ण कर डाला। फिर उसके मांस और रक्त का भक्षण किया। तत्परचात् उन्होंने उस कछुए को चारों ओर उलट-पुलट कर ऊंचा नीचा किया किंतु वे उसे क्षुब्ध, उद्विम्न नहीं कर पाए। फिर दूसरी बार भी ऐसा ही हुआ। उसने तीसरा और चौथा पैर बाहर निकाला, जिनको सियारों ने नोच डाला। विदारित कर दिया, उनका रक्त-मांस खा गए। कुछ देर बाद उस कछुए ने अपनी गर्दन बाहर निकाली, यह देखकर वे नृशंस सियार बड़ी तेजी से वहाँ पहुँचे। दाँतों से उसके कपाल को विदीर्ण कर डाला, उस कछुए के जीवन का अंत कर डाला तथा उसका रक्त-मांस खा-पी गए।

अगुप्तेब्द्रिय कच्छप से शिक्षा

(90)

एवामेव समणाउसो! जो अम्हं णिग्गंथो वा २ आयरिय उवज्झायाणं अंतिए

पव्यइए समाणे पंच य से इंदिया अगुत्ता भवंति से णं इहभवे चेव बहूणं समणाणं ४ हीलणिजे परलोए वि य णं आगच्छइ बहूणं दंडणाणं जाव अणुपरियट्टइ जहा से कुम्मए अगुत्तिंदिए।

शब्दार्थ - अगुत्ता - अगुप्त-विषय सेवन हेतु बहिःप्रवृत्त।

भावार्थ - इसी प्रकार हे आयुष्पान् श्रमणो! आचार्य अथवा उपाध्याय के पास प्रव्रजित जो साधु-साध्वी पाँचों इन्द्रियों को अगुप्त रखते हैं-बाहर या विषयों में प्रवृत्त करते हैं, वे इस भव में बहुत से श्रमण-श्रमणी तथा श्रावक-श्राविका द्वारा अवहेलना योग्य होते हैं। जिस प्रकार वह अगुप्तेन्द्रिय कछुआ कष्ट को प्राप्त हुआ उसी प्रकार वे परलोक में बहुत प्रकार के दण्ड कष्ट पाते हैं, यावत् अनन्त संसार में बारबार भटकते हैं।

जागरूक क्छुआ

(99)

तए णं ते पावसियालगा जेणेव से दोच्चे कुम्मए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तं कुम्मगं सब्बओ समंता उब्बत्तेंति जाव दंतेहिं अक्खुडेंति जाव करित्तए। तए णं ते पावसियालगा दोच्चंपि तच्चंपि जाव णो संचाएंति तस्स कुम्मगस्स किंचि आबाहं वा पबाहं वा वाबाहं वा उप्पायत्तए छविच्छेयं वा करित्तए। तए णं ते पावसियालगा एए कुम्मए दोच्चं पि तच्चंपि सब्बओ समंता उब्बतेंति, जाव णो चेव णं संचायंति करित्तए ताहे संता तंता परितंता णिब्विण्णा समाणा जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया।

भावार्थ - तदनंतर वे नीच सियार, जहाँ दूसरा कछुआ था, वहाँ आए। उसकों चारों ओर से उलट-पुलट कर देखा, यावत् वे उसको दांतों से विदीर्ण नहीं कर सके।

उन सियारों ने दो-तीन बार वैसा ही दुष्प्रयास किया किंतु उस कछुए को जरा भी बाधा, पीड़ा नहीं पहुँचा सके तथा न ही उसका अंग-भंग ही कर सके। अंततः वे श्रांत, खिन्न एवं उदास होकर जिधर से आए थे, उधर ही चले गए।

(97)

तए णं से कुम्मए ते पावसियालए चिरंगए दूरगए जाणित्ता सणियं सणियं गीवं णीणेइ २ त्ता दिसावलोयं करेइ, करेत्ता जमग-समगं चत्तारि वि पाए णीणेइ २ त्ता ताए उक्किट्ठाए कुम्मगईए वीईवयमाणे २ जेणेव मयंगतीरदृहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मित्त-णाइ-णियग-सयण-संबंधि-परियणेणं सिद्धं अभिसमण्णाए यावि होत्था।

शब्दार्थ - जमग-समगं - एक साथ, एकाएक।

भावार्थ - जब दुष्ट गीदड़ों को गए काफी देर हो गई, वे दूर चले गए, यह जानकर उस कछुए ने धीरे-धीरे अपनी गर्दन बाहर निकाली, समस्त दिशाओं का अवलोकन किया। एक साथ चारों पैर बाहर निकाले तथा अपनी उत्कृष्ट कूर्मगित से—अपनी तेज चाल से आगे बढ़ता हुआ, मृतगंगतीर झील में पहुँचा। वहां अपने मित्रों, स्वजनों, संबंधियों एवं परिजनों में मिल गया।

(**\$**P)

एवामेव समणाउसो! जो अम्हं समणो वा समणी वा आयरिय उवज्झायाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइय समाणे पंच से इंदियाइं गुत्ताइं भवंति जाव जहाउ से कुम्मए गुत्तिंदिए।

भावार्थ - आयुष्मान् श्रमणो! जो साधु या साध्वी अपनी पाँचों इन्द्रियों को गुप्त रखते हैं, वे उस गुप्तेन्द्रिय कछुए की तरह अपने संयम जीवितव्य की रक्षा करते हैं। वे सर्वत्र प्रशंसित एवं समादृत होते हैं। ऐहिक एवं पारलौकिक जीवन में शांति प्राप्त करते हैं।

(१४)

एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं चउत्थस्स णायज्झयणस्स अयमट्टे पण्णत्ते-त्तिबेमि।

भावार्थ - आर्य सुधर्मा स्वामी बोले - हे जंबू! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने चतुर्थ अध्ययन का यह अर्थ कहा है। जैसा मैंने उनसे श्रवण किया, वैसा ही तुम्हें बतलाया।

उवणाय गाहाउ -

विसएसु इंदिआइं रुंभंता रागदोसणिम्मुक्का। पावंति णिव्वुइसुहं कुम्मुव्व मयंगदहसोक्खं॥ १॥ अवरे उ अणत्थ परंपरा उ पावेंति पावकम्भवसा। संसारसागरगया गोमाउग्गसिय-कुम्मोव्व॥ २॥

॥ चउत्थं अज्झयणं समत्तं॥

शब्दार्थ - रुंभंता - अवरोध करते हुए, णिम्मुक्का - निर्मुक्त, णिव्वुइसुहं - निर्वृतिसुख-परमशांति रूप आध्यात्मिक आनंद, पावकम्मवसा - पाप कर्म के कारण, गोमाउ - श्रृगाल, गसिय - ग्रसित-खाए गए, कुम्मोच्च - कछुए की तरह।

भावार्थ - राग और द्वेष से रहित जो साधक अपनी इन्द्रियों को विषय प्रवृत्त होने से रोकते हैं, वे परम शांति, परमसुख प्राप्त करते हैं, जैसे अपने अंगों को गोपित रखने वाले कछुए ने मृतगंगद्रह में सुख प्राप्त किया।। १॥

जो अन्य अपनी इन्द्रियों को गोपित नहीं रखते, वे पापकर्मों के परिणाम स्वरूप अनेकानेक दुःख प्राप्त करते हैं, सियारों द्वारा खाए गए अगुप्तेन्द्रिय कछुए की तरह संसार-सागर में पड़े रहते हैं, घूमते रहते हैं॥ २॥

॥ चौथा अध्ययम समाप्त॥



सेलयं नामं पंचमं अज्झयणं शैलक नामक पांचवाँ अध्ययन

(9)

जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं चउत्थस्स णायज्झयणस्स अयमहे पण्णत्ते पंचमस्स णं भंते! णायज्झयणस्स के अहे पण्णत्ते?

भावार्थ - आर्य जंबू ने आर्य सुधर्मा स्वामी से जिज्ञासा की - भगवन्! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने चतुर्थ ज्ञाताध्ययन का यह अर्थ कहा है, जो आपने बतलाया। कृपया कहें, भगवान् ने पाँचवें ज्ञाताध्ययन का क्या अर्थ प्ररूपित किया है?

द्वारवती नगरी

(२)

एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवई णामं णयरी होत्था पाईण-पडीणायया उदीण-दाहिण-वित्थिण्णा णव-जोयण-वित्थिण्णा दुवालस-जोयणायामा धणवइ-मइ-णिम्माया चामीयर-पवर-पागारा णाणा-मणि-पंचवण्ण-कविसीसग-सोहिया अलयापुरि-संकासा पमुइय-पक्कीलिया पच्चक्खं देयलोयभूया।

शब्दार्थ - पाईण - पूर्व, पडीण - पश्चिम, उदीण - उत्तर, दाहिण - दक्षिण, धणवइ - धनपति-कुबेर, चामीयर - स्वर्ण, कविसीसग - कि शीर्षक-कंगूरे, अलयापुरिसंकासा - अलका नगरी के सदृश, पक्कीलिया - प्रक्रीड़ित-क्रीड़ा करने में निपुण, पच्चक्खं - प्रत्यक्ष-साक्षात्।

भावार्थ - आर्य सुधर्मा स्वामी बोले - हे जंबू! उस काल, उस समय द्वारवती—द्वारका नामक नगरी थी। वह पूर्व-पश्चिम आयामयुक्त-लंबी तथा उत्तर-दक्षिण विस्तारयुक्त-चौड़ी थी। उसकी चौड़ाई नौ योजन और लंबाई बारह योजन थी। कुबेर की बुद्धि के अनुसार उसकी रचना हुई थी। उसका प्राकार-परकोटा सोने से बना था। वह नगरी पाँच वर्ण के भिन्न-भिन्न प्रकार के

रत्नों से खिचत कंगूरों से सुशोभित थी। वह देवराज इन्द्र की राजधानी अलका के सदृश प्रतीत होती थी। उसके निवासी बड़े प्रमोद-आनंदोत्साह और क्रीड़ाविनोद के साथ बहुत ही सुखमय जीवन व्यतीत करते थे। वह साक्षात् देवलोक के तुल्य थी।

रैवतक पर्वत

(\$)

तीसे णं बारवईए णयरीए बहिया उत्तरपुरच्छिमे दिसीभाए रेवयगे णाम पव्चए होत्था तुंगे गगणतल-मणुलिहंत-सिहरे णाणाविहगुच्छ-गुम्म-लया विल्ल-परिगए हंस-मिग-मयूर-कोंच-सारस चक्कवाय-मयणसाल-कोइल-कुलोववेए अणेग-तडाग-वियर-उज्झर य पवायपभारसिहरपउरे अच्छरगण-देव-संघ-चारण-विज्ञाहर-मिहुण-संविधिण्णे णिच्चच्छणए दसार-वरवीर-पुरिस-तेलोक्क-बलवगाणं सोमे सुभगे पियदंसणे सुरूवे पासाईए ४।

शब्दार्थ - तुंगे - ऊँचा, गगणतलमणुलिहंत-सिहरे - आकाश को छूने वाली चोटियों से युक्त, मयणसाल - मैना, कोइल - कोकिला-कोयल, उज्झर - झरने, पवाय - प्रपात, पभार - प्राग्भार-कुछ झुके हुए पर्वतीय भाग, अच्छरगण - अप्सराओं का समूह, संविचिण्णे-संविचीर्ण-आसेवित-सेवन किए जाने वाले, णिच्चच्छणए - सदैव उत्सव युक्त, दसार- वरवीरपुरिस - समुद्रविजय आदि दस उत्कृष्ट वीर पुरुष।

भावार्थ - उस द्वारका नगरी के बाहर, उत्तर-पूर्व दिशा भाग में, रैवतक (गिरनार) नामक पर्वत था। वह बहुत ऊँचा था। उसकी चोटियाँ आकाश को दूती थीं। वह नाना प्रकार के वृक्ष-समूहों, मण्डपों के रूप में परिणत लता समूहों आदि से व्याप्त था। हंस, मृग, मयूर, क्रीञ्च, सारस, चक्रवाक, मैना, कोकिला-इनके समूह से समायुक्त था। अनेक सरोवर, कंदरा, निर्झर, प्रपात तथा प्राग्भार युक्त था। अप्सराओं के समूह, देवों के समुदाय, चारणों एवं विद्याधर-युगलों से व्याप्त था। समुद्रविजय आदि त्रैलोक्य में उत्तम बलशाली दशाई- दश योद्धाओं द्वारा नित्य प्रति समायोजित उत्सवों का यह स्थान था। यह सौम्य, सुभग, देखने में आनंदप्रद, उत्तम आकार युक्त, प्रसन्नताप्रद, दर्शनीय तथा अत्यंत सुंदर था।

[🗳] दशार्ह - समुद्रविजय, अक्षोभ, स्तिमित, सागर, हिमवान, अचल, धरण, पूरण, अभिचंद, वसुदेव।

विवेचन - यद्यपि द्वारवती नगरी, रैवतक गिरि और अगले सूत्रों में वर्णित नन्दनवन आदि सूत्र रचना के काल में भी विद्यमान थे, तथापि भूतकाल में जिस पदार्थ की जो स्थिति-अवस्था अथवा पर्याय थी वह वर्तमान काल में नहीं रहती। यों तो समय-समय में पर्याय का परिवर्तन होता रहता है किन्तु दीर्घकाल के परचात् तो इतना बड़ा परिवर्तन हो जाता है कि वह पदार्थ नवीन-सा प्रतीत होने लगता है। भगवान् नेमिनाथ के समय की द्वारवती और भगवान् महावीर के और उनके भी परचात् की द्वारवती में आमूल-चूल परिवर्तन हो गया। इसी दृष्टिकोण से सूत्रों में इन स्थानों के लिए भूतकाल की क्रिया का प्रयोग किया गया है।

(૪)

तस्स णं रेवयगस्स अदूरसामंते एत्थ णं णंदणवणे णामं उज्जाणे होत्था सव्वोउय-पुष्फ-फल-समिद्धे रम्मे णंदण-वणप्पगासे पासाईए ४। तस्स णं उज्जाणस्स बहुमज्झदेसभाए सुरप्पिए णामं जक्खाययणे होत्था दिव्वे वण्णओ।

भावार्थ - रैवतक पर्वत से न बहुत दूर तथा न बहुत निकट, नंदनवन नामक उद्यान था। समस्त ऋतुओं में फूलने-फलने वाले पुष्पों और फलों से समृद्ध था। नंदनवन के समान रमणीय, आनंदप्रद, दर्शनीय और अतीव सुंदर था। उस उद्यान के मध्य भाग में सुरप्रिय नाम का यक्षायतन था जो दिव्य एवं वर्णन करने योग्य था।

श्रीकृष्ण वासुदेव

(২)

तत्थ णं बारवईए णयरीए कण्हे णामं वासुदेवे राया परिवसइ। से णं तत्थ समुद्दविजयपामोक्खाणं दसण्हं दसाराणं बलदेव-पामोक्खाणं पंचण्हं महावीराणं उग्नसेण-पामोक्खाणं सोलसण्हं राईसहस्साणं पज्जुण्णपामोक्खाणं अद्धुहाणं कुमारकोडीणं संबपामोक्खाणं सहीए दुद्दंत साहस्सीणं वीरसेण-पामोक्खाणं एक्कवीसाए वीरसाहस्सीणं महासेणपामोक्खाणं छप्पण्णाए बलवगसाहस्सीणं रुप्पण्णाए बलवगसाहस्सीणं रुप्पण्णाए बलवगसाहस्सीणं रुप्पण्णाए बलवगसाहस्सीणं रुप्पण्णाए बलवगसाहस्सीणं रुप्पण्णाए बलवगसाहस्सीणं रुप्पणापामोक्खाणं अणेगाणं गणियासाहस्सीणं अण्णेसि च बहुणं ईसरतलवर जाव सत्थवाहपभिईणं वेयह-गिरि-सागर-पेरंतस्स य दाहिणह भरहस्स य बारवईए णयरीए आहेवच्चं जाव पालेमाणे विहरइ।

शब्दार्थ - पामोक्ख - प्रमुख, राई - राजा, पज्जुण्ण - प्रद्युम्न, अद्धुद्वाणं - साढे तीन, संब - शाम्ब, दुदंत - दुर्दान्त, रुप्पिणी - रुविमणी, ईसर - ईश्वर-ऐश्वर्यशाली एवं प्रभावशाली पुरुष, तलवर - राजसम्मानित विशिष्ट नागरिक।

भावार्थ - द्वारका नगरी में राजा कृष्ण वासुदेव निवास करते थे। वे समुद्रविजय आदि दस दशाहों, बलदेव आदि पाँच महावीरों, उग्रसेन आदि सोलह हजार राजाओं, प्रद्युम्न आदि साढे तीन करोड़ कुमारों, शाम्ब आदि साठ हजार दुर्दान्त साहिसक-योद्धाओं, वीरसेन आदि इक्कीस हजार वीरों, महासेन आदि छप्पन हजार बलवान पुरुषों, रुक्मिणी आदि बत्तीस हजार महिलाओं-रानियों, अनक्सेना आदि अनेक सहस्र गणिकाओं, अन्य बहुत से ऐश्वर्यशाली पुरुषों, राज्य सम्मानित विशिष्टजनों, यावत् सार्थवाहों का तथा उत्तर दिशा में वैताद्य एवं अन्य तीन दिशाओं में लवण समुद्र तक दक्षिणार्ध भरत क्षेत्र का तथा द्वारका नगरी का आधिपत्य करते थे, यावत् पालन करते थे।

विवेचन - उपर्युक्त सूत्र में रुक्मिणी प्रमुख बत्तीस हजार रानियाँ बताई है। वह कृष्ण महाराज के अधीनस्थ सोलह हजार राजाओं की एक एक पुत्री तथा एक-एक देश की सबसे सुन्दर कन्या, इस प्रकार प्रत्येक देश की दो-दो की गिनती से बत्तीस हजार समझना चाहिए। अन्तकृत दशा सूत्र अध्ययन एक में श्री कृष्ण महाराज की सोलह हजार रानियाँ बताई गई है। वहाँ पर मात्र उन सोलह हजार राजाओं की कन्याओं की ही गिनती की गई है। अतः दोनों सूत्रों में अलग-अलग अपेक्षा से वर्णन होने से परस्पर विरोध नहीं समझना चाहिए।

बलदेव वासुदेव आदि के लिए भी पूज्य दस पुरुषों को दशाई कहा गया है जिनमें समुद्रविजयजी तो त्रैलोक्य पूज्य भगवान् अरिष्टनेमि स्वामी के पिता थे।

अमुक प्रकार का शौर्य प्रदर्शित करने पर जिस प्रकार आज-कल सैनिकों को वीर चक्र, महावीर चक्र, परमवीर चक्र आदि प्रदान किये जाते हैं, वैसे ही वीर, महावीर आदि के विभाग श्री कृष्ण महाराज के समय में होने की संभावना हैं।

वसुदेव की देवकी रानी के कृष्ण महाराज एवं रोहिणी से बलदेव का जन्म हुआ था। प्रद्युम्नकुमार रुक्मिणि के अंगजात थे तथा शाम्ब की माता का नाम जाम्बवती था।

सेना की टुकड़ियाँ 'रिजिमेन्ट्स' को 'बलक्ग-बलवर्ग' कहा जाता है।

थावच्चा-पुत्र

(\xi\)

तस्स णं बारवर्ड्ए णयरी थावच्चा णामं गाहावङ्णी परिवसइ अहा जाव अपरिभूया। तीसे णं थावच्चाए गाहावङ्णीए पुत्ते थावच्चापुत्ते णामं सत्थवाहदारए होत्था सुकुमालपाणिपाए जाव सुरूवे। तए णं सा थावच्चा गाहावङ्णी तं दारयं साइरेगअहवासजाययं जाणिता सोहणंसि तिहिकरणणक्खत्तमुहुत्तंसि कलायरियस्स उवणेइ जाव भोगसमत्थं जाणिता बत्तीसाए इब्भकुलबालियाणं एगदिवसेणं पाणि गेण्हावेइ बत्तीसओ दाओ जाव बत्तीसाए इब्भकुलबालियाहिं सिद्धं विपुले सदफरिसरसरूववण्णगंधे जाव भुंजमाणे विहरइ।

शब्दार्थ - गाहावइणी - गाथापत्नी (श्रेष्ठी पत्नी), साइरेगअहवासजाययं - आठ वर्ष से कुछ अधिक आयु का, सोहणंसि - उत्तम, इब्भकुल-बालियाणं - अति धनाद्य सार्थवाहों की कन्याओं के साथ, दाओ - दायभाग-स्रीधन।

भावार्थ - उस द्वारका नगरी में स्थापत्या (थावच्चा) नामक सार्थवाह महिला निवास करती थी। वह अत्यंत समृद्धिशालिनी, यावत् अपरिभूता-सर्वसम्मानिता थी। उसका पुत्र 'थावच्चापुत्र' नाम से प्रसिद्ध था। उसके हाथ-पैर आदि समस्त अंग सुकुमार थे, यावत् वह अत्यंत रूपवान था। जब थावच्चा ने अपने पुत्र को आठ वर्ष से कुछ बड़ा हुआ देखा तो वह उसे उत्तम ग्रह, करण, नक्षत्र और मुहूर्त में कलाचार्य-शिक्षक के पास ले गई, यावत् जब वह विभिन्न कला आदि की शिक्षा प्राप्त कर युवा हुआ, तब उसको भोग-समर्थ जानकर बत्तीस अति धनाद्य सार्थवाहों की कन्याओं के साथ एक ही दिन पाणिग्रहण करवाया। उन बत्तीस नववधुओं को दायभाग (प्रीति दान) दिया, यावत् वह सार्थवाह पुत्र बत्तीस नवपरिणीता पत्नियों के साथ शब्द, स्पर्श, रस, रूप, वर्ण एवं गंध विषयक विपुल भोग भोगता हुआ रहने लगा।

विवेचन - इस सूत्र में प्रयुक्त 'थावच्चा' शब्द विचारणीय है। संस्कृत में 'स्थपित' शब्द वास्तुकार, भवन निर्माता या काष्ठकलाविज्ञ, वर्धिक-बढई आदि के लिए प्रयुक्त है। 'स्थपतेर्भावः स्थापत्यम्'-इस प्रकार भाव में स्थपित से स्थापत्य शब्द बनता है। स्थापत्य का ही प्राकृत रूप थावच्च है। यहाँ एक शंका होती है। स्थापत्य भाव वाचक संज्ञा है, जबिक यहाँ प्रयुक्त 'थावच्च' का स्नीलिंग रूप 'थावच्च' व्यक्तिवाचक है।

इसका समाधान यों किया जा सकता है कि जहाँ व्यक्ति अपने से संबद्ध कला, व्यवसाय या कार्य में असाधारण, अनुपम नैपुण्य प्राप्त कर लेता है, तब वह स्वगत भाव का प्रतीक बन जाता है। अर्थात् वह भाव सूचक शब्द व्यक्ति सूचकता प्राप्त कर लेता है। इसका दूसरा समाधान यों है कि 'स्थापत्य' का अभिधा शक्ति द्वारा बोध्य अर्थ 'स्थपित विषयक कला विशेष' है। किंतु यदि वह व्यक्ति के लिए प्रयुक्त हो तो मुख्यार्थ का बोध होता है और तत्संबंध व्यक्तिपरक अर्थ वहाँ लिया जाता है। काव्य शास्त्र में 'कुन्ताः प्रविशन्ति'-भाले प्रवेश करते हैं, ऐसा उदाहरण आया है। भाले निर्जीव हैं, प्रवेश नहीं कर सकते। इसलिए लक्षणा द्वारा कुन्ताः का अर्थ वहाँ 'कुन्तवन्तः पुरुषाः - भालेधारी पुरुष होता है। यहाँ स्थापत्य-थावच्च का प्रयोग इसीलिए व्यक्तिवाचक हो गया है।

इस सूत्र में माता का संकेत आया है, पिता का नहीं। इससे ऐसा अनुमान होता है या तो पिता विद्यमान नहीं थे, अथवा सारे व्यवसाय तथा कार्य व्यापार पर पिता के स्थान पर माता का प्राधान्य था। वह बहुत ही योग्य, प्रतिभाशाली और कर्म-निष्णात रही हो, ऐसा प्रतीत होता है।

एक बात और है - यहाँ उस गाहावई थावच्चा का व्यक्तिगत नाम नहीं आया है, केवल उसे 'थावच्चा' कह दिया है। इसका अभिप्राय यह है कि द्वारका नगरी में उस गौरवशीला, अत्यंत वैभव, समृद्धि एवं ऐश्वर्यशालिनी नारी की इतनी ख्याति थी कि वह अपने व्यवसाय के संकेत मात्र से ही सब द्वारा जानी जाती थी।

ऐसा प्रतीत होता है कि वास्तुकला, भवन निर्माण, काष्ठकला इत्यादि का उसका बहुत बड़ा व्यवसाय था। वह देश-विदेश व्यापी थी। तभी तो उसे सार्थवाही कहा गया है। उसकी अपार संपदा का इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि उसने अपने पुत्र का बत्तीस सुंदर, सुकुमार, सुयोग्य श्रेष्ठि-कन्याओं के साथ पाणिग्रहण संस्कार करवाया था तथा बत्तीसों को ही पृथक्-पृथक् दायभाग प्रदान किया था। इस प्रसंग से यह भी व्यक्त होता है कि असाधारण योग्यता संपन्न नारियों की समाज में बड़ी प्रतिष्ठा थी। लिक्न-भेद का महत्व नहीं था। गुणोत्कर्ष ही सर्वोपरी था।

अर्हत् अरिष्टनेमि का पदार्पण

(७)

तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्टणेमी सो चेव वण्णओ दसधणुस्सेहे

णीलुप्पलगवल-गुलिय-अयसि-कुसुमप्पगासे अट्ठारसिंह समण-साहस्सीहं चत्तालीसाए अज्ञिया-साहस्सीहं सिद्धं संपरिवुडे पुट्वाणुपुट्विं चरमाणे जाव जेणेव बारवई णयरी जेणेव रेवयग-पट्वए जेणेव णंदणवणे उज्जाणे जेणेव सुरप्पियस्स जक्खस्स जक्खाययणे जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता अहापिडस्वं उगाहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। परिसा णिग्गया धम्मो कहिओ।

शब्दार्थ - दसथणुरसेहे - दस धनुष परिमाण ऊँचे, अजिया - आर्थिका-साध्वी।

भावार्थ - उस काल, उस समय अर्हत् अरिष्टनेमि (एतद् विषयक विस्तृत वर्णन औपपातिक सूत्र आदि से ग्राह्म है) सुखपूर्वक, ग्रामानुग्राम विहार करते हुए, रैवतक पर्वत के सन्निकट अवस्थित द्वारका नगरी में, नंदनवन उद्यान के अन्तर्वर्ती सुरप्रिय नामक यक्ष के आयतन में, उत्तम अशोक वृक्ष के समीप आए। उनका शरीर दस धनुष प्रमाण ऊँचा था। वे नीलकमल, महिष श्रृंग के भीतर के भाग समान नीलगुलिका तथा अलसी पुष्प के सदृश श्याम कांतियुक्त थे। अठारह सहस्र साधुओं तथा चालीस सहस्र साध्वियों से संपरिवृत थे। वहाँ यथा प्रतिरूप-निरवद्य, मर्यादानुरूप शुद्ध अवग्रह-आवास स्थान गृहीत कर, संयम तप से आत्मानुभावित होते हुए विराजित हुए। उनके दर्शन, वदन और उपदेश-श्रवण हेतु जनसमूह आया। उन्होंने धर्मदेशना दी। सुनकर लोग चले गए।

वासुदेव कृष्ण की भवित

(=)

तए णं से कण्हे वासुदेवे इमीसे कहाए लद्धहे समाणे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी - खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! सभाए सुहम्माए मेघोघ-रिसयं गंभीर महुरसदं कोमुइयं भेरिं तालेह। तए णं ते कोडुंबियपुरिसा कण्हेणं वासुदेवेणं एवं वृत्ता समाणा हद्दतुद्व जाव मत्थए अंजिलं कट्टु एवं सामी! तह ति जाव पिडसुणेंति २ ता कण्हस्स वासुदेवस्स अंतियाओ पिडणिक्खमंति २ ता जेणेव सभा सुहम्मा जेणेव कोमुइया भेरी तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तं मेघोघ-रिसयं गंभीरं महुरसदं कोमुइयं भेरिं तालेंति।

शब्दार्थ - मेघोघ-रिसयं - मेघौघ-रिसत-बहुत से मेघों की गर्जन ध्वनि, भेरी - चमड़े से मड़ा हुआ वितत जाति का वाद्य विशेष, तालेह - बजाओ।

भावार्थ - कृष्ण वासुदेव को यह वृतांत ज्ञात हुआ तो उन्होंने सेवकों को बुलाया, कहा-शीघ्र ही सुधर्मा सभा में जाओ और मेघ समूह की गर्जना तुल्य गंभीर तथा मधुर ध्विन करने वाली कौमुदी नामक भेरी को बजाओ।

कृष्ण वासुदेव द्वारा यों कहे जाने पर कौटुंबिक पुरुष बहुत ही हर्षित और प्रसन्न हुए। उन्होंने मस्तक पर अंजलि कर कहा-स्वामी! जैसी आपकी आज्ञा। ऐसा निवेदन कर वे कृष्ण वासुदेव के पास से रवाना हुए। सुधर्मा सभा (न्यायालय) में कौमुदी भेरी के निकट आए और पूर्वोक्त गंभीर, मधुर शब्द युक्त भेरी को बजाया।

(3)

तओ णिद्ध-महुर-गंभीर-पडिसुएणं पिव सारइएणं बलाहएणं अणुरसियं भेरीए। शब्दार्थ - सारइए - शारदीय-शरदऋतु के, बलाहए - बादल, अणुरसियं - मेघानुरूप-मेघ सदृश ध्वनि की।

भावार्थ - बजाए जाने पर भेरी ने स्निग्ध, मधुर, गंभीर, प्रतिध्वनि युक्त, शारदीय (शरदऋतु के) मेघ के सदृश शब्द किया।

(90)

तए णं तीसे कोमुइयाए भेरीया तालियाए समाणीए बारवईए णयरीए णवजोयण-वित्थिण्णाए दुवालस-जोयणायामाए सिंघाडग-तिय-चउकक-चच्चर-कंदर-दरी विवर-कुहर-गिरि-सिहर-नगर-गोउर-पासाय-दुवार-भवण-देउल-पडिस्सुया-सयसहस्स-संकुलं सद्दं करेमाणे बारवईए णयरीए सब्भिंतर-बाहिरियं सव्वओ समंता से सद्दे विष्पसरित्था।

शब्दार्थ - कुहर - गर्त्त, गोउर - गोपुर-नगर का मुख्य द्वार, पडिस्सुया - प्रतिश्रुता-प्रतिष्वनि, विष्यसरित्था - विप्रसारित-विशेष रूप से फैला हुआ।

भावार्थ - कौमुदी नामक भेरी के बजाए जाने पर नौ योजन विस्तीर्ण तथा द्वादश योजन आयाम युक्त द्वारका नगरी के तिराहे, चौराहे, चौक, कंदरा, गुफा, विवर, गर्च, पर्वत शिखर, नगर का मुख्य द्वार, प्रासादद्वार, नागरिकों के भवन, देवायतन-इन स्थानों में लक्ष परिमित प्रतिष्विन समन्वित-लाखों प्रतिष्विनयों से युक्त, भीतरी और बाहरी भागों सहित संपूर्ण स्थानों को गुञ्जायमान करता हुआ, उसका शब्द सब ओर फैल गया।

(99)

तए णं बारवर्ड्ए णयरीए णवजोयण-वित्थिण्णाए बारस-जोयणायामाए समुद्दविजय-पामोक्खा दस दसारा जाव गणिया-सहस्साइं कोमुईयाए भेरिए सहं सोच्चा णिसम्म हृद्वतुद्वा जाव ण्हाया आविद्ध-वग्धारिय-मल्ल-दाम-कलावा अहयवत्थ चंदणोक्किण-गायसरीरा अप्येगइया हयगया एवं गयगया रह-सीया-संदमाणीगया अप्येगइया पाय विहार चारेणं पुरिसवगुरा-परिक्खिता कण्हस्स वासुदेवस्स अंतियं पाउब्भवित्था।

शब्दार्थ - आविद्ध - धारण किये, वग्धारिय - लटकाए, अहय - अक्षत-नवीन, उक्किण्ण - उत्किलन्न-लेप किया हुआ, गयगया - गजगत-हाथी पर आरूढ़, सीया - शिविका-पालकी, संदमाणी - स्यंदमाणी-स्थ के आकार की पालकी, वग्गुरा - वृन्द-समूह, परिकिश्वत्ता - परिक्षिप्त-धिरे हुए, पाउब्भवित्था - उपस्थित हुए।

भावार्थ - नव योजन विस्तीर्ण द्वादश योजन आयाम युक्त द्वारका नगरी के दस दशार्ह यावत् सहस्रों गणिकाएं आदि सभी कौमुदी भेरी के शब्द को सुन कर बड़े हर्षित और परितुष्ट हुए, यावत् उन्होंने स्नान किया, अनेकानेक लम्बी-लम्बी मालाएं धारण कीं, नवीन वस्त्र धारण किये। देह के अंग-प्रत्यंगों पर चंदन का लेप किया। कई हाथियों, कई घोड़ों, रथों, शिविकाओं तथा स्यंदमानिकाओं पर आरूढ होकर एवं कई मनुष्यों के समूह से संपरिवृत होते हुए, पैदल चलकर वासुदेव कृष्ण के समीप उपस्थित हुए।

(97)

तए णं से कण्हे वासुदेवे समुद्दविजय-पामोक्खे दस दसारे जाव अंतियं पाउन्भवमाणे पासइ, पासित्ता हट्टतुट्ट जाव कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी-खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! चाउरंगिणिं सेणं सज्जेह विजयं च गंधहत्थिं उवट्टवेह। तेवि तहत्ति उवट्टवेंति जाव पज्जुवासंति। भावार्थ - तब कृष्ण वासुदेव ने समुद्र विजय आदि दस दशाहों यावत् अन्यान्य विशिष्टजनों को अपने पास उपस्थित हुआ देखा। उन्हें बड़ा हर्ष एवं परितोष हुआ, यावत् कौटुंबिक पुरुषों- सेवकों को बुलाया। उनसे कहा-शीघ्र ही चतुरंगिणी सेना तैयार कराओ। विजय नामक गंध हिस्त को यहाँ लाओ। जो आज्ञा स्वामी-ऐसा कहकर उन्होंने वैसा ही किया यावत् वासुदेव कृष्ण आदि सभी स्नानादि कर तैयार हुए और अपनी महिमा के अनुरूप अर्हत् अरिष्टनेमि की सेवामें उपस्थित हुए। यथाविधि वंदन, नमस्कार कर उनकी पर्युपासना करने लगे।

थावद्यापुत्र का वैराग्य

(93)

थावच्चापुत्ते वि णिगण जहा मेहे तहेव धम्मं सोच्चा णिसम्म जेणेव थावच्चा गाहावइणी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पायग्गहणं करेइ जहा मेहस्स तहा चेव-णिवेयणा जाहे णो संचाएइ विसयाणुलोमाहि य विसयपडिकूलाहि य बहूहिं आघवणाहि य पण्णवणाहि य सण्णवणाहि य विण्णवणाहि य आघवित्तए वा ४ ताहे अकामिया चेव थावच्चापुत्त दारगस्स णिक्खमण-मणुमण्णित्था। णवरं णिक्खमणाभिसेयं पासामो, तए णं से थावच्चापुत्ते तुसिणीए संचिद्धइ।

शब्दार्थः - णिवेयणा - निवेदना-वर्णन, अणुमण्णित्था - अनुमति प्रदान की।

भावार्थ - थावच्चापुत्र अपने भवन से चला। जिस प्रकार मेघकुमार को भगवान् महावीर स्वामी से धर्मोपदेश सुनकर वैराग्य हुआ, वैसे ही थावच्चापुत्र को भी भगवान् अरिष्टनेमि की धर्म देशना सुनकर संसार से विरक्ति हुई। वह अपनी माता थावच्चा के पास आया। उसके पैर पकड़े। यहाँ भाव रूप में मेघकुमार से संबद्ध वर्णन योजनीय है। जब सांसारिक विषयों के अनुकूल और प्रतिकूल दोनों ही पक्षों को लेते हुए बहुत प्रकार से उसे समझाने-बुझाने के बावजूद संयम से-विरक्त भावना से हटाया नहीं जा सका, तब माता ने निष्क्रमण-प्रव्रज्या की अनुमित प्रदान कर दी। मेघकुमार के वर्णन से यहाँ इतनी सी विशेषता है कि माता ने कहा - मैं तुम्हारे दीक्षा समारोह को देखना चाहती हूँ। तब थावच्चापुत्र मौन हो गया।

(१४)

तए णं सा थावच्चा आसणाओ अब्भुट्टेड २ त्ता महत्थं महग्धं महरिहं रायरिहं

पाहुडं गेण्हइ २ ता मित्त जाव संपित्वुडा जेणेव कण्हस्स वासुदेवस्स भवणवर-पडिदुवार-देसभाए तेणेव उवागच्छइ २ ता पडिहार देसिएणं मग्गेणं जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल जाव वद्धावेइ २ ता तं महत्थं ४ पाहुडं उवणेइ २ ता एवं वयासी -

शब्दार्थ - रायरिहं - राजार्ह-राजा को भेंट करने योग्य, पाहुडं - प्राभृत-भेंट, पिडदुवार-प्रतिद्वार-मुख्य द्वार का अन्तवर्ती लघु द्वार, पिडहार देसिएणं - प्रतिहार-प्रहरी द्वारा दिखाए गए, वद्धावेइ - वर्धापित करती है।

भावार्थ - तत्पश्चात् थावच्चा अपने आसन से उठकर बहुत से बहुमूल्य महान् पुरुषों को देने योग्य, राजा को भेंट करने योग्य उपहार लेकर अपने सुहृदों, यावत् विविध संबद्धजनों से धिरी हुई कृष्ण वासुदेव के उत्तम राजप्रासाद के मुख्य द्वार के अन्तवर्ती लघु द्वार पर आई। प्रहरी द्वारा दिखलाए गए मार्ग से वह कृष्ण वासुदेव के पास पहुँची। उसने हाथ जोड़कर मस्तक नवाकर ससम्मान उन्हें वधापित किया और उन्हें बहुमूल्य, राजोचित, महत्त्वपूर्ण उपहार भेंट किए और वह उनसे निवेदन करने लगी।

(৭५)

एवं खलु देवाणुप्पिया! मम एगे पुत्ते थावच्चापुत्ते णामं दारए इहे जाव से णं संसारभउव्यागे इच्छइ अरहओ अरिट्ठणेमिस्स जाव पव्वइत्तए। अहं णं णिक्खमण-सक्कारं करेमि इच्छामि णं देवाणुप्पिया! थावच्चापुत्तस्स णिक्खममाणस्स छत्त-मउड-चामराओ य विदिण्णाओ।

भावार्थ - देवानुप्रिय! मेरा एकाकी पुत्र, जो मुझे अत्यंत प्रिय है, संसार के भय से उद्विग्न होकर भगवान् अरिष्टनेमि के पास प्रव्रज्या लेना चाहता है। मैं उसका निष्क्रमण सत्कार—दीक्षा- महोत्सव करना चाहती हूँ। इसलिए देवानुप्रिय। निष्क्रमणोन्मुख प्रव्रज्यार्थी मेरे पुत्र के लिए आप राजकीय छत्र, मुकुट, चँवर प्रदान करें, यह मेरी अभिलाषा है।

(१६)

तए णं कण्हे वासुदेवे थावच्चागाहावइणि एवं वयासी-''अच्छाहि णं तुमं देवाणुप्पिए! सुणिव्वुया वीसत्था। अहं णं सयमेव थावच्चापुत्तस्स दारगस्स णिक्खमणसक्कारं करिस्सामि।'' शब्दार्थ - सुणिव्युया - निश्चिंत।

भावार्थ - कृष्ण वासुदेव ने थावच्चा से कहा - देवानुप्रिये! तुम निश्चित और विश्वस्त रहो। मैं स्वयं ही तुम्हारे पुत्र का दीक्षा सत्कार-समारोह आयोजित करूँगा।

वैराग्य की परीक्षा

(৭৬)

तए णं से कण्हे वासुदेवे चाउरंगिणीए सेणाए विजयं हत्थिरयणं दुरूढे समाणे जेणेव थावच्चाए गाहावइणीए भवणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता थावच्चापुत्तं एवं वयासी-मा णं तुमे देवाणुप्पिया! मुंडे भवित्ता पव्ययाहि, भुंजाहि णं देवाणुप्पिया! विउले माणुस्सए कामभोगे मम बाहुच्छाया-परिग्गहिए केवलं देवाणुप्पियस्स अहं णो संचाएमि वाउकायं उविरमेणं गच्छमाणं णिवारित्तए, अण्णे णं देवाणुप्पियस्स जं किंचि वि आबाहं वा वाबाहं वा उप्पाएइ तं सब्वं णिवारेमि।

शब्दार्थ - उवरिमेणं - ऊपर से।

भावार्थ - तब कृष्ण वासुदेव विजय हस्तिरत्न पर आरूढ़ होकर अपनी चतुरंगिणी सेना के साथ थावच्चा के भवन में आए। उसके पुत्र से बोले-देवानुप्रिय! तुम मुण्डित प्रव्रजित मत बनो। तुम मेरी भुजाओं की छत्रछाया। में रहते हुए, मनुष्य जीवन विषयक विपुल काम-भोगों का सेवन करो। देवानुप्रिय! मैं तुम्हारे ऊपर से गुजरने वाली हवा को तो नहीं रोक सकता किन्तु अन्य सभी प्रकार की बाधाओं, पीड़ाओं, प्रतिकूलताओं का निवारण करता रहूँगा।

थावद्यापुत्र का विवेक पूर्ण कथन

(95)

तए णं से थावच्चापुत्ते कण्हेणं वासुदेवेणं एवं वुत्ते समाणे कण्हं वासुदेवं एवं वयासी-जइ णं तुमं देवाणुप्पिया! मम जीवियंतकरणं मच्चं एजमाणं णिवारेसि जरं वा सरीर रूव विणासिणिं सरीरं अइवयमाणिं णिवारेसि तए णं अहं तव बाहुच्छाया परिगाहिए विउले माणुस्सए कामभोगे भुंजमाणे विहरामि। शब्दार्थ - मच्चुं - मृत्यु को, अइवयमाणं - क्रमशः क्षीयमाण-क्षीण होते हुए।

भावार्थ - वासुदेव कृष्ण द्वारा यों कहे जाने पर थावच्चापुत्र उनसे बोला-''देवानुप्रिय! यदि आप मेरे जीवन का अन्त करने के लिए आती हुई मृत्यु को, शरीर के रूप को विकृत करने वाली तथा क्षण-क्षण क्षीण करने वाली वृद्धावस्था को मिटा सकें तो मैं आपकी भुजाओं की छत्रछाया में रहता हुआ, विपुल मानव-जीवन के भोगों को भोगता रहूँ।''

कृष्ण वासुदेव का परितोष

(3P)

तए णं से कण्हे वासुदेवे थावच्चापुत्तेणं एवं वृत्ते समाणे थावच्चा पुत्तं एवं वयासी-एए णं देवाणुप्पिया! दुरइक्कमणिज्ञा, णो खलु सक्का सुबलिए णावि देवेण वा दाणवेण वा णिवारित्तए णण्णत्थ अप्पणो कम्मक्खएणं।

शब्दार्थ - दुरइक्कमणिजा - दुरतिक्रमणीय-निवारण न किए जा सकने योग्य, णिवारित्तए-निवारित किया जाना।

भावार्थ - थावच्चापुत्र द्वारा यों कहे जाने पर कृष्ण वासुदेव बोले—''ये दुरतिक्रमणीय हैं। इनका निवारण नहीं किया जा सकता। अत्यंत बलवान्, देव अथवा दानव भी इन्हें नहीं मिटा सकते। अपने पूर्वोपार्जित कर्मों के क्षय द्वारा ही इन्हें रोका जा सकता है।''

(२०)

तए णं से थावच्चापुत्ते कण्हं वासुदेवं एवं वयासी-जइ णं एए दुरइक्कमणिजा णो खलु सक्का सुबलिएणावि देवेण वा दाणवेण वा णिवारित्तए णण्णत्थ अप्पणो कम्मक्खएणं तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया! अण्णाणमिच्छत्तअविरइ कसायसंचियस्स अत्तणो कम्मक्खयं करित्तए।

भावार्थ - तब थावच्चापुत्र ने कृष्ण वासुदेव को इस प्रकार कहा-''यदि मृत्यु आदि दुरितक्रमणीय हैं। अति बलवान देव, दानव आदि द्वारा भी उन्हें मिटाया नहीं जा सकता। अपने कर्मक्षयों द्वारा ही उन्हें समाप्त किया जा सकता है तो देवानुप्रिय! मैं अज्ञान, मिथ्यात्व, अविरित प्रमाद एवं कषाय द्वारा संचित अपने कर्मों का क्षय करने के लिए प्रव्रज्या स्वीकार करना चाहता हूं।''

विवेचन - श्री कृष्ण वासुदेव भगवान् अरिष्टनेमि के परम भक्त और गृहस्थावस्था के आत्मीय जन भी थे। थावच्चा गाथापत्नी को अपनी ओर से दीक्षा सत्कार करने का वचन दे चुके थे। फिर भी वे थावच्चापुत्र को दीक्षा न लेकर अपने संरक्षण में लेने को कहते हैं। इसका तात्पर्य थावच्चापुत्र की मानसिक स्थिति को परखना ही है। वे जानना चाहते थे कि थावच्चापुत्र के अन्तस् में वास्तविक वैराग्य है अथवा नहीं? किसी गाईस्थिक उद्वेग के कारण ही तो वह दीक्षा लेने का मनोरथ नहीं कर रहे हैं? मुनिदीक्षा जीवन के अन्तिम क्षण तक उग्र साधना है और सच्चे तथा परिपक्व वैराग्य से ही उसमें सफलता प्राप्त होती है। थावच्चापुत्र परख में खरा सिद्ध हुआ। उसके एक ही वाक्य ने कृष्ण जी को निरुत्तर कर दिया। उन्हें पूर्ण सन्तोष हो मया।

(२१)

तए णं से कण्हे वासुदेवे थावच्चापुत्तेणं एवं वृत्ते समाणे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेता एवं वयासी-गच्छह णं देवाणुप्पिया! बारवईए णयरीए सिंघाडग-तिग जाव पहेसु हत्थिखंधवरगया महया-महया सद्देणं उग्धोसेमाणा २ उग्धोसणं करेह-एवं खलु देवाणुप्पिया! थावच्चापुत्ते संसार-भउव्विग्गे-भीए जम्मण-जरमरणाणं इच्छइ अरहओ अरिट्टणेमिस्स अंतिए मुंडे भवित्ता पव्यइत्तए, तं जो खलु देवाणुप्पिया राया वा जुवराया वा देवी वा कुमारे वा ईसरे वा तलवरे वा कोडुंबिय-माडंबिय-इन्ध-सेट्टि-सेणावइ-सत्थवाहे वा थावच्चापुत्तं पव्ययंतमणुपव्ययइ तस्स णं कण्हे वासुदेवे अणुजाणइ पच्छाउरस्स वि य से मित्त-णाइ-णियग-संबंधि-परिजणस्स जोग खेमं वट्टमाणं पडिवहइ-त्तिकट्टु घोसणं घोसेह जाव घोसंति।

शब्दार्थ - पच्छाउरस्स - पीछे उहे दुःखित संबद्धजनों के, जोग - योग-इच्छित या अप्राप्त वस्तुओं की प्राप्ति, खेमं - क्षेम-प्राप्त की रक्षा, खट्टमाणं - वर्तमान-उत्तरदायित्व, पडिवहड़ - वहन करता है।

भावार्थ - थावच्चापुत्र द्वारा यों कहे जाने पर कृष्ण वासुदेव ने सेवकों को बुलाया और कहा - देवानुप्रियो! जाओ, द्वारका नगरी के तिराहे, चौराहे, चौक यावत् सभी बड़े-छोटे मार्गों में हाथी के स्कन्ध पर आरूढ़ होकर उच्च स्वर से पुनः पुनः यह उद्घोषणा करो कि देवानुप्रिय नागरिको! संसार में आवागमन-जन्म-मरण के भय से उद्विग्न-भीतियुक्त थाँवेच्चापुत्र भगवान् अरिष्टनेमि के पास मुण्डित, प्रव्रजित होना चाहता है।

देवान्प्रियो! राजा, युवराज, रानी, राजकुमार, राज्य सम्मानित प्रतिष्ठाप्राप्त पुरुष, जागीरदार, वैभव-संपन्न नागरिक, परिवार के मुखिया धनाढ्य जन, श्रेष्ठि, सेनापित, सार्थवाह-इनमें से कोई भी दीक्षार्थी थावच्चापुत्र का अनुगमन कर प्रव्रजित होते हों तो कृष्ण वासुदेव यह अनुज्ञापित करते हैं कि उनके पीछे रहे दुःखित संबंधीजनों के योगक्षेम का दायित्व वहन करेंगे, यह घोषणा कर सूचित करो, यावत् कृष्ण वासुदेव के आदेशान्सार वे सेवक घोषणा करते हैं।

दीक्षाभिषेक

(22)

तए णं थावच्चापुत्तस्स अणुराएणं पुरिस-सहस्सं णिक्खमणाभिमुहं ण्हायं सव्वालंकार विभूसियं पंत्तेयं २ पुरिस-सहस्स-वाहिणीसु सिवियासु दुरूढं समाणं मित्तणाइ-परिवुडं थावच्चापुत्तस्स अंतियं पाउब्भूयं। तए णं से कण्हे वासुदेवे पुरिससहस्सं अंतियं पाउब्भवमाणं पासइ, पासित्ता कोडुंबियपुरिसे सदावेइ, सदावेत्ता एवं वयासी - जहा मेहस्स णिक्खमणाभिसेओ तहेव सेयापीएहिं कलसेहिं ण्हावेइ जाव अरहओ अरिट्टणेमिस्स छत्ताइच्छत्तं पडागाइ-पडागं पासइ, पासित्ता विज्ञाहर-चारणे जाव पासित्ता सिवियाओ पच्चोरुहइ।

भावार्थ - थावच्चापुत्र के प्रति अनुराग के कारण, उसके वैराग्य से प्रभावित होकर एक हजार पुरुष निष्क्रमण-प्रव्रज्या के लिए तैयार हुए। उन्होंने स्नान किया। सब प्रकार के अलंकारों से वे विभूषित हुए। एक-एक हजार पुरुषों द्वारा वहन की जाने वाली एक-एक पालखी पर आरूढ हुए। मित्रों स्वजातीयजनों, बन्धु-बांधवों से धिरे हुए, वे थावच्चापुत्र के पास आए।

वासुदेव कृष्ण ने एक हजार पुरुषों को आया हुआ देखा। उन्होंने सेवकों को बुलाया और उन्हें आज्ञा दी कि जिस प्रकार मेघकुमार का दीक्षाभिषेक हुआ उसी प्रकार इनका प्रव्रज्या समारोह आयोजित किया जाय। तदनुसार सेवकों ने चांदी सोने के सफेद पीले कलशों में भरे शुद्ध सुरिभत जल द्वारा थावच्चापुत्र सहित उनको स्नान कराया। वस्त्र, अलंकार आदि से सिज्जित किया।

वे सब अर्हत् अरिष्टनेमि के पास पहुँचे। उन्होंने वहाँ छत्रातिछत्र, पताकातिपताका युक्त विद्याधरों, चारणों तथा जृम्भक देवों को आते हुए जाने हुए देखा। वे पालिखयों से नीचे उतरे।

विवेचन - थावच्चापुत्र के दीक्षा वर्णन में मेघकुमार की भलावण आगम लेखकों ने लगाई है। आगम लेखकों ने अमुक-अमुक स्थान पर अमुक-अमुक विषय को विस्तृत लिखकर अन्यत्र संक्षेप में लिखने का निर्णय करके मेघकुमार के स्थान पर विस्तृत लेखन करके अन्यत्र भलावण लगा दी है। पूर्व तीर्थंकरों के शासन के समय की भलावण नहीं समझकर आगम लेखन के समय की भलावण अर्थात् जैसा पहले अध्ययन में मेघकुमार के वर्णन में दीक्षा का वर्णन दिया है। वैसा वर्णन ही थावच्चापुत्र के वर्णन में भी कह देना चाहिए। इस प्रकार भलावण देना लेखन संक्षिप्त करने की दृष्टि से उचित है।

दीक्षा संस्कार

(२३)

तए णं से कण्हे वासुदेवे थावच्चापुत्त पुरओ काउं जेणेव अरहा अरिट्टणेमी सव्वं तं चेव जाव आभरण-मल्लालंकारं ओमुयइ। तए णं सा थावच्चा गाहावइणी हंसलक्खणेणं पडगसाडएणं आमरण मल्लालंकारे पडिच्छइ हार-वारिधार छिण्णमुत्तावलिप्यगासाइं अंसूणि विणिम्मुंचमाणी २ एवं वयासी-जइयव्वं जाया! घडियव्वं जाया! परिक्रमियव्वं जाया! अस्सिं च णं अट्टे णो पमाएयव्वं जामेव दिसिं पाउन्भूया तामेव दिसिं पडिगया।

शब्दार्थ - जइयव्वं - यत्नशील रहना, घडियव्वं - शुद्ध क्रिया में घटित होना, परिक्किमियव्वं - पराक्रमशील रहना, अस्सिं - इसमें।

भावार्थ - तब वासुदेव कृष्ण थावच्चापुत्र को आगे कर भगवान् अरिष्टनेमि के पास आए। यावत् सभी दीक्षार्थीजनों ने आभरण, माला, अलंकार उतार दिए।

तब थावच्चा ने हंस के समान श्वेत वस्त्र में आभरण माला एवं अलंकार ग्रहण किए। दूटी हुई मुक्ताविल से गिरते हुए मोतियों के समान उसकी आँखों से आँसू गिरने लगे। वह बोली—''पुत्र! साधनामय जीवन में सदैव यत्नशील रहना। संयम मूल क्रियाओं में अपने आपको परिणत किए रहना। व्रत पालन में पराक्रम शील रहना। जीवन के इस महान् लक्ष्य में प्रमाद मत करना। ऐसा कह कर वह जिस दिशा से आयी थी, उसी ओर चली गई।

(28)

तए णं से थावच्चापुत्ते पुरिससहस्सेहिं सिद्धं सथमेव पंचमुद्धियं लोयं करेड़ जाव पव्वडए। तए णं से थावच्चापुत्ते अणगारे जाए इरियासिमए भासासिमए जाव विहरइ।

भावार्थ - तदनंतर थावच्चापुत्र ने एक सहस्त्र पुरुषों के साथ स्वयं ही पंचमुष्टिक लोच किया यावत् प्रव्रज्या स्वीकार की। इस प्रकार वह अनगार-साधु हो गया। भाषा समिति यावत् सर्वविध श्रमण धर्म का व्रत गुप्त्यादि सहित पालन करने में प्रवृत्त रहा।

थावद्या पुत्र की तपःपूत चर्या

(२५)

तए णं से थावचापुत्ते अरहओ अरिट्ठमेमिस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं चोद्दस पुट्याइं अहिज्जइ २ ता बहूहिं जाव चउत्थेणं विहरइ। तए णं अरिहा अरिट्ठणेमी थावच्चापुत्तस्स अणगारस्स तं इब्भाइयं अणगार-सहस्सं सीसत्ताए दलयइ।

शब्दार्थ - सीसत्ताए - शिष्य के रूप में।

भावार्थ - थावच्चापुत्र ने भगवान् अरिष्टनेमि के सुयोग्य स्थिविरों से सामायिक से प्रारंभ कर चतुर्दश पूर्व तक का अध्ययन किया। बहुत से उपवास, बेले एवं तेले आदि के रूप में वे तप करते रहे। तदनंतर भगवान् अरिष्टनेमि ने अनगार थावच्चापुत्र को, उसके साथ जो श्रेष्ठि आदि दीक्षित हुए थे, उन एक हजार साधुओं को, शिष्य के रूप में प्रदान किया।

थावद्यापुत्र का जनपद विहार (२६)

तए णं से थावच्चापुत्ते अण्णया कयाइं अरहं अरिट्ठणेमिं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी-इच्छामि णं भंते! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे अणगारसहस्सेणं सद्धिं बहिया जणवयविहारं विहरित्तए। अहासुहं देवाणुप्पिया। भावार्थ - तदनंतर, किसी समय थावच्चा पुत्र ने भगवान् अरिष्टनेमि को वंदन, नमस्कार कर निवेदित किया-भगवन्! मैं आपकी आज्ञा लेकर एक हजार साधुओं के साथ जनपदों में विहार करना चाहता हूँ। भगवान् अरिष्टनेमि ने उत्तर में कहा-'देवानुप्रिय! जिससे तुम्हारी आत्मा को सुख प्राप्त हो, वैसा करो।'

(२७)

तए णं से थावच्चापुत्ते अणगारसहस्सेणं सद्धिं तेणं उरालेणं उदग्गेणं पयत्तेणं पग्गहिएणं बहिया जणवयविहारं विहरइ।

भावार्थ - भगवान् अरिष्टनेमि की आज्ञा प्राप्त कर थावच्चापुत्र अपने द्वारा स्वीकृत महत्त्वपूर्ण साधनामय, तपोमय जीवन में तीव्र प्रयत्नपूर्वक अवस्थित होते हुए, अपने एक हजार अनगार शिष्यों के साथ भिन्न-भिन्न जनपदों में, प्रदेशों में विचरण करने लगे।

राजा शैलक द्वारा श्रावक-धर्म का स्वीकरण (२८)

तेणं कालेणं तेणं समएणं सेलगपुरे णामं णयरे होत्था। सुभूमिभागे उज्जाणे। सेलए राया, पउमावई देवी, मंडुए कुमारे जुवराया। तस्स णं सेलगस्स पंथग-पामोक्खा पंच मंतिसया होत्था उप्पत्तियाए वेणइयाए कम्मियाए पारिणामियाए उववेया रज्ञधुरं चिंतयंति। थावच्चापुत्ते सेलगपुरे समोसहै। राया णिग्गए धम्मकहा।

भावार्थ - उस काल, उस समय शैलकपुर नामक नगर था। उसमें सुभूमिभाग नामक उद्यान था। शैलक वहाँ का-राजा था। रानी का नाम पद्मावती था। उसके युवराज का नाम मंडुक था। राजा शैलक के पंथक आदि पांच सौ मंत्री थे। वे औत्पातिकी, वैनयिकी, पारिणामिकी तथा कार्मिकी संज्ञक-चार प्रकार की बुद्धि से युक्त थे, राज्य के उत्तरदायित्व-वहन की चिंता करते थे।

अनगार थावच्चापुत्र शैलकपुर में समवसृत हुए, पधारे। राजा, वंदन, नमन एवं उपदेश श्रवण हेतु गया। अनगार थावच्चापुत्र ने धर्म देशना दी।

www.jainelibrary.org

(38)

धम्मं सोच्चा जहा णं देवाणुप्पियाणं अंतिए बहवे उग्गा भोगा जाव चइत्ता हिरण्णं जाव पव्वइया तहा णं अहं णो संचाएमि पव्वइत्तए। अहं णं देवाणुप्पियाणं अंतिए पंचाणुव्वइयं जाव समणोवासए जाव अहिगय-जीवाजीवे जाव अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। पंथगपामोक्खा पंच मंतिसया य समणोवासया जाया थावच्चापुत्ते बहिया जणवय विहारं विहरइ।

भावार्थ - धर्म-देशना सुनकर राजा शैलक ने कहा कि-देवानुप्रिय! जैसे आपके पास बहुत से उग्र, भोग यावत् अन्यान्य विशिष्टजन रजत, स्वर्ण, यावत् विपुल वैभव का त्याग कर प्रव्रजित हुए, मैं उस प्रकार प्रव्रज्या स्वीकार करने में समर्थ नहीं हूँ। मैं आपके पास अणुव्रतमय यावत् श्रमणोपासक धर्म स्वीकार करना चाहता हूँ यावत् जीवाजीव तत्त्वों का सम्यक् ज्ञान कर यावत् आत्मानुभावित होता हुआ जीवन व्यतीत करना चाहता हूं। यों निवेदित कर राजा और उनके साथ-साथ पंथक आदि पांच सौ मंत्री श्रमणोपासक बने, उन्होंने श्रावक व्रत स्वीकार किए।

तदनंतर अनगार थावच्चापुत्र वहाँ से प्रस्थान कर अन्य जनपदों में विचरण करने लगे।

श्रेष्ठी सुदर्शन

(30)

तेणं कालेणं तेणं समएणं सोगंधिया णामं णयरी होत्था वण्णओ। णीलासोए उज्जाणे वण्णओ। तत्थ णं सोगंधियाए णयरीए सुंदसणे णामं णयरसेट्ठी परिवसइ अहे जाव अपरिभूए।

भावार्थ - उस काल, उस समय सौगंधिका नामक नगरी थी। (नगरी का वर्णन औपपातिक सूत्र में द्रष्टव्य है।) उसमें नीलाशोक नामक उद्यान था। इसका वर्णन भी औपपातिक सूत्र से ग्राह्म है। सौगंधिकानगरी में सुदर्शन नामक नगर सेठ निवास करता था। वह बहुत ही धनाद्य यावत् सर्वत्र सम्मानित था।

परिवाजक शुक

(PF)

तेणं कालेणं तेणं समएणं सुए णामं परिव्वायए होत्था रिउव्वेय-जजुव्वेय-सामवेय-अथव्यणवेय-सिंहतंतकुसले संखसमए लद्धहे पंचजम-पंचिणयम-जुत्तं सोयमूलयं दसप्पयारं परिव्वायग-धम्मं दाणधम्मं च सोयधम्मं च तित्थाभिसेयं च आघवेमाणे पण्णवेमाणे धाउरत्त-वत्थपवर-परिहिए तिदंड-कुंडिय-छत्त-छण्णालय-अंकुस-पवित्तय-केसरि-हत्थगए परिव्वायग-सहस्सेणं सिद्धं संपरिवुडे जेणेव सोगंधिया णयरी जेणेव परियव्वायगा-वसहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता परिव्वायगा-वसहंसि भंडगणिक्खेवं करेइ, करेत्ता संखसमएणं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

शब्दार्थ - सिंहतंत - षिठतंत्र, संख समए - सांख्य सिद्धान्त, लद्धहे - लब्धार्थ - प्रवीण, सोयमूलयं - शौचमूलक, दसप्पयारं - दस विध, परिव्वायगधम्मं - परिव्राजक धर्म, सोयधम्मं - शौच धर्म, तित्थाभिसेयं - तीर्थाभिषेक-तीर्थों में स्नान, धाउरत्त - गेरु से रंगे हुए, तिदंड - त्रिदंड—मन, वचन एवं काय के दण्ड—नियंत्रण के परिज्ञापक रूप तीन काष्ठयष्टिकाओं द्वारा योजित दण्ड, कुंडिय - कमंडल, छण्णालय - छह कोनों से युक्त त्रिकाष्ठिका - बैठते समय ध्यानादि में स्थिरता हेतु हाथ रखने के लिए काष्ठ का उपकरण विशेष, अंकुस - वृक्ष के पत्ते आदि तोड़ने की लघु कुठारिका, पवित्तय - ताम्रमय मुद्रिका, केसरि - शुद्ध करने हेतु वस्त्र का दुकड़ा, परिव्वायगा-वसहे - परिव्राजक-आवसथ—परिव्राजकों के ठहरने का स्थान-मठ, भंडग-णिक्खेवं - उपकरणों को रखना।

भावार्थ - उस काल, उस समय शुक नामक परिव्राजक था। वह ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद तथा षष्टितंत्र में कुशल था. सांख्य-सिद्धांत का विद्वान् था। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह रूप पांच यम, शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान रूप पांच नियम युक्त शौचमूलक, दस विध परिव्राजक धर्म, दान, धर्म, शौच धर्म एवं तीर्थाभिषेक का उपदेश तथा प्रज्ञापन-विवेचन करता था।

वह उत्तम गैरिक वस्त्र धारण करता था। अपने हाथों में त्रिदण्ड, कमण्डलु, छत्र, त्रिकाष्ठिका,

www.jainelibrary.org

अंकुश, पवित्रक और वस्त्र-खण्ड लिए रहता था। वह एक हजार परिव्राजकों से घिरा हुआ, सौगन्धिका नगरी में आया एवं परिव्राजकों के ठहरने के मठ में रुका। अपने उपकरण वहां रखे। वहाँ वह सांख्य सिद्धांतानुरूप धर्माराधना पूर्वक आत्मा को भावित करता हुआ विचरने लगा।

(32)

तए णं सोगंधियाए णगरीए सिंघाडग जाव बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ-एवं खलु सुए परिव्वायए इहमागए जाव विहरइ। परिसा णिगाया। सुदंसणो वि णिगगए।

भावार्थ - सौगंधिका नगरी के तिराहे, चौराहे, चौक आदि विभिन्न स्थानों में बहुत से लोग परस्पर कहने लगे - कुछ ही समय पूर्व-अभी-अभी शुक परिव्राजक यहाँ आए हैं, यावत् सांख्य सिद्धांतानुरूप धर्माराधना पूर्वक आत्मा को भावित करते हुए विचरते हैं।

शुक परिव्राजक का उपदेश सुनने हेतु जन समूह आया। श्रेष्ठी सुदर्शन भी आया।

शुक द्वारा शौचमूलक धर्म का उपदेश (३३)

तए णं से सुए परिव्वायए तीसे परिसाए सुदंसणस्स य अण्णेसिं च बहूणं संखाणं परिकहेड़ - एवं खलु सुदंसणा! अम्हं सोयमूलए धम्मे पण्णत्ते। से वि य सोए दुविहे पण्णते तंजहा - दव्वसोए य भावसोए य। दव्वसोए य उदएणं मिट्टियाए य। भावसोए दब्भेहि य मंतेहि य। जं णं अम्हं देवाणुप्पिया! किंचि असुई भवइ तं सव्वं सज्जो पुढवीए आलिप्पइ तओ पच्छा सुद्धेण वारिणा पक्खालिजइ तओ तं असुई सुई भवइ। एवं खलु जीवा जलाभिसेय-पूयप्पाणो अविग्धेणं सग्गं गच्छंति।

तए णं से सुंदसणे सुयस्स अंतिए धम्मं सोच्चा हट्टे, सुयस्स अंतियं सोयमूलयं धम्मं गेण्हइ २ त्ता परिव्वायए विउलेणं असण-पाण-खाइम-साइमवत्थेणं पिडलाभेमाणे जाव विहरइ। तए णं से सुए परिव्वायए सोगंधियाओ णयरीओ णिगाच्छइ २ त्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ।

शब्दार्थ - संखाणं - सांख्यदर्शन के सिद्धांत, मंतिहि - मंत्रों द्वारा, असुई - अशुचि-अपवित्र, सजो - सद्य:-तत्काल, पुढवीए - पृथ्वी से-मृतिका से, आलिप्पइ - लेप करते हैं, पक्खालिजाइ - प्रक्षालित किया जाता है, धोया जाता है, जलाभिसेय-पूयप्पाणो - जल-स्नान से पवित्र आत्मा, अविग्धेणं - बिना विघ्न के, सग्गं - स्वर्ग, पडिलाभेमाणे - प्रतिलाभित करता हुआ-देता हुआ।

भावार्थ - तदनंतर परिव्राजक शुक ने उस परिषद् को, सुदर्शन को तथा दूसरे अन्य बहुत से लोगों को सांख्य-मत का इस प्रकार उपदेश दिया। सुदर्शन! हमारा धर्म शौचमूलक कहा गया है। शौच दो प्रकार का बतलाया गया है। द्रव्य-शौच तथा भाव-शौच। द्रव्य-शौच जल और मृत्तिका से होता है। भाव-शौच डाभ से और मंत्रों से होता है। देवानुप्रिय! जब हमारे यहाँ कोई वस्तु अशुचि-अपवित्र हो जाती है तो उस पर तत्काल मिट्टी का लेप करते हैं, मांजते हैं। फिर शुद्ध जल द्वारा उसे प्रक्षालित करते हैं। ऐसा करने पर वह अपवित्र वस्तु पवित्र हो जाती है। जीव जलाभिषेक से, जल स्नान से पवित्रात्मा होकर निर्विघ्नतया स्वर्ग प्राप्त कर लेते हैं। सुदर्शन शुक परिव्राजक का धर्मोपदेश सुनकर बहुत ही हर्षित हुआ। उसने शुक के पास शौचमूलक धर्म स्वीकार किया। विपुल अशन-पान-खाद्य-स्वाद्य आदि द्वारा परिव्राजक को प्रतिलाभित किया। तदनंतर शुक परिव्राजक ने सौगंधिक नगरी से प्रस्थान किया और वह अन्यान्य प्रदेशों में जनपद विहार से विचरने लगा।

थावद्यापुत्र का पदार्पण

(88)

तेणं कालेणं तेणं समएणं थावच्चापुत्तस्स समोसरणं। भावार्थं - उस काल, उस समय अनगार थावच्चापुत्र सौगंधिका नगरी में आए।

थावचा पुत्र-सुदर्शन संवाद

(३५)

परिसा णिग्गया। सुदंसणो वि णिग्गए! थावच्चापुत्तं वंदइ णमंसइ, वं० २ त्ता एवं वयासी - तुम्हाणं किंमूलए धम्मे पण्णत्ते? तए णं थावच्चापुत्ते सुदंसणेणं एवं वुत्ते समाणे सुदंसणं एवं वयासी - सुदंसणा! विणयमूले धम्मे पण्णते। से विय विणए दुविहे पण्णते तंजहा - अगारविणए य अणगार विणए य। तत्थ णं जे से अगारविणए से णं पंच अणुव्वयाई सत्त सिक्खावयाई एक्कारस उवासगपडिमाओ। तत्थ णं जे से अणगार विणए से णं पंच महव्वयाई तंजहा-सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं सव्वाओ अदिण्णादाणाओ वेरमणं सव्वाओ मेहुणाओ वेरमणं सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमणं सव्वाओ राइभोयणाओ वेरमणं जाव मिच्छादंसणसल्लाओ वेरमणं दसविहे पच्चक्खाणे बारस भिक्खपडिमाओ इच्चेएणं दुविहेणं विणयमूलएणं धम्मेणं अणुपुब्वेणं अट्टकम्मपगडीओ खवेता लोयगपइट्टाणे भवंति।

शब्दार्थ - विणयमूले - विनयमूल-चारित्र प्रधान, अगारविणए - गृहस्थ-सापवाद का चारित्र मूलक धर्म, अणगार विणए - साधु का निरपवाद चारित्र मूलक धर्म, खवेत्ता - क्षय कर, लोयग्गपइद्वाणे - लोकाग्र प्रतिष्ठान-मोक्ष पद प्राप्ति।

भावार्थ - जन समूह तथा सुदर्शन थावच्चापुत्र के पास धर्म सुनने आए। उन्होंने अनगार थावच्चापुत्र को आदक्षिण-प्रदक्षिणापूर्वक वंदन, नमन किया और बोले - आपके धर्म का मूल आधार क्या बतलाया गया है? सुदर्शन द्वारा यों पूछे जाने पर थावच्चापुत्र ने कहा - सुदर्शन! हमारे धर्म का मूल विनय-चारित्र बतलाया गया है! विनय दो प्रकार का है - अगार विनय तथा अनगार विनय। अगार विनय में पाँच अणुव्रत, सात शिक्षाव्रत तथा ग्यारह श्रावक प्रतिमाओं का समावेश है। अनगार विनय में पाँच महाव्रत कहे गए हैं, जो सब प्रकार के प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन तथा परिग्रह, रात्रि भोजन यावत् मिथ्यादर्शन शत्य से विरमण रूप हैं। उसके अन्तर्गत दस प्रकार के प्रत्याख्यान एवं बारह की भिक्षु-प्रतिमाएँ भी हैं। इस प्रकार दो प्रकार के विनयमूलक धर्म की आराधना से क्रमशः आठ कर्म प्रकृतियों का क्षय कर जीव मोक्ष प्राप्त करता है।

विवेचन - उपर्युक्त वर्णन में अगार विनय के भेद करते हुए पांच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत इन बारह व्रतों का वर्णन किया गया है। सभी तीर्थंकरों के शासन में श्रावक के व्रत तो बारह ही होते हैं। साधु के चतुर्याम पंचयाम धर्म की तरह श्रावक के व्रतों में परिवर्तन नहीं किन्ही-किन्ही प्रतियों में श्रावक के व्रतों में पांच अणुव्रत के स्थान पर चार अणुव्रत बता दिये गये हैं। परन्तु अन्यत्र आगमों में आये हुए पाठों को देखते हुए श्रावकों के बारह व्रत मानना ही उचित प्रतीत होता है।

सुदर्शन को प्रतिबोध

(३६)

तए णं थावच्चापुत्ते सुदंसणं एवं वयासी - तुब्भे णं सुदंसणा! किंमूलए धम्मे पण्णत्ते? अम्हाणं देवाणुप्पिया! सोयमूले धम्मे पण्णत्ते जाव सग्गं गच्छंति।

भावार्थ - थावच्चापुत्र ने सुदर्शन से कहा - सुदर्शन! तुम्हारे धर्म का मूल आधार क्या बतलाया गया है?

सुदर्शन बोला - देवानुप्रिय! हमारा धर्म शौचमूलक कहा गया है, यावत् द्रव्य शौच और भाव शौच द्वारा पवित्र होता हुआ साधक स्वर्ग प्राप्त करता है।

(३७)

तए णं थावच्चापुत्ते सुदंसणं एवं वयासी - सुदंसणा! से जहाणामए केइ पुरिसे एगं महं रुहिरकयं वत्थं रुहिरेण चेव धोवेज्जा तए णं सुदंसणा! तस्स रुहिरकयस्स वत्थस्स रुहिरेण चेव पक्खालिज्जमाणस्स अत्थि काइ सोही? णो इणहे समट्टे।

शब्दार्थ - रुहिरकयं - रुधिरकृत-रुधिर से लिप्त, धोवेज्जा - धोएँ, सोही - शुद्धि। भावार्थ - थावच्चापुत्र ने सुदर्शन से कहा - सुदर्शन! जैसे कोई पुरुष रक्त से लिप्त वस्त्र को यदि रक्त से ही धोए तो रुधिर से प्रक्षालित होने पर क्या उसकी शुद्धि होगी?

सुदर्शन ने कहा-ऐसा हो नहीं सकता।

(३८)

एवामेव सुदंसणा! तुब्भंपि पाणाइवाएणं जाव मिच्छादंसणसल्लेणं णि सोही जहा तस्स रुहिरकयस्स वत्थस्स रुहिरेणं चेव पक्खालिज्जमाणस्स णित्थ सोही। सुदंसणा! से जहाणामए केइ पुरिसे एगं महं रुहिरकयं वत्थं सिज्जया-खारेणं अणुलिंपइ २ ता पयणं आरुहेइ २ ता उण्हं गाहेइ २ ता तओ पच्छा सुद्धेण वारिणा धोवेजा से णूणं सुदंसणा! तस्स रुहिरकयस्स वत्थस्स सिज्जयाखारेणं अणुलित्तस्स पयणं आरुहियस्स उण्हं गाहियस्स सुद्धेणं वारिणा पक्खालिज्जमाणस्स सोही भवइ? हंता भवइ। एवामेव सुदंसणा! अम्हंपि पाणाइवाय वेरमणेणं जाव मिच्छादंसणसल्ल वेरमणेणं अत्थि सोही जहा वि तस्स रुहिरकयस्स वत्थस्स जाव सुद्धेणं वारिणा पक्खालिज्जमाणस्स अत्थि सोही।

शब्दार्थ-सिजयाखारेणं - साजी के खार के पानी द्वारा, पयणं - चूल्हा, उण्हं गाहेड़-ऊबाले।

भावार्थ - सुदर्शन! जिस तरह रुधिर से लिप्त वस्त्र को यदि रुधिर से धोया जाए तो उसकी शुद्धि नहीं होती। उसी प्रकार प्राणातिपात, यावत् मिथ्यादर्शन शल्य द्वारा भी तुम्हारी शुद्धि नहीं होगी।

सुदर्शन! जैसे कोई पुरुष एक बड़े खून से लिप्त वस्त्र को साजी के खार के जल में भिगोए फिर उसको चूल्हे पर चढ़ाकर गर्म करे, उसके बाद उसे शुद्ध जल से धोए तो सुदर्शन! वैसा करने से वह खून से लिप्त वस्त्र शुद्ध हो जाता है।

सुदर्शन! इसी प्रकार हमारी प्राणातिपात विरमण, यावत् मिथ्या दर्शनशल्य विरमण मूलक धर्म से शुद्धि हो जाती है। जैसे उस रुधिर लिप्त वस्त्र की, यावत् उक्त रूप में शुद्ध जल से प्रक्षालित करने पर शुद्धि होती है।

(38)

तत्थ णं से सुदंसणे संबुद्धे थावच्चापुत्तं वंदइ णमंसइ, वं० २ त्ता एवं वयासी-इच्छामि णं भंते! धम्मं सोच्चा जाणित्तए जाव समणोवासए जाए अभिगय-जीवाजीवे जाव पडिलाभेमाणे विहरइ।

शब्दार्थ - संबुद्धे - संबोध प्राप्त हुआ।

भावार्थ - सुदर्शन को संबोध प्राप्त हुआ। उसने अनगार थावच्चापुत्र को वंदन, नमस्कार किया और कहा-भगवन्! मैं धर्म-श्रवण कर, समझना चाहता हूँ, अंगीकार करना चाहता हूँ,

यावत् उसने धर्मोपदेश सुना, वह श्रमणोपासक बना, यावत् जीव-अजीव आदि तत्त्वों का बोध प्राप्त किया, यावत् महाव्रती साधुओं को आहारादि का दान देता हुआ रहने लगा।

शुक का पुनः आगमन

(80)

तए णं तस्स सुयस्स परिव्वायगस्स इमीसे कहाए लद्धद्वस्स समाणस्स अयमेयारूवे जाव समुप्पजित्था - एवं खलु सुदंसणेणं सोयधम्मं विष्पजहाय विणयमूले धम्मे पडिवण्णे। तं सेयं खलु मम सुदंसणस्स दिष्टिं वामेत्तए पुणरिव सोयमूलए धम्मे आघवित्तए त्तिकट्टु एवं संपेहेइ २ ता परिव्वायगसहस्सेणं सिद्धं जेणेव सोगंधिया णयरी जेणेव परिव्वायगा वसहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता परिव्वायगावसहिंस भंडणिक्खेवं करेइ, करेत्ता धाउरत्तवत्थ परिहए पविरल-परिव्वायगेणं सिद्धं संपरिवुडे परिव्वायगावसहाओ पडिणिक्खमइ,पडिणिक्खमित्ता सोगंधियाए णयरीए मज्झंमज्झेणं जेणेव सुदंसणस्स गिहे जेणेव सुदंसणे तेणेव उवागच्छइ।

शब्दार्थ - विप्पजहाय - त्याग कर, वामेत्तए - छुड़ा दूँ, परिवर्तित कर दूँ।

भावार्थ - जब शुक परिव्राजक को इस वृत्तांत का पता चला तो उसके मन में ऐसा भाव उपजा-विचार आया कि-सुदर्शन ने शौचमूलक धर्म का परित्याग कर, विनयमूलक धर्म स्वीकार कर लिया है। मेरे लिए यही श्रेयस्कर है, मैं सुदर्शन की दृष्टि बदल दूँ। पुनः उसे शौचमूलक धर्म समझाऊँ। यों चिंतन कर एक हजार परिव्राजकों के साथ वह सौगंधिका नगरी में आया। परिव्राजकों के मठ में उसने अपने उपकरण रखे। काषाय (गेरु से रंगे) वस्त्र धारण किए हुए, थोड़े परिव्राजकों से घरा हुआ, वह मठ से निकला। सौगंधिका नगरी के बीचोंबीच होता हुआ, सुदर्शन के घर आया।

(84)

तए णं से सुदंसणे तं सुयं एजमाणं पासइ, पासित्ता णो अब्भुट्टेइ णो पच्चुग्गच्छइ णो आढाइ णो परियाणाइ णो वंदइ तुसिणीए संचिद्वइ। तए णं से

www.jainelibrary.org

सुए परिव्वायए सुदंसणं अणब्भुडियं पासित्ता एवं वयासी - तुमं णं सुदंसणा! अण्णया ममं एज्जमाणं पासित्ता अब्भुडेसि जाव वंदिस, इयाणि सुदंसणा तुमं ममं एज्जमाणं पासित्ता जाव णो वंदिस, तं कस्स णं तुमे सुदंसणा! इमेयारूवे विणयमूले धम्मे पडिवण्णे?

भावार्थ - सुदर्शन शुक परिव्राजक को आते हुए देखकर न तो खड़ा ही हुआ और न उसके सामने गया, न उसके प्रति आदर सम्मान दिखाया एवं न उसे वंदन, नमन ही किया, मौन रहा। शुक परिव्राजक ने जब सुदर्शन को खड़ा न होते हुए, सामने न आते हुए देखा तो उससे बोला - सुदर्शन! पहले जब कभी मुझे तुम आता हुआ देखते थे, यावत् वंदन-नमन करते थे। सुदर्शन! इस बार मुझे आते हुए देखकर तुमने यावत् न वंदन किया, न नमन किया।

सुदर्शन! क्या तुमने (शौचमूलक धर्म का परित्याग कर) विनयमूलक धर्म अपना लिया है?

(83)

तए णं से सुदंसणे सुएणं परिव्वायएणं एवं वृत्ते समाणे आसणाओ अब्भुट्टेइ अब्भुट्टेत्ता करयल जाव सुयं परिव्वायगं एवं वयासी - एवं खलु देवाणुप्पिया! अरहओ अरिट्टणेमिस्स अंतेवासी धावच्चापुत्ते णामं अणगारे जावं इहमागए इह चेव णीलासोए उज्जाणे विहरइ, तस्स णं अंतिए विणयमूले धम्मे पिटेवण्णे।

भावार्थ - शुक परिव्राजक द्वारा यों कहे जाने पर सुदर्शन आसन से उठा और हाथ जोड़कर, मस्तक झुकाकर, उससे यों बोला - देवानुप्रिय! भगवान् अरिष्टनेमि के अन्तेवासी थावच्चापुत्र नामक अनगार, यावत् यहाँ पधारे, नीलाशोक नामक उद्यान में रुके, मैंने उनसे विनयमूलक धर्म स्वीकार किया है।

(88)

तए णं से सुए परिव्वायए सुदंसणं एवं वयासी - तं गच्छामो णं सुदंसणा! तव धम्मायित्यस्स थावच्चापुत्तस्स अंतियं पाउन्भवामो इमाइं च णं एयास्तवाइं अहाइं हेऊइं पिसणाइं कारणाइं वागरणाइं पुच्छामो। तं जइ णं मे से इमाइं अहाइं जाव वागरेइ तए णं अहं वंदािम णमंसािम। अह मे से इमाइं अहाइं जाव णो वागरेइ तए णं अहं एएहिं चेव अहेिहं हेऊिहं णिप्पट्टपिसणवागरणं करिस्सािम।

शब्दार्थ - हेऊहिं - हेतु, पिसणाइं - प्रश्न, वागरणाइं - व्याकरण-विश्लेषण, णिप्पड-

भावार्थ - तब शुक परिव्राजक ने सुदर्शन से इस प्रकार कहा - सुदर्शन! हम तुम्हारे धर्माचार्य थावच्चापुत्र के पास चलें। मैं इन अर्थों, विवेच्य विषयों को हेतु, प्रश्न, कारण एवं विश्लेषण पूर्वक पूछूंगा। यदि वे इन अर्थों का यावत् विश्लेषण कर पायेंगे तो मैं उन्हें वंदन, नमन करूंगा। यदि वे इन अर्थों का यावत् विश्लेषण न कर पायेंगे तो मैं हेतुओं द्वारा इनका विवेचन करता हुआ, उन्हें निरुत्तर कर दूंगा।

विवेचन - इस सूत्र में आए हुए हेतु, प्रश्न, कारण एवं व्याकरण शब्द विषय के युक्तियुक्त तर्क सम्मत विवेचन से संबद्ध हैं।

न्यायशास्त्र में अनुमान की स्थापना में प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय तथा निगमन—ये पांच अवयव माने गए हैं। प्रतिज्ञा का अभिप्राय अनुमेय पदार्थ के स्वरूप को सामान्य रूप में परिज्ञापित करना है। जैसे कोई व्यक्ति पर्वत से धुआँ निकलते हुए देखता है। उसे देखकर, 'पर्वतोऽयं विद्वमान्'-यह पर्वत अग्नियुक्त है-इस प्रकार प्रतिज्ञापित-अनुमेय पदार्थ को अभिव्यक्त करता है। अपने कथन को सिद्ध करने के लिए वह कहता है कि पर्वत इसलिए अग्निमान है क्योंकि उसमें से धुआँ निकल रहा है। पर्वत के धूमवान होने का कथन 'हेतु' है। दूसरे शब्दों में, कही हुई बात को, तत्साधक लिङ्ग-चिह्न द्वारा सिद्ध करने का कथनोपक्रम, न्यायशास्त्र में 'हेतु' शब्द से अभिहित हुआ है।

यहाँ प्रयुक्त 'प्रश्न' शब्द व्याख्यात विषय को अधिक स्पष्ट करने हेतु की जाने वाली जिज्ञासा से संबद्ध है। उस जिज्ञासा का जब पुनः समाधान किया जाता है तो विषय और अधिक स्पष्ट हो जाता है।

न्यायशास्त्र के अनुसार जो कार्य से पूर्व नियत या निश्चित रूप में रहता है, उसे 'कारण' कहा जाता है। जैसे घट रूप कार्य का मृत्तिका कारण है। क्योंकि घट का निर्माण होने से पूर्व मृत्तिका की अनिवार्यता अपेक्षित होती है।

यद्यपि 'व्याकरण' शब्द आज भाषा के शुद्ध पठन, लेखन, भाषण विषयक शास्त्र आदि से संबद्ध है किंतु इसका मूल अर्थ विशिष्ट विवेचन या विश्लेषण है। वि+आ+करण-इन तीनों के मेल से व्याकरण शब्द बना है। 'वि' उपसर्ग का अर्थ विशेष रूप से तथा 'आ' उपसर्ग का अर्थ व्यापक रूप से है। ''विशेषेण समन्तात व्याक्रियते विषयोयेन तद् व्याकरणम्' -

अर्थात् जिसके द्वारा किसी विषय का सूक्ष्मता एवं विस्तीर्णता से विश्लेषण किया जाता है, उसे व्याकरण कहा जाता है।

व्याकरण शब्द का प्राचीन अर्थ यही रहा है किंतु भाषाविज्ञान के अनुसार आगे चलकर 'अर्थ संकोच' हो जाने पर इसका अर्थ 'शब्द शास्त्र' के रूप में सीमित हो गया। आज वही अर्थ प्रचलित है। यहाँ जो व्याकरण शब्द आया है, वह अर्थ संकोच के पूर्ववर्ती इसके सामान्य व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ से जुड़ा है।

उपर्युक्त पाठ में जो 'अर्थ' शब्द आया है, वह 'अर्थ' शब्द अनेकार्थक है। कोशकार कहते हैं -

अर्थः स्याद् विषये मोक्षे, शब्दवाच्य-प्रयोजने। व्यवहारे धने शास्त्रे, वस्तु-हेतु-निवृत्तिषु॥

अर्थात् - 'अर्थ' शब्द इन अर्थों का वाचक है - विषय, मोक्ष शब्द का वाच्य, प्रयोजन, व्यवहार, धन शास्त्र वस्तु, हेतु और निवृत्ति। इन अर्थों में से यहाँ अनेक अर्थ घटित हो सकते हैं किन्तु आगे शुक और थावच्चा पुत्र के संवाद का जो उल्लेख है, उसके आधार पर 'शब्द का वाच्य' अर्थ विशेषतः संगत लगता है। 'कुलत्था सिरसवया' आदि शब्दों के अर्थ को लेकर ही संवाद होता है।

प्रस्तुत सूत्र की शब्द-संरचना से ऐसा प्रतीत होता है कि वेद-वेदांगवेता होने के साथ-साथ शुक परिवाजक न्यायशास्त्र का भी विद्वान् था। इसीलिए उसके वक्तव्य में हेतु आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है।

शुक एवं थावद्यापुत्र का शास्त्रार्थ (४४)

तए णं से सुए परिव्वायग-सहस्सेणं सुदंसणेण य सेट्ठिणा सिद्धं जेणेव णीलासोए उजाणे जेणेव थावच्चापुत्ते अणगारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता थावच्चापुत्तं एवं वयासी - जत्ता ते भंते! जवणिज्ञं ते अव्वाबाहं पि ते फासुयं विहारं ते?। तए णं से थावच्चापुत्ते सुएणं परिव्वायगेणं एवं वुत्ते समाणे सुयं परिव्वायगं एवं वयासी-सुया! जत्ता-वि मे जवणिज्ञं पि मे अव्वाबाहं-पि मे फासुय विहारंपि मे। शब्दार्थ - जत्ता - यात्रा, जवणिजं - यापनीय, फासुयं - प्रासुक-निर्वद्य, अव्वाबाहं-निर्विघन-बाधा रहित।

भावार्थ - तदनंतर शुक अपने एक हजार परिव्राजकों से घिरा हुआ, सुदर्शन सेठ के साथ नीलाशोक उद्यान में थावच्चापुत्र के पास आया। उनसे बोला - भगवन्! आपकी यात्रा चल रही है? यापनीय है? निर्बाध-विघ्न बाधा रहित है? आपका विहार अहिंसा पूर्वक-निर्वद्यरूप में चल रहा है?

शुक परिव्राजक द्वारा यों पूछे जाने पर थावच्चापुत्र ने उससे कहा - शुक! मेरी यात्रा भली भाँति, विघ्न-बाधा रहित, निर्बाध रूप में गतिशील है। मेरा विहार अहिंसामय, निर्वद्यरूप में चल रहा है।

(8%)

तए णं से सुए थावच्चापुत्तं एवं वयासी-किं भंते! जत्ता? सुया! जं णं मम णाणदंसणचित्ततवसंजममाइएहिं जोएहिं जोयणा से तं जत्ता। से किं तं भंते! जवणिजं ? सुया! जवणिजे दुविहे पण्णते तंजहा-इंदियजवणिजे य णो इंदिय-जवणिजे य। से किं तं इंदिय जवणिजं? सुया! जं णं ममं सोइंदियचिखं-दियघणिंदियजिक्भेंदिय-फासिंदियाइं णिरुवहयाइं वसे वहंति से तं इंदिय-जवणिजं। से किं तं णोइंदियजवणिजे? सुया! जं णं कोहमाणमाया-लोभा खीणा उवसंता णो उदयंति से तं णो इंदियजवणिजे।

शब्दार्थ - जोयणा - यतना, णिरुवहयाइं - निरुपहत-निरुपद्रव, वशगत। भावार्थ - शुक परिव्राजक ने थावच्चापुत्र को कहा-भगवन्! आपकी यात्रा क्या है? थावच्चापुत्र बोले-शुक! ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप आदि में यत्नशील रहना मेरी यात्रा है।

शुक - भगवन्! आपका यापनीय क्या है?

थावच्चापुत्र - शुक! यापनीय दो प्रकार का होता है - इन्द्रिय यापनीय तथा नो-इन्द्रिय यापनीय।

शुक - आपका इन्द्रिय यापनीय क्या है?

थावच्चापुत्र - शुक! श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षु-इन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, जिह्नेन्द्रिय तथा स्पर्शनेन्द्रिय को निरुपद्रव रखना, वश में रखना-इन्द्रिय यापनीय है। शुक - आपका नो-इन्द्रिय यापनीय क्या है?

थावच्यापुत्र - शुक! क्रोध, मान, माया एवं लोभ का क्षीण एवं उपशांत होना, उदित न होना, नो-इन्द्रिय यापनीय है।

(88)

से किं तं भंते! अव्वाबाहं? सुया! जं णं मम वाइयिपत्तियसिंभिय सिण्णवाइया विविहा रोगायंका णो उदीरेंति से तं अव्वाबाहं। से किं तं भंते! फासुय विहारं? सुया! जं णं आरामेसु उज्जाणेसु देवउलेसु सभासु पव्वासु इत्थीपसु-पंडग-विविज्ञियासु वसहीसु पाडिहारियं पीढ-फलग-सेज्ञा-संथारयं ओगिण्हित्ताणं विहरामि से तं फासुयविहारं।

शब्दार्थ - वाइय - वातज-वायु से उत्पन्न होने वाले, पित्तिय - पित्तज-पित्त से उत्पन्न होने वाले, सिंभिय - र्श्लेष्मज-कफ से उत्पन्न होने वाले, सिंणिवाइयं - सिन्नपातज-वात, पित्त एवं कफ तीनों के विकार से उत्पन्न होने वाले, उदीरेंति - उदीर्ण-उत्पन्न नहीं होते, पंडग-पंडक-नपुंसक, विविज्ञियासु - विवर्जित-रहित, वसहीसु - स्थानों में, पाडिहारियं - प्रातिहारिक-पुनः समर्पणीय।

भावार्थ - शुक - भगवन्! आपका अव्याबाध क्या है?

थावच्चापुत्र - शुक! वात-पित्त-कफ एवं सन्निपात जनित विविध रोगों का उदय में न आना, हमारा अव्याबाध है।

शुक - भगवन्! आपका प्रासुक विहार कैसा है?

थावच्यापुत्र - आरामों, उद्यानों, देवायतनों, सभाभवनों, प्रपास्थानों में स्त्री, पशु एवं नपुंसकवर्जित वसितयों में, प्रातिहारिक पीठ-पाट, फलक-बाजोट, शय्या-संस्तारक तथा कल्पनीय निर्वद्य स्थान स्वीकार कर विचरणशील रहना, हमारा प्रासुक विहार है।

(४७)

सिरसवया ते भंते! किं भक्खेया अभक्खेया? सुया सिरसवया भक्खेयावि अभक्खेयावि। से केणड्रेणं भंते! एवं वच्चड़-सिरसवया भक्खेयावि अभक्खेयावि? सुया! सिरसवया दुविहा पण्णत्ता तंजहा-मित्तसिरसवया य धण्ण सिरसवया य। तत्थ णं जे ते मित्तसिरसवया ते तिविहा पण्णत्ता तंजहा-सहजायया सहविहयया सहपंसुकीिलयया ते णं समणाणं णिग्णंथाणं अभक्खेया, तत्थ णं जे ते धण्ण-सिरसवया ते दुविहा पण्णत्ता तंजहा-सत्थपिरणया य असत्थपिरणया य। तत्थ णं जे ते असत्थपिरणया ते समणाणं णिग्णंथाणं अभक्खेया। तत्थ णं जे ते सत्थ-पिरणया ते दुविहा पण्णत्ता तंजहा-फासुया य अफासुया य। अफासुया णं सुया! णो भक्खेया। तत्थ णं जे ते फासुया ते दुविहा पण्णत्ता तंजहा - जाइया य अजाइया य, तत्थ णं जे ते अजाइया ते अभक्खेया। तत्थ णं जे ते जाइया ते दुविहा पण्णत्ता तंजहा-एसिण्जा य अणेसिण्जा य। तत्थ णं जे ते अणेसिण्जा ते णं अभक्खेया तत्थ णं जे ते अणेसिण्जा ते णं अभक्खेया तत्थ णं जे ते एसिण्जा ते दुविहा पण्णत्ता तंजहा-लद्धा य अलद्धा य। तत्थ णं जे ते अलद्धा ते अभक्खेया। तत्थ णं जे ते लद्धा ते णिग्गंथाणं भक्खेया। एएणं अट्ठेणं सुया! एवं वुच्चइ-सिरसवया भक्खेयावि।

शब्दार्थ - सरिसवया - सदृश-वय-समान उम्र के मित्र तथा सर्षपक - सरसों, भक्खेया-भक्ष्य-खाने योग्य, अभक्खेया - अभक्ष्य-न खाने योग्य, वुच्चइ - कहा जाता है, सत्थपरिणया-शस्त्र परिणत-अचित्त करने हेतु अग्नि आदि द्वारा संयोजित, जाइया - याचित, एसणिजा -एषणीय (कल्पनीय)।

भावार्थ - शुक - भगवन्! 'सरिसवय' भक्ष्य हैं या अभक्ष्य हैं? थावच्चापुत्र - शुक! सरिसवय भक्ष्य भी हैं और अभक्ष्य भी हैं।

शुक - भगवन्! सरिसवयों के संबंध में भक्ष्य और अभक्ष्य दोनों प्रकार से आप कैसे कहते हैं?

थावच्चापुत्र - शुक! सिरसवयों के दो प्रकार-द्विविध अर्थ युक्त हैं। जैसे उनका एक अर्थ सदृशवय-समान आयु वाले मित्र आदि हैं, दूसरा अर्थ सर्षपक-सरसों धान्य है। उनमें जो मित्रार्थक सिरसवय हैं, वे तीन प्रकार के बतलाए गए हैं - १. सहजात-साथ जन्मे हुए २. सहवर्धित - एक साथ बढ़े हुए ३. सह पांसुकक्रीड़ित - एक साथ धूल में खेले हुए। ये श्रमण निर्गृन्थों की दृष्टि में अभक्ष्य हैं।

जो सर्षपक धान्यार्थ बोधक सरिसवय हैं वे दो प्रकार के हैं-शस्त्र-परिणत तथा अशस्त्र-परिणत। उनमें जो अशस्त्र परिणत हैं, वे श्रमण निर्प्रन्थों के लिए अभक्ष्य हैं। उनमें जो शस्त्र परिणत हैं वे दो प्रकार के हैं- प्रासुक - अचित्त और अप्रासुक - सचित्त।

शुक! अप्रासुक खाने योग्य नहीं है। उनमें जो प्रासुक हैं वे दो प्रकार के बतलाये गये हैं जैसे याचित एवं अयाचित। उनमें जो अयाचित हैं, वे अभक्ष्य हैं। जो याचित हैं वे दो प्रकार के हैं - एषणीय और अनेषणीय। उनमें जो अनेषणीय हैं, वे अभक्ष्य हैं।

जो एषणीय हैं, वे दो प्रकार के हैं - लब्ध - भिक्षाचर्या द्वारा प्राप्त, अलब्ध-भिक्षा के रूप में अप्राप्त।

जो अलब्ध हैं, वे अभक्ष्य हैं। जो लब्ध हैं, वे निर्ग्रन्थों के लिए भक्ष्य हैं। शुक! इस द्विविध अभिप्राय के अनुसार 'सरिसवय' भक्ष्य भी हैं और अभक्ष्य भी हैं।

(४८)

एवं कुलत्थावि भाणियव्वा णवरं इमं णाणत्तं - इत्थिकुलत्था य धण्ण-कुलत्था य। इत्थिकुलत्था तिविहा पण्णत्ता तंजहा-कुलवहुया य कुलमाउया इ य कुलधूया इ य। धण्णकुलत्था तहेव।

शब्दार्थ - कुलत्था - कुलत्थ नामक विशेष धान्य तथा कुलस्था-कुल में स्थित स्त्री, णाणत्तं - विशेषता जानना चाहिए, इस्थि - स्त्री, कुलवहुया - कुल वधू, कुलमाउया - कुलमाता, कुलधूया - कुल धूता-कुल पुत्री।

भावार्थ - कुलत्था के संबंध में भी ऐसा ही कथन करना चाहिए। वहाँ विशेष बात यह जातव्य है कि कुलत्था शब्द कुल स्थित स्त्री तथा कुलत्थ नामक धान्य-इन दो अर्थों में प्रयुक्त है। कुलस्थ स्त्री तीन प्रकार की बतलायी गई है। जैसे कुल वधू, कुल माता तथा कुल पुत्री। जिस प्रकार श्रमण निर्ग्रन्थों की दृष्टि में मित्रादि सूचक 'सरिसवय' अभक्ष्य हैं, इसी प्रकार स्त्री सूचक 'कुलत्थ' अभक्ष्य हैं। धान्य सूचक कुलत्थों की भक्ष्यता के संबंध में भी वे ही तथ्य ग्राह्य हैं, जो सर्षपसूचक 'सरिसवय' के संबंध में प्रतिपादित हुए हैं।

(38)

एवं मासा वि णवरं इमं णाणत्तं - मासा तिविहा पण्णत्ता तंजहा -

कालमासा य अत्थमासा य धण्णमासा य। तत्थ णं जे ते कालंमासा ते णं दुवालसविहा पण्णत्ता तंजहा-सावणे जाव आसाढे, ते णं अभक्खेया। अत्थमासा दुविहा पण्णत्ता, तंजहा हिरण्णमासा य सुवण्णमासा य, ते णं अभक्खेया। धण्णमासा तहेव।

शब्दार्थ - कालमासा - समय सूचक महीने, अत्थमासा - अर्थ-रजत, स्वर्ण के तौल सूचक मासे, धण्णमासा - धात्य सूचक माष-उडद, दुवालसविहा - द्वादशविध-बारह प्रकार के।

भावार्थ - इसी प्रकार मास के संबंध में जानना चाहिए। वहाँ विशेषता यह है - मास तीन प्रकार के कहे गये हैं - काल मास, अर्थ मास तथा धान्यमाष। इनमें जो कालमास हैं, वे बारह प्रकार के परिज्ञापित हुए हैं, जैसे - श्रावण यावत् आषाढ। श्रमण निर्ग्रन्थों की दृष्टि में ये अभक्ष्य हैं। अर्थ मास दो प्रकार के कहे गए हैं। जैसे चांदी के मासे, सोने के मासे। ये भी अभक्ष्य हैं। धान्य भाष उड़द के संबंध में सरिसवय-सर्षप की तरह सभी बातें जाननी चाहिए।

(Xo)

एगे भवं दुवे भवं अणेगे भवं अक्खए भवं अव्वए भवं अविहए भवं अणेगभूयभावभविएवि भवं? सुया! एगे वि अहं दुवेवि अहं जाव अणेगभूयभाव-भविएवि अहं। से केणडेणं भंते! एगे वि अहं जाव सुया। द्व्वह्याए एगे अहं णाणदंसणह्याए दुवेवि अहं पएसह्याए अक्खएवि अहं अव्वएहि अहं अविहएवि अहं उवओगड्याए अणेगभूयभावभविएवि अहं।

शब्दार्थ - भवं - आप, अणेगभूयभावभविए - भूत, भाव एवं भावी के रूप में अनेक, दव्वद्वयाए - द्रव्य की अपेक्षा से, णाणदंसणहयाए - ज्ञान और दर्शन की अपेक्षा से, पएसहयाए - प्रदेशों की अपेक्षा से, अक्खए - अक्षय, अव्वए - अव्वय, अविहिए - अवस्थित, उवओगहयाए - उपयोग की दृष्टि से।

भावार्थ - शुक - भगवन्! क्या आप एक हैं, दो हैं, अनेक हैं, अक्षय हैं, अव्यय है, अवस्थित हैं तथा भूत-वर्तमान-भविष्य रूप अनेक हैं?

थावच्चापुत्र - शुक! मैं एक हूँ, दो हूँ यावत् भूत-वर्तमान भविष्य रूप अनेक हूँ। पुनश्च, द्रव्य की दृष्टि से मैं एक हूँ। ज्ञान और दर्शन की दृष्टि से दो भी हूँ यावत् भूत-वर्तमान-भविष्यरूप अनेक हूँ। विवेचन - शुक परिव्राजक ने थावच्चापुत्र को निरुत्तर करने हेतु इस सूत्र में ऐसा प्रश्न किया जिसमें सामान्यतः एक दूसरे के विपरीत भावों का सूचक है। जैसे यदि कोई कहे 'मैं' एक हूँ' तो फिर 'मैं दो हूँ' ऐसा नहीं कह सकता तथा 'अनेक हूँ' ऐसा भी नहीं कह सकता।

ऐसा प्रतीत होता है कि शुक परिव्राजक के ध्यान में अनेकांत दृष्टि न रही हो। किन्तु थावच्चापुत्र ने अनेकांतवादी दृष्टिकोण द्वारा सभी भावों का अपने व्यक्तित्व में समावेश सिद्ध कर दिया।

उदाहरणार्थ यदि एकात्मक पक्ष को लें तो यह कहा जा सकता है कि आत्मत्व, आत्म स्वरूप या आत्मा के मूल गुणों की दृष्टि से सभी आत्माएं सदृश हैं, एक है। उनमें कोई भेद नहीं है। यह द्रव्यात्मेंक एकत्व है। किन्तु जैन दर्शन प्रत्येक शरीर में भिन्न-भिन्न आत्मा स्वीकार करता है। इस प्रकार वैयक्तिक दृष्टि से आत्मा एक नहीं है, अनेक है।

मूल स्वरूप की दृष्टि से आत्मा अक्षय एवं अव्यय है। भूत-वर्तमान एवं भविष्य-तीनों ही कालों में उसका अस्तित्व बना रहता है। वर्तमान पर्याय की दृष्टि से वह अवस्थित है।

शुक का समाधान : दीक्षा (५१)

एत्थ णं से सुए संबुद्धे थावच्चापुत्तं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी - इच्छामि णं भंते! तुब्भे अंतिए केवलिपण्णत्तं धम्मं णिसामित्तए। धम्मकहा भाणियव्वा। तए णं से सुए परिव्वायए थावच्चापुत्तस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म एवं वयासी-इच्छामि णं भंते! परिव्वायगसहस्सेणं सिद्धं संपरिवुडे देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडे भवित्ता पव्वइत्तए। अहा सुहं देवाणुप्पिया! जाव उत्तरपुरच्छिमे दिसीभाए तिदंडयं जाव धाउरत्ताओ य एगंते एडेइ, एडेत्ता सयमेव सिंह उप्पाडेइ, उप्पाडेत्ता जेणेव थावच्चापुत्ते जाव मुंडे भवित्ता जाव पव्वइए सामाइय-माइयाइं चोद्दसपुव्वाइं अहिज्जइ। तए णं थावच्चापुत्ते सुयस्स अणगार सहस्सं सीसत्ताए वियरइ।

शब्दार्थ - णिसामित्तए - सुनने के लिए, एडेइ - डालता है, सिंह - शिखा-चोटी, उप्पाडेइ - उत्पाटित करता है-उखाड़ लेता है, वियरइ - देते हैं।

भावार्थ - थावच्चापुत्र के उपर्युक्त समाधान से शुक परिव्राजक को संबोध प्राप्त हुआ। उसने थावच्चापुत्र को वंदन, नमन कर कहा-'भगवन्! मैं आपके पास केवलि-प्ररूपित धर्म सुनना चाहता हूँ।'

तब थावच्चापुत्र ने धर्मोपदेश दिया। यह वर्णन पूर्व प्रसंगों से जान लेना चाहिए। शुक परिव्राजक ने थावच्चापुत्र से धर्म का श्रवण कर कहा—'भगवन्! मैं अपने एक हजार परिव्राजकों सहित आप से मुंडित प्रव्रजित होना चाहता हूँ।'

थावच्चापुत्र बोले-'देवानुप्रिय! जिससे तुम्हारी आत्मा को सुख मिले, वैसा करो' यावत् शुक परिव्राजक ने उत्तर-पूर्व दिशा भाग में-ईशान कोण में अपने त्रिदण्ड यावत् काषाय रंग के वस्त्र एकांत स्थान में डाल दिए। वैसा कर उसने स्वयं अपनी शिखा उखाड़ ली। वह अनगार थावच्चापुत्र के पास आया, उनको वंदन, नमस्कार किया, उनसे मुंडित यावत् प्रव्रजित हुआ।

सामायिक आदि से प्रारंभ कर चतुर्दश पूर्व पर्यंत अध्ययन किया। तदनंतर थावच्चापुत्र ने शुक को एक सहस्र शिष्य प्रदान किए।

थावच्चापुत्रः सिद्धत्व-प्राप्ति (५२)

तए णं थावच्चापुत्ते सोगंधियाओ णयरीओ णीलासोयाओ पिडणिक्खमइ, पिडणिक्खमित्ता बिहया जणवय विहारं विहरइ। तए णं से थावच्चापुत्ते अणगार-सहस्सेणं सिद्धं संपरिवुडे जेणेव पुंडरीए पव्वए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पुंडरीयं पव्वयं सिणयं सिणयं दुरूहइ दुरूहित्ता मेघघणसिण्णिगासं देवसिण्णिवायं पुढिविसिलापद्यं जाव पाओवगमणं समणुवण्णे। तए णं से थावच्चा पुत्ते बहूणि वासाणि सामण्ण परियागं पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए सिद्धे भत्ताइं अणसणाए जाव केवलवरणाणदंसणं समुप्पाडेत्ता तओ पच्छा सिद्धे जाव प्यहीणे।

शब्दार्थ - देवसण्णिवायं - देवसित्रपात-देवों का आगमन, पाउणित्ता - पालन कर। भावार्थ - तदनंतर थावच्चापुत्र सौगंधिका नगरी से, नीलाशोक उद्यान से प्रस्थान कर, विभिन्न जनपदों में विहार करते रहे। फिर वे एक हजार अनगारों सहित पुंडरीक पर्वत पर आए। धीरे-धीरे उस पर चढ़े। उस पर सघन बादलों के समान नीले तथा जहाँ देवों का भी आना-

www.jainelibrary.org

जाना रहता था, ऐसे पृथ्वी शिलापट्टक पर यावत् प्रतिलेखना आदि कर संलेखना पूर्वक पादोपगमन अनशन स्वीकार किया।

इस प्रकार थावच्चापुत्र ने बहुत वर्ष पर्यंत श्रामण्य पर्याय-साधु जीवन का पालन कर एक मास की संलेखना पूर्वक साठ भक्तों का छेदन कर यावत् केवलज्ञान, केवल दर्शन प्राप्त किया। तत्पश्चात् उसने सिद्धत्व प्राप्त किया, समस्त दुःखों का अंत किया।

मंत्रियों सहित राजा शैलक की प्रवज्या

(43)

तए णं से सुए अण्णया कयाई जेणेव सेलगपुरे णगरे जेणेव सुभूमिभागे उजाणे समोसरणं परिसा णिग्गया सेलओ णिगच्छइ धम्मं सोच्चा जं णवरं देवाणुप्पिया! पंथगपामोक्खाई पंच मंतिसयाई आपुच्छामि मंडुयं च कुमारं रजे ठावेमि तओ पच्छा देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पळ्यामि। अहासुहं देवाणुप्पिया!

भावार्थ - फिर एक बार शुक अनगार शैलकपुर नगर में आए। वहाँ सूभूमिभाग नामक उद्यान में समवसृत हुए, ठहरे। धर्मश्रवण हेतु परिषद आयी। राजा शैलक भी आया। धर्म देशना का श्रवण किया। धर्म देशना के अन्य प्रसंगों से इस प्रसंग में यह विशेषता है कि राजा शैलक ने मुनि शुक से कहा—'देवानुप्रिय! अपने पंथक आदि पांच सौ मंत्रियों से पूछ लूं, उनसे परामर्श कर लूं, राजकुमार मण्डुक को राज्य में स्थापित कर दूं, उसे राज्य का उत्तरदायित्व सौंप दूं। तत्पश्चात् में गार्हस्थ्य का त्याग कर आपके पास मुंडित, प्रव्रजित होऊँगा।

शुक बोले - देवानुप्रिय! जिससे तुम्हारी आत्मा को सुख मिले, वैसा ही करो।

(४४)

तए णं से सेलए राया सेलगपुरं णगरं अणुष्पविसइ, अणुष्पविसित्ता जेणेव सए गिहे जेणेव बाहिरिया उवट्टाणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणं सण्णिसण्णे। तए णं से सेलए राया पंथग पामोक्खे पंच मंतिसए सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी-एवं खलु देवाणुष्पिया! मए सुबस्स अंतिए धम्मे णिसंते से वि य मे धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए, अहं णं देवाणुप्पिया! संसार भउव्विगे जाव पव्वयामि, तुब्भे णं देवाणुप्पिया! किं करेह किं ववसह किं वा भे हियइच्छिए सामत्थे? तए णं ते पंथगपामोक्खा सेलगं रायं एवं वयासी-जइ णं तुब्भे देवाणुप्पिया! संसार० जाव पव्वयह अम्हाणं देवाणुप्पिया! किमण्णे आहारे वा आलंबे वा अम्हे वि य णं देवाणुप्पिया! संसार भउव्विगा जाव पव्वयामो जहा णं देवाणुप्पिया! अम्हं बहुसु कजेसु य कारणेसु य जाव तहा णं पव्वइयाण वि समाणाणं बहुसु जाव चक्खुभूए।

भावार्थ - फिर राजा शैलक शैलकपुर नगर में अनुप्रविष्ट हुआ। बाहर की उपस्थानशाला-सभा भवन में आया तथा सिंहासनासीन हुआ। उसने पंथक आदि अपने पांच सौ मंत्रियों को बुलाया और कहा - देवानुप्रियो! मैंने मुनि शुक के पास धर्म-श्रवण किया है। वह मुझे इच्छित, प्रतीच्छित और अभिरुचित है। मैं संसार के भय से उद्विग्न होता हुआ यावत् शुक अनगार के पास दीक्षा लेना चाहता हूँ। देवानुप्रियो! इस संबंध में आप क्या करणीय मानते हैं? आपकी क्या मनःस्थिति है? क्या हार्दिक इच्छा है?

तब पंथक आदि मंत्रियों ने राजा शैलक से कहा—देवानुप्रिय! यदि आप संसार—जन्म-मरण रूप आवागमन के भय से उद्विग्न होकर यावत् दीक्षा लेना चाहते हैं तो फिर हमारे लिए क्या आलंबन-सहारा रहेगा। हम भी संसार के भय से उद्विग्न होकर यावत् आपके साथ प्रव्रज्या स्वीकार करेंगे।

देवानुप्रिय! जिस तरह लौकिक जीवन में आप हमारे लिए अनेक कार्यों में, कारणों में चक्षुभूत-मार्गदर्शक रहे, उसी प्रकार श्रमणों के रूप में प्रव्रजित होने पर भी हमारे बहुत से कार्यों में यावत् चक्षुभूत रहें।

(५५)

तए णं से सेलगे पंथगपामोक्खे पंच मंतिसए एवं वयासी—जड़ णं देवाणुप्पिया! तुब्भे संसार० जाव पव्वयह तं गच्छह णं देवाणुप्पिया। सएसु २ कुडुंबेसु जेड्डेपुत्ते कुडुंबमज्झे ठावेता पुरिससहस्सवाहिणीओ सीयाओ दुरूढा समाणा मम अंतियं पाउब्भवह ति। तेवि तहेव पाउब्भवंति।

शब्दार्थ - ठावेत्ता - स्थापित कर।

भावार्श - तब राजा शैलक ने पंथक आदि पांच सौ मंत्रियों से कहा - देवानुप्रियो! आप भी संसार-भय से उद्विग्न हैं, यावत् प्रव्रजित होना चाहते हैं तो जाओ अपने-अपने कुटुम्बों में अपने-अपने ज्येष्ठ पुत्रों को परिवार का उत्तरदायित्व सौंप कर, हजार-हजार पुरुषों द्वारा वहन करने योग्य शिविकाओं पर आरूढ़ होकर मेरे पास आओ। मंत्रियों ने जैसा राजा ने कहा, किया और उसके पास उपस्थित हुए।

(५६)

तए णं से सेलए राया पंच मंतिसयाई पाउब्भवमाणाई पासइ, पासित्ता हड्डतुडे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी-खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! मंडुयस्स कुमारस्स महत्थं जाव रायाभिसेयं उवडवेह० अभिसिंचइ जाव राया जाए जाव विहरइ।

भावार्थ - राजा शैलक ने जब पांच सौ मंत्रियों को आया हुआ देखा तो वह हर्षित और पिरतुष्ट हुआ। उसने सेवकों को बुलाया और आदेश दिया—'देवानुप्रियो! राजकुमार मण्डुक के राज्याभिषेक की विशाल तैयारी करो और ऐसा कर मुझे सूचित करो।' तदनुसार राजकुमार मण्डुक का अभिषेक हुआ वह राजा हो गया तथा राज्य का उत्तरदायित्व संभाल लिया।

(২৬)

तए णं से सेलए मंडुयं रायं आपुच्छइ। तए णं से मंडुए राया कोडुंबियपुरिसे सहावेइ, सहावेत्ता एवं वयासी-खिप्पामेव सेलगपुरं णयरं आसिय जाव गंधविद्दिभूयं करेह य कारवेह य क० २ ता एयमाणित्तयं पच्चिप्पिणह। तए णं से मंडुए दोच्चंपि कोडुंबियपुरिसे सहावेइ, सहावेत्ता एवं वयासी-खिप्पामेव सेलगस्स रण्णो महत्थं जाव णिक्खमणाभिसेयं जहेव मेहस्स तहेव णवरं पउमावई देवी अगकेसे पडिच्छइ सब्वेवि पडिगाहं गहाय सीयं दुरूहंति अवसंसं तहेव जाव सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ २ ता बहुहिं चउत्थ जाव विहरइ।

भाषार्थ - फिर शैलक ने राजा मण्डुक से पूछा - दीक्षा लेने की अनुमित ली। राजा मण्डुक ने सेवकों को बुलाया और कहा-शीघ्र ही शैलकपुर नगर में पानी से छिड़काव कराओ, यावत् सुगंधित पदार्थों द्वारा उसे सुरिभमय बनाओ। मेरी आज्ञानुरूप यह सब कर मुझे सूचित करो। उन्होंने वैसा ही किया।

तब राजा मंडुक ने पुनः कौटुंबिक पुरुषों को बुलाया और कहा - शीघ्र ही राजा शैलक के विशाल निष्क्रमणाभिषेक की तैयारी करो। जैसा मेघकुमार का दीक्षा समारोह हुआ, वैसा ही शैलक का हुआ। अन्तर यह है कि रानी पद्मावती ने उसके अग्रकेश ग्रहण किए। फिर वे सभी प्रतिग्रह-श्रमणोचित उपकरण लेकर शिविकाओं पर आरूढ हुए। शेष वर्णन पूर्वानुरूप है, यावत् उन्होंने सामायिक से प्रारंभ कर ग्यारह अंगों का अध्ययन किया, यावत् उपवास आदि अनेक प्रकार के तप करते हुए श्रमण जीवन का पालन करते रहे।

अनगार शुक की मुक्ति

(২৯)

तए णं से सुए सेलगस्स अणगारस्स ताइं पंथगपामोक्खाइं पंच अणगारसवाइं संसिमत्ताए वियरइ। तए णं से सुए अण्णया कथाइं सेलगपुराओ णगराओ सुभूमिभागाओ उज्जाणाओ पिडणिक्खमइ, पिडणिक्खमित्ता बहिया जणवय विहारं विहरइ। तए णं से सुए अणगारे अण्णया कथाइं तेण अणगारसहस्सेणं सिद्धं संपरिवुडे पुळ्वाणुपुळ्वं चरमाणे गामाणुगामं विहरमाणे जेणेव पुंडरीय पळ्वए जाव सिद्धे।

भावार्थ - तदनंतर मुनि शुक ने शैलक अनगार को पंथक आदि पांच सौ शिष्य प्रदान किए। फिर मुनि शुक ने किसी एक समय शैलकपुर नगर के सुभूमिभाग उद्यान से प्रस्थान किया और अनेक प्रदेशों में विचरणशील रहे।

तदनंतर शुक अनगार एक हजार साधुओं सहित ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए पुण्डरीक पर्वत पर आए यावत् संलेखना पूर्वक अनशन कर मुक्त, सिद्ध हुए।

शैलक : रोग-ग्रस्त (५६)

तए णं तस्स सेलगस्स रायरिसिस्स तेहिं अंतेहि य पंतेहि य तुच्छेहि य लूहेहि य अरसेहि य विरसेहि य सीएहि य उण्हेहि य कालाइक्कंतेहि य पमाणाइक्कंतेहि य णिच्चं पाणभोयणेहि य पयइसुकुमालस्स सुहोचियस्स सरीरगंसि वेयणा पाउडभूया उज्जला जाव दुरहियासा कंडुयदाह पित्तज्जर-पिग्यस्पिरे यावि विहरइ। तए णं से सेलए तेणं रोयायंकेणं सुक्के भुक्खे जाए यावि होत्था।

शब्दार्थ - रायरिसिस्स - राजर्षि का, अंतेहि - अतिसाधारण, पंतेहि - बचा-खुचा, तुच्छेहि - निस्सार, लूहेहि - रूखा-सूखा, अरसेहि - रस शून्य, विरसेहि - स्वाद रहित, सीएहि - ठण्डा, उण्हेहि - गर्म, कालाइक्कंतेहि - कालातिक्रांत-भूख का समय चले जाने पर, पमाणाइक्कंतेहि - परिमाण के प्रतिकूल-कम-ज्यादा, पाणभोयणेहि - खान-पान से, पयइसुकुमालस्स - प्रकृति से सुकोमल, सुहोचियस्स - सुखोचित-सुखापेक्षी, उज्जला - तीव्र-उत्कट, दुरहियासा - दुस्सह, कंडुय - खुजली, दाह - जलन, सुक्के-शुष्क, भुक्खे-रोगों द्वारा भुक्त।

भावार्थ - राजर्षि शैलक के प्रकृति सुकुमारता एवं सुखाभ्यस्तता के कारण अति सामान्य, बचे-खुचे, निःस्सार, नीरस, स्वाद रहित ठण्डे गर्म समय-बेसमय, कम-ज्यादा खान-पान से शरीर में तीव्र वेदना उत्पन्न हुई, यावत् वह बड़ी असह्य थी। उनके शरीर में खुजली, जलन एवं पित्तज्वर हो गया। इस रुणता के कारण उसका शरीर शुष्क हो गया, भुक्त-दुर्बल और निस्तेज हो गया।

राजा मण्डुक द्वारा चिकित्सा-व्यवस्था (६०)

तए णं से सेलए अण्णया कयाइं पुट्याणुपुट्यिं चरमाणे जाव जेणेव सुभूमिभागे जाव विहरइ। परिसा णिग्गया मंडुओऽवि णिग्गओ सेलगं अणगारं जाव वंदइ णमंसइ २ त्ता पज्जुवासइ। तए णं से मंडुए राया सेलगस्स अणगारस्स सरीरगं सुक्कं भुक्खं जाव सव्वाबाहं सरोगं पासइ, पासित्ता एवं वयासी—अहं णं भंते! तुब्भं अहापवित्तेहिं तेगिच्छिएहिं अहापवत्तेणं ओसहभेसज्जेणं भत्तपाणेणं तिगिच्छं आउंटावेमि। तुब्भ णं भंते! मम जाणसालासु समोसरह फासुअं एसणिजं पीढफलगसेजासंथारंग ओगिण्हित्ताणं विहरइ।

शब्दार्थ - तेगिच्छिएहिं - चिकित्सकों द्वारा, ओसहभेसज्जेणं - जड़ी बूटियाँ तथा दवाओं द्वारा, तिगिच्छं - चिकित्सा, आउंटावेमि - कराऊँ, जाणसालासु - यानशाला में, समोसरह - पधारें।

भावार्थ - शैलक किसी समय पूर्वानुपूर्व - यथाक्रम विहार करते हुए शैलक पुर में, सुभूपिभाग नामक उद्यान में पधारे। दर्शन, वंदन धर्म-श्रवण हेतु परिषद् एकत्रित हुई। राजा मण्डुक भी उपस्थित हुआ। शैलक अनगार को वंदन, नमन किया, उनकी पर्युपासना की-उनके सान्निध्य में बैठा।

जब राजा मण्डुक ने अनगार शैलक के शरीर को सूखा हुआ रोगों द्वारा दुर्बल एवं निस्तेज यावत् सर्वबाधायुक्त देखा तब वह बोला-'भगवन्! मैं आपकी यथा प्रवृत्त-साधु मर्यादा एवं कल्प के अनुकूल, चिकित्सकों द्वारा कल्पनीय औषध-भैषज पथ्य खान-पान से आपकी चिकित्सा कराना चाहता हूँ।

भगवन्! आप मेरी यानशाला में पधारें। प्रामुक एषणीय पीठ, फलक, शय्या-संस्तारक यथाविधि ग्रहण कर विराजें।

(६१)

तए णं से सेलए अणगारे मंडुयस्स रण्णो एयमट्ठं तहत्ति पडिसुणेइ। तए णं से मंडुए सेलगं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता जामेव दिसिं पाउक्भूए तामेव दिसिं पडिगए। तए णं से सेलए कल्लं जाव जलंते सभंडमत्तोवगरणमायाए पंथगपामोक्खेहिं पंचिहं अणगार सएहिं सिद्धं सेलगपुरमणुप्पविसइ २ ता जेणेव मंडुयस्स जाणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता फासुयं पीढ जाव विहरइ।

भावार्थ - अनगार शैलक ने राजा मंडुक का यह अनुरोध स्वीकार किया। राजा मंडुक

शैलक अनगार को वंदन नमन कर जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में चला गया। प्रातः-काल होने पर सूर्य की रिश्मियाँ भूमि पर फैल जाने पर शैलक पात्र, उपकरण आदि लेकर अपने पंथक आदि पांच सौ अनगारों के साथ शैलकपुर में प्रविष्ट हुआ, मण्डुक राजा की यानशाला में आया। वहाँ आकर प्रासुक पाट यावत् अवगृहीत कर वहाँ ठहरा।

(६२)

तए णं से मंडुए राया तिगिच्छए सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—तुब्भे णं देवाणुप्पिया! सेलगस्स फासुएसणिज्जेणं जाव ते. गिच्छं आउट्टेह। तए णं तिगिच्छया मंडुएणं रण्णा एवं वृत्ता समाणा हद्वतुद्वा सेलगस्स रायरिसिस्स अहापवत्तेहिं ओसहभेसज्जभत्तपाणेहिं तिगिच्छं आउट्टेंति मज्जपाणयं च से उवदिसंति। तए णं तस्स सेलगस्स अहापवत्तेहिं जाव मज्जपाणएण य से रोगायंके उवसंते जाए यावि होत्था हट्टे बलियसरीरे (मल्लसरीरे) जाए ववगय-रोगायंके।

शब्दार्थ - मजपाणयं - मादक आसव विशेष, ववगयरोगायंके - व्यपगत रोगातक-रोग रहित।

भावार्थ - राजा मण्डुक ने चिकित्सकों को बुलाया और कहा - देवानुप्रियो! अनगार शैलक की प्रासुक, एषणीय यावत् औषधि, भेषज, पथ्य खान-पान द्वारा चिकित्सा करें।

राजा मण्डुक द्वारा यों कहे जाने पर चिकित्सक हर्षित एवं प्रसन्न हुए। उन्होंने मर्यादानुकूल कल्पनीय औषध, भेषज एवं पथ्य खान-पान द्वारा राजर्षि की चिकित्सा की। साथ ही साथ नींद लाने वाली, पीने की विशेष दवा लेने की राय दी। यथा प्रवृत्त-नियम-मर्यादानुरूप यावत् निद्राकारक दवा के प्रयोग द्वारा उसका रोग उपशांत हो गया। वह हृष्ट एवं परितुष्ट हुआ, यावत् उसका शरीर बल युक्त एवं रोग मुक्त हो गया।

विवेचन - इस सूत्र में शैलक अनगार की चिकित्सा में चिकित्सकों द्वारा 'मजणाणयं' -मद्यपानक का परामर्श देने का जो उल्लेख हुआ है। वहाँ प्रयुक्त 'मद्य' शब्द 'मदिरा' के अर्थ में नहीं है। क्योंकि साधुओं के लिए मद्यपान का किसी भी स्थिति में विधान नहीं है। उन्हें देह त्याग भले ही करना पड़े, पर वे मद्यपान कभी स्वीकार नहीं कर सकते। क्योंकि उनके लिए देह तभी तक रक्षणीय है, जब तक वह संयम का साधक रहे, बाधक न बने। 'माद्यति अनेक इति मद्यम्'-जिसके द्वारा मनुष्य अपना भान भूल जाए उसे 'मद्य' कहा जाता है। जहाँ इसका एक अर्थ मदिरा है, वहाँ दूसरा अर्थ आसव विशेष रूप दवा भी है, जिसका गहरी नींद लाने में प्रयोग किया जाता है। यहाँ वैसी ही पीने की किसी आसव रूप विशेष दवा के लिए 'मद्य' शब्द प्रयुक्त हुआ है।

संयम में शैथिल्य

(६३)

तए णं से सेलए तंसि रोगायंकंसि उवसंतंसि समाणंसि तंसि विपुलंसि असण-पाण-खाइम-साइमंसि मज्जपाणए य मुच्छिए गढिए गिद्धे अज्झोववण्णे ओसण्णे ओसण्णविहारी एवं पासत्थे २ कुसीले २ पमत्ते २ संसत्ते २ उउबद्धपीढफलगसेजासंथारए पमत्ते यावि विहरइ णो संचाएइ फासुएसणिजं पीढ-फलग-सेजा-संथारयं पच्चिपिणिता मंडुयं च रायं आपुच्छिता बहिया जाव विहरित्तए।

शब्दार्थ - अज्झोववण्णे - अध्युपपन्न-सरस आहार आदि के अधीन, ओसण्णे - अवसन्न-अवसाद या असावधानी युक्त, पासत्थे - पार्श्वस्थ-ज्ञान, दर्शन, चारित्र से पृथक्, कुसीले - कुत्सितशील युक्त-आचार विराधक, पमत्ते - प्रमाद युक्त, संसत्ते - आसिक्तयुक्त, उउबद्ध - ऋतु-बद्ध-शेषकाल (मिगसर से आषाढ़ मास तक) में कत्पनीय।

भावार्थ - रोग के मिट जाने पर शैलक उन विपुल अशन-पान-खाद्य-स्वाद्य तथा आसव सेवन में मूर्च्छित, बद्ध लोलुप एवं अत्यंत आसकत हो गया। फलतः वह अवसन्न, अवसन्न विहारी, पार्श्वस्थ, पार्श्वस्थ विहारी, कुशील, कुशील विहारी, संशक्त, संशक्त विहारी एवं चातुर्मास के अतिरिक्त समय में पीठ, फलक, शय्या एवं संस्तारक में प्रमत्त, आसकत होता हुआ रहने लगा। वह प्रासुक एषणीय पीठ-फलक, शय्या-संस्तारक राजा मंडुक को वापस न लौटा कर रहने लगा तथा राजा मंडुक को कह कर बाहर जनपद विहार करने में असमर्थ हो गया।

(६४)

तए णं तेसिं पंथगवजाणं पंचण्हं अणगारसयाणं अण्णया कयाइ एगयओ सहियाणं जाव पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरमाणाणं अयमेयारूवे

www.jainelibrary.org

अज्झत्थिए जाव समुप्पजित्था-एवं खलु सेलए रायरिसी चइत्ता रजं जाव पव्वइए विउले णं असणे ४ मजपाणए य मुच्छिए णो संचाएइ जाव विहरित्तए। णो खलु कप्पइ देवाणुप्पिया! समणाणं जाव पमत्ताणं विहरित्तए। तं सेयं खलु देवाणुप्पिया! अम्हं कल्लं सेलगं रायरिसिं आपुच्छित्ता पाडिहारियं पीढफलग-सेजासंथारयं पच्चिपिणित्ता सेलगस्स अणगारस्स पंथयं अणगारं वेयावच्चकरं ठवेता बहिया अब्भुज्जएणं जाव विहरित्तए। एवं संपेहेंति २ ता कल्लं जेणेव सेलयरायरिसिं आपुच्छित्ता पाडिहारियं पीढफलग जाव पच्चिप्पणंति २ ता पंथयं अणगारं वेयावच्चकरं ठावेंति २ ता बहिया जाव विहरंति।

शब्दार्थ-चइता - त्याग कर, वेयावच्यकरं - वैयावृत्यकर-सेवा करने वाला, अब्भुज्यएणं-अभ्युद्यत्त-उद्यम सहित।

भावार्ध - तब पंथक के अतिरिक्त पांच सौ अनगार किसी दिन एक स्थान पर एकत्र हुए, यावत् अर्द्धरात्रि के समय धर्म जागरणा करते हुए, उनके मन में यह भाव उत्पन्न हुआ कि शैलक राजर्षि राज्य का त्याग कर यावत् प्रव्रजित हुए। अब वे विपुल अशन-पान-खाद्य-स्वाद्य एवं आसवपान में मूर्चिछत हैं, विहार नहीं कर रहे हैं। इसलिए देवानुप्रियो! श्रमण निर्ग्रन्थों को प्रमाद युक्त होकर रहना कल्पनीय नहीं है। अतः यही श्रेयस्कर है कि हम कल प्रातःकाल शैलक राजर्षि की अनुमति लेकर प्रातिहारिक पीठ, फलक, शय्या-संस्तारक वापस लौटाकर शैलक अनगार के वैयावृत्यकारी—सेवा करने वाले पन्थक अनगार को उनकी सेवार्थ यहाँ छोड़ कर अर्हत् प्ररूपित साधु मर्यादा के अनुरूप विहार हेतु उद्यत होकर विचरण करें।

ऐसा विचार कर वे शैलक राजर्षि के पास आए और उनकी अनुमति लेकर पीठ, फलक, शय्या एवं संस्तारक वापस लौटाए। पंथक को सेवार्थी के रूप में वहाँ छोड़ कर वे बाहर यावत् जनपद विहार हेतु निकल पड़े।

विवेचन - यहाँ एक प्रश्न उपस्थित होता है कि जब शैलक राजर्षि के पांच सौ शिष्यों ने यह जान लिया कि शैलक शिथिलाचारी हो गए हैं तथा यह निश्चय भी कर लिया कि उन्हें शैलक को छोड़ कर विहार कर देना चाहिए, तब फिर वे एक शिथिलाचारी साधु की अनुमित लेते हैं और शिथिलाचारी के वैयावृत्य हेतु पंथक को वहाँ रोकते हैं। ऐसा विसंगतकार्य वे क्यों करते हैं? जो संयम पालन में दत्तचित्त न हो उसके साथ फिर कैसा संबंध? क्योंकि मुनियों के

पारस्परिक संबंध या ऐक्य का आधार उनका महाव्रत रूप संयम जीवितत्य है, क्या शैलक के प्रति उनका यह व्यवहार शिथिलाचार का पोषण नहीं है?

इसका समाधान पूज्य गुरु भगवन्त ऐसा फरमाते हैं - शैलक राजर्षि के ५०० पांच सौ ही शिष्य संसार अवस्था में मंत्री थे। उन सब में पथकजी प्रमुख थे तथा साधु अवस्था में भी पंथक जी प्रमुख थे। ''पंथक जी हम सब की अपेक्षा शैलक राजर्षि की वैयावृत्य, सुधार आदि कार्य करने में विशेष दक्ष हैं। इसलिये उनको ही सेवा में रखना है'' ऐसा सोचकर ही विहार करने वालों ने ही विहार सम्बन्धी विचार विमर्श किया। किन्तु पंथकजी को बुलाने की आवश्यकता नहीं समझी। अतः नहीं बुलाया, ऐसा ध्यान में आता है।

पंथकजी को उन (शैलक राजर्षि) की शिथिल प्रवृत्ति ध्यान में थी, परन्तु मोहवश होकर उस प्रवृत्ति को नहीं चलाते थे-किन्तु शैलक राजर्षि को सुधारने की भावना थी और विश्वास भी था कि ये सुधर जायेंगे। अतः उन्होंने उस समय वैसी परिस्थिति देखकर उस प्रकार ही चलाया।

शैलक राजर्षि जब तक अस्वस्थ थे तब तक तो इन्हीं वस्तुओं का उपयोग करने पर भी वे पार्श्वस्थादि नहीं थे, किन्तु स्वास्थ्य ठीक हो जाने पर भी निष्कारण उन सरस, प्रासुक, एषणीय वस्तुओं का गृद्धिता (आसिक्त) से उपभोग करने के कारण उन्हें पार्श्वस्थादि बताया गया है। अतः परिस्थिति वश उपरोक्त प्रकार के पार्श्वस्थादि को वन्दनादि करने पर व्यवहार शृद्धि के लिए अल्प प्रायश्चित आता है।

पंथकजी की उन्हें सुधारने की भावना होने से भावभिक्त पूर्वक उनकी विनय वैयावृत्यादि करते थे। ''शैलक राजर्षि को विहार के लिए पूछा और पंथकजी को सेवा में रखा।'' इससे यह स्पष्ट होता है कि - ४६६ साधुओं ने वन्दना आदि करके तथा बिना सम्बन्ध विच्छेद किये विहार किया। क्योंकि यदि सम्बन्ध विच्छेद करके जाते तो पंथकजी को सेवा में नहीं रखते। क्योंकि जिस कार्य के कारण छोड़कर जाते हैं उस कार्य को कराने की अनुमित तो दी ही है। अतः वन्दनादि भी किया है तथा कदाचित् समझ लें कि पंथक जी सेवा में नहीं रहते तो अन्य साधु रह जाते। अतः 'मर्यादाहीन की सेवा में रहना नहीं कल्पता है' ऐसा सोचकर तो नहीं गये थे। स्वास्थ्य के ठीक हो जाने से विशेष सेवा कार्य तो रहा नहीं और सामान्य सेवा कार्य तो एक दक्ष साधु से ही पर्याप्त जानकर 'सभी एक स्थान पर रहकर क्या करें?' ऐसा सोचकर विहार किया ऐसा लगता है। अतः जब शैलक राजर्षि के विहार का मालूम पड़ा तब 'अब एक जगह तो रहते नहीं हैं।' ऐसा सोचकर सेवा में आ गये।

४६६ साधु जानते थे कि - हम सब की अपेक्षा से पंथकजी इनकी सेवा में विशेष योग्य हैं तथा पंथकजी भी यही (कि - इस प्रसंग पर मेरा रहना ही ठीक है) जानते थे अतः पंथकजी ही रहे।

(६५)

तए णं से पंथए सेलगस्स २ सेजा संधारउच्चारपासवण खेल्लसिंघाणमत्त - ओसहभेसजभत्तपाणएणं अगिलाए विणएणं वेयावडियं करेइ। तए णं से सेलए अण्णया कयाइ कत्तियचाउम्मासियंसि विउलं असणं ४ आहारमाहारिए सुबहुं च मज्जपाणयं पीए पुळ्वावरण्ह कालसमयंसि सुहप्पसुत्ते।

शब्दार्थ - कत्तियचाउम्मासियंसि - कार्तिक चौमासी के दिन।

भावार्थ - पंथक -अनगार शैलक के शस्या संस्तारक, उच्चार प्रस्रवण, श्लेष्म, नासिका मल इत्यादि विषयक तथा औषध, भेषज, आहार-पानी आदि से संबद्ध सब प्रकार का वैयावृत्य अंग्लान भाव से, विनय पूर्वक करता रहा।

एक बार शैलक ने कार्तिक चौमासी के दिन अत्यधिक अशन-पान-खाद्य-स्वाद्य आदि का आहार किया। अधिक मात्रा में आसव पान किया तथा दिवस के चौथे प्रहर में संध्या काल के समय ही वह सुखपूर्वक सो गया।

मदोन्मत्त शैलक का कोप

$(\xi\xi)$

तए णं से पंथए कत्तिय-चाउम्मासियंसि कयकाउस्सग्गे देवसियं पडिक्कमणं पडिक्कंते चाउम्मासियं पडिक्कमिउं कामे सेलगं रायरिसिं खामणद्वयाए सीसेणं पाएसु संथट्टेइ। तए णं से सेलए पंथएणं सीसेणं पाएसु संघट्टिए समाणे आसुरुत्ते जाव मिसिमिसेमाणे उद्देइ २ ता एवं वयासी—से केस णं भो! एस अपत्थिय पत्थिए जाव विज्ञाए जे णं ममं सुहपसुत्तं पाएसु संघट्टेइ?

शब्दार्थ - खामणहुयाए - खामणा देने के लिए, अपत्थिय परिथय - अप्रार्थित प्रार्थक-बिना बुलाए आने वाला, विज्ञाए - वर्जित।

भावार्थ - पंथक ने कार्तिकी चौमासी के दिन कार्योत्सर्ग करके देवसिक प्रतिक्रमण किया और देवसिक प्रतिक्रमण करके, चातुर्मासिक प्रतिक्रमण की इच्छा लिए शैलक राजर्षि को खामणा देने (उत्कृष्ट वंदना करने हेतु) हेतु अपने मस्तक से उनके चरणों को छुआ। पंथक द्वारा ऐसा किए जाने पर शैलक को तत्काल ही बहुत रोष हुआ और वह क्रोध से जलता हुआ उठा और बोला—यह बिना बुलाए आने वाला, श्री, ही, बुद्धि एवं कीर्ति रहित कौन पुरुष है? जो मुझ सोए हुए के पैरों को छू रहा है।

विनयशील पंथक

(६७)

तए णं से पंथए सेलएणं एवं वुत्ते समाणे भीए तत्थे तिसए करयल जाव कट्टु एवं वयासी-अहं णं भंते! पंथए कयकाउस्सग्गे देवसियं पडिक्कमणं पडिक्कंते चाउम्मासियं पडिक्कंते चाउम्मासियं खामेमाणे देवाणुप्पियं वंदमाणे सीसेणं पाएसु संघट्टेमि! तं खामेमि णं तुब्भे देवाणुप्पिया! खमंतु मे अवराहं तुमं णं देवाणुप्पिया! णाइभुजो एवं करणयाए-ति कट्टु सेलयं अणगारं एयमहं सम्मं विणएणं भुजो भुजो खामेइ।

शब्दार्थ - भुज्जो - भूयः-फिर।

भावार्थ - शैलक द्वारा यों कहे जाने पर मुनि पंथक त्रस्त, भयभीत एवं खिन्न हुआ। उसने झुके हुए सिर पर अंजलिबद्ध हाथ रख कर कहा—'भगवन्! मैं पंथक हूँ। कायोत्सर्ग एवं देवसिक प्रतिक्रमण कर, चातुर्मासिक प्रतिक्रमण करने की इच्छा लिए आपको खामणा देने (उत्कृष्ट वंदना करने हेतु) हेतु, आपके चरणों से मस्तक का स्पर्श किया। देवानुप्रिय! आप मेरा अपराध क्षमा करें। फिर ऐसा नहीं करूँगा।'' यों कहकर पंथक शैलक अनगार से बार-बार क्षमायाचना करने लगा।

विवेचन - उपर्युक्त पाठ में शैलक राजर्षि के वर्णन में यह बताया गया है कि - 'शैलक राजर्षि के शिष्य पंथकजी ने कार्तिकी चातुर्मासी के दिन पहले देवसिक प्रतिक्रमण करके फिर चातुमार्सिक प्रतिक्रमण करने की इच्छा से शैलक राजर्षि के चरणों में गिरकर बंदना की। इस आगम पाठ के अर्थ से यह स्पष्ट हो जाता है कि - 'जब मध्यम तीर्थंकरों के शासन के साधु भी जिनके लिये उभय काल प्रतिक्रमण करने का नियम नहीं है वे भी चातुर्मासिक पर्व के दिन 'देवसिय' और 'चाउम्मासिय' दो प्रतिक्रमण करते हैं। तो चरम तीर्थंकर के साधु जिनके लिये उभयकाल प्रतिक्रमण करना आवश्यक है वे तो इन पर्वों में दो प्रतिक्रमण करते ही हैं। यह सिद्ध हो जाता है। अब इस पर सोचना यह है कि - "प्रतिक्रमण तो भूतकाल का ही होता है। यदि चार महीना पहले चातुर्मासिक प्रतिक्रमण किया हो तब तो यह चातुर्मासिक प्रतिक्रमण हो जायेगा। अन्यथा यदि प्रतिवर्ष कार्तिक कार्तिक का ही प्रतिक्रमण होता तो उसे चातुर्मासिक प्रतिक्रमण नहीं कह कर १२ मासिक प्रतिक्रमण कहते, परन्तु ऐसा नहीं कहकर 'चातुर्मासिक प्रतिक्रमण' कहा है। इसलिए यह स्पष्ट होता है कि - कार्तिकी, फाल्गुनी और आषाढ़ी इस प्रकार तीन बार चातुर्मासिक प्रतिक्रमण करने से ही 'चातुर्मासिक' शब्द का अर्थ सार्थक होता है। अन्यथा एक चातुर्मासिक को ही प्रतिक्रमण करने पर उसका अर्थ बैठता ही नहीं है। अतः इस पाठ पर गुंभीरता (गहराई) पूर्वक सोचने पर तीनों चातुर्मासी का स्पष्ट अर्थ ध्यान में आ जाता है तथा इन्हीं पंथकजी के वर्णन में 'कत्तिय चाउम्मासियंसि' पाठ आया है। तो यहाँ पर भी सोचने की बात यह है कि - चातुर्मासी के लिए 'कत्तिय' विशेषण लगाया है। यदि बारह महीने में यही एक चौमासी आती तो 'कत्तिय' विशेषण नहीं लगाया जाता। किन्तु इस चातुर्मासी के सिवाय अन्य फाल्गुनी तथा आषाढी चातुर्मासी भी होती है। उनसे भिन्न बताने के लिए ही 'कत्तिय' विशेषण दिया है। किसी शब्द के विशेषण लगाने का कारण जब उस विशेषण के बिना भी उसकी सत्ता पाई जाती हो।

श्री जीवाभिगम सूत्र के नंदीश्वर द्वीप के वर्णन में 'चाउमासिएसु' शब्द आया है। इससे भी यह सिद्ध होता है कि - जो चार-चार महीने से आवे उसे 'चातुर्मासिक' कहते हैं। अनेक ग्रन्थों में भी दो प्रतिक्रमण करने की पुरानी (प्राचीन) परम्परा का उल्लेख मिलता है। 'दो प्रतिक्रमण क्यों करना चाहिए?' इसे समझाते हुए दृष्टान्त दिया है जैसे - प्रतिदिन घर का कचरा निकाले पर भी होली, दीपावली आदि पर्व के दिनों में घर की विशेष शुद्धि करने के लिए दूसरी

बार ऊपर नीचे की सारी सफाई हेतु पुनः कचरा निकालते हैं। ग्रन्थों में इसके लिये इस प्रकार की गाथा आयी है -

जह गेहं पइदिवसं, सोहियं तह वि य पक्ख संधिसु।

सोहिज्जइ सिविसेसं, एवं इहयं पि नायव्वं।।१।। (राजेन्द्रकोष 'पिडक्कमणं' शब्द) तथा बड़े व्यापारी १५ दिन, महीने, ४ महीने, १२ महीने की रोकड़ मिलाते हैं परन्तु प्रतिदिन का रोजनामा तो वे अलग से करते ही है। जिस दिन रोकड़ मिलानी हो उस दिन का भी रोजनामा अलग लिखते हैं।

इसी प्रकार चातुर्मासिक आदि पर्व दिनों में पहले देवसिक प्रतिक्रमण करके फिर चातुर्मासिकादि प्रतिक्रमण करना चाहिए।

शैलक का संयम-पथ पर पुनः आरोहण (६८)

तए णं तस्स सेलगस्स रायितिसस्स पंथएणं एवं वुत्तस्स अयमेयारूवे अज्झित्थिए जाव समुप्पज्ञित्था-एवं खलु अहं रज्जं च जावं ओसण्णो जाव उउबद्धपीड० विहरामि। तं णो खलु कप्पइ समणाणं २ पासत्थाणं जाव विहरित्तए। तं सेयं खलु मे कल्लं मंडुयं रायं आपुच्छित्ता पाडिहारियं पीढफलगसेज्ञासंथारयं पच्चिपिणित्ता पंथएणं अणगारेणं सिद्धं बहिया अष्भुज्जएणं जाव जणवयविहारेणं विहरित्तए। एवं संपेहेइ, संपेहित्ता कल्लं जाव विहरइ।

भावार्थ - पंथक द्वारा यों कहे जाने पर शैलक के मन में ऐसा भाव उत्पन्न हुआ—मैं राज्य छोड़कर प्रव्रजित हुआ यावत् संयम के प्रति अवसाद-प्रमाद युक्त बना। चातुर्मास्योपरांत भी पीठ-फलक आदि उपकरण तथा खाद्य-पेय आदि में आसक्त बना रहा। श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए इस प्रकार संयम के विपरीत आचरण करना कल्पनीय मर्यादोचित नहीं हैं। इसलिए यही श्रेयस्कर है कि मैं कल प्रातः राजा मण्डुक से अनुज्ञापित होकर प्रातिहारिक पीठफलक आदि उपकरण सौंपकर संयम-पालन में पुनः समुद्यत होकर पंथक के साथ यावत् जनपद विहार हेतु चल पडूँ।

यों सोचकर अपने चिंतन को क्रियान्वित कर, अगले दिन प्रातः काल उसने वहाँ से विहार कर दिया।

(33)

एवामेव समणाउसो! जाव णिग्गंथो वा २ ओसण्णे जाव संथारए पमत्ते विहरइ से णं इहलोए चेव बहुणं समणाणं ४ हीलणिज्ने संसारो भाणियव्वो।

भावार्थ - आयुष्मान श्रमणो! जो साधु या साध्वी संयम के पालन में प्रमाद करते हैं, यावत् शय्या संस्तारक आदि में आसक्त रहने लगते हैं, वे इस लोक में बहुत से साधु-साध्वियों एवं श्रावक-श्राविकाओं द्वारा अवहेलना योग्य हो जाते हैं। संसार में परिभ्रमण करते हैं। एतद् विषयक वर्णन पूर्ववत् कथनीय है।

साधुओं का पुनर्मिलन

(90)

तए णं ते पंथगवजा पंच अणगारसया इमीसे कहाए लद्धहा समाणा अण्णमण्णं सद्दावेंति २ ता एवं वयासी—एवं खलु सेलए रायरिसी पंथएणं बहिया जाव विहरइ। तं सेयं खलु देवाणुप्पिया! अम्हं सेलगं रायरिसिं उवसंपज्जिताणं विहरित्तए। एवं संपेहेंति २ त्ता सेलगं रायरिसिं उवसंपज्जिताणं विहरिति।

भावार्थ - तब पंथक को छोड़कर पांच सौ (४६६) अनगारों को जब यह वृत्तांत ज्ञात हुआ तो वे इस संदर्भ में परस्पर मिले और बोले-राजर्षि शैलक पंथक के साथ, यावत् जनपद विहार कर रहे हैं। इसलिए हम लोगों के लिए यह श्रेयस्कर है कि हम शैलकराजर्षि से मिलने चलें। ऐसा विचार कर वे शैलकराजर्षि से मिले और विहरणशील हुए।

मुक्ति लाभ

(७१)

तए णं से सेलए रायरिसि पंथगपामोक्खा पंच अणगारसया बहूणि वासाणि

सामण्णपरियागं पाउणित्ता जेणेव पुंडरीय-पव्वए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता जहेव थावच्चापुत्ते तहेव सिद्धा ४।

भावार्थ - तदनंतर शैलक आदि मुनि बहुत वर्षों तक श्रामण्य जीवन का पालन कर पुंडरीक-शत्रुंजय पर्वत पर आए। आकर उसी प्रकार सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुए सब कर्मों का अंत किया, जिस प्रकार थावच्चापुत्र ने किया था।

(७२)

एवामेव समणाउसो! जो णिगांथो वा २ जाव विहरिस्सइ। एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं पंचमस्स णायज्झयणस्स अयमट्टे पण्णते ति बेमि।

भावार्थ - आयुष्पान श्रमणो! इसी प्रकार जो साधु-साध्वी, यावत् संयम का भली भांति पालन करते हुए विहरणशील होंगे। यावत् संसार का अंत कर मोक्षगामी होंगे।

हे जंब्! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने पांचवें ज्ञाताध्ययन का यह अर्थ कहा है। तदनुसार मैंने तुम्हें बतलाया है।

उवणय गाहा - सिढिलियसंजमकजावि होइउं उज्जमंति जड पच्छा। संवेगाओ तो सेलउब्ब आराहया होंति॥ १॥

॥ पंचम अज्झयणं समत्तं॥

शब्दार्थ - सिढिलिय - शैथिल्य युक्त, ाइ - यदि, पच्छा - पश्चात्, उज्जमंति -पवित्र बनते हैं. संवेगाओ - वैराग्यपूर्वक, आराह्या - आराधक।

भावार्थ - जो संयम में शिथिल हो जाते हैं, वे पुनः वैराग्य पूर्वक यदि शैलक की तरह उज्ज्वल. पवित्र हो जाते हैं तो वे फिर आराधक बन जाते हैं॥१॥

॥ पांचवां अध्ययन समाप्त॥









तुंबे णामं छट्ठं अज्झयणं तुम्बा नामक षष्ठ अध्ययन

(9)

जड़ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं पंचमस्स णायज्झय-णस्स अयमट्टे पण्णत्ते छड्डस्स णं भंते! णायज्झयणस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्टे पण्णत्ते?

भावार्थ - भगवन्! सिद्धि-प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने पांचवें ज्ञाताध्ययन का यदि यह अर्थ प्रज्ञापित किया है तो छड्डे ज्ञाताध्ययन का क्या अर्थ कहा है?

(२)

एवं खलु जंबू! तेण कालेणं तेणं समएणं रायिगहे समोसरणं परिसा णिग्गया। भावार्थ - उस काल, उस समय जंबू स्वामी के प्रश्न का उत्तर देते हुए श्री सुधर्मा स्वामी ने कहा - राजगृह नामक नगर था। भगवान् महावीर स्वामी वहाँ पधारे। गुणशील नामक चैत्य में रुके। धर्म सुनने हेतु जनसमूह आया और सुनकर वापस लौट गया।

इन्द्रभूति की जिज्ञासा

(३)

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्टे अंतेवासी इंदभूई णामं अणगारे अदूरसामंते जाव सुक्कज्झाणोवगए विहरइ। तए णं से इंदभूई जायसट्टे जाव एवं वयासी-कहं णं भंते! जीवा गरुयत्तं वा लहुयत्तं वा हव्वमागच्छंति?

शब्दार्थ - सुक्कज्झाणोवगए' - शुक्लध्यानोपगत-निर्मल, उज्ज्वल ध्यान में तल्लीन, गरुयत्तं - गुरुत्व-भारी, लहुयत्तं - लघुत्व-हल्कापन। भावार्थ - उस काल, उस समय, श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के ज्येष्ठ अतेवासी, प्रधान शिष्य इंद्रभूति नामक अनगार जो उनसे न अधिक दूर न अधिक निकट, यावत् उज्ज्वल धर्म-ध्यान में अवस्थित थे। उनके मन में श्रद्धापूर्वक यावत् उत्सुकतापूर्ण जिज्ञासा उत्पन्न हुई। उन्होंने भगवान् से निवेदन किया - भगवन्! किस प्रकार जीव कर्मों से भारी होते हैं और किस प्रकार हलके होते हैं?

विवेचन - यहाँ पर गौतम स्वामी के लिए जो 'सुक्कज्झाणोवगए' पाठ दिया गया है वह लिपिकारों के प्रमाद के कारण 'झाणकोट्टोवगए' पाठ के स्थान पर 'सुक्कज्झाणोवगए' ऐसा भूल से लिख दिया गया हो और आगे वह परम्परा में चल गया हो। क्योंकि भगवती सूत्र के प्रारम्भ में जहाँ इसका पूर्ण विस्तार से वर्णन है वहाँ पर 'झाणकोट्टोवगए' पाठ ही मिलता है। इसी का यहाँ पर संक्षिप्तीकरण किया गया है। इसिलये शुक्ल ध्यान का पाठ होना उचित प्रतीत नहीं होता है। आगम के पाठों को देखते हुए शुक्ल ध्यान में आठवें से चौदहवें गुणस्थान तक सात गुणस्थान समझे जाते हैं। गौतम स्वामी उस समय श्रेणी में नहीं वर्त रहे थे। छठे-सातवें गुणस्थान में विद्यमान थे।

भगवान् का उत्तर

(8)

गोयमा! से जहाणामए केइ पुरिसे एगं महं सुक्कं तुंबं णिच्छिदं णिरुवहयं दब्भेहि य कुसेहि य वेढेइ २ ता मिट्यालेवेणं लिंपइ २ ता उण्हे दलयइ २ ता सुक्कं समाणं दोच्चंपि दब्भेहि य कुसेहि य वेढेइ २ ता मिट्यालेवेणं लिंपइ २ ता उण्हे दलयइ २ ता सुक्कं समाणं तच्चंपि दब्भेहि य कुसेहि य वेढेइ २ ता मिट्टयालेवेणं लिंपइ। एवं खलु एएणं उवाएणं अंतरा वेढेमाणे अंतरा लिंपमाणे अंतरा सुक्कवेमाणे जाव अहहिं मिट्टयालेवेहिं आलिंपइ २ ता अत्थाहमतारम-पोरिसियंसि उदगंसि पिक्खेंजा। से णूणं गोयमा! से तुंबे तेसिं अहण्हं मिट्टयालेवेणं गुरुययाए भारिययाए गुरुयभारिययाए उप्पें सिलल-मइवइत्ता अहे धरणियलपइट्टाणे भवइ। एवामेव

www.jainelibrary.org

गोयमा! जीवावि पाणाइवाएणं जाव मिच्छादंसणसल्लेणं अणुपुव्वेणं अहकम्मपगडीओ समज्जिणंति तासिं गरुययाए भारिययाए गरुयभारिययाए काल-मासे कालं किच्चा धरणियलमइवइत्ता अहे णगरतलपइट्टाणा भवंति। एवं खलु गोयमा! जीवा गरुयत्तं हव्वमागच्छंति।

शब्दार्थ - महं - बड़ा, णिच्छिदं - छिद्र रहित, कुसेहि - दूब से, वेढेइ - लपेटता है, उण्हे - धूप में, उवाएणं - उपाय से, अत्थाह - अगाध, अतारं - जिसे तैरा नहीं जा सके, अपोरिसियं - अपौरुषिक-जो पुरुष की ऊँचाई से नापा न जा सके, अइवइत्ता - अतिक्रांत कर, धरणियल - धरणितल-जल के सबसे नीचे के भूतल-पैंदे पर, समज्जिणंति - अर्जित करते हैं, बांधते हैं।

भावार्थ - गौतम! जैसे कोई पुरुष एक बड़े, सूखे, अछिद्र-छेद रहित, अखंडित तुंबे को डाभ और कुश से ढकता है, उस पर इन्हें लपेटता है, फिर उस पर मिट्टी का लेप करता है, उसे धूप में रखता है, उसके सूख जाने पर वह दूसरी बार उस पर डाभ और दूब लपेटता है, लपेट कर मिट्टी का लेप करता है, फिर धूप में रखता है। सूख जाने पर फिर तीसरी बार वह डाभ और कुश लपेटता है, मिट्टी का लेप करता है और उसे धूप में सुखाता है। इसी प्रकार वह आगे भी क्रमशः डाभ और कुश लपेटता जाता है, मिट्टी का लेप करता जाता है और सुखाता जाता है। यावत् वह उस पर आठ बार डाभ और कुश लपेटता है। मृत्तिका का लेप करता है, उसे सुखाता है। फिर वह उसको अगाध, न तैरे जा सकने योग्य, पुरुष प्रमाण से अमेय जल में डाल देता है। गौतम! वह तूंबा आठ लेपों के कारण भारी हो जाने से जल के ऊपरी भाग को अतिक्रांत कर पैंदे में स्थित होता है।

गौतम! इसी प्रकार जीव प्राणातिपात यावत् मिथ्यादर्शनशल्य रूप अठारह पाप स्थानकों के सेवन से क्रमशः आठ कर्म प्रकृतियाँ अर्जित करता है, उनका बंध करता है, उनसे भारी हो जाने के कारण वह समय आने पर-आयुष्य पूर्ण हो जाने पर मरण प्राप्त कर, भूमितल को अतिक्रांत कर, नीचे नरक तल में स्थित हो जाता है। गौतम! इस प्रकार जीव शीघ्र ही गुरुत्व-भारीपन पा लेता है।

(乂)

अहण्णं गोयमा! से तुंबे तंसि पढिमिल्लुगंसि मिट्टयालेवंसि तिण्णंसि कुहियंसि पिरसिडियंसि ईसिं धरिणयलाओ उप्पइत्ताणं चिट्ठइ। तयाणंतरं च णं दोच्चंपि मिट्टियालेवे जाव उप्पइत्ताणं चिट्ठइ। एवं खलु एएणं उवाएणं तेसु अट्ठसु मिट्टयालेवेसु तिण्णेसु जाव विमुक्कबंधणे अहे धरिणयलमइवइत्ता उप्पिं सिललतल पइट्ठाणे भवइ।

शब्दार्थ - अह - उसके बाद, इल्लुगंसि - गीला होने पर, तिण्णंसि - गल जाने पर, कुहियंसि - गल कर बह जाने पर, परिसंडियंसि - परिशटित-नष्ट, बंधन रहित हो जाने पर, ईसिं - ईषद्-कुछ, अहे - अधः-नीचे।

भावार्थ - गौतम! वह तूंबा मिट्टी के प्रथम लेप के गीले हो जाने पर, गल जाने पर, गलकर गिर जाने पर, नष्ट हो जाने पर, जल के तल से-पैंदे से कुछ ऊँचा उठता है। इसके बाद दूसरे मृत्तिका लेप के गल जाने पर, यावत् नष्ट हो जाने पर वह और ऊँचा उठता है। इस प्रकार बाकी के आठों मृत्तिका लेपों के यावत् विमुक्त-बंधन हो जाने पर, नष्ट हो जाने पर, वह जल के अधःस्तन भूतल से ऊपर—जल-तल पर आ जाता है, स्थित हो जाता है।

(\xi\)

एवामेव गोयमा! जीवा पाणाइवायवेरमणेणं जाव मिच्छादंसणसल्लवेरमणेणं अणुपुव्वेणं अहकम्मपगडीओ खवेत्ता गगणतलमुप्पइत्ता उप्पिं लोयगगपइहाणा भवंति। एवं खलु गोयमा! जीवा लहुयत्तं हव्वमागच्छंति।

भावार्थ - गौतम! इसी प्रकार जीव प्राणातिपात, यावत् मिथ्यादर्शन शल्य के विरमण द्वारा-त्याग द्वारा आठ कर्म-प्रकृतियों का क्षय कर, ऊपर-लोकाग्र भाग में, सिद्ध स्थान में स्थित हो जाता है।

गौतम! इस प्रकार जीव शीध्र ही हलकापन प्राप्त कर लेते हैं।

(७)

एवं खलु जंबू! समणेणं जाव संपत्तेणं छट्ठस्स णायज्झयणस्स अयमट्टे पण्णत्ते त्तिबेमि।

भावार्थ - हे जंबू! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने इस प्रकार छठे ज्ञाताअध्ययन का यह अर्थ कहा है, जिसे मैंने व्याख्यात किया है। उवणय गाहाओं -

जह मिउलेवालित्तं, गरुयं तुंबं अहो वयइ एवं। आसवकयकम्मगुरु, जीवा वच्चंति अहरगइं॥ १॥ तं चेव तिव्वमुक्कं, जलोविरं ठाइ जायलहुभावं। जह तह कम्मविमुक्का, लोयग्गपइडिया होंति॥ २॥

॥ छट्ठं अज्झयणं समत्तं॥

शब्दार्थ - मिउलेवालित्तं - मिट्टी के लेप से लिप्त, वयइ - चला जाता है, आसवकय-कम्मगुरु - आसवजनित कर्मों के कारण भारी बने हुए, वच्चंति - जाते हैं, अहरगइं -अधोगति-नरक गति को, तब्विमुक्कं - मृत्तिकादि के लेप से विमुक्त-छूटा हुआ, जायलहुभावं-जातलघुभाव-हल्का हो जाने पर।

भावार्थ - मिट्टी के लेप से भारी बना हुआ तूंबा, जैसे - नीचे-पानी के पैंदे पर चला जाता है, उसी प्रकार आसवों के कारण कमों से भारी होकर जीव, अधोगति-नरकगति प्राप्त करता है। वही तूंबा जब मिट्टी आदि के लेपों से मुक्त हो जाता है तो हलका होकर पानी के ऊपर स्थित हो जाता है। उसी प्रकार जीव कमों से विमुक्त होकर, लोकाग्र भाग में-सिद्ध स्थान में स्थित हो जाते हैं। ॥ १-२॥ .

॥ छठा अध्ययन समाप्त॥

 $\Leftrightarrow \Leftrightarrow \Leftrightarrow \Leftrightarrow$

रोहिणी णामं सत्तमं अञ्झयणं रोहिणी नामक सातवां अध्ययन

(9)

जइ णं भंते! समणेणं जाव संपत्तेणं छहस्स णायज्झयणस्स अयमहे पण्णते सत्तमस्स णं भंते! णायज्झयणस्स के अहे पण्णत्ते?

भावार्थ - भगवन्! यदि श्रमण भगवान् यावत् सिद्धि प्राप्त महावीर स्वामी ने छडे ज्ञाताध्ययन का यह अर्थ बतलाया तो सातवें अध्ययन का उन्होंने क्या अर्थ बतलाया, कृपया फरमावें?

धन्य सार्थवाह एवं उसका परिवार

(२)

एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायिगहे णामं णयरे होत्था। सुभूमिभागे उज्जाणे। तत्थ णं रायिगहे णयरे धण्णे णामं सत्थवाहे परिवसइ अहे जाव अपरिभूए। भद्दा भारिया-अहीण पंचिंदिय सरीरा जाव सुरूवा।

भावार्थ - उस काल, उस समय राजगृह नामक नगर था। वहाँ धन्य नामक सार्थवाह रहता था। वह आद्य-समृद्धिशाली यावत् अपिरभूत-सर्वमान्य था। धन्य सार्थवाह के भद्रा नामक पत्नी थी। उसकी पांचों इन्द्रियाँ और शरीर के पांचों अवयव परिपूर्ण थे-वह सर्वांग सुंदर यावत् रूपवती थी।

(३)

तस्स णं धण्णस्स सत्थवाहस्स पुत्ता भद्दाए भारियाए अत्तया चत्तारि सत्थवाहदारगा होत्था तंजहा - धणपाले धणदेवे धणगोवे धणरिक्खए। तस्स णं धण्णस्स सत्थवाहस्स चउण्हं पुत्ताणं भारियाओ चत्तारि सुण्हाओ होत्था तंजहा-उज्झिया भोगवइया रक्खइया रोहिणिया।

www.jainelibrary.org

शब्दार्थ - सुण्हाओ - पुत्र वधुएँ।

भावार्थ - धन्य सार्थवाह एवं भद्रा भार्या के चार पुत्र थे, जिनका क्रमशः धनपाल, धनदेव, धनगोप एवं धनरक्षक नाम था। धन्य सार्थवाह के चार पुत्रों की पत्नियाँ-चार पुत्र वधुएँ थी। उज्झिका, भोगवितका, रक्षिका एवं रोहिणिका-इनके नाम थे।

भविष्य-चिंता : परीक्षण का उपक्रम (४)

तए णं तस्स धण्णस्स सत्थवाहस्स अण्णया कयाइं पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि इमेयारूवे अज्झित्थिए जाव समुप्पजित्था-एवं खलु अहं रायगिहे णयरे
बहूणं राईसर-तलवर जाव पिभईणं सयस्स कुडुंबस्स बहूसु कज्रेसु य करिणज्रेसु
य कोडुंबेसु य मंतणेसु य गुज्झेसु य रहस्सेसु य णिच्छएसु य ववहारेसु य
आपुच्छणिज्रे पडिपुच्छणिज्रे मेढी पमाणे आहारे आलंबणे चक्खू मेढीभूए,
पमाणभूए, आहारभूए, आलंबणभूए, चक्खूभूए सव्व कज्जवद्दावए। तं ण णज्जइ
जं मए गयंसि वा चुयंसि वा मयंसि वा भगंसि वा लुगंसि वा सडियंसि वा
पडियंसि वा विदेसत्थंसि वा विप्यवसियंसि वा इमस्स कुडुंबस्स किं मण्णे आहारे
वा आलंबे वा पडिबंधे वा भविस्सइ। तं सेयं खलु मम कल्लं जाव जलंते
विपुलं असणं ४ उवक्खडावेत्ता मित्तणाइ० चउण्ह य सुण्हाणं कुलघरवग्गं
आमंतेता तं मित्तणाइणियगसयण० चउण्ह य सुण्हाणं कुलघरवग्गं विपुलेणं
असणेणं ४ धूवपुप्फवत्थगंध जाव सक्कारेता सम्माणेत्ता तस्सेव मित्तणाइ चउण्ह
य सुण्हाणं कुलघरवग्गस्स पुरओ चउण्हं सुण्हाणं परिक्खणहुयाए पंच पंच
सालिअक्खए दलइत्ता जाणामि ताव का किहं वा सारक्खेइ वा संगोवेइ वा
संवहेड वा?

शब्दार्थ - णजाइ - जाना जाता, गयंसि - चले जाने पर, चुयंसि - च्युत हो जाने पर, मयंसि - मर जाने पर, भगंसि - भग्न हो जाने पर-विकलांग हो जाने पर, लुगंसि - रुण हो जाने पर, सडियंसि - सड़ जाने पर, व्याधि विशेष से जीर्ण हो जाने पर, पडियंसि -

भवनादि पर से गिर जाने पर, विदेसत्थंसि - विदेश चले जाने पर, विष्पवसियंसि - परिवार आदि का वियोग हो जाने पर, कुलघरवग्गं - पीहर के लोग, सालिअक्खए - शालि धान के दाने, परिक्खणड्याए - परीक्षणार्थ-परीक्षा के लिए, का - कौन, किहं - किस प्रकार।

भावार्थ - उस सार्थवाह को किसी दिन मध्यरात्रि के समय यह विचार उत्पन्न हुआ कि मैं राजगृह नगर में बहुत से विशिष्टजनों के, अपने कुटुम्ब के कार्यों में करने योग्य उपक्रमों में, मंत्रणाओं में, गोपनीय तथा रहस्यभूत परिचिंतन में, निश्चय योग्य व्यवहार में पूछने योग्य हूँ। मैं सबके लिए मेढ़ी, प्रमाणभूत, आलंबन तथा चक्षुभूत हूँ। सभी के कार्यों को बढ़ाने वाला हूँ- उन्नति की ओर ले जाने वाला हूँ। मेरे चले जाने पर, च्युत हो जाने पर, मर जाने पर, आकस्मिक दुर्घटनावश हाथ-पैर टूट जाने पर, बीमार हो जाने पर, भवन आदि से गिर जाने पर, विदेश चले जाने पर अथवा पारिवारिकजनों से विमुक्त हो जाने पर, इस कुटुम्ब का आधार, आलंबन तथा प्रतिबंध-सबको मिलाकर चलाने वाला न जाने कौन होगा? अतः मेरे लिए यह श्रेयस्कर है कि मैं कल प्रातःकाल, सूरज की किरणें फैल जाने पर, यावत् विपुल अशन, पान, खाद्य एवं स्वाद्य पदार्थ तैयार करवाकर, मित्रों, जातीयजनों, परिवार के लोगों, स्वजनों, संबंधियों परिजनों तथा चारों वधुओंं के पीहर के लोगों को आमंत्रित करूँ और उनको विपुल अशन, पान तथा धूप, पुष्प, वस्न, सुगंधित पदार्थ आदि द्वारा, यावत् सत्कार एवं सम्मान करूँ, वैसा कर उनके समक्ष अपनी चारों पुत्रवधुओं की परीक्षा के लिए पांच-पांच शालि धान के दाने उन्हें दूँ और यह जान सकूं कि कौन उनका किस प्रकार संरक्षण, संवर्धन और संगोपन करती हैं?

विवेचन - धन्य सार्थवाह ने भविष्य की चिंता करते हुए परीक्षणीय के रूप में पुत्रों का चयन न कर, पुत्र वधुओं का चयन किया। यह उसकी दूर दृष्टि का परिचायक है। यद्यपि स्त्री और पुरुष दोनों ही परिवार रूपी रथ का वहन करने वाले हैं किंतु परिवार के पालन, परिरक्षण, संवर्द्धन में स्त्री का बड़ा महत्त्व है। पुरुष द्रव्य का अर्जन करता है परंतु उसका सम्यक् विनियोग तभी हो पाता है, जब गृहिणी कुशल हो। परिवार के शिशुओं को गृहिणियाँ ही उत्तम संस्कार देती हैं। बाहर से आने वाले अतिथियों के भोजन, सत्कार आदि का दायित्व भी उन पर ही होता है। चाहे कोई परिवार कितना ही धनाढ्य क्यों न हो, यदि परिवार की महिलाएँ बुद्धिमती, सुयोग्य और व्यवहार कुशल न हों तो परिवार की प्रतिष्ठा और गरिमा के अनुरूप कार्य नहीं हो सकते। सामाजिक प्रतिष्ठा आदि के मूल में भी परिवार की महिलाओं की योग्यता ही मुख्य

आधार है। इसीलिए कहा गया है - 'न गृहं गृहमित्याहु, गृहिणी गृहमुच्यते' - अर्थात् घर-धन-धान्य संपन्न भवन वास्तव में घर नहीं है। गृहिणी ही घर हैं क्योंकि संस्कारशील, सुयोग्य गृहिणी धन संपन्नता को सदुपयोग द्वारा उजागर कर सकती है। यदि परिवार निर्धन भी हो तो वह अपने व्यवहार-कौशल से घर की प्रतिष्ठा को कायम रख सकती है।

धन्य सार्थवाह तो सांसारिक व्यवहार में तपा-मंझा पुरुष था। वह इस तथ्य को जानता था। दूसरी विशेष बात यह हैं, अपनी पत्नी को, जो गृहस्वामिनी थी, परीक्षा के लिए नहीं चुना क्योंकि उसकी तरह वह भी प्रौढ़ा हो चुकी थी। घर का भावी दायित्व तो पुत्रों पर ही आने वाला था। इसलिए उसने पुत्र वधुओं को परीक्षणीय माना। चारों में क्या-क्या विशेषताएँ, योग्यताएँ हैं, यह जानकर उन्हें उत्तरदायित्व सौंपने का अन्तर्भाव, उस सार्थवाह का था।

नारी-सम्मान का भी यह एक सुंदर उदाहरण है। प्राचीन भारत में नारी का बहुत सम्मान था। वर्तमान की तरह वह उपेक्षिता नहीं थी। 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः' - अर्थात् जहाँ नारियों की प्रतिष्ठा है, वहाँ देवता रमण करते हैं। वह घर स्वर्ग तुल्य हो जाता है। प्राचीन भारत के इन आदर्शों से आज के युग को प्रेरणा लेनी चाहिए। आगमों के ये उदाहरण सामाजिक जीवन को निश्चय ही नया मोड़ दे सकते हैं।

(ধ্)

एवं संपेहेइ, संपेहिता कल्लं जाव मित्तणाइ० चउण्हं सुण्हाणं कुलघरवग्गं आमंतेइ २ ता विपुलं असणं ४ उवक्खडावेइ।

भावार्थ - धन्य सार्थवाह ने ऐसा विचार कर प्रातःकाल होने पर यावत् मित्रों, पारिवारिकों तथा संबंधियों आदि को तथा चारों पुत्र वधुओं के पीहर के लोगों को आमंत्रित किया। विपुल मात्रा में अशन-पान-खाद्य-स्वाद्य तैयार करवाए।

(६)

तओ पच्छा ण्हाए भोयणमंडवंसि सुहासणवरगए मित्तणाइ० चउण्ह य सुण्हाणं कुलघरवग्गेणं सिद्धं तं विपुलं असणं ४ जाव सक्कारेइ सम्माणेइ स० २ ता तस्सेव मित्तणाइ० चउण्ह य सुण्हाणं कुलघरवग्गस्स पुरओ पंच सालिअक्खए गेण्हइ २ ता जेट्टा सुण्हा उज्झिइया तं सहावेइ, सहावेता एवं

वयासी - तुम णं पुता! मम हत्थाओ इमे पंच सालिअक्खए गेण्हाहि २ ता अणुपुव्वेणं सारक्खमाणी संगोवेमाणी विहराहि। जया णं अहं पुता! तुमं इमे पंच सालिअक्खए जाएजा तया णं तुमं मम इमे पंच सालिअक्खए पडिदिजा-एजासि त्तिकट्टु सुण्हाए हत्थे दलयइ २ ता पडिविसजोइ।

भावार्थ - तत्पश्चात् स्नान किया, भोजन के मण्डप में उत्तम आसन पर वह बैठा, फिर मित्रों, स्वजनों, संबंधियों परिजनों तथा चारों पुत्रवधुओं के पीहर के लोगों का विपुल अशन-पान-खाद्य-स्वाद्य आदि द्वारा सत्कार एवं सम्मान किया। अपने मित्रादि सभी जनों तथा पुत्रवधुओं के पीहर के लोगों के समक्ष उसने पाँच शालि धान के दाने लिए तथा अपनी बड़ी पुत्रवधू उज्झिका को बुलाया और कहा - 'बेटी! तुम मेरे हाथ से शालि धान के इन पाँच दानों को ग्रहण करो। क्रमशः इनका संरक्षण, संगोपन करती रहो।' 'बेटी! जब मैं तुमसे इन शालि धान के दानों को मांगू, तब मुझे दे देना' यों कहकर उसने वे दाने पुत्रवधू के हाथ में दिए और उसे वहाँ से जाने की आज्ञा दी।

(७)

तए णं सा उज्झिया धण्णस्स तह ति एयमट्ठं पडिसुणेइ २ ता धण्णस्स सत्थवाहस्स हत्थाओ ते पंच सालिअक्खए गेण्हइ २ ता एगंतमवक्कमइ एगंतमवक्कमियाए इमेयारूवे अज्झित्थिए जाव समुप्पजित्था - एवं खलु तायाणं कोट्ठागारंसि बहवे पल्ला सालीणं पडिपुण्णा चिट्ठंति, तं जयाणं ममं ताओ इमे पंच सालिअक्खए जाएस्सइ तया णं अहं पल्लंतराओ अण्णे पंच सालिअक्खए गहाय दाहामि - त्तिकट्टु एवं संपेहेइ, संपेहिता । पंच सालिअक्खए एगंते एडेइ २ ता सकम्मसंजुत्ता जाया यावि होत्था।

शब्दार्थ - पल्ल - धान्य का प्रकोष्ठ-कोठार।

भावार्थ - उज्झिता ने अपने श्वसुर धन्य सार्थवाह का यह कथन स्वीकार किया। उसने सार्थवाह के हाथ से पाँच धान के दाने ग्रहण किए। वह एकांत में गई। उसके मन में यह भाव उत्पन्न हुआ, यावत् विचार आया-तात-श्वसुर के कोठे में शालि धान के बहुत से परिपूर्ण-भर हुए कोठार हैं। जब तात मुझसे ये पांच धान के दाने मांगेंगे, तब मैं किसी कोठार से अन्य पाँच

दाने लेकर उन्हें दे दूंगी। यों विचार कर उसने उन पाँच धान के दानों को एकांत में डाल दिया और वह अपने कार्य में संलग्न हो गई।

(5)

एवं भोगवइयाए वि णवरं सा छोल्लेइ २ ता अणुगिलइ २ ता सकम्मसंजुता जाया यावि होत्था। एवं रक्खिया वि णवरं गेण्हइ २ ता इमेयारूवे अज्झित्थिए०-एवं खलु ममं ताओ इमस्स मित्तणाइ० चउण्ह य सुण्हाणं कुलघरवग्गस्स य पुरओ सद्दावेता एवं वयासी—तुमं णं पुता! मम हत्थाओ जाव पडिणिजाएजासि-तिकट्टु मम हत्थंसि पंच सालिअक्खए दलयइ, तं भवियव्वं एत्थ कारणेणं तिकट्टु एवं संपेहेइ, संपेहिता ते पंच सालिअक्खए सुद्धे वत्थे बंधइ २ ता खणकरंडियाए पक्खिवेइ २ ता ऊसीसामूले ठावेइ २ ता तिसंझं पडिजागरमाणी २ विहरइ।

शब्दार्थ - छोल्लेइ - तुष रहित करती है, अणुगिलइ - निगल जाती है, पिडिणिजाएजासि - वापस लौटा देना।

भावार्थ - दूसरी पुत्रवधू भोगवितका को भी इसी प्रकार धान के पाँच दाने दिए। इस संदर्भ में विशेषता यह है कि उसने धान के तुष को अलग किया और उन को निगल गई। फिर वह अपने काम में लग गई। इसी भाँति रक्षिका को भी धान के पाँच दाने दिए। यहाँ अंतर यह है कि - रिक्षका ने उन्हें ग्रहण किया, उसके मन में ऐसा विचार उत्पन्न हुआ कि तात ने मुझे मित्रों, जातीयजनों तथा हम चारों पुत्रवधुओं के पीहर के लोगों के समक्ष बुलाकर जो यों कहा है कि पुत्रियों मेरे हाथ से इन दानों को लो और जब मैं कहूँ तब लौटा देना। इस प्रकार यों कहकर धान के पाँच दाने दिए। इसलिए इसमें कुछ न कुछ कारण होना चाहिए। रिक्षका ने यों सोचकर उन धान के दानों को शुद्ध वस्त्र में बाँधा, रत्न मंजूषा में स्थापित किया और उस मंजूषा को अपने सिरहाने रखा। उसे वह प्रातः, मध्यान्ह और सायंकाल इन तीनों संध्याओं के समय उनकी सारसंभाल करती हुई रहने लगी।

(3)

तए णं से धण्णे सत्थवाहे तस्सेव मित्त जाव चउत्थिं रोहिणीयं सुण्हं सद्दावेइ,

सद्दावेता जाव तं भवियव्वं एत्थ कारणेणं तं सेयं खलु मम एए पंच सालिअक्खए सारक्खमाणीए संगोवेमाणीए संबह्देमाणीए - त्तिकटु एवं संपेहेइ, संपेहिता कुलघरपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेता एवं वयासी-तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! एए पंच सालिअक्खए गेण्हइ २ ता पढमपाउसंसि महावुद्धिकायंसि णिवइयंसि समाणंसि खुड्डागं केयारं सुपरिकम्मियं करेह, करेता इमे पंचसालिअक्खए वावेह २ ता दोच्चंपि तच्चंपि उक्खयणिहए करेइ, करेता वाडिपक्खेवं करेह, करेता सारक्खमाणा संगोवेमाणा अणुपुळ्वेणं संबहेह।

शब्दार्थ - पढमपाउसंसि - प्रथम वर्षाकाल में, महाबुडिकायंसि - अत्यधिक वर्षा होने पर, णिवइयंसि - निपतित होने पर, खुडुागं - छोटी, केयारं - केदार-क्यारी, सुपरिकम्मियं-सुपरिकर्मित - बोने योग्य बनाना, वावेह - बोना, उक्ख्यणिहए - उखाड़ कर दूसरे स्थान पर रोपना, वाडिपक्खेवं - बाड़ लगाना।

भावार्थ - धन्य सार्थवाह ने फिर अपने जातीय जन यावत् पीहर के लोगों के समक्ष चौथी पुत्र वधू रोहिणिका को बुलाया यावत् धान के दाने लेकर सारी बात पर विचार करते हुए रोहिणिका ने सोचा, इसमें कोई न कोई कारण है। मुझे ये पांच धान के दाने दिए हैं और इनकी सुरक्षा, संगोपन, संवर्धन का कहा है। यों विचार कर उसने अपने पीहर के व्यक्तियों को बुलाया और कहा कि आप इन पांच धान के दानों को लें और पहली वर्षा ऋतु में जब पर्याप्त वृष्टि हो जाए तब एक छोटी सी क्यारी को साफ-सुथरी बनाकर, बोने योग्य तैयार कर इन दानों को बो दें और इन्हें दो-तीन बार उखाड़ कर दूसरे स्थान पर रोपें। रक्षार्थ बाड़ बनाएं। इस प्रकार संरक्षण, संगोपन करते हुए क्रमशः वृद्धि करें।

(90)

तए णं ते कोडुंबिया रोहिणीए एयमट्टं पडिसुणेंति २ ता ते पंच सालिअक्खए गेण्हंति २ ता अणुपुळ्वेणं सारक्खंति संगोविंति विहरंति। तए णं ते कोडुंबिया पढमपाउसंसि महावुद्धिकायंसि णिवइयंसि समाणंसि खुड्डागं केयारं सुपरिकम्मियं करेंति २ ता ते पंच सालिअक्खए ववंति २ ता दोच्चंपि तच्चंपि अक्खयणिहए करेंति २ ता वाडिपरिक्खेवं करेंति २ ता अणुपुळ्वेणं सारक्खेमाणा संगोवेमाणा संवहेमाणा विहरंति।

भावार्थ - तब सेवकों ने रोहिणिका के आदेश को स्वीकार किया। तदनुसार उन्होंने धान के पांच दानों को लिया और उनको यथावत् रूप में सावधानी पूर्वक रख लिया। वर्षा ऋतु के आते ही अत्यधिक वृष्टि होने पर एक छोटी सी क्यारी साफ कर तैयार की। धान के पांच दानों को बोया। दो बार—तीन बार उनको उखाड़ कर अन्य स्थान में रोपा। उनके चारों ओर बाड़ बना दी। अनुक्रम से संरक्षण, संगोपन और संवर्द्धन करते रहे।

(99)

तए णं ते साली अक्खए अणुपुव्वेणं सारिक्खजमाणा संगोविजमाणा संवृद्धिजमाणा साली जाया किण्हा किण्होभासा जाव णिउरंबभूया पासाईया ४, तए णं ते साली पत्तिया वृत्तिया गृब्भिया पसूया आगयगंधा खीराइया बद्धफला पक्का परियागया सल्लइया पत्तइया हरियपव्वकंडा जाया यावि होत्था।

शब्दार्थ - णिउरंबभूया - सघन-गहरे, पत्तिया - पत्रित-पत्ते निकले, वित्तिया - वृन्तयुक्त हुए, गिक्भिया - गर्भित-अन्तर्मंजरी युक्त, पसूया - प्रसूत-बिहर्मंजरी युक्त, आगयगंधा - सुरिभयुक्त, खीराइया - दुग्धयुक्त, बद्धफला - दुग्ध से कण रूप में परिवर्तित, पक्का - परिपक्व, परियागया - अंग-प्रत्यंग-परिपक्व, सल्लइया - ऊपर के शुष्क हुए आवरण से युक्त, पत्तइया - पत्रिकत - सूखे पत्तों के गिर जाने से अल्प पत्र युक्त।

भावार्थ - फिर वे धान के कण अनुक्रम से सुरक्षित, संगोपित, संवर्द्धित किए जाते हुए, नील वर्ण और आभायुक्त, बहुल - सघन, देखने में बहुत सुंदर, प्रीतिकर तथा आकर्षक धान के पौधे के रूप में परिणत हो गए।

वे क्रमशः पत्र, वृन्त युक्त हुए। वे अंतर्मंजरी बहिर्मंजरी युक्त हुए। सुरभित, सुगंधित होते हुए धान के तरलरूप-दुग्ध युक्त हुए। तदनंतर वह 'दूध' कणबद्ध हुआ। उसने परिपक्व फल का आकार प्राप्त किया। उसका ऊपरी आवरण भूसे में परिवर्तित हुआ और उसका पर्वकाण्ड पक गया।

(97)

तए णं ते कोडुंबिया ते साली पत्तिए जाव सल्लइएपत्तइए जाणिता तिक्खेहिं णवपज्जणएहिं असियएहिं लुणंति २ त्ता करयल मिलए करेंति २ त्ता पुणंति। तत्थ णं चोक्खाणं सूड्याणं अखंडाणं अफोडियाणं छड्डछडापूयाणं सालीणं मागहए पत्थए जाए।

शब्दार्थ - णवपज्जणएहिं - नयी धार चढ़ाए हुए, असियएहिं - दात्रों-हंसियो से, लुणंति - काटते हैं, पुणंति - हवा में उड़ाकर साफ करते हैं, चोक्खाणं - कचरा निकाल कर साफ किए हुए, सूइयाणं - वपन योग्य-अक्षुण्ण, अखंडाणं - अखंडित, अफोडियाणं - अस्फुटित-टूट-फूट रहित, छड्डछडा पूयाणं - सूप से फटक-फटक कर साफ किए हुए, मागहए - मगध देश में प्रचलित, पत्थए - एक प्रस्थमान-परिमाण युक्त।

भावार्थ - सेवकों ने धान को जब पत्रित यावत् ऊपरी शुष्क आवरण युक्त जाना-उसे भली भांति पका हुआ देखा तो उन्होंने तीक्ष्ण-तीखे, धार कराए हुए दात्रों से काटा। हाथों से मला, साफ किया। सूप से फटका, परिणाम स्वरूप अक्षुण्ण, अखंडित, अस्फुटित - उत्तम कोटि का एक प्रस्थ परिमित शालि धान तैयार हुआ।

विवेचन - इस सूत्र में आया हुआ 'प्रस्थ' शब्द भारत में प्रचलित पुराने माप-तौल से संबद्ध है। प्राचीन काल में हमारे देश में माप-तौल के अनेक रूप प्रचलित थे। उनमें मागधमान तथा किलंगमान का अपेक्षाकृत अधिक प्रचलन था। उत्तर भारत में तो लगभग सभी स्थानों में ये चलते थे। इन दोनों में भी मागधमान अधिक उपयोग में आता था। मागध का संबंध मगध से है। दक्षिण बिहार को प्राचीन काल में मगध कहा जाता था। अति प्राचीन काल में वहाँ का पाटनगर (राजधानी) गिरिव्रज था। वही आगे चलकर राजगृह के नाम से प्रसिद्ध हुआ। भगवान् महावीर स्वामी और तथागत बुद्ध के समय मगध का पाटनगर राजगृह था। जो अब राजगिर कहलाता है। आगे चलकर उसका स्थान पाटिलपुत्र ने ले लिया। चंद्रगुप्त मौर्य के समय यही वहाँ की राजधानी थी। मगध और पाटिलपुत्र का चंद्रगुप्त मौर्य के समय में उत्तर भारत में सर्वाधिक महत्त्व था। क्योंकि चंद्रगुप्त मौर्य का पूरे उत्तर भारत में शासन था। यों पाटिलपुत्र तथा मगध का प्रादेशिक महत्त्व ही नहीं था, वरन् राष्ट्रीय महत्त्व था। इसीलिए वहाँ के मान या माप तौल की अधिक मान्यता थी। आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'भाव प्रकाश' में महर्षि चरक को आधार मानकर माप-तौल का जो विवेचन किया गया है, वह पठनीय है। वहाँ परमाणु से प्रारंभ कर उत्तरोत्तर वृद्धिगत मानों का वर्णन है।

वहाँ कहा गया है कि ३० परमाणु मिलकर एक त्रसरेणु का रूप लेते हैं। इसका दूसरा नाम वंशी भी है। गवाक्ष की जालियों पर जब सूरज की किरणें पड़ती है तब जो छोटे-छोटे रजकण दृष्टि गोचर होते हैं, उनमें से प्रत्येक की संज्ञा त्रसरेणु या वंशी है। छह त्रसरेणुओं के मिलने से एक मरीचि बनती है। छह मरीचियों के सम्मिलन से एक राजिका बनती है। अर्थात् यह राई जितना आकार लिए होती है। तीन राई का एक सर्षप सरसों, आठ सर्षपों का एक यव-जौ, चार यव की एक रत्ती, छह रत्ती का एक मासा होता है।

मासे को हेम और धानक भी कहा जाता है। चार मासे मिलकर एक 'शाण' का रूप लेते हैं। उसे धरण और टंक भी कहा जाता है। दो शाण मिलकर एक 'कोल' होता है। क्षुद्रक वटक तथा द्रक्षण भी उसके नाम हैं। दो कोल के मिलने से एक कर्ष होता है। पाणिमानिका,अक्ष, पिचुपाणितल, किंचित पाणि, तिण्दुक, विडालपदक, षोडशिका, करमध्य, हंसपद, सुर्वण, कवलग्रह तथा उदुम्बर-इसी के नाम हैं।

दो कर्ष का एक अर्धपल होता है। वह शुक्ति या अष्टमिक के नाम से भी अभिहित होता है। दो शुक्ति के मिलने से एक पल बनता है। इसे मुष्टि, आम्रचतुर्थिका, प्रकुंच, षोडशी एवं बिल्व भी कहा जाता है। दो पल की एक प्रसृति होती है। प्रसृत भी उसी का नाम है। दो प्रसृतियों के मेल से एक अंजलि होती है। कुडव, अर्द्ध शरावक एवं अष्टमान के नाम से भी इसे अभिहित किया जाता है। दो कुडवों के मिलने से एक मानिका होती है। शराव एवं अष्ट पल भी इसी का नाम है। दो शरावों के मिलने से एक प्रस्थ होता है।

यहाँ यह ज्ञातव्य है - प्रस्थ के ६४ तोले होते हैं। पूर्वकाल में एक सेर में ६४ तोले माने जाते थे। इसलिए प्रस्थ को सेर का पर्यायवाची माना जाता था। चार प्रस्थ का एक आढक होता है। उसको भाजन एवं कांस्य पात्र भी कहा जाता है। चौसठ पल का होने के कारण चतुषष्ठि पल भी उसका नाम है। चार आढक का एक द्रोण होता है। कलश, नल्वण, अर्मण, उन्मान, घट तथा राशि के नाम से भी यह अभिहित हुआ है। दो द्रोण के मिलने से एक शूर्प होता है। कुंभ भी उसका पर्यायवाची है। उसे चतुषष्ठि शरावक भी कहा जाता है क्योंकि वह चौषठ शरावों के मेल से बनता है।

(**६**Р)

तए णं ते कोडुंबिया ते साली णवएसु घडएसु पक्खिवंति २ ता उवलिंपंति २ ता लंछियमुद्दिए करेंति २ ता कोड्डागारस्स एगदेसंसि ठावेंति २ ता सारक्खेमाणा संगोवेमाणा विहरंति।

शब्दार्थ - लंकिय - लांकित-चिह्नित, मुद्दिए - मुद्रित-सील। भावार्थ - तदनंतर कौटुंबिक पुरुषों ने प्रस्थ प्रमाण शालि धान को नूतन घट में भरा। उसके मुख पर लेप किया। तदनंतर उसे चिह्नित किया, सील किया। फिर उसे कोष्ठागार के एक भाग में रख दिया एवं उसका संरक्षण-संगोपन करते रहे।

(98)

तए णं ते कोडुंबिया दोच्चंसि वासारत्तंसि पढम पाउसंसि महावुट्टिकायंसि णिवइयंसि खुड्डागं केयारं सुपिरकम्मियं करेंति २ ता ते साली ववंति दोच्चंपि तच्चंपि उक्खयणिहए जाव लुणंति जाव चलणतलमिलए करेंति २ त्ता पुणंति। तत्थ णं बहवे सालीणं कुडवा मुरला जाव एगदेसंसि ठावेंति २ त्ता सारक्खेमाणा० विहरंति।

शब्दार्थ - वासारत्तंसि - वर्षा ऋतु में, चलणतलमलिए - पादतल से मले हुए।

भावार्थ - फिर कौटुंबिक पुरुषों ने दूसरी वर्षा ऋतु के प्रारंभ में ही पर्याप्त वर्षा हो जाने पर छोटी क्यारी बनाई। उसे साफ-सुथरा कर वपन योग्य बनाया, शालिधान को बोया। दो बार-तीन बार पौधों को उखाड़ा, पृथक् स्थानों में रोपा यावत् जब वे भली भांति परिपक्व हो गए, तब उन्हें काटा यावत् पैरों से रौंदा, साफ किया। इस प्रकार अनेक कुडव शालि धान तैयार हो गये। यावत् उन्होंने उसे कोठार के एक भाग में रखा एवं उसका संरक्षण, संगोपन करते रहे।

(**१**५)

तए णं ते कोडुंबिया तच्चंसि वासारत्तंसि महावुद्विकायंसि णिवइयंसि बहवे केयारे सुपरिकम्मिए जाव लुणंति २ ता संवहंति २ ता खलयं करेंति २ ता मलेंति जाव बहवे कुंभा जाया। तए णं ते कोडुंबिया साली कोट्ठागारंसि पक्खिवंति जाव विहरंति। चउत्थे वासारत्ते बहवे कुंभसया जाया।

शब्दार्थ - संवहंति - भारे बनाकर लाते हैं, खलयं - खलिहान।

भावार्थ - तदनंतर कौटुंबिक पुरुषों ने तीसरी वर्षाऋतु के प्रारंभ में, अत्यधिक वृष्टि होने पर क्यारियाँ बनाई, उन्हें स्वच्छ किया यावत् यथाविधि धान को बोया, यथाक्रम उखाड़ा-रोपा, परिपक्व होने पर काटा। वे उनके भारे बना कर खिलहान में लाए। वहाँ उसे रौंदा। परिणाम स्वरूप अनेक कुंभ परिमित शालि धान हुआ।

परिणाम

(9६)

तए णं तस्स धण्णस्स पंचमयंसि संबच्छांसि परिणममाणंसि पुव्वरत्तावरत्त-कालसमयंसि इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था-एवं खलु मम इओ अईए पंचमे संबच्छरे चउण्हं सुण्हाणं परिक्खण्डयाए ते पंच पंच सालिअक्खया हत्थे दिण्णा, तं सेयं खलु मम कल्लं जाव जलंते पंच सालिअक्खए परिजाइत्तए जाव जाणामि ताव काए किह सारिक्खिया वा संगोविया वा संबद्धिया जाव त्तिकटु एवं संपेहेइ, संपेहिता कल्लं जाव जलंते विपुलं असणं ४ मित्तणाइणियग० चउण्हं य सुण्हाणं कुलघरवग्गं जाव सम्माणिता तस्सेव मित्त० चउण्ह य सुण्हाणं कुलघरवग्गस्स पुरओ जेट्टं उज्झियं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी।

शब्दार्थ - संवच्छरंसि - संवत्सर-वर्ष, परिणममाणंसि - परिपूर्ण होने पर, अईए - अतीत-बीता हुआ, परिजाइत्तए - प्रतियाचित करूँ-माँगू, काए - किसके द्वारा।

भावार्थ - तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह ने पांचवां वर्ष पूरा होने पर एक समय मध्यरात्रि में यों विचार किया-मैंने अब से पांच वर्ष पूर्व अपनी चारों पुत्रवधुओं की परीक्षा करने के लिए पांच शालिधान के दाने उनके हाथ में दिए थे। अच्छा हो, जब प्रातः काल सूरज चमकने लगे, मैं उनसे धान के वे दाने माँगू यावत् यह जान सकूं कि किसने किस-किस प्रकार से उनका संरक्षण, संगोपन, संबर्द्धन किया है। ऐसा संप्रेक्षण-गहराई से चिंतन कर अगले दिन प्रातःकाल सूर्योदय के पश्चात् विपुल अशन-पान-खाद्य-स्वाद्य तैयार करवाया। मित्रों स्वजनों एवं अपने सभी सुहृदजनों तथा चारों वधुओं के पीहर के व्यक्तियों को बुलाया यावत् अशन-पान आदि द्वारा उनका सम्मान किया और उन समागतजनों तथा पुत्रवधुओं के पीहर के लोगों के समक्ष अपनी ज्येष्ठा पुत्रवधू उज्झिका को बुलाया एवं उसे कहा।

(৭৬)

एवं खलु अहं पुत्ता! इओ अईए पंचमंसि संवच्छरंसि इमस्स मित्त० चउण्ह य सुण्हाणं कुलघरवग्गस्स य पुरओ तव हत्थंसि पंच सालिअक्खए दलयामि जया णं अहं पुत्ता! एए पंच सालिअक्खए जाएजा तया णं तुमं मम इमे पंच सालिअक्खए पडिदिजाएसि-त्तिकट्टु तं हत्थंसि दलयामि। से णूणं पुत्ता! अहे समट्टे? हंता अत्थि। तं णं (तुमं) पुत्ता! मम ते सालिअक्खए पडिणिजाएहि।

भावार्थ - पुत्रियो! अब से पांच वर्ष पूर्व इन्हीं मित्रादि स्वजन बंधु बांधवों तथा हम चारों के पीहर के लोगों के समक्ष तुम्हारे हाथ में पांच-पांच शालि धान के दाने दिए थे और कहा था जब ये पांच शालि धान के दाने माँगूं तब मुझे इन्हें वापस लौटाओगी।

उज्झिका को संबोधित कर कहा - 'क्या यह यथार्थ है?' उज्झिका बोली-'तात्! यही बात थी।' इस पर धन्य सार्थवाह बोला-'पुत्री! वे शालि धान के दाने वापस लौटाओ।'

(95)

तए णं सा उज्झिया एयमडं धण्णस्स पिडसुणेइ २ त्ता जेणेव कोडागारं तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पल्लाओ पंच सालिअक्खए गेण्हइ २ ता जेणेव धण्णे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धण्णं सत्थवाहं एवं वयासी-एए णं ते पंच सालिअक्खए-तिकटु धण्णस्स हत्थंसि ते पंच सालिअक्खए दलयइ। तए णं धण्णे उज्झियं सवहसावियं करेइ, करेत्ता एवं वयासी-कि णं पुत्ता! एए चेव पंच सालिअक्खए उदाहु अण्णे?

शब्दार्थ - सवहसावियं - शपथ शापितं-सौगंध दिलाकर।

भावार्थ - उज्झिका ने सार्थवाह का यह कथन स्वीकार किया, वह कोष्ठागार में आई। वहाँ उसके अन्तवर्ती एक कोठार से उसने पांच शालिधान के दाने लिए, लेकर वह धन्य सार्थवाह के निकट उपस्थित हुई और बोली- ये वे पांच शालिधान के दाने हैं, यों कह कर उसने वे दाने सार्थवाह के हाथ में रख दिये। तब धन्य सार्थवाह ने उज्झिका को सौगंध दिलाकर कहा-'बेटी! क्या ये वही दाने हैं, जो मैंने दिए थे या अन्य हैं?'

(38)

तए णं उज्झिया धण्णं सत्थवाहं एवं वयासी-एवं खलु तुब्भे ताओ इओ अईए पंचमे संवच्छरे इमस्स मित्तणाइ० चउण्ह य जाव विहराहि। तए णं अहं तुब्धं एयमड्डे पडिसुणेमि २ ता ते पंच सालिअक्खए गेण्हामि एगंतमवक्कमामि। तए णं मम इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था-एवं खलु तायाणं कोडागारंसि जाव सकम्मसंजुत्ता, तं णो खलु ताओ! ते चेव पंच सालिअक्खए एए णं अण्णे।

भावार्थ - तब उज्झिका ने धन्य सार्थवाह से कहा-तात! आपने पांच वर्ष पूर्व इन्हीं मित्र-स्वजनों तथा हम चारों के पीहर के महानुभावों के समक्ष हमें ये दाने लेने की बात कही तथा इन्हें संरक्षित गोपित करने का संकेत दिया। मैंने आपका कथन स्वीकार किया। फिर मैं एकांत में गई। वहाँ मेरे मन में यह विचार उत्पन्न हुआ—तात के (आपके) कोष्ठागार में बहुत से दाने हैं। जब मांगेंगे तब इनमें से लेकर दे दूँगी। मैंने वे दाने फेंक दिए और अपने कार्य में लग गई। तात! ये वे पांच शालिधान के दाने नहीं हैं, दूसरे हैं।

(20)

तए णं से धण्णे उज्झियाए अंतिए एयमडं सोच्चा णिसम्म आसुरुत्ते जाव मिसिमिसेमाणे उज्झिइयं तस्स मित्तणाइ० चउण्हं सुण्हाणं कुलघरवग्गस्स य पुरओ तस्स कुलघरस्स छारुज्झियं च छाणुज्झियं च कयवरुज्झियं च समु संपुच्छियं च सम्मज्ञिअं च पाउवदाइं च ण्हाणोवदाइं च बाहिरपेसणकारिं ठवेड।

शब्दार्थ - छारुज्झियं - राख फेंकना, छाणुज्झियं - गोबर फेंकना, कयवरुज्झियं - कचरा फेंकना, संपुच्छियं - घर के आंगन को पोंछना-पोता लगाना, पाउवदाइं - पैर धोने के लिए पानी देना, बाहिरपेसणकारिं - घर के बाहरी कार्य करना।

भावार्थ - धन्य सार्थवाह उज्झिका का यह अभिप्राय सुनकर बहुत ही क्रुद्ध हुआ। वह क्रोध से दहक उठा। उसने उन मित्रादि समस्तजनों तथा चारों पुत्रवधुओं के पीहर के लोगों के सामने उसे घर में से राख, गोबर, कचरा फेंकने के काम, पैर धोने एवं स्नान करने के लिए पानी देने के काम तथा घर के बाहरी कार्य करने वाली दासी के कार्यों का दायित्व सौंपा।

(२१)

एवामेव समणाउसो! जो अम्हं णिग्गंथो वा णिग्गंथी वा जाव पव्वइए पंच

य से महळ्वयाइं उज्झियाइं भवंति से णं इहभवे चेव बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावयाणं बहूणं सावियाणं हीलणिजे जाव अणुपरियट्डइस्सइ जहा सा उज्झिया।

भावार्थ - आयुष्मान् श्रमणो! इसी प्रकार जो साधु या साध्वी यावत् आचार्य अथवा उपाध्याय के पास मुंडित प्रव्रजित होते हैं, वे यदि पांच महाव्रतों को उज्झित कर दें-त्याग दें तो वे इस लोक में, इस भव में बहुत से श्रमण-श्रमणियों-श्रावक-श्राविकाओं के लिए अवहेलना योग्य होते हैं, यावत् इस संसार सागर में अनुपर्यटन करते हैं, बार-बार भटकते हैं। उनकी वही दशा होती है, जैसी उज्झिका की हुई।

(२२)

एव भोगवइयावि णवरं तस्स कुलघरस्स कंडंतियं च कोटंतियं च पीसंतियं एवं रुच्चंतियं च रंधंतियं च पिरवेसंतियं च पिरभायंतियं च अन्भितिर्यं च पेसणकारिं महाणसिणिं ठवेइ।

शब्दार्थ - कंडितियं - धान को साफ करने हेतु छड़ना, कोटंतियं - कूटना, पीसंतियं-पीसना, रुच्चंतियं - रुचिकर बनाना, रंधंतियं - रांधना, परिवेसंतियं - परोसना, परिभायंतियं-पर्वादि दिनों में स्वजनों के घर मिष्ठान्न आदि बांटना. अब्भितंरियं - घर के भीतर के काम, महाणसिणिं - महानस-रसोई का कार्य करने वा ॥।

भावार्थ - इसी प्रकार सार्थवाह ने भोगबतिका को बुलाया। उसके साथ भी उज्झिका की तरह सब घटित हुआ। उसने अपने द्वारा दाने चबा लिए जाने की बात कही इत्यादि। अंतर यह है कि सार्थवाह ने भोगवितका को अन्न को छड़ने, कूटने, पीसने, संवारने, रांधने, परोसने का और पर्व-दिनों में स्वजनों के गृह मिष्ठान्न बांटने का घर के भीतर के कार्य करते हुए भोजन बनाने का कार्य सींपा।

(२३)

एवामेव समणाउसो। जो अम्हं समणो वा समणी वा पंच य से महळ्वयाइं फोडियाइं भवंति से णं इहभवे चेव बहूणं समणाणं ४ हीलणिजो ४ जाव जहा व सा भोगवइया। सोचा। इसका कोई अवश्य ही विशेष कारण होना चाहिए। यह विचार कर मैंने उन पाँच दानों को शुद्ध वस्त्र में बांधा, रत्न करंडिका में रखा एवं उसकी देखभाल करती रही।

तात! इस कारण ये वे ही पांच शालिधान के दाने हैं, दूसरे नहीं हैं।

् (२६)

तए णं से धण्णे रक्खियाए अंतिए एयमट्टं सोच्चा हट्टतुट्टे तस्स कुलघरस्स हिरण्णस्स य कंस-दूस-विपुल-धण जाव सावएजस्स य भंडागारिणिं ठवेइ।

भावार्थ - धन्य सार्थवाह रक्षिका का यह कथन सुनकर बहुत ही हर्षित और परितुष्ट हुआ। उसने अपने परिवार के चांदी, कांस्य, वस्त्र यावत् स्वर्ण इत्यादि 'विपुल' धन की भंडागारिणी का-निधान स्वामिनी का उसे उत्तरदायित्व सौंपा।

(२७)

एवामेव समणाउसो! जाव पंच य से महव्वयाइं रक्खियाइं भवंति से णं इहभवे चेव बहुणं समणाणं ४ अच्चिणजे जाव जहा सा रक्खिया।

भावार्थ - आयुष्मान् श्रमणो! यावत् जो साधु-साध्वी अपने पांच महाब्रतों की रक्षा करते हैं, भली भांति पालन करते हैं, वे इस भव में बहुत से साधु-साध्वियों, श्रावक-श्राविकाओं द्वारा अर्चनीय-पूजनीय, सम्मानीय होते हैं यावत् जिस प्रकार रिक्षका अपने श्वसुर द्वारा सम्मानित हुई।

(25)

रोहिणियाणि एवं चेव णवरं तुब्भे ताओ! मम सुबहुयं सगडीसागडं दलाहि जेणं अहं तुब्भं ते पंच सालिअक्खए पडिणिजाएमि। तए णं से धण्णे सत्थवाहे रोहिणि एवं वयासी-कहं णं तुमं मम पुत्ता! ते पंच सालिअक्खए सगडसागडेणं णिजाइस्सिस? तए णं सा रोहिणी धण्णं सत्थवाहं एवं वयासी-एवं खलु ताओ! इओ तुब्भे पंचमे संवच्छरे इमस्स मित्त जाव बहवे कुंभसया जाया तेणेव कमेणं एवं खलु ताओ! तुब्भे ते पंच सालिअक्खए सगडीसागडेणं णिजाएमि।

शब्दार्थ - सगडसागडेणं - गाड़ी-गाडे।

सोचा। इसका कोई अवश्य ही विशेष कारण होना चाहिए। यह विचार कर मैंने उन पाँच दानों को शुद्ध वस्त्र में बांधा, रत्न करंडिका में रखा एवं उसकी देखभाल करती रही।

तात! इस कारण ये वे ही पांच शालिधान के दाने हैं, दूसरे नहीं हैं।

. (२६)

तए णं से धण्णे रक्खियाए अंतिए एयमट्टं सोच्चा हट्टतुट्टे तस्स कुलघरस्स हिरण्णस्स य कंस-दूस-विपुल-धण जाव सावएजस्स य भंडागारिणिं ठवेइ।

भावार्थ - धन्य सार्थवाह रक्षिका का यह कथन सुनकर बहुत ही हर्षित और परितुष्ट हुआ। उसने अपने परिवार के चांदी, कास्य, वस्त्र यावत् स्वर्ण इत्यादि 'विपुल' धन की भंडागारिणी का-निधान स्वामिनी का उसे उत्तरदायित्व सौंपा।

(२७)

एवामेव समणाउसो! जाव पंच य से महव्वयाइं रक्खियाइं भवंति से णं इहभवे चेव बहुणं समणाणं ४ अच्चणिजे जाव जहा सा रक्खिया।

भावार्थ - आयुष्मान् श्रमणो! यावत् जो साधु-साध्वी अपने पांच महाब्रतों की रक्षा करते हैं, भली भांति पालन करते हैं, वे इस भव में बहुत से साधु-साध्वियों, श्रावक-श्राविकाओं द्वारा अर्चनीय-पूजनीय, सम्मानीय होते हैं यावत् जिस प्रकार रिक्षका अपने स्वसुर द्वारा सम्मानित हुई।

(२८)

रोहिणियाणि एवं चेव णवरं तुब्भे ताओ! मम सुबहुयं सगडीसागडं दलाहि जेणं अहं तुब्भं ते पंच सालिअक्खए पडिणिजाएमि। तए णं से धण्णे सत्थवाहे रोहिणिं एवं वयासी-कहं णं तुमं मम पुत्ता! ते पंच सालिअक्खए सगडसागडेणं णिजाइस्सिसि? तए णं सा रोहिणी धण्णं सत्थवाहं एवं वयासी-एवं खलु ताओ! इओ तुब्भे पंचमे संवच्छरे इमस्स मित्त जाव बहवे कुंभसया जाया तेणेव कमेणं एवं खलु ताओ! तुब्भे ते पंच सालिअक्खए सगडीसागडेणं णिजाएमि।

शब्दार्थ - सगडसागडेणं - गाड़ी-गाडे।

भावार्थ - रोहिणिका के साथ भी वैसा ही वार्तालाप हुआ। अन्तर यह है, रोहिणिका बोली—'तात! आप बहुत से गाड़े-गाड़िया दें, जिनमें डालकर मैं उन पांच धान के कणों को आपके पास ला सकूं।' धन्य सार्थवाह ने रोहिणिका से कहा—'बेटी! उन पांच धान के दानों को क्या गाड़ी-गाड़ों द्वारा लौटाओगी?'

रोहिणिका बोली—'तात! पांच वर्ष पूर्व आपने मित्र, स्वजन, संबंधीजन आदि के समक्ष हम चारों पुत्र वधुओं को पांच-पांच दाने दिए यावत् इन दानों को दिए जाने में कोई विशेष बात है, यह सोचकर अपने पीहर में इनकी अलग खेती करवाई, जिसके परिणाम स्वरूप ये क्रमशः बढ़ते-बढ़ते सैंकड़ों कुंभ प्रमाण हो गए हैं। इसीलिए मैं उन पांच दानों को गाड़ी-गाड़ों में लदाकर लौटाऊँगी।

(38)

तए णं से धण्णे सत्थवाहे रोहिणीयाए सुबहुयं सगडीसागडं दलयइ। तए णं रोहिणी सुबहू सगडीसागडं गहाय जेणेव सए कुलघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कोट्ठागारे विहाडेइ २ ता पल्ले उब्भिंदइ २ ता सगडीसागडं भरेइ २ ता रायगिहं णगरं मज्झंमज्झेणं जेणेव सए गिहे जेणेव धण्णे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छइ। तए णं रायगिहे णयरे सिंघाडग जाव बहुजणो अण्णमण्णं एवमाइक्खइ ४ धण्णे णं देवाणुप्पिया! धण्णे सत्थवाहे जस्स णं रोहिणीया सुण्हा जीए ण पंच सालिअक्खए सगडसागडिएणं णिजाएइ।

शब्दार्थ - उन्धिदइ - मुद्रा रहित करना-सील आदि हटाना।

भावार्थ - धन्य सार्थवाह ने रोहिणिका को बहुत से गाड़ी-गाड़े दिए। रोहिणी उन्हें लेकर अपने पीहर आई। वहाँ कोष्ठागार को खुलवाया। तदन्तरवर्ती उस भण्डार, जिसमें शालिधान रखा था, मुद्रा रहित करवाया-सील हटवाई। शालिधान को गाड़ी-गाड़ों पर लदवाया। राजगृह नगर के बीचों-बीच होती हुई, अपने घर धन्य सार्थवाह के पास आई। यह देखकर राजगृह नगर के तिराहे, चौराहे-चौक आदि भिन्न-भिन्न स्थानों में लोग आपस में यों बात करने लगे—'धन्य सार्थवाह वास्तव में धन्य है, जिसकी रोहिणिका जैसी पुत्रवधू है, जो पांच शालिधान के दानों को गाड़े-गाड़ियों में भरवा कर लौटा रही है।''

(३०)

तए णं से धण्णे सत्थवाहे ते पंच सालिअक्खए सगडी सागडेणं णिजाइए पासइ, पासिता हट्ट जाव पडिच्छइ २ ता तस्सेव मित्तणाइ० चउण्ह य सुण्हाणं कुलघरवग्गस्स पुरओ रोहिणीयं सुण्हं तस्स कुलघरस्स बहुसु कजेसु य जाव रहस्सेसु य आपुच्छणिजं जाव वट्टावियं पमाणभूयं ठावेइ।

शब्दार्थ - वट्टावियं - घर के कार्यों को वर्तित करना, चलाना।

भावार्थ - धन्य सार्थवाह ने उन पांच शालिधान के दानों को गाड़ी-गाड़ों द्वारा लौटादा जाता देखा। मन में बहुत ही प्रसन्न और संतुष्ट हुआ। उसने उन्हें स्वीकार किया। अपने मित्रों, जातीयजनों, स्वजनों, परिजनों तथा चारों वधुओं के पीहर के लोगों के समक्ष पुत्र वधू रोहिणिका को अपने परिवार के बहुत से कार्यों में यावत् रहस्यभूत मंत्रणादि में पूछने योग्य घोषित किया तथा घर के कार्यों को संचालित करने का दायित्व सौंपा एवं सब के लिए प्रमाणभूत-सर्वोच्च अधिकार संपन्न बनाया।

(३१)

एवामेव समणाउसो! जाव पंच महळ्वया संबद्धिया भवंति से णं इहभवे चेव बहूणं समणाणं जाव वीईवइस्सइ जहा व सा रोहिणीया।

भावार्थ - आयुष्मान् श्रमणो! इसी प्रकार जो साधु-साध्वी यावत् पांच महाव्रतों का संवद्धन करते हैं-तप, त्याग, वैराग्य द्वारा उन्हें संवर्द्धित करते हैं वे इस लोक में बहुत से श्रमण-श्रमणी श्रावक-श्राविका के द्वारा सम्माननीय होते हैं, जिस प्रकार रोहिणिका हुई तथा अन्ततः वे मुक्ति प्राप्त करते हैं।

उपसंहार

(32)

एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं सत्तमस्स णायज्झयणस्य अयमद्रे पण्णते तिबेमि। भावार्थ - आर्य सुधर्मा स्वामी अध्ययन का उपसंहार करते हुए बोले-श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने सातवें ज्ञाताध्ययन का यह अर्थ प्रज्ञापित किया, जिसे मैंने तुम्हारे समक्ष आख्यात किया है।

विवेचन - यद्यपि प्रस्तुत अध्ययन का उपसंहार धर्मशिक्षा के रूप में किया गया है और धर्मशास्त्र का उद्देश्य मुख्यतः धर्मशिक्षा देना ही होता है, तथापि उसे समझाने के लिए जिस कथानक की योजना की गई है वह गार्हस्थिक-पारिवारिक दृष्टि से भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। 'योग्यं योग्येन योजयेत्' यह छोटी-सी उक्ति अपने भीतर विशाल अर्थ समाये हुए हैं। प्रत्येक व्यक्ति में योग्यता होती है किन्तु उस योग्यता का सुपरिणाम तभी मिलता है जब उसे अपनी योग्यता के अनुरूप कार्य में नियुक्त किया जाए। मूलभूत योग्यता से प्रतिकूल कार्य में जोड़ देने पर योग्य से योग्य व्यक्ति भी अयोग्य सिद्ध होता है। उच्चतम कोटि का प्रखरमित विद्वान् बर्व्ह- 'सुथार'के कार्य में अयोग्य बन जाता है। मगर 'योजसस्तव दुर्लभः' अर्थात् योग्यतानुकूल योजना करने वाला कोई विरला ही होता है। धन्यसार्थवाह उन्हीं विरल योजकों में से एक था। अपने परिवार की सुव्यवस्था करने के लिए उसने जिस सूझ-बूझ से काम लिया वह सभी के लिए मार्गदर्शक है। सभी इस उदाहरण से लौकिक और लोकोत्तर कार्यों को सफलता के साथ सम्पन्न कर सकते हैं।

उदाहरण से स्पष्ट है कि प्राचीन काल में संयुक्त परिवार की प्रथा थी। वह अनेक दृष्टियों से उपयोगी और सराहनीय थी। उससे आत्मीयता की परिधि विस्तृत बनती थी और सहनशीलता आदि सद्गुणों के विकास के अवसर सुलभ होते थे। आज यद्यपि शासन-नीति, विदेशी प्रभाव एवं तज्जन्य संकीर्ण मनोवृत्ति के कारण परिवार विभक्त होते जा रहे हैं, तथापि इस प्रकार के उदाहरणों से हम बहुत लाभ उठा सकते हैं।

चारों पुत्रवधुओं ने बिना किसी प्रतिवाद के मौन भाव से अपने श्वसुर के निर्णय को स्वीकार कर लिया। वे भले मौन रहीं, पर उनका मौन ही मुखरित होकर पुकार कर, हमारे समक्ष अनेकानेक स्पृहणीय संदेश-सदुपदेश सुना रहा है।

उवणय-गाहाओ -

जह सेट्टी तह गुरुणो, जह णाइजणो तहा समण संघो। जह बहुया तह भव्वा, जह सालिकणा तह वयाइं॥१॥

जह सा उज्झियणामा, उज्झियसाली जहत्थमभिहाणा। पेसणगारित्तेणं, असंखदुक्खक्खणी जाया॥२॥ तह भव्वो जो कोई, संघ समक्खं गुरुविदिण्णाइं। पडिवज्जिउं समुज्झइ महळ्वयाइं महामोहा॥ ३॥ सो इह चेव भवम्मि, जणाण धिक्कारभायणं होइ। पर लोए उ दुहत्तो णाणाजोणीसु संचरइ।।४।। जह वा सा भोगवई, जहत्थणामोवभुत्तसालिकणा। पेसणविसेस कारित्तणेण पत्ता दुहं चेव।। ५॥ तह जो महळ्वयाइं, उवभुंजइ जीवियत्ति पालिंतो। आहाराइसु सत्तो, चत्तो सिवसाहणिच्छाए॥६॥ सो इत्थ जहिच्छाए, पावइ आहारमाइ लिंगित्ति। विउसाण णाइपुजाे, परलोयम्मि दुही चेव।।७॥ जह वा रक्खियबहुया, रक्खियसाली कणा जहत्थक्खा। परिजणमण्णा जाया, भोगसुहाइं च संपत्ता॥८॥ तह जो जीवो सम्मं, पडिवज्जिजा महव्वए पंच। पालेइ णिरइयारे, पमायलेसंपि वर्जेतो।। १।। सो अप्पहिएकरई, इह लोयंमिवि विकहिं पणयपओ। एगंतसुही जायइ, परम्मि मोक्खंपि पावेइ॥ १०॥ जह रोहिणी उ सुण्हा, रोवियसाली जहत्थमभिहाणा। वहिता सालिकणे, पत्ता सव्वस्स सामित्तं।।११।। तह जो भव्वो पाविय, वयाइं पालेइ अप्पणा सम्मं। अण्णेसिवि भव्वाणं देइ, अणेगेसिं हियहेउं।।१२।। सो इह संघपहाणो, जुगप्पहाणेत्ति लहइ संसदं। अप्प परेसिं कल्लाण, कारओ गोयमपहुळ्य।।१३।।

तित्थस्स वुद्धिकारी, अक्खेवणओ कुर्तित्थियाईणं। विउसणरसेवियकमो, कमेण सिद्धिपि पावेइ॥१४॥ ॥ सत्तमं अज्झयणं समत्तं॥

शब्दार्थ - उज्झियसाली - धान्य कणों को फेंकने वाली, जहत्थमभिहाणा - यथार्थ नाम युक्त, गुरुविदिण्णाइं - गुरु द्वारा प्रदत्त, पडिवज्जिउं - परिवर्जित, भायणं - भाजन-पात्र, दुहत्तो - दुःखार्थ, सत्तो - आसक्त, चत्तो - त्यक्त, उवभुंजइ - खा जाता-नष्ट कर देता है, विउसाण - विद्वानों का, णाइपुज्जो - नाति पूज्य-असम्माननीय, जहत्थक्खा - यथार्थ आख्या-यथानाम तथा गुण युक्त, णिरइयारे - अतिचार या दोष रहित, पणयपओ - प्रणत पाद-चरणों में प्रणाम करने योग्य, सामित्तं - स्वामित्व-सर्वधिकार-संपन्नता, जुगप्पहाणेत्ति - युग प्रधान-अपने युग में आध्यात्मिक चेतना करने वाला, संसदं - सत्श्रद्धा, गोयमपहुच्च - गौतम प्रभु की तरह, अक्खेवणाओ - बुद्धि-वैभव द्वारा आकर्षित करता हुआ, कुतित्थियाईणं- विपरीत मतानुयायियों का।

भावार्थ - जिस प्रकार कथानक में श्रेष्ठी सार्थवाह का कथन हुआ है, उसी प्रकार आध्यात्मिक पक्ष में गुरु का स्थान है। जैसे वहाँ ज्ञातिजन हैं वैसे ही धार्मिक पक्ष में श्रमण-संघ है। बहुएँ भव्य जीवों की प्रतीक रूप हैं। शालि धान के कण व्रत हैं।। १।।

उज्झिका नामक बहू जिसने शालि धान को फेंक दिया, वह यथा नाम तथा गुण है। वह प्रेषणकारित्व-सफाई एवं घर के बाहर की नौकरानी का काम सौंपे जाने के कारण अनिगनत दुःखों की खान बनी।। २॥

उसी प्रकार जो भव्य जीव संघ के समक्ष गुरु द्वारा प्रदत्त व्रतों का परित्याग कर देता है, वह उस उज्झिका के जैसा है॥ ३॥

वह इस लोक में लोगों के धिक्कार का पात्र होता है, अवहेलना योग्य होता है। वह परलोक में दुःख से पीड़ित होता हुआ विभिन्न योनियों में उज्झिका की तरह भटकता रहता है॥ ४॥

अपने यथा गुण नाम युक्त भोगवतिका ने धान के कणों को खा लिया। उसे पीसना, रांधना, पकाना आदि कार्य दिए गए जो उसके लिए दुःख प्रद हैं॥ ४॥ उसी प्रकार जो मात्र जीविका का पालन करता हुआ महाव्रतों को खा जाता है, तष्ट कर देता है, आहार आदि में लोलुप रहता है, वह मोक्ष के मार्ग से दूर हो जाता है॥६॥

इसके अतिरिक्त जो इस संसार में इच्छानुरूप आहारादि पाने में लगा रहता है, वह विद्वानों द्वारा सम्मानित नहीं होता, तिरस्कृत होता है तथा परलोक में भी दुःखित होता है॥७॥

रक्षिका नामक वधू, जिसने शालिधान के कणों की रक्षा की, वह अपने नाम के अनुरूप अर्थ युक्त थी। वह अपने परिजनों द्वारा मान्य हुई तथा भोगमय सुख प्राप्त किए॥८॥

उसी प्रकार जो जीव महाव्रतों को भली भांति स्वीकार कर जरा भी प्रमाद के बिना निरतिचार रूप में पालन करता है, वह रक्षिका जैसा है॥६॥

ऐसा पुरुष आत्मा का हित साधता है तथा इसलोक में विद्वजन, ज्ञानी पुरुष उसके चरणों में प्रणाम करते हैं। वह एकांत रूप में सुखी होता है और परम मोक्ष प्राप्त करता है॥ १०॥

पुत्रवधू रोहिणिका जिसने शालिधान को रोपवाया अपने गुण के अनुरूप नाम युक्त थी। उसने शालिधान के कणों का संवर्द्धन कराया, फलतः उसने सबका स्वामित्व-सर्वाधिकार संपन्नत्व प्राप्त किया॥११॥

उसी प्रकार जो भव्य जीव प्राप्त किए हुए व्रतों का भली भांति पालन करता है, औरों का धर्मोपदेश द्वारा कल्याण करता है, हित साधता है॥१२॥

वैसा पुरुष सबके लिए श्रद्धास्पद संघ प्रधान, युग प्रधान पदासीन होता है, वह भगवान् गौतम प्रभु की तरह स्व-पर कल्याणकारी होता है। वैसा पुरुष धर्मतीर्थ की वृद्धि-समुन्नति करता है॥ १३॥

विपरीत मतानुयायियों को भी अपने बुद्धिकौशल से प्रभावित, आकर्षित करता है, अनुगत बनाता है। वह नए कर्मों का अर्जन न करता हुआ संचित कर्मों का निर्जरण करता हुआ सिद्धि प्राप्त करता है।।१४।।

॥ सातवाँ अध्ययन समाप्त॥



मल्ली णामं अहमं अज्झयणं मही नामक आठवां अध्ययन

(9)

जइ णं भंते! समणेणं जाव संपत्तेणं सत्तमस्स णायज्झयणस्स अयमहे पण्णत्ते अहमस्स णं भंते! के अहे पण्णत्ते?

भावार्थ - भगवन्! यदि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने सातवें ज्ञाताध्ययन का यह अर्थ बतलाया है तो कृपया फरमाएं कि उन्होंने आठवें अध्ययन का क्या अर्थ प्रतिपादित किया है?

सलिलावती विजय

(२)

एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहेवासे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चित्थेमेणं णिसढस्स वासहरपव्वयस्स उत्तरेणं सीओयाए महाणईए दाहिणेणं सुहाबहस्स वक्खारपव्ययस्स पच्चित्थिमेणं पच्चित्थिमलवण-समुद्दस्स पुरित्थेमेणं एत्थ णं सिललावई णामं विजए पण्णत्ते।

भावार्थ - उस काल, उस समय इसी जंबू द्वीप में, महाविदेह क्षेत्र में, मंदर पर्वत के पश्चिम में, निषध पर्वत के उत्तर में शीतोदा महानदी के दक्षिण में सुखावह वक्षस्कार पर्वत के पश्चिम में तथा पश्चिम लवण समुद्र के पूर्व में सलिलावती विजय है, ऐसा कहा गया है।

राजधानी वीतशोका एवं राजा बल

(३)

तत्थ णं सलिलावई विजए वीयसोगा णामं रायहाणी पण्णताणवजोयण-वित्थिण्णा जाव पच्चक्खं देवलोगभूया। तीसे णं वीयसोगाए रायहाणीए उत्तर- पुरित्थमे दिसीभाए इंदकुंभे णामं उज्जाणे। तत्थ णं वीयसोगाए रायहाणीए बले णामं राया। तस्सेव धारिणी पामोक्खं देविसहस्सं उवरोहे होत्था।

शब्दार्थ - उवरोहे - अवरोध-अंतःपुर में।

भावार्थ - उस सिललावती विजय में 'वीतशोका' नामक राजधानी कही गई है। वह नौ योजन चौड़ी यावत् बारह योजन लंबी साक्षात् स्वर्ग के सदुश थी।

उस वीतशोका राजधानी के उत्तर पूर्व दिशा भाग में इन्द्रकुंभ नामक उद्यान था।

उस वीतशोका राजधानी का राजा 'बल' था। उसके अंतःपुर में धारिणी आदि एक हजार रानियाँ थीं।

राजपुत्र का जन्म

(8)

तए णं सा धारिणी देवी अण्णया कयाइ सीहं सुमिणे पासित्ताणं पडिबुद्धा जाव महब्बले णामं दारए जाए उम्मुक्क जाव भोगसमत्थे। तए णं तं महब्बलं अम्मापियरो सरिसियाणं कमलसिरीपामोक्खाणं पंचण्हं रायवरकण्णासयाणं एग-दिवसेणं पाणिं गेण्हावेंति। पंच पासायसया पंचसओ दाओ जाव विहरइ।

भावार्थ - धारिणी देवी ने किसी समय सिंह का स्वप्न देखा। वह जगी, यावत् पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम महाबल रेखा गया। शिशु का बचपन व्यतीत हुआ। वह क्रमशः युवा हुआ, भोग समर्थ हुआ। महाबल के माता-पिता ने सदृश रूप एवं वय युक्त कमल श्री आदि पांच सौ उत्तम राजकन्याओं के साथ उसका पाणिग्रहण करवाया। उनके लिए पांच सौ प्रासादों का निर्माण कराया एवं दाय भाग—स्त्री धन के रूप में संपत्ति प्रदान की, यावत् महाबल सांसारिक भोग भोगता हुआ रहने लगा।

राजा बल की प्रवज्या और मुक्ति

(뇏)

थेरागमणं इंदकुंभे उजाणे समोसढा। परिसा णिग्गया। बलो वि णिग्गओ।

www.jainelibrary.org

धम्मं सोच्चा णिसम्म जं णवरं महब्बलं कुमारं रजे ठावेमि जाव एक्कारसंगवी बहूणि वासाणि सामण्णपरियागं पाउणित्ता जेणेव चारुपव्वए मासिएणं भत्तेणं सिद्धे।

भावार्थ - वीतशोका राजधानी में स्थिवर मुनियों का आगमन हुआ। इन्द्रकुंभ उद्यान में वे रुके। दर्शन, वंदन, धर्म-श्रवण हेतु परिषद् आयी। राजा बल भी आया। उसने धर्मोपदेश सुना इत्यादि वर्णन पूर्ववत् है। अंतर इतना है, उसने कुमार महाबल को राज्य भार सौंपा यावत् प्रव्रजित हुआ, ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। बहुत वर्षों पर्यंत श्रमण पर्याय का पालन कर चारुपर्वत पर आया। एक मास का अनशन कर केवलज्ञान प्राप्त किया यावत् सिद्ध हुआ।

राजा महाबल एवं साथी

(६)

तए णं सा कमलिसरी अण्णया कयाइ सीहं सुमिणे (पासित्ताणं पडिबुद्धा) जाव बलभद्दो कुमारो जाओ जुवराया यावि होत्था।

भावार्थ - रानी कमलश्री ने किसी दिन सिंह का स्वप्न देखा, जागी, उठी यावत् पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम 'बलभद्र' रखा गया। वह बड़ा हुआ, युवराज पद पर अभिषिक्त हुआ।

(७)

तस्स णं महब्बलस्स रण्णो इमे छप्पिय बालवयंसगा रायाणो होत्था तंजहा-अयले धरणे पूरणे वसू वेसमणे अभिचंदे सहजायया जाव सहिच्चाए णित्थरियव्वे त्तिकटु अण्णमण्णस्स एयमट्टं पडिसुणेंति।

शब्दार्थ - छप्पिय - छह, णित्थरियव्वे - पार करना चाहिए।

भावार्थ - राजा महाबल के छह बाल मित्र राजा थे। उनके नाम इस प्रकार हैं - अचल, धरण, पूरण, वसु, वैश्रमण, अभिचंद्र। वे साथ ही जन्मे थे-वय में समान थे, यावत् साथ ही बड़े हुए, विवाहित हुए, यावत् सभी कार्यों में उनका साथ रहा। एक बार उनके मन में विचार आया कि हमें चिरंतन साहचर्य की तरह संसार सागर को भी साथ ही पार करना चाहिए। वे परस्पर इस विचार से सहमत हुए।

(5)

तेणं कालेणं तेणं समएणं इंदकुंभे उजाणे थेरा समोसढा। परिसा णिग्गया। महब्बले णं धम्मं सोच्चा० जं णवरं छप्पियबालवयंसए आपुच्छामि बलभदं च कुमारं रज्जे ठावेमि जाव छप्पियबालवयंसए आपुच्छइ। तए णं ते छप्पिय० महब्बलं रायं एवं वयासी-जइ णं देवाणुप्पिया! तुब्भे पव्वयह अम्हं के अण्णे आहारे वा जाव पव्वयामो। तए णं से महब्बले राया ते छप्पिय० एवं वयासी-जइ णं तुब्भे मए सिद्धं जाव पव्वयह तो णं गच्छह जेट्ठे पुत्ते सएहिं २ रज्जेहिं ठावेह पुरिससहस्सवाहिणीओ सीयाओ दुरूढा जाव पाउब्भवंति।

भावार्थ - उस काल, उस समय इंद्रकुंभ उद्यान में स्थिवर भगवंतों का आगमन हुआ। दर्शन, वदन, धर्म-श्रवण हेतु परिषद् आयी। राजा महाबल भी आया। धर्म-श्रवण किया। उसके प्रव्रज्या का भाव उत्पन्न हुआ, इत्यादि वर्णन पूर्ववत् है। इतना अंतर है, राजा ने कहा कि मैं अपने छह बाल सखाओं से पूछ लूँ। राजकुमार बलभद्र को राज्य का भार सौंप दूँ। यावत् उसने अपने छह बाल साथियों को पूछा। तब वे बोले-देवानुप्रिय! यदि तुम दीक्षा ग्रहण करते हो तो हमारे लिए फिर क्या आधार होगा यावत् हम भी तुम्हारे साथ दीक्षा लेंगे। तब राजा महाबल ने अपने छहों बाल साथियों से कहा-देवानुप्रियो! यदि तुम भी मेरे साथ दीक्षा लेने को तैयार हो तो जाओ अपने-अपने ज्येष्ठ पुत्रों को, अपने-अपने राज्यों का दायित्व सौंपो।

पुनश्च, एक हजार पुरुषों द्वारा वहन की जाने वाली शिविकाओं पर आरूढ़ होकर आओ। यावत् वे राजा महाबल द्वारा कथित सभी कार्य संपादित कर उपस्थित हुए।

(3)

र्के तए णं से महब्बले राया छप्पियबालवयंसए पाउब्भूए पासइ, पासित्ता हट्ट तुट्ठे कोडुंबियपुरिसे० बलभइस्स रायाभिसेओ जाव आपुच्छइ।

भावार्थ - राजा महाबल ने अपने छहों बाल साथियों को आया हुआ देखा। वह बहुत ही हर्षित और प्रसन्न हुआ। राजकुमार बलभद्र का राज्याभिषेक किया। उससे प्रव्रज्या लेने के संबंध में पूछा, अनुज्ञा प्राप्त की।

महाबल की साथियों सहित दीशा

(90)

तए णं से महब्बले जाव महया इड्डीए पव्वइए एक्कारसअंगाइं० बहूहिं चउत्थ जाव भावेमाणे विहरइ।

भावार्थ - फिर राजा महाबल ने बड़े ऋद्धि पूर्ण समारोह के साथ प्रव्रज्या स्वीकार की। ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। बहुत से उपवास यावत् अधिकाधिक तपश्चरण पूर्वक आत्मानुभावित हुआ, विहरणशील रहा।

सदृश तपश्चरण

(99)

तए णं तेसिं महब्बल पामोक्खाणं सत्तण्हं अणगाराणं अण्णया कयाइ एगयओ सहियाणं इमेयारूवे मिहो-कहासमुल्लावे समुप्पज्जित्था-जं णं अम्हं देवाणुप्पिया! एगे तवोकम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ तं णं अम्हेहिं सब्वेहिं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए-तिकटु अण्णमण्णस्स एयमट्टं पडिसुणेंति २ ता बहूहिं चउत्थ जाव विहरंति।

भावार्थ - तदनंतर किसी समय महाबल आदि सात अनगार एकत्र हुए। परस्पर इस प्रकार कथा समुल्लाप-वार्तालाप हुआ—हम एक ही प्रकार का तप कर्म करें तथा वैसा करते हुए ही विहरणशील रहें। यों सीचकर उन्होंने यह अभिप्राय आपस में स्वीकार किया तथा उपवास से लेकर क्रमशः उच्चातिउच्च तप करते रहे।

तपश्चरण में छल

(97)

तए णं से महब्बले अणगारे इमेणं कारणेणं इत्थिणामगोयं कम्मं णिव्वत्तेंसु जइ णं ते महब्बलवजा छ अणगारा चउत्थं उवसंपज्जित्ताणं विहरंति तओ से महब्बले अणगारे छट्ठं उवसंपज्जिताणं विहरइ। जइ णं ते महब्बलवज्जा (छ)अणगारा छट्ठं उवसंपज्जिताणं विहरंति तओ से महब्बले अणगारे अट्टमं उवसंपज्जिताणं विहरइ। एवं (अह) अट्टमं तो दसमं अह दसमं तो दुवालसं।

शब्दार्थ - इत्थिणामगोयं - स्त्री नाम गोत्र, णिव्वत्तेंसु - निर्वर्तन-उपार्जन किया।

भावार्थ - तपश्चर्या में छल प्रयोग के परिणाम स्वरूप अनगार महाबल ने स्त्री नाम गोत्र कर्म का उपार्जन किया। जब महाबल के अतिरिक्त अविशिष्ट छह अनगार उपवास स्वीकार करते हुए विहरण शील रहते तब महाबल अनगार बेला करता। जब वे बेला करते तब महाबल तेला करता। इसी प्रकार-उत्तरोत्तर जब वे तेला करते तब वह चार दिन का उपवास करता। जब वे चार दिन का उपवास करते तो वह पांच दिन का उपवास करता। वह, यह सब साथी अनगारों से छिपाकर करता।

(93)

इमेहि य णं वीसाएहि य कारणेहिं आसे विय बहुलीकएहिं तित्थयरणामगोयं कम्मं णिव्वत्तिंसु तंजहा-

अरहंतसिद्धपवयणगुरुथेर बहुस्सुए तवस्सीसुं। वच्छल्लया य तेसिं अभिक्ख णाणोक्ओगे य। दंसणविणए आवस्सए य सीलव्वए णिरइया(रं)रो। खणलवतविच्चयाए वेयावच्चे समाही य। अप्पुव्वणाणगहणे सुयभत्ती पवयणे पभावणया। एएहिं कारणेहिं तित्थयरत्तं लहइ(जीओ) सो उ। शब्दार्थ - तवच्चियाए - तपः-त्यागयुक्त।

भावार्थ - आगे लिखे गए बीस कारणों से, जिनका अनेकजनों ने सेवन किया है, उन्होंने तीर्थंकर नाम गोत्र का उपार्जन किया- १. अरहंत २. सिद्ध ३. श्रुतज्ञानरूप प्रवचन ४. धर्मोपदेष्टा गुरु ५. वय, ज्ञान तथा पर्याय आदि की दृष्टि से स्थिवर ६. बहुश्रुत ७. तपस्वी-इनके प्रति वात्सल्य-भाव रखना-इनका आदर-सत्कार करना ६. प्रतिक्षण ज्ञानोपयोग में उद्यत रहना ६. दर्शन-सम्यक्त्वशुद्धि १०. विनय गुरु एवं ज्ञानी के प्रति विनीत भाव ११. षडावश्यक करना

१२. शीलव्रतों—उत्तरगुण-मूल गुणों का अतिचार रहित पालन १३. प्रतिक्षण धर्मध्यान में लीनता १४. तप—द्वादश तपों का आराधन १४. त्याग—अभयदान-सत्पात्र दान १६. वैयावृत्य—आचार्य आदि की सेवा-सुश्रूषा १७. समाधि १८. अपूर्व—अभिनत्र ज्ञान का अभ्यास, १६. श्रुत-भक्ति २०. प्रवचन-प्रभावना।

(१४)

तए णं ते महब्बलपामोक्खा सत्त अणगारा मासियं भिक्खुपडिमं उवसं-पज्जित्ताणं विहरंति जाव एगराइयं भिक्खूपडिमं उवसंपज्जिता णं विहरंति।

भावार्थ - तदनंतर वे महाबल आदि सातों साधु एक मासिकी प्रथम भिक्षु प्रतिमा यावत् क्रमशः बारहवीं एक रात्रि की भिक्षुप्रतिमा स्वीकार कर साधनाशील रहे।

(৭५)

तए णं ते महब्बल पामोक्खा सत्त अणगारा खुड्डागं सीहणिक्किलयं तवोकम्मं उवसंपज्ञिताणं विहरंति तंजहा-चउत्थं करेति करेता सब्वकामगुणियं पारेंति २ ता छट्ठं करेंति २ ता चउत्थं करेंति २ ता छट्ठं करेंति २ ता उवालसमं करेंति २ ता वसमं करेंति २ ता चोइसमं करेंति २ ता दुवालसमं करेंति २ ता सोलसमं करेंति २ ता चोइसमं करेंति २ ता ओड्डारसमं करेंति २ ता सोलसमं करेंति २ ता चोइसमं करेंति २ ता सोलसमं करेंति २ ता चोइसमं करेंति २ ता चोइसमं करेंति २ ता सोलसमं करेंति २ ता चोइसमं करेंति २ ता सोलसमं करेंति २ ता चोइसमं करेंति २ ता चोइसमं करेंति २ ता ह्वालसमं करेंति २ ता छट्ठं करेंति २ ता छट्ठं करेंति २ ता छट्ठं करेंति २ ता छट्ठं करेंति २ ता चउत्थं करेंति २ ता छट्ठं करेंति २ ता चउत्थं करेंति २ ता चउत्थं करेंति २ ता चउत्थं करेंति २ ता छट्ठं करेंति २ ता चउत्थं करेंति २ ता चउत्थं करेंति २ ता चउत्थं करेंति २ ता छट्ठं करेंति २ ता चउत्थं करेंति सव्वत्थ सव्वकामगुणिएणं पारेंति।

शब्दार्थ - खुड्डागं - क्षुल्लक-लघु, सीहणिकिकलियं - सिंह निष्क्रीड़ित तप विशेष, सब्बकामगुणियं - सर्वकाम गुणित-विगय आदि सभी पदार्थ सहित।

भावार्थ - तदनंतर महाबल आदि सातों मुनि लघुसिंह निष्क्रीड़ित नामक तप स्वीकार कर साधनाशील रहे।

उपर्युक्त तप का विस्तृत वर्णन अन्तकृतदशा सूत्र के आठवें वर्ग के चौथे अध्ययन (कृष्णा सती) में बतलाया गया है। विशेष जिज्ञासुओं को वहाँ पर देखना चाहिए।

विवेचन - जैन धर्म में तप का अत्यधिक महत्व है। दशवैकालिक सूत्र के प्रारंभ में अहिंसा, संयम एवं तप धर्म को उत्कृष्ट मंगल बताया गया है। कर्मों का निर्जरण तप द्वारा बड़ी तीवता से होता है। वहाँ तप केवल बाह्य क्लेश रूप नहीं है। तप का आदि रूप उपवास शब्द ही इस तथ्य का द्योतक है कि तप आत्म-स्वरूप के साक्षात्कार की ओर उन्मुख होना है। 'उप' उपर्सा सामीप्य का द्योतक है। 'वास' का अर्थ निवास होता है। 'उप-आत्मन: समीपे वास: इति उपवासः'। कोई व्यक्ति अन्न-जल आदि का त्याग तो कर दे किन्तु मन में उन्हीं का चिंतन करता रहे तो वह शुद्ध तप नहीं होता। जैन धर्म में तप पर बड़ी ही सूक्ष्म और वैज्ञानिक दृष्टि से चिंतन हुआ है, जो उसके भिन्न-भिन्न प्रकारों से स्पष्ट है। इनमें लघु सिंह निष्क्रीडित, महासिंह निष्क्रीडित, रत्नावली, कनकावली, एकावली आदि मुख्य हैं। यहाँ महाबल अनगार द्वारा लघुसिंह निष्क्रीडित तप करने का उल्लेख हुआ है। सिंह निष्क्रीडित का यह अभिप्राय है कि जिस प्रकार सिंह अपनी स्वाभाविक गति से चलता है तो वह बार-बार पीछे देखता रहता है। यों पीछे देखता हुआ वह आगे बढ़ता है। उसका पीछे देखना सावधानी का द्योतक है। यद्यपि वह वनराज है, परम पराक्रमी है, फिर भी वह आत्म-रक्षण हेतु अत्यंत जागरूक रहता है। सिंह निष्क्रीड़ित तप का यही आशय है कि तप में, उच्च श्रेणी में बढ़ता हुआ साधक पीछे भी देखता जाता है। अर्थात् वह आगे के तप के बढ़ते हुए दिवसों के साथ-साथ यथा क्रम पिछले कम दिवसों के उपवासों को पुनरावर्तित करता रहता है। जैसा इस सूत्र में निर्देशित हुआ है। ऐसा करने से उस द्वारा किया जाता तप एक ऐसी परिपक्वता पा लेता है कि साधक उसमें सर्वथा आवेचल रहता हुआ अपना लक्ष्य पूरा करता है।

महासिंह निष्क्रीड़ित तप इससे और विशिष्ट है। औपपातिक सूत्र में इन तपों का विस्तार से वर्णन हुआ है, जो द्रष्टव्य है।

(१६)

एवं खलु एसा खुड्डागसीहणिक्कीलियस्स तवो कम्मस्स पढमा परिवाडी छहिं मासेहिं सत्तिहि य अहोरत्तेहि य अहासुत्ता जाव आराहिया भवइ। भावार्थ - इस प्रकार यह लघुसिंह निष्क्रीड़ित तप की प्रथम परिपाटी है, जो छह मास और सात दिन-रात में उपर्युक्त सूत्रानुसार यावत् आराधित होती है।

विवेचन - इस तप में भिन्न-भिन्न रूप में किए जाने वाले उपवास के दिनों की गणना करने पर वे १५४ होते हैं तथा बीच-बीच में किए जाने वाले पारणों के तैंतीस दिन होते हैं। यों कुल मिलाकर एक सौ सत्तासी दिनों में लघुसिंह निष्क्रीड़ित तप की पहली परिपाटी संपन्न होती है।

(৭७)

तयाणंतरं दोच्चाए परिवाडीए चउत्थं करेंति णवरं विगइवज्ञं पारेंति। एवं तच्चा वि परिवाडी णवरं पारणए अलेवाडं पारेंति। एवं चउत्थावि परिवाडी णवरं पारणए आयंबिलेण पारेंति।

शब्दार्थ - अलेवाडं - अलेपकृत-लेप (विगय) का अंश मात्र भी जिसमें नहीं होता है। (निर्विकृतिक)।

भावार्थ - तदनंतर दूसरी परिपाटी में साधक एक उपवास करते हैं, आगे पहले की तरह ही तपस्या का क्रम चलता है। इस परिपाटी में अंतर यह है कि तपस्वी इसमें घृत, दूध, दही, तेल एवं शर्करा रूप विगय रहित पारणा करते हैं। तीसरी परिपाटी भी तपःकर्म में इसी प्रकार है। इसमें अंतर यह है कि तपस्वी विगय एवं मेवे तथा हरे शाक से रहित लूखे आहार से पारणा करते हैं।

चौथी परिपाटी भी तपः वर्म में इसी प्रकार है। वहाँ अंतर यह है कि उसमें आयंबिल से पारणा करते हैं।

(95)

तए णं ते महब्बलपामोक्खा सत्त अणगारा खुड्डागं सीहणिक्कीलियं तवोकम्मं दोहिं संवच्छरेहिं अट्ठावीसाए अहोरत्तेहिं अहासुत्तं जाव आणाए आराहेता जेणेव थेरे भगवंते तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता थेरे भगवंते वंदंति, णमंसंति, वंदित्ता, णमंसित्ता एवं वयासी-

भावार्थ - महाबल आदि सातों अनगारों ने लघुसिंह निष्क्रीड़ित तप दो वर्ष अडाइस दिन रात में सूत्रानुसार यावत् तीर्थंकर की आज्ञानुसार आराधित किया। वे स्थविर भगवंतों के पास आए। उन्हें वंदन, नमस्कार कर बोले।

(3P)

इच्छामो णं भंते! महालयं सीहणिक्किलयं (तवोकम्मं०) तहेव जहा खुड्डागं णवरं चोत्तीसइमाओ णियत्तए एगाए परिवाडीए कालो एगेणं संवच्छरेणं छिंहं मासेहिं अट्ठारसिह य अहोरत्तेहिं समप्पेइ। सव्वंपि सीहणिक्किलयं छिंहं वासेहिं दोहि य मासेहिं बारसिह य अहोरत्तेहिं समप्पेइ।

भावार्थ - भगवन्! हम महासिंह निष्क्रीड़ित नामक तप करना चाहते हैं। यह तप लघुसिंह निष्क्रीड़ित तप की तरह ज्ञातव्य है। विशेषता यह है कि इसमें ३४ भक्त-१६ उपवास तक पहुँच कर वापस लौटा जाता है। इसकी एक परिपाटी का काल एक वर्ष ६ मास तथा १८ दिन-रात में संपन्न होता है। सम्पूर्ण महासिंह निष्क्रीड़ित तप ६ वर्ष दो माह और बारह दिन-रात में परिपूर्ण होता है।

(२०)

तए णं ते महब्बल पामोक्खा सत्त अणगारा महालयं सीहणिक्कीलियं अहासुत्तं जाव आराहेता जेणेव थेरे भगवंते तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता थेरे भगवंते वंदंति णमंसंति, वंदित्ता णमंसित्ता बहुणि चउत्थ जाव विहरंति।

भावार्थ - तदनंतर वे महाबल आदि सात अनगार महासिंह निष्क्रीड़ित तप की सूत्रानुसार यावत् आराधना करते हैं। आराधना कर के वे स्थविर भगवंत के पास उपस्थित होते हैं और उन्हें वंदन, नमन करते हैं। वैसा कर वे पुनः उपवास यावत् बेला, तेला आदि बहुविध तप करते हुए विहरणशील रहते हैं।

पंडित मरण

(२१)

तए णं ते महब्बलपामोक्खा सत्त अणगारा तेणं उरालेणं सुक्का भुक्खा जहा खंदओ णवरं थेरे आपुच्छित्ता चारुपव्वयं (सणियं) दुरूहंति जाव दोमासियाए संलेहणो सवीसं भत्तसयं (अणसणं) चउरासीइं वाससयसहस्साइं

सामण्णपरियागं पाउणंति २ त्ता चुलसीइं पुव्वसयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता जयंते विमाणे देवत्ताए उववण्णा।

शब्दार्थ - वाससयसहस्साइं - लाखवर्ष, चुलसीइं - चौरासी।

भावार्थ - तदनंतर उग्र तप के कारण महाबल आदि सातों मुनियों के शरीर सूख गए, भुक्त-अत्यंत क्षीण हो गए, जैसे स्कंदक मुनि का शरीर हुआ था। यहाँ विशेषता यह है कि स्थिवरों को पूछ कर-आज्ञा लेकर उन्होंने चारु पर्वत पर आरोहण किया। चौरासी लाख वर्ष का श्रमण पर्याय-साधु जीवन का पालन किया। चौरासी लाख पूर्वों का समस्त आयुष्य पूर्ण कर वे जयंत विमान में देवरूप में उत्पन्न हुए।

(22)

तत्थ णं अत्थेगइयाणं देवाणं बत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णता। तत्थ णं महब्बल वजाणं छण्हें देवाणं देसूणाइं बत्तीसं सागरोवमाइं ठिई। महब्बलस्स देवस्स पडिपुण्णाइं बत्तीस सागरोवमाइं ठिई प०।

भावार्थ - वहाँ कतिपय देवों की स्थिति बत्तीस सागरोपम बतलाई गई है। महाबल को वर्जित कर-उसके अतिरिक्त अन्य छह देवों की कुछ कम बत्तीस सागरोपम तथा महाबल देव की परिपूर्ण बत्तीस सागरोपम स्थिति कही गई है।

(२३)

तए णं ते महब्बलवजा छप्पिय देवा जयंताओ देवलोगाओ आउक्खएणं जाव अणंतरं चयं चड़त्ता इहेव जंबुदीवे २ भारहे वासे विसुद्धिपड़माइवंसेसु रायकुलेसु पत्तेयं २ कुमारताए पच्चायाया(सी) तंजहा-पडिबुद्धी इक्खागराया, चंदच्छाए अंगराया, संखे कासिराया, रुप्पी कुणालाहिवई, अदीणसत्तू कुरुराया, जियसत्तू पंचालाहिवई।

भावार्थ - अपना देवायुष्य पूर्ण कर महाबल के अतिरिक्त वे छहों देव आयु स्थिति एवं भव-क्षय के अनंतर जयंत देवलोक से च्युत होकर - निकल कर, यहाँ इसी जम्बूद्वीप में, भारतवर्ष में, विशुद्ध पितृ-मातृ वंश वाले राजकुलों में, राजकुमारों के रूप में प्रत्यागत-उत्पन्न हुए। जो इस प्रकार थे -

- 9. प्रतिबुद्धि इक्ष्वाकु वंश का अथवा इक्ष्वाकु देश का राजा हुआ। (इक्ष्वाकु देश को कौशल देश भी कहते हैं, जिसकी राजधानी अयोध्या थी)।
 - २. चन्द्रच्छाय अंगदेश का राजा हुआ, जिसकी राजधानी चम्पा थी।
 - ३. तीसरा शंख काशीदेव का राजा हुआ, जिसकी राजधानी वाणारसी नगरी थी।
 - ४. रुक्मि कुणालदेश का राजा हुआ, जिसकी नगरी श्रावस्ती थी।
 - ५. अदीनशत्रु कुरुदेश का राजा हुआ, जिसकी राजधानी हस्तिनापुर थी।
 - ६. जितशतु पंचाल देश का राजा हुआ, जिसकी राजधानी कांपिल्यपुर थी।

मल्ली का जन्म

(88)

तए णं से महब्बले देवे तिहिं णाणेहिं समगे उच्चट्ठाण(डि)गएसु गहेसु सोमासु दिसासु वितिमिरासु विसुद्धासु जइएसु सउणेसु पयाहिणाणुकूलंसि भूमिसप्यिंसि मारुयंसि पवायंसि णिप्फण्णसस्समेइणीयंसि कालंसि पमुइयपक्कीलिएसु जणएसु अद्धरत्तकालसमयंसि अस्सिणीणक्खत्तेणं जोगमुवागएणं जे से हेमंताणं चउत्थे मासे अट्टमे पक्खे फग्गुणसुद्धे तस्स णं फग्गुण सुद्धस्स चउत्थि पक्खेणं जगंताओ विमाणाओ बत्तीसं सागरोवमिट्टइयाओ अणंतरं चयं चइत्ता इहेव जंबुद्दीवे २ भारहे वासे मिहिलाए रायहाणीए कुंभगस्स रण्णो पभावईए देवीए कुच्छिंसि आहारवक्कंतीए भववक्कंतीए सरीरवक्कंतीए गब्भत्ताए वक्कंते।

शब्दार्थ - उच्चडाण गएसु - उच्च स्थान गत, सोमासु - सौम्य-उत्पात वर्जित, वितिमिरासु - तिमिर वर्जित-अंधकार रहित, विगुद्धासु - झंझावात रजःकणादि रहित, जइएसु-विजयसूचक, सउणेसु - शकुन, पयाहिणाणुकूलंसि - दक्षिण से चलने वाले अनुकूल, भूमिसप्पिंसि - पृथ्वी पर प्रसरणशील पवन, पवायंसि - चलने पर, णिप्फण्ण - निष्पन्न, सस्स - धान्य, मेइणी - पृथ्वी, अस्सिणीणक्खत्तेणं - अश्विनी नक्षत्र द्वारा, चउत्थि पक्खेणं-चतुर्थी तिथि के पश्चात् भाग में-अर्ध रात्रि में, आहारवक्कंतीए - देवगति विषयक आहार को अवक्रांत कर-छोड़ कर, वक्कंते - व्युत्क्रांत - उत्पन्न।

भावार्थ - देव महाबल जो मित, श्रुत, अवधि रूप तीन ज्ञानों से युक्त था, जब ग्रह उच्च स्थानों में स्थित थे। दिशाएं सौम्य, अंधकार रहित और विशुद्ध थीं। शकुन विजयशील थे। दक्षिण की ओर से अनुकूल वायु भूमि पर चल रही थी। पृथ्वी धान्य से संपन्न थी, जनपद-प्रमुदित और उल्लिसित थे। वैसे शुभ समय में, आधी रात के समय जब अश्विनी नक्षत्र का चंद्रमा से योग था, हेमन्त ऋतु के चौथे महीने, आठवें पक्ष फाल्गुन मास के शुक्ल पक्ष में, चतुर्थी तिथि के पश्चाद्वर्ती भाग में-अर्द्धरात्रि के समय अपनी बत्तीस सागरोपम स्थिति के अनंतर जयंत विमान से च्यव कर देव विषयक आहार, शरीर एवं भव का त्याग कर यहीं इसी जंबद्वीप में, भारत वर्ष में, मिथिला नामक राजधानी में, कुंभक राजा की प्रभावती नामक रानी की कोख में वह गर्भ रूप में उत्पन्न हुआ।

('२५)

तं रयणि च णं चोद्दस महासुमिणा वण्णओ। भत्तारकहणं सुमिणपाढगपुच्छा जाव विहरइ।

भावार्थ - उस रात में-अर्द्धरात्रि के समय रानी प्रभावती ने, जब वह न गहरी नींद में थी और न जाग रही थी, चौदह महास्वप्न देखे। अपने पित से उसने स्वप्नों के बारे में कहा। राजा ने स्वप्न पाठकों को बुलाकर स्वप्नों का फल पूछा। उन्होंने बतलाया। रानी बड़ी हर्षित हुई।

रानी प्रभावती का दोहद

(२६)

तए णं तीसे पभावईए देवीए तिण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं इमेयारूवे डोहले पाउब्भूए-धण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ जाओ णं जलथलयभासुरप्पभूएणं दसद्धवण्णेणं मल्लेणं अत्थुयपच्चत्थुयंसि सयणिज्ञंसि सण्णिसण्णाओ संणिवण्णाओ य विहरंति एगं च महं सिरिदामगंडं पाडलमिल्लय चंपगअसोग-पुण्णागणागमरुयगदमणगअणोज्ञकोज्ञय पउरं परम सुहफासदरिसणिज्ञं महया गंधद्धणिं मुयंतं अग्वायमाणीओ डोहलं विणेति।

शब्दार्थ - जलथलयभासुरप्पभूएणं - जल और स्थल में उत्पन्न दीप्तिमय, अत्थुय-

पच्चत्थुयंसि - पुनः-पुनः आच्छादित, सिरिदामगंडं - श्री दामकांड-शोभायुक्त मालाओं का समूह, अणोज्ज - अनवद्य-उत्तम।

भावार्थ - तदनंतर रानी प्रभावती के तीन महीने पूर्ण हो जाने पर ऐसा दोहद उत्पन्न हुआ। वे माताएं धन्य हैं जो जल और स्थल में उत्पन्न, दीप्तिमय पांच वर्णों के फूलों की मालाओं से आच्छादित शय्या पर बैठने का सोने का आनंद लेती हैं। गुलाब, मालती, चंपा, अशोक, पुत्राग, मरुवा, दमनक, उत्तम शत पत्रिका के पुष्पों एवं कोरट के सुन्दर पत्तों से गूंथे हुए अत्यन्त सुखद स्पर्श युक्त, दर्शनीय, सुशोधित मालाओं के समूह से निकलती हुई गहरी सुगंध का आनंद लेती हुई, अपना दोहद पूर्ण करती हैं।

(२७)

तए णं तीसे पभावईए देवीए इमं एयारूवं डोहल पाउब्भूयं पासिता अहासण्णिहिया वाणमंतरा देवा खिप्पामेव जलधलय जाव दसद्धवण्ण मल्लं कुंभगसो य भारगसो य कुंभगस्स रण्णो भवणंसि साहरंति एगं च णं महं सिरि-दामगंडं जाव गंधद्धणिं मुयंतं उवणेंति।

शब्दार्थ - अहासण्णिहिया - यथासित्रिहित-सित्रिकटवर्ती, कुंभगमो - कुंभप्रमाण, भारगासो - भार प्रमाण।

भावार्थ - प्रभावती रानी के इस दोहद के संबंध में जानकर निकटवर्ती वाणव्यंतर देव शीघ्र ही जल एवं स्थल में उत्पन्न, आभामय, पांच वर्णों के कुंभ एवं भार प्रमाण-अत्यधिक मात्रा में राजा कुंभ के महल में लाए। एक बड़ा शोभामय फूलों की मालाओं का समूह-गुलदस्ता-जिससे तेज मधुर सुगंध निकल रही थी लाए।

विवेचन - माता की इच्छा की देवों द्वारा इस प्रकार पूर्ति करना गर्भस्थ तीर्थंकर के असाधारण और सर्वोत्कृष्ट पुण्य का प्रभाव है।

(२८)

तए णं सा पभावई देवी जलथलय जाव मल्लेणं दोहलं विणेइ। तए णं सा पभावई देवी पसत्थदोहला जाव विहरइ। तए णं सा पभावई देवी णवण्हं मासाणं अद्धट्टमाण य रितं दियाणं जे से हेमंताणं पढमे मासे दोच्चे पक्खे मगासिरसुद्धे

www.jainelibrary.org

तस्स णं एक्कारसीए पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि अस्सिणीणक्खत्तेणं उच्चट्टाणगएसु गहेसु जाव पमुइयपक्कीलिएसु जणवएसु आरोयारोयं एगूणवीसइमं तित्थयरं पयाया।

भावार्ध - प्रभावती देवी ने जल एवं स्थल में उत्पन्न देवीप्यमान पुष्पों की मालाओं से अपने दोहद को प्रशस्त, सुंदर रूप में पूर्ण किया। फिर नौ मास साढे सात रात-दिन पूर्ण होने पर, हेमंत के पहले महीने में, दूसरे पक्ष में-मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष में, एकादशी को, अर्द्धरात्रि के समय, जब अश्विनी नक्षत्र का चंद्रमा के साथ योग हो रहा था, सभी ग्रह उच्च स्थानगत थे, यावत् जनपदों में प्रमोद और उल्लास छाया था, रानी ने आरोग्य-पूर्ण स्वास्थ्य पूर्वक, बिना किसी बाधा के, उन्नीसर्वे तीर्थंकर को जन्म दिया।

(38)

तेणं कालेणं तेणं समएणं अहो लोगवत्थव्वाओ अह दिसाकुमारीओ मयहरीयाओ जहा जंबुदीवपण्णत्तीए जम्मणं सब्वं णवरं मिहिलाए कुंभस्स पभावईए देवीए अभिलावो संजोएयव्वो जाव णंदीसरवरे दीवे महिमा।

शब्दार्थ - वत्थव्याओ - वास्तव्य-निवास करने वाली, मयहरीयाओ - महत्तरिकाएँ-गौरवशालिनी, संजोएयव्यो - संयोजयितव्य-जोड लेना चाहिए।

भावार्थ - उस काल, उस समय अधोलोक निवासिनी, गौरवशालिनी आठ दिक्कुमारिकाओं ने जन्म विषयक-सभी करने योग्य शुभ कार्य संपादित किए। इस विषय में जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र में जैसा वर्णन आया है, वैसा यहाँ जोड़ लेना चाहिए। विशेषता यह है कि मिथिला नगरी में राजा कुंभ के भवन में रानी प्रभावती ने कन्या को जन्म दिया, ऐसा वर्णन यहाँ योजनीय है। यावत नंदीश्वर द्वीप में जाकर जन्म-महोत्सव आयोजित किया।

(30)

तया णं कुंभए राया बहूहिं भवणवईहिं ४ तित्थयर (जम्मणाभिसेयं) जायकम्मं जाव णामकरणं जम्हा णं अम्हे इमीए दारियाए माऊए मल्लसय-णीजंसि डोहले विणीए तं होउ णं णामेणं मल्ली जहा महब्बले जाव परिवृद्धि या-सा वर्ह्ड भगवई दिय लोय चुया अणोवमिसरीया। दासीदास परिवुडा परिकिण्णा पीढमदेहिं। असियसिरया सुणयणा बिंबोट्ठी धवलदंतपंतीया। वरकमलकोमलंगी फुल्लुप्पल गंधणीसासा।

शब्दार्थ - दियलोयचुया - स्वर्गलोक से च्युत, अणोवमिसरीया - अनुपम शाभायुक्त, परिकिण्णा - परिकीर्ण-घिरी हुई, असियसिरया - मस्तक पर काले केशों से युक्त, बिंबोडी- बिंब फल के सदृश लाल ओष्ठ युक्त।

भावार्थ - तदनंतर राजा कुंभ ने तथा बहुत से भवनपित आदि देवों ने तीर्थंकर जन्माभिषेक-जात कर्म, यावत् नामकरण संस्कार आदि किए। जब यह कन्या माता के गर्भ में आई थी, तब माता को पुष्पमालाओं की शय्या में शयन करने का दोहद उत्पन्न हुआ था, जो सुसंपन्न हुआ। अतएव इस कन्या का नाम 'मल्ली' रखा जाए, यों सोच कर यह नाम रखा। जिस प्रकार महाबल नाम रखने के संदर्भ में वर्णन आया है, वैसा ही यहाँ ग्राह्य है। यावत् वह कुमारी क्रमशः परिवर्धित होती गई—बड़ी होने लगी।

स्वर्ग लोक से च्युत भगवती मल्ली अनुपम शोभा युक्त थी, अनेक दास-दासियों एवं सहेलियों से घिरी हुई रहती थी। उसके मस्तक के बाल काले थे। उसकी आँखें बहुत सुंदर थीं, ओष्ठ बिंब फल के समान लाल थे। दन्त-पंक्ति धवल-सफेद थी। उत्तम कमल के गर्भ के समान उसका गौरवर्ण था। खिले हुए कमल की सुगंध के सदृश उसके श्वासोच्छ्वास का सौरभ था।

(39)

तए णं सा मल्ली विदेहरायवरकण्णा उम्मुक्कबालभावा जाव रूवेण य जोळ्यणेण य लावण्णेण य अईव २ उक्किट्ठा उक्किट्ठसरीरा जाया यावि होत्था।

शब्दार्थ - उक्किहा - उत्कृष्ट-उत्तम।

भावार्थ - विदेह राज की उस कन्या मल्ली की बाल्यावस्था व्यतीत हुई, यावत् वह अत्यन्त उत्कृष्ट रूप, यौवन तथा लावण्य युक्त हुई। उसका शरीर बहुत ही उत्कृष्ट-उत्तम सौन्दर्य युक्त था।

(32)

तए णं सा मल्ली देसूणवाससयजाया ते छप्पिय रायाणो विउलेणं ओहिणा आभोएमाणी २ विहरइ तंजहा - पडिबुद्धिं जाव जियसत्तुं पंचालाहिवइं। भावार्थ - मल्लीकुमारी कुछ कम सौ वर्ष की हुई। वह अपने विपुल अवधिज्ञान द्वारा प्रतिबुद्धि जैसे, यावत् पंचालाधिपति जितशत्रु-अपने पूर्व जन्म में साथ रहे, उन छह राजाओं को देखती रही।

मोहन-गृह की संरचना (३३)

तए णं सा मल्ली कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी - तुब्भे णं देवाणुप्पिया! असोगवणियाए एगं महं मोहणघरं करेह अणेगखंभसयसण्णिविद्धं। तस्स णं मोहणघरस्स बहुमज्झदेसभाए छ गब्भघरए करेह। तेसि णं गब्भघरगाणं बहुमज्झदेसभाए जालघरयं करेह। तस्स णं जालघरयस्स बहुमज्झदेसभाए मणिपेढियं करेह जाव पच्चिण्णितं।

भावार्थ - तदनन्तर राजकुमारी मल्ली ने सेवकों को बुलाया और उनसे कहा - देवानुप्रियो! तुम अशोक वाटिका में एक विशाल मोहनगृह—अति रमणीय, मोहक भवन का निर्माण कराओ। वह सैंकड़ों खम्भों पर बनवाया जाए। उस भवन के बिलकुल मध्य भाग में छह गर्भ गृह-प्रकोष्ठ या कमरे बनवाओ। उन प्रकोष्ठों के ठीक बीच में एक जाल घर का—चारों ओर जाली लगे हुए प्रकोष्ठ का निर्माण कराओ। उस जाल घर के बीचोंबीच एक रत्न-खचित पीठिका बनवाओ।

सेवकों ने राजकुमारी की आज्ञा के अनुसार सारा निर्माण कार्य करवा कर उन्हें वापस सूचित किया।

(38)

तए णं (सा) मल्ली मणिपेढियाए उविर अप्पणो सिरिसियं सिरत्तयं सिरव्वयं सिरिस्तावण्णजोव्वण गुणोववेयं कणगामइं मत्थयच्छिडं पउमप्पलिपहाणं पिडमं करेइ, करेत्ता जं विउलं असणं ४ आहारेइ तओ मणुण्णाओ असणाओ ४ कल्लाकिलं एगमेगं पिंडं गहाय तीसे कणगामईए मत्थय छिड्डाए जाव पिडमाए मत्थयंसि पिक्खिवमाणी २ विहरइ।

शब्दार्थ - सिरत्तयं - अपने सदृश त्वचा युक्त, सिरव्वयं - अपने समान वय, मत्तयच्छिड्डं - मस्तक में छेद युक्त, कल्लाकिल्लं - हर रोज, पउमप्पलिप्ताणं - लाल और नीले कमल के ढक्कन से युक्त, पिंडं - कवल-ग्रास।

भावार्थ - तदनन्तर राजकुमारी मल्ली ने मणिखचित पीठिका के ऊपर अपने जैसी, अपने सदृश त्वचा, वय, लावण्य, यौवन एवं गुण युक्त स्वर्णमयी प्रतिमा बनवाई, जो मस्तक पर छिद्र युक्त थी, जिस पर लाल और नीले कमल का ढक्कन था। वह विपुल अशन-पान-खाद्य-स्वाद्य आदि का जो आहार करती थी, उस मनोज्ञ आहार का एक कवल उस स्वर्णमयी प्रतिमा के मस्तक के छेद में डलवाती रहती।

(३५)

तए णं तीसे कणगामईए जाव मत्थयछिड्डाए पडिमाए एगमेगंसि पिंडे पक्खिप्पमाणे २ तओ गंधे पाउब्भवइ से जहाणामए अहिमडेइ वा जाव एतो अणिद्वतराए अमणामतराए (चेव)।

शब्दार्थ - अणिष्ठतराए - अनिष्टतर-अत्यंत अनिष्ट, अप्रिय, अहिमडेइ - अहिमृत-मरे हुए साँप के कलेवर, अमणामतराए - अमनोरम-मन को बुरी लगने वाली।

भावार्थ - उस स्वर्णमयी, यावत् मस्तक पर छिद्रयुक्त प्रतिमा में एक-एक ग्रास डालते रहने से उसमें ऐसी दुर्गंध पैदा हुई, जैसी मरे हुए सौंप के कलेवर में होती है, यावत् वह गंध अनिष्टतर-अत्यंत अप्रिय एवं अमनोरम-मन को बुरी लगने वाली थी।

कोसल नरेश प्रतिबुद्धि

(३६)

तेणं कालेणं तेणं समएणं कोसला णामं जणवए। तत्थ णं सागेए णामं णयरे। तस्स णं उत्तरपुरच्छिमे दिसीभाए एत्थ णं (महं एगे) महेगे णागघरए होत्था दिव्वे सच्चे सच्चोवाए संणिहियपाडिहेरे।

शब्दार्थ - सच्चं - कामनापूरक होने के कारण सत्य, सच्चोचाए - सत्यावपात-अभिलाषाओं को सार्थकता देने वाला, संणिहियपाडिहेरे - सन्निहितप्रातिहार्य-देवाधिष्ठित।

www.jainelibrary.org

भावार्थ - उस काल, उस समय कोसल नामक जनपद-देश था। उसमें साकेत नामक नगर था। उसके उत्तरपूर्व दिशा भाग में एक विशाल नागगृह-नागदेवायतन था। जो दिव्य (लोक मान्यतानुसार), सत्य और मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाला था, देवाधिष्ठित था।

(३७)

तत्थ णं सागेए णयरे पडिबुद्धी णामं इक्खागुराया परिवसइ पउमावई देवी सुबुद्धी अमच्चे सामदंड०।

भावार्थ - उस नगर में इक्ष्वाकुवंशीय प्रतिबुद्धि नामक राजा निवास करता था। उसकी रानी का नाम पद्मावती था। सुबुद्धि नामक उसका अमात्य था, जो साम-दाम-दंड-भेद एवं उपप्रदान मूलक नीति का विशेषज्ञ था। यावत् राज्य के उत्तरदायित्व को कुशलता पूर्वक वहन करता था।

(३८)

तए णं पउमावई देवीए अण्णया कयाई णागजण्णए यावि होत्था। तए णं सा पउमावई णागजण्णमुवद्वियं जाणिता जेनेच पडिबुद्धी० करयल जाव एवं वयासी - एवं खलु सामी! मम कल्लं णागजण्णए (यावि) भविस्सइ, तं इच्छामि णं सामी! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी णागजण्णयं गमित्तए, तुब्भेवि णं सामी! मम णागजण्णयंसि समोसरह।

शब्दार्थ - णागजण्णए - नागपूजोत्सव।

भावार्थ - एक समय का प्रसंग है, रानी पद्मावती के यहाँ नागपूजोत्सव का दिन आया। तब रानी (यह जानकर) राजा प्रतिबुद्धि के पास आयी। सादर, सिवनय हाथ जोड़ कर, नमन कर, यावत् राजा को वर्धापित कर, यों बोली - स्वामी! कल नागमहोत्सव मनाऊँगी। अतः मैं आपकी आज्ञा लेकर तदर्थ जाना चाहती हूँ। आप भी इस उत्सव में पधारें, यह मेरी अभ्यर्थना है।

(38)

तए णं पडिबुद्धी पउमावई देवीए एयमट्टं पडिसुणेइ। तए णं पउमावई पडिबुद्धिणा रण्णा अब्भणुण्णाया समाणी हट्टतुट्टा जाव कोडुंबियपुरिसे सदावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी - एवं खलु देवाणुप्पिया! मम कल्लं णागजण्णए भविस्सइ। तं तुब्भे मालागारे सद्दावेह, सद्दावेत्ता एवं वयह।

भावार्थ - राजा प्रतिबुद्धि ने रानी पद्मावती के इस कथन को स्वीकार किया। रानी पद्मावती राजा की अनुज्ञा प्राप्त कर बहुत परितुष्ट हुई। उसने सेवकों को बुलाया और कहा - देवानुप्रियो! कल मेरी ओर से नागपूजा का आयोजन है। तुम मालाकारों को बुलाओ और उन्हें ऐसा कहो।

(80)

एवं खलु पउमावईए देवीए कल्लं णागजण्णए भविस्सइ। तं तुब्भे णं देवाणुप्पिया! जलथलय० दसद्धवण्णं मल्लं णागघरयंसि साहरह एगं च णं महं सिरिदामगंडं उवणेह। तए णं जलथलय० दसद्ध वण्णेणं मल्लेणं णाणाविहभत्तिसुविरइयं हंसमियमयूर-कोंचसारसचक्कवायमयण साल-कोइल-कुलोववेयं ईहामिय जाव भित्तिचित्तं महग्धं महरिहं विउलं पुष्फमंडवं विरहए। तस्स णं बहुमज्झदेसभाए एगं महं सिरिदामगंडं जाव गंधद्धणि मुयंतं उल्लोयंसि ओलंबेह २ ता पउमावइं देविं पडिवालेमाणा २ चिट्टह। तए णं ते कोडुंबिया जाव चिट्टंति।

भावार्थ - सेवकों ने मालाकारों से कहा - रानी पद्मावती की ओर से कल प्रातःकाल नाग पूजोत्सव आयोजित होगा। देवानुप्रियो! तुम लोग जल में, स्थल में उत्पन्न होने वाले, देदीप्यमान, पाँच वर्णों से युक्त फूलों की मालाएँ नागदेवायतन में लाओ। एक बहुत बड़ा शोभामय, पुष्पमालाओं का समूह वहाँ स्थापित करो। फिर उक्तविध पुष्पमालाओं द्वारा तरह-तरह की संरचनाएँ करो। उनमें हंस, मृग, मयूर, क्रौंच, सारस, चक्रवाक, मैना, कोयल आदि पक्षियों के तथा भेड़िया आदि पशुओं के यावत् विविध प्रकार की आकृतियों से युक्त, बहुमूल्य (उत्तम) विशाल, पुष्प मंडप की रचना करो। उसके बीखोंबीच अत्यधिक मधुर गंध छोड़ते हुए, पूर्व में बतलाए गए श्रीदामकाण्ड को ऊँचा लटकाओ। ऐसा कर, रानी पद्मावती की प्रतीक्षा करो।

सेवकों ने आज्ञानुसार सब संपादित किया, यावत् वे रानी की प्रतीक्षा करते हुए वहाँ स्थित हुए।

(84)

तए णं सा पउमावई देवी कल्लं० कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी- खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! सागेवं णयरं सन्भितरबाहिरियं आसिय-सम्मज्जिओवलित्तं जावं पच्चिप्पणंति।

भावार्थ - तत्पश्चात् रानी पद्मावती ने दूसरे दिन सवेरे सेवकों को बुलाया और कहा -शीघ्र ही तुम लोग साकेत नगर में भीतर एवं बाहर पानी का छिड़काव कर, सफाई कराओ तथा लिपाई-पुताई द्वारा उसे सुसज्जित कराओ। यावत् सेवकों ने रानी के आदेशानुसार यह सब कर उसे सूचित किया।

(83)

तए णं सा पउमावई देवी दोच्चंपि कोडुंबिय जाव खिप्पामेव लहुकरणजुत्तं जाव जुत्तामेव (उवहवेह, तए णं तेवि ततेव) उवहवेंति। तए णं सा पउमावई अंतो अंतेउरंसि ण्हाया जाव धम्मियं जाणं दुरूढा।

शब्दार्थ - लहकरणजुत्तं - तेज चलने वाले बैल।

भावार्थ - रानी पद्मावती ने फिर सेवकों को बुलाया और उनसे कहा - शीघ्रगामी वृषभों से युक्त रथ तैयार कराओ, यावत् तैयार कराकर यहाँ उपस्थित करो। सेवक आज्ञानुरूप रथ ले आए। पद्मावती देवी ने अन्तःपुर में स्नान किया। यावत् नागपूजोत्सव-लौकिक धर्म कार्य हेतु लाए गए रथ पर आरूढ हुई।

(83)

तए णं सा पउमावई णियगपरिवाल संपरिवुडा सागेयं णयरं मज्झंमज्झेणं णिज्जइ २ त्ता जेणेव पुक्खरणी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोक्खरणिं ओगाहइ २ त्ता जलमज्जणं जाव परमसुइभूया उल्लपडसाडया जाइं तत्थ उप्पलाइं जाव गेण्हइ २ त्ता जेणेव णागघरए तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

भावार्थ - तदनंतर रानी पद्मावती अपने परिवार से घिरी हुई साकेत नगर के बीच से निकली और पुष्करिणी पर आई। अवगाहन-प्रवेश किया, जलक्रीड़ा की, स्नान किया, मंगलोपचार

किए तथा अत्यंत पवित्र होकर उसने गीले वस्त्र पहने, पुष्करिणी में उत्पन्न विविध प्रकार के कमलों को लिया एवं नागदेवायतन की ओर चली।

(88)

तए णं पउमावई दासचेडीओ बहूओ पुष्फपडलगहत्थगयाओ धूवकडुच्छुग-हत्थगयाओ पिइओ समणुगच्छंति। तए णं पउमावई सब्विद्वीए जेणेव णागघरए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता णागघरयं अणुष्पविसइ २ त्ता लोमहत्थगं जाव धूवं डहइ २ त्ता पडिबुद्धिं (रायं) पडिवालेमाणी २ चिट्टइ।

शब्दार्थ - पडलग - पटलक-टोकरी, कडुच्छुग - धूप जलाने के आधार पात्र-कुड़छे। भावार्थ - रानी पद्मावती की बहुत-सी दासियाँ हाथों में फूलों की टोकरियाँ तथा धूप के आधार पात्र लिए हुए रानी के पीछे-पीछे चली। रानी ऋद्धि-वैभव साज-सज्जा के साथ नागदेवायतन के पास आई। उसमें प्रविष्ट हुई। हाथ में मयूरपिच्छी ली, यावत् धूप जलाया। राजा की प्रतीक्षा करने लगी।

(४५)

तए णं पडिबुद्धी (राया) ण्हाए हत्थिखंधवरगए सकोरंट जावं सेयवरचामराहिं (महया) हयगयरहजोहमहया भडगचडगरपहक्ररेहिं सागेयं णगरं मज्झंमज्झेणं णिमाच्छइ २ ता जेणेव णागघरए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता हत्थिखंधाओ पच्चोरुहइ २ ता आलोए पणामं करेइ, करता पुष्फमंडवं अणुपविसइ २ ता पासइ तं एगं महं सिरिदामगंडं।

शब्दार्थ - चडगर - समूह, पहकरेहिं - रास्ता दिखाने वाले।

भावार्थ - राजा प्रतिबुद्धि ने स्नान किया। उत्तम हाथी पर सवार हुआ। उस पर छत्र धारक कोरंट पुष्पों की मालाओं से युक्त छत्र धारण किए था। उस पर सफेद उत्तम चँवर डुलाए जा रहे थे। वह हाथी, घोड़े, रथ और पैदल रूप चतुरंगिणी सेना, बड़े-बड़े योद्धाओं के समूह तथा मार्गदर्शकों के साथ साकेत नगर के बीच से निकला। नागदेवायतन के निकट आया। हाथी से नीचे उत्तरा। दृष्टि पड़ते ही प्रणाम किया। फूलों के मंडप में प्रविष्ट हुआ। वहाँ एक विशाल श्रीदामकाण्ड-विविध पुष्पों से निर्मित्त विशाल गुच्छक को देखा।

(88)

तए णं पडिबुद्धी तं सिरिदामगंडं सुइरं कालं णिरिक्खइ २ ता त्तंसि सिरिदामगंडंसि जायविम्हए सुबुद्धिं अमच्चं एवं वयासी - तुमं णं देवाणुप्पिया! मम दोच्चेणं बहूणि गामागर जाव सिण्णिवेसाईं आहिंडसि बहूणि राईसर जाव गिहाईं अणुपविससि, तं अत्थि णं तुमे किहंचि एरिसए सिरिदामगंडे दिट्टपुंच्वे जारिसए णं इमे पउमावईए देवीए सिरिदामगंडे?

भावार्थ - राजा प्रतिबुद्धि देर तक उस श्रीदामकाण्ड का निरीक्षण करता रहा। उसे देखकर राजा के मन में बड़ा विस्मय हुआ। उसने अमात्य सुबुद्धि से कहा - देवानुप्रिय! मेरे दूत के रूप में तुम बहुत से गांवों, नगरों, यावत् सिन्नवेशों में घूमते रहे हो। बहुत से राजाओं, वैभवशाली पुरुषों, यावत् विशिष्टजनों के घरों में प्रविष्ट होते रहे हों। क्या तुमने ऐसा श्रीदामकाण्ड कहीं देखा है, जैसा रानी पद्मावती का यह है।

(80)

तए णं सुबुद्धी पिडबुद्धि रायं एवं वयासी - एवं खलु सामी! अहं अण्णया कयाइं तुब्भं दोच्चेणं मिहिलं रायहाणिं गए। तत्थ णं मए कुंभगस्स रण्णो धूयाए पउमावईए देवीए अत्तयाए मल्लीए संवच्छर पिडलेहणगंसि दिव्वे सिरिदामगंडे दिद्वपुव्वे। तस्स णं सिरिदामगंडस्स इमे पउमावईए देवीए सिरिदामगंडे सयसहस्स-इमंपि कलं ण अग्धइ।

शब्दार्थ - संवच्छरपडिलेहणगंसि - जन्मोत्सव के वार्षिक प्रसंग-वर्षगांठ के समय, कलं - अंश।

भावार्थ - तब बुद्धिशील अमात्य प्रतिबुद्धि ने राजा से कहा - स्वामिन्! मैं एक बार आपके दूत कार्य से मिथिला राजधानी गया था, वहाँ मैंने राजा कुंभ की सुता, रानी प्रभावती की आत्मजा, विदेह देश की श्रेष्ठ राजकुमारी मल्ली के वर्षगांठ के महोत्सव के समय, जो, दिव्य श्रीदामकांड देखा था, उसकी तुलना में रानी पद्मावती का यह श्रीदामकांड लाखवें अंश में भी नहीं आता।

(82)

तए णं पडिबुद्धि राया सुबुद्धि अमच्चं एवं वयासी-केरिसिया णं देवाणुप्पिया! मल्ली विदेहरायवरकण्णा जस्स णं संवच्छरपडिलेहणयंसि सिरिदामगंडस्स पउमावईए देवीए सिरिदामगंडे सयसहस्सइमंपि कलं ण अग्घइ? तए णं सुबुद्धी पडिबुद्धि इक्खागरायं एवं वयासी - एवं खलु सामी! मल्ली विदेहरायवरकण्णगा सुपइट्टियकुम्मुण्णयचारुचरणा वण्णओ।

शब्दार्थ - कुम्मुण्णय - कूर्मोन्नत-कछुए के समान उन्नत या ऊँचे उठे हुए।

भावार्थ - यह सुनकर राजा प्रतिबुद्धि ने अपने मंत्री सुबुद्धि से कहा - देवानुप्रिय! विदेह-राज की पुत्री मल्ली कैसी है, जिसके वर्षगांठ के महोत्सव में रचित श्रीदामकांड के समक्ष रानी पद्मावती का यह श्रीदामकांड लाखवें अंश में भी बराबरी नहीं कर सकता।

तब अमात्य सुबुद्धि ने इक्ष्वाकु नरेश प्रतिबुद्धि से कहा - स्वामिन्! विदेहराज की कत्या मल्ली बहुत ही रूपवती है। उसके चरण कछुए की ज्यों उन्नत-उठे हुए हैं, इत्यादि रूप विषयक वर्णन जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र आदि सूत्रों से ग्राह्य है।

(38)

तए णं पडिबुद्धी राया सुबुद्धिस्स अमध्वस्स अंतिए एयमद्वं सोच्चा णिसम्म सिरिदामगंडजणियहासे दूयं सदावेइ, सदावेत्ता एवं वयासी-गच्छाहि णं तुमं देवाणुप्पिया! मिहिलं रायहाणिं, तत्थ णं कुंभगस्स रण्णो धूयं पभावईए देवीए अंतियं मिललं विदेहरायवरकण्णयं मम भारियत्ताए वरेहि जड़ वि य णं सा सयं रज्जसुंका।

भावार्थ - राजा प्रतिबुद्धि मंत्री सुबुद्धि का यह कथन - श्रीदामकांड विषयक वर्णन सुनकर बड़ा हर्षित हुआ, उसने दूत को बुलाया। उसे कहा - देवानुप्रिय! तुम राजधानी मिथिला जाओ। वहाँ राजा कुंभ की सुता, रानी प्रभावती की आत्मजा, विदेहराज कन्या मल्ली को मेरे लिए भार्या के रूप में मांगो, चाहे उसे प्राप्त करने में मेरा सारा राज्य भी क्यों न लग जाए।

विवेचन - इस पाठ से आभास होता है कि प्राचीन काल में कन्या ग्रहण करने के लिए

शुल्क देना पड़ता था। अन्य स्थलों में भी अनेक बार ऐसा ही पाठ आता है। यह कन्या विक्रय का ही एक रूप था जो हमारे समाज में कुछ वर्षों पूर्व तक प्रचलित था। अब पलड़ा पलट गया है और कन्या विक्रय के बदले वर-विक्रय की घृणित प्रथा चल पड़ी है। यों यह एक सामाजिक प्रथा है किन्तु धार्मिक जीवन पर इसका गंभीर प्रभाव पड़ता है। साधारण आय से भी मनुष्य अपनी उदरपूर्ति कर सकता है और तन ढंक सकता है। उसके लिए अनीति और अधर्म से अर्थोपार्जन की आवश्यकता नहीं, किन्तु वर खरीदने अर्थात् विवश होकर दहेज देने के लिए अनीति और अधर्म का आचरण करना पड़ता है। इस प्रकार इस कुप्रथा के कारण अनीति और अधर्म की समाज में वृद्धि होती है।

(Xo)

तए णं से दूए पडिबुद्धिणा रण्णा एवं वुत्ते समाणे हट्टतुट्ठे पडिसुणेइ, पडिसुणेता जेणेव सर्ए गिहे जेणेव चाउग्घंटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चाउग्घंटं आसरहं पडिकप्पावेइ २ ता दुरूढे जाव हयगयमहया-भडचडगरेणं साएयाओ णिग्गच्छइ २ ता जेणेव विदेहजणवए जेणेव मिहिला रायहाणी तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

शब्दार्थ - आसरहे - अश्वरथ, पडिकप्पावेइ - तैयार कराता है, साएयाओ - साकेत

भावार्थ - राजा प्रतिबुद्धि द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर दूत बहुत ही प्रसन्न हुआ। उसने राजा की आज्ञा शिरोधार्य की। वह अपने घर आया, जहाँ चार्तुघंट-चारों ओर घंटाओं से युक्त अश्वरथ था। रथ को तैयार कराया। उस पर आरूढ हुआ, यावत् बहुत से हाथी, घोड़े, योद्धा समूह आदि से घिरा हुआ वह साकेत नगर से रवाना हुआ, विदेह जनपद-मिथिला राजधानी की ओर चलता गया।

विवेचन - श्रीदामकाण्ड की चर्चा में से मल्ली कुमारी के अनुपम सौन्दर्य की बात निकली। राजा को मल्ली कुमारी के प्रति अनुराग उत्पन्न हुआ। इस अनुराग का तात्कालिक निमित्त श्रीदामकाण्ड हो अथवा मल्ली के सौन्दर्य का वर्णन, किन्तु मूल और अन्तरंग कारण पूर्वभव की प्रीति के संस्कार ही समझना चाहिए। मल्ली कुमारी जब महाबल के पूर्वभव में थी तब उनके छह बाल्यमित्रों में इस भव का यह प्रतिबुद्धि राजा भी एक था।

मल्ली कुमारी घटित होने वाली इन सब घटनाओं को पहले से ही अपने अतिशय ज्ञान से जानती थी, इसी कारण उन्होंने अपने अनुरूप प्रतिमा का निर्माण करवाया था और छहों मित्रराजाओं को विरक्त बनाने के लिए विशिष्ट आयोजन किया था।

(५१)

तेणं कालेणं तेणं समएणं अंग णामं जणवए होत्था तत्थ णं चंपा णामं णयरी होत्था। तत्थ णं चंपाए णयरीए चंदच्छाए अंगराया होत्था।

भावार्थ - उस काल, उस समय अंग नामक जनपद था। वहाँ चम्पा नामक नगरी थी। उस चम्पानगरी में अंग देश का राजा चन्द्रच्छाय निवास करता था।

(4?)

तत्थ णं चंपाए णयरीए अरहण्णग पामोक्खा बहवे संजत्ता णावावाणियगा परिवसंति अट्टा जाव अपरिभूया। तए णं से अरहण्णगे समणोवासए यावि होत्था अहिगयजीवाजीवे वण्णओ।

शब्दार्थ - संजत्ता - सांयात्रिक-दूसरे देशों में जाकर व्यापार करने वाले, णावावाणियगा-नौकाओं या पोतों द्वारा व्यापारार्थ दूर-दूर देशों में जाने वाले।

भावार्थ - वहाँ चम्पानगरी में अर्हन्नक आदि नौकाओं या जहाजों द्वारा, दूर-दूर देशों में व्यापार करने वाले श्रेष्ठी रहते थे। वे अत्यंत धनाढ्य एवं वैभवशाली, यावत् अपरिभूत-किसी से भी पराभूत नहीं होने वाले अर्थात् सर्वमान्य थे। उनमें अर्हन्नक श्रेष्ठी श्रमणोपासक भी था। उसे जीव, अजीव आदि तत्त्वों का बोध था। श्रमणोपासक का वर्णन अन्य सूत्रों से ज्ञातव्य है।

(52)

तए णं तेसिं अरहण्णगपामोक्खाणं संजत्ताणावावाणियगाणं अण्णया कयाइ एगयओ सिहयाणं इमेयारूवे मिहोकहा समुल्ला(संला)वे समुप्पिज्जित्था - सेयं खलु अम्हं गणिमं च धिरमं च मेज्जं च पारिच्छेज्जं च भंडगं गहाय लवण-समुद्दं पोयवहणेणं ओगाहित्तए त्तिकट्टु अण्णमण्णं एयमट्टं पडिसुणेंति २ त्ता गणिमं च ४ गेण्हंति २ ता सगडिसागडियं च सज्जेंति २ ता गणिमस्स ४ भंडगस्स सगडिसागडियं भरेंति २ त्ता सोहणंसि तिहिकरणणक्खत्त मुहुत्तंसि विउलं असणं ४ उवक्खडावेंति मित्तणाइ० भोयणवेलाए भुंजावेंति जाव आपुच्छंति २ त्ता सगडीसागडियं जोयंति २ त्ता चंपाए णयरीए मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छंति २ त्ता जेणेव गंभीरए पोयपट्टणे तेणेव उवागच्छंति।

शब्दार्थ - गणिमं - गणना के आधार पर बेचने योग्य नारियल आदि वस्तुएं, धरिमं -तोल कर विक्रय योग्य सामान, मेज्जं - बर्तन विशेष से माप कर या भरकर बेचने योग्य वस्तुएँ, पारिच्छेज्जं - काटकर, फाड़कर बेचने योग्य वस्त्रादि वस्तुएँ, भंडगं- तिजारती सामान।

भावार्थ - अर्हन्नक आदि देशविदेश में क्रय-विक्रय करने वाले श्रेष्ठी किसी समय, एक बार परस्पर मिले। उनके बीच इस प्रकार कथा संलाप-वार्तालाप हुआ - अच्छा हो हम गणिमं, धिरमं, मेय तथा पारिच्छेदय्-अन्न, किराना वस्त्र आदि अनेक प्रकार का तिजारती सामान लेकर लवण समुद्र पर होते हुए यात्रा करें। वे परस्पर आपस में इस विचार से सहमत हुए। उन्होंने उपर्युक्त रूप में सभी प्रकार के तिजारती सामान को गाड़े-गाड़ियों में भरा। उत्तम तिथि, करण, नक्षत्र और मुहूर्त में उन्होंने विपुल मात्रा में अशन, पान, खाद्य एवं स्वाद्य पदार्थ तैयार कराए। मित्रों, स्वजातियों, पारिवारिकों, कुटुम्बियों तथा परिजनों को भोजन कराया। उनसे व्यापारार्थ जाने की अनुमति ली। गाड़े-गाड़ियों को जुतवाया। वे चम्पानगरी के बीचोंबीच होते हुए चले, गंभीर नामक बन्दरगाह पर आये।

विवेचन - गणिम आदि चार प्रकार के भाण्ड की व्याख्या इस प्रकार हैं -

- **१. गणिम -** जिस चीज का गिनती से व्यापार होता है वह गणिम है। जैसे नारियल वगैरह।
- २. धरिम जिस चीज का तराजु में तोल कर व्यवहार अर्थात् लेन देन होता है। जैसे गेहूँ, चाँवल, शक्कर वगैरह।
- 3. मेय जिस चीज का व्यवहार या लेन देन पायली आदि से या हाथ, गज आदि से नाप कर होता है, वह मेय है। जैसे कपड़ा वगैरह। जहाँ पर धान वगैरह पायली आदि से माप कर लिए और दिए जाते हैं। वहाँ पर वे भी मेय हैं।
- ४. परिच्छेद्य गुण की परीक्षा कर जिस चीज का मूल्य स्थिर किया जाता है और बाद में लेन देन होता है, उसे परिच्छेद्य कहते हैं। जैसे जवाहरात।

बढ़िया वस्त्र वगैरह जिनके गुण की परीक्षा प्रधान है, वे भी परिच्छेद्य गिने जाते हैं।
(५४)

उवागच्छित्ता सगडीसागडियं मोयंति २ त्ता पोयवहणं सज्जेंति २ त्ता गणिमस्स जाव चउविहस्स भंडगस्स भरेंति तंदुलाण य समियस्स य तेल्लस्स य घयस्स य गुलस्स य गोरसस्स य उदयस्स य उदयभायणाण य ओसहाण य भेसज्जाण य तणस्स य कट्टस्स य आवरणाण य पहरणाण य अण्णेसिं च बहूणं पोयवहणपाउग्गाणं दव्वाणं पोयवहणं भरेंति २ त्ता सोहणंसि तिहिकरण-णक्खत्तमुहुत्तंसि विउलं असणं ४ उवक्खडावेंति २ मित्तणाइ० आपुच्छंति २ त्ता जेणेव पोयट्ठाणे तेणेव उवागच्छंति।

शब्दार्थ - मोयंति - मुक्त कर देते हैं-छोड़ देते हैं, पोयवहणं - पोत्तवहन-जहाज को, सज्जेंति - सज्जित-तैयार करते हैं, तंदुलाणं - चावल, समियस्स - आटा, घयस्स - घृत, गुलस्स - गुड़, गोरस्स - दही, दूध, उदयभायणाण - पानी के बर्तन, आवरणाण - वस्त्र, पहरणाण - प्रहरण-शस्त्र, पोयवहणपाउग्गाणं - जहाज में रखने योग्य उपयोगी वस्तुएँ।

भावार्थ - उन्होंने बन्दरगाह पर आकर गाडे-गाड़ियों से सामान उतारा, उन्हें मुक्त किया। फिर जहाज को तैयार किया। उसमें गणिम, यावत् चारों प्रकार के तिजारती सामान भरे। चावल, आटा, तेल, घी, गुड़, दूध, दही, पानी के बर्तन, औषधियाँ,दवाइयाँ, तृण-लकड़ी, कपड़े, शस्त्र तथा और भी बहुत सी उपयोगी द्रव्य वस्तुएँ जहाज में रखीं। फिर उत्तम तिथि, करण, नक्षत्र एवं मुहूर्त्त में विपुल अशन, पान, खाद्य एवं स्वाद्य पदार्थ तैयार करवाये। अपने सुहृदों, जातीयजनों, पारिवारिकों, कुटुम्बियों, संबंधियों एवं परिजनों को भोजन कराया। उनसे समुद्रयात्रा पर जाने की अनुमति ली। तत्पश्चात् जहाँ जहाज लगा था, वहाँ आये।

(५५)

तए णं तेसिं अरहण्णग जाव वाणियगाणं जाव परियणो जाव ताहिं इट्टाहिं जाव वग्गूहिं अभिणंदंता य अभिसंथुणमाणा य एवं वयासी - अज्ज! ताय! भाय! माउल! भाइणेज्ज! भगवया समुद्देणं अभिरक्खिज्जमाणा २ चिरं जीवह भदं च भे पुणरिव लद्धहे कयकज्जे अणहसमग्गे णियगं घरं हव्वमागए पासामोत्तिकट्टु ताहिं सोमाहिं णिद्धाहिं दीहाहिं सिप्पिवासाहिं पप्पुयाहिं दिट्ठीहिं णिरीक्खमाणा मुहुत्तमेत्तं संचिद्ठंति।

शब्दार्थ - अज्ज - आर्थ-पितामह, ताय - तात-पिता, माउल - मामा, भाइणेज - भागिनेय-भानजा, अणहसमग्गे - निर्विघ्न, सिप्यवासाहिं - सतृष्ण, पप्पुयाहिं - अश्रुपूर्ण।

भावार्थ - तत्पश्चात् अर्हन्नक आदि व्यापारियों के, यावत् परिजन आदि, यावत् मधुर वाणी द्वारा उनका अभिनन्दन करते हुए अभिस्तवन-प्रशंसा करते हुए इस प्रकार बोले - पितामह, पिता, भाई, मामा, भानेज आप सभी भगवान् समुद्र द्वारा अभिरक्षित होते हुए चिरकाल तक जीएं, आपका मंगल हो। अपना अर्थ-लक्ष्य पूर्ण कर, अपना कार्य सम्पन्न कर, हम आपको निर्विघ्नतया शीघ्र ही वापस घर लौटा हुआ देखें, यह हमारी शुभकामना है। इस प्रकार सौम्य, स्नेह पूर्ण दीर्घ, सतृष्ण एवं अश्रुपूर्ण दृष्टि से वे उन्हें देखते रहे।

(५६)

तओ समाणिएसु पुष्फबलिकम्मेसु दिण्णेसु सरसरत्तचंदणदहरपंचंगुलितलेसु अणुक्खित्तंसि धूवंसि पूइएसु समुद्दवाएसु संसारियासु वलयबाहासु ऊसिएसु सिएसु झयगोसु पडुप्पवाइएसु तूरेसु जइएसु सव्वसउणेसु गहिएसु रायवरसासणेसु महया उक्किट्ठ सीहणाय जाव रवेणं पक्खुभियमहासमुद्दरवभूयं पिव मेइणि करेमाणा एगदिसिं जाव वाणियगा णावं दुरूढा।

शब्दार्थ - दिण्णेसु - दिये जाने पर, संसारियासु - भली-भाँति लगा लिए जाने पर, वलयबाहासु - लंबे-लंबे काठ के बल्ले, ऊसिएसु - उनके ऊँचे उठ जाने पर, सिएसु - श्वेत, झयगोसु - ध्वजाग्र-ध्वजाओं के अग्र भाग, पडुप्पवाइएसु - बजाये जाने पर-मधुर ध्विन होने पर, तूरेसु - वाद्यों के, जइएसु - विजय सूचक, रायवरसासणेसु - राजा के आदेश पत्र।

भावार्थ - पोत में पुष्पों द्वारा मंगलोपचार किया गया। आई लाल चंदन द्वारा पांचों अंगुलियों सहित, हाथ के थापे लगाये गये। धूप जलाया गया। समुद्र की हवाओं की पूजा की गई। जहाज के काठ के बल्लों को यथा स्थान लगाया गया। सफेद ध्वजाएँ ऊँची फहराने लगी। वाद्यों की मधुर ध्विन गूंज उठी। विजय सूचक शकुन हुए। राजा का आदेश-प्रत्र प्राप्त हो चुका था। प्रक्षिभित महासागर की गर्जना के समान अपनी आवाज से मानो पृथ्वी को पूर्ण करते हुए-भरते हुए से, वे व्यापारी एक ओर से पोत पर आरूढ हुए।

(২৬)

तओ पुस्समाणवो वक्कमुदाहु-हं भो! सव्वेसिमवि अत्थसिद्धी उवद्वियाइं कल्लाणाइं पडिहयाइं सव्वपावाइं जुत्तो पूसो विजओ मुहुत्तो अयं देसकालो।

तओ पुस्समाणएणं वक्केमुदाहिए हट्टतुडे कुच्छिधारकण्णधारगब्भिज्ज संजत्ताणावावाणियगा वावारिंसु तं णावं पुण्णुच्छंगं पुण्णमुहिं बंधणेहिंतो मुंचंति।

शब्दार्थ - पुस्समाणवो - मागध-मंगलपाठक, वक्कं - वाक्य-वचन, कुच्छिधार-कुक्षिधार-नौका के पार्श्व में स्थिति संचालकजन, कण्णधार - कर्णधार-नौका को खेने वाले, गब्भिज - गर्भज-अवसरानुरूप अपेक्षित काम करने वाले, नौका के मध्य स्थित जन, वावारिंसु-कार्य-संलग्न हुए, पुण्णुच्छंगं - तिजारती सामान से भरी हुई, पुण्णमुहिं - मंगलोन्मुख, बंधणेहिंतो - बंधनों से।

भावार्थ - फिर मंगलपाठक इस प्रकार वचन बोले - महानुभावो! आप सबका अर्थ-लक्ष्य सिद्ध हो। मंगल उपस्थित हो-प्राप्त हो। समस्त पाप-विघ्न प्रतिहत-नष्ट हों। इस समय पुष्य नक्षत्र चंद्रमा से युक्त है। विजयसंज्ञक मुहूर्त है। देश-काल यात्रा के लिए उपयुक्त-उत्तम है। मंगल-पाठकों द्वारा ये वाक्य बोले जाने पर वे व्यापारी हर्षित एवं परितुष्ट हुए। पार्श्वस्थित संचालकजन, कर्णधार, अन्तवर्ती कर्मकर तथा नौका विणक, सांयात्रिक गण स्व-स्व कार्यों में सावधान हुए।

तिजारती सामान से परिपूर्ण उस मंगलमुखी नौका के बंधन खोल दिए गए।

(২৯)

तए णं सा णावा विमुक्कबंधणा पवणबलसमाहया ऊसियसिया विततपक्खा इव गरुड(ल)जुवई गंगासिललितक्खसोयवेगेहिं संखुब्भमाणी २ उम्मीतरंग माला सहस्साइं समइच्छमाणी २ कडवएहिं अहोरत्तेहिं लवण समुद्दं अणेगाइं जोयणसयाइं ओगाढा। शब्दार्थ - उस्सियसिया - जिसके सफेद पाल खोल दिए गए थे, विततपक्खा - फैले हुए पंखों से युक्त, गरुडजुवई - युवा गरुडी, समइच्छमाणी - लांघती हुई।

भावार्थ - इस प्रकार बंधन खोल दिए जाने पर तेज हवा से समाहत संप्रेरित, खुले हुए सफेद पालों से युक्त नौका ऐसी लगती थी, मानो अपने पंख फैलाए एक गरुड़ युवती हो। गंगा के जल के तीव्र वेगयुक्त प्रवाह से संक्षुब्ध होती हुई टकराती हुई तथा हजारों लहरों और तरंगों को लांघती-लांघती वह नौका आगे लवण समुद्र में चलती-चलती, कतिपय दिन रात के अनंतर सैकड़ों योजन दूर तक चली गई।

(38)

तए णं तेसिं अरहण्णग पामोक्खाणं संजत्ताणावावाणियगाणं लवण समुद्दं अणेगाइं जोयणसयाइं ओगाढाणं समाणाणं बहूइं उप्पाइयसयाइं पाउब्भूयाइं तंजहा।

शब्दार्थ - उप्पाइयसयाइं - सैंकड़ों उत्पात-अपशकुन।

भावार्थ - इस प्रकार अर्हन्नक आदि समुद्री व्यापारियों के लवण समुद्र में सैकड़ों योजन आमे बढ़ जाने पर एकाएक अनेकानेक अपशकुन दृष्टिगोचर होने लगे। वे इस प्रकार थे -

(E0)

अकाले गजिए अकाले विज्जुए अकाले थणियसदे अभिक्खणं २ आगासे देवयाओ णच्चंति, एगं च णं महं पिसायरूवं पासंति।

भावार्थ - असमय में ही गर्जना होने लगी। आकाश में बिजली चमकने लगी। मेघों की गंभीर ध्वनि होने लगी। आकाश में बार-बार देव नाचने लगे। एक बहुत बड़ा पिशाच दिखाई देने लगा।

(६१)

ताल जंघं दिवं गयाहिं बाहाहिं मिसमूसगमहिसकालगं भरियमेहवण्णं लंबोहं णिगायगादंतं णिल्लालियजमलजुयल जीहं आऊसियवयणगंड देसं चीणचि-(पिड)मिढणासियं विगयभुग्गभग्गभुमयं खज्जोयगदित चक्खुरागं उत्तासणगं विसालवच्छं विसालकुच्छिं पलंबकुच्छिं पहिंसिय पयलियपयडियगतं पणच्चमाणं अप्फोडंतं अभिवयंतं अभिगज्जंतं बहुसो २ अट्टहासे विणिम्मुयंतं णीलुप्पल-गवलगुलिय अयसिकुसुमप्पगासं खुरधारं असिं गहाय अभिमुहमावयमाणं पासंति।

शब्दार्थ - ताल जंघं - ताड़ के समान जंघाओं से युक्त, दिवं - आकाश, णिल्लालिय-बाहर निकली हुई, आऊसिय - अन्तः प्रविष्ट-भीतर धंसे हुए, चीण - छोटी, चिपिड -चपटी, विगय - वक्र-टेढ़ी, भुगा - भयावह-डरावनी, भुमयं - भृकुटि, खज्जोयग - खद्योत-जुगनू, उत्तासणगं - त्रासजनक, पयिलय - प्रचिलत-चलते हुए, पयिडयगतं - ढीले अंगों से युक्त, पणच्चमाणं - नाचते हुए।

भावार्थ - उस पिशाच की जंघाएं ताड़ के समान लंबी थीं। उसकी भुजाएं आकाश तक पहुँची थीं। वह काली स्थाही या कज्जल काले चूहे और भैंसे के सदृश काला था। उसका वर्ण जल से भरे बादल के समान था। उसके ओंठ लंबे थे। उसके दांतों के आगे के भाग मुंह से बाहर निकले थे। उसने अपनी एक जैसी दो जिह्वाएं मुंह से बाहर निकाल रखी थीं। उसके गाल अंदर धसे हुए से थे। उसकी नासिका छोटी और चपटी थी। उसकी भृकुटि अत्यंत टेढ़ी और उरावनी थी। उसकी आँखों का रंग जुगनू की तरह चमकता हुआ लाल था, त्रासजनक था। उसका वक्ष स्थल चौड़ा था। कुक्षि विशाल एवं लंबी थी। जब वह हंसता हुआ चलता था तो उसके अंग ढीले प्रतीत होते थे। वह नाचते हुए ऐसा लगता था, मानों आकाश को फोड़ रहा हो। वह गरज रहा था, बार-बार अट्टहास कर रहा था। नीलकमल, भैंसे के सींग, नील, अलसी के पुष्प के समान रंग युक्त तेज धार से युक्त तलवार लिए हुए सामने आते उस पिशाच को नौका में स्थितजनों ने देखा।

(६२)

तए णं ते अरहण्णगवजा संजत्ताणावावाणियगा एगं च णं महं ताल पिसायं (पासंति) पासित्ता तालजंघ दिवंगयाहिं बाहाहिं फुट्टिसरं भमरणिगर वरमासरा-सिमिहिसकालगं भरियमेहवण्णं सुप्पण्हं फालसिरसजीहं लंबोट्टं धवलवट-असिलिइतिक्खिथरपीणकुडिल-दाढोवगूढवयणं विकोसियधारासिजुयल समसिरसतणुयचंचल गलंत रसलोलचवल फुरुफुरेंतणिल्लालियग्गजीहं अवयच्छियमहल्ल विगयबीभच्छलालपगलंतरत्ततालुयं हिंगुलुयसगब्भकंदरबिलं व

अंजणिरिस्स अणि जालुणिलंतवयणं आऊसिय अक्खचम्मउइट्टगंडदेसं चीण चि(पिड)मिढवंकभगणासं रोसागयधमधमेंतमारुयणिडु रखरफ-रुसझुसिरं ओभुगणासियपुडं घाडुक्भडरइयभीसणमुहं उद्धमुहकण्ण सक्कुलियमहंत विगयलोमसंखालगलंबंत चित्यकण्णं पिंगल दिप्पंतलोयणं भिउडितडि(य) णिडालं णरिसरमाल परिणद्धचिंधं विचित्त गोण ससुबद्धपरिकरं अवहोलंतपुप्फुयायंत सप्पविच्छुय गोधुंदरणउलसरडिवरइयविचित्त वेयच्छमालियागं भोगकूरकण्हसप्प-धमधमेंतलंबंतकण्णपूरं मज्जारिसयाललइयखंधं दित्तघूघूयंतघूयकय कुंतल सिरं घंटारवेण भीमं भयंकरं कायर जणिहययफोडणं दित्तमट्टहासं विणिम्मुयंतं वसारुहिरपूयमंसमलमिलण पोच्चडतणुं उत्तासणयं विसालवच्छं पेच्छंता भिण्णणहमुहणयण कण्णवरवघचित्त कत्तीणिवसणं सरसरुहिरगयचम्मवियय-ऊसवियबाहु जुयलं ताहि य खरफरुस असिणिद्ध अणिट्टदित्त असुभ अप्पियकंत वगुहि य तज्जयंतं पासंति।

शब्दार्थ - वरमासरासि - उत्तम उर्द की राशि, सुप्पणहं - सूप के समान चौड़े नखों से युक्त, असिलिंह - अश्लिष्ट-अलग-अलग, विकोसिय - म्यान रहित, रोसागय - क्रोध जित, मारुय - श्वास की हवा, झुसिरं - रंध्र या गुहा, णासियपुडं - नथुने, घाहुब्भड - घात करने में प्रबल, सक्कुलिय - कान का बाह्य भाग, णिडालं - ललाट, गोणस - गोनस जाति के सर्प, अवहोलंत - इधर-उधर चलायमान होते हुए, गोध - गोह, उंदर - चूहा, सरड- गिरिगट, भोगकूर - भयानक फण युक्त, धमधमेंत - फुंकारते हुए, मज्जार - मार्जार- बिलाव, ध्र्य - घुण्यू या उल्लू, पोच्चड तणुं - पुते हुए देह युक्त।

भावार्थ - तदनंतर अर्हत्रक के अतिरिक्त अन्य सांयात्रिक—नौकास्थित व्यापारियों ने एक बहुत बड़े पिशाच को देखा। उसकी जघाएं ताड़ के समान लंबी थी। उसकी बाहुएं आकाश को छूती हुई सी थी। मस्तक फटा हुआ सा था। वह भौरों के समूह, उड़द के ढेर और भैंसे के समान काला था। जल से भरे मेघों के सदृश श्याम वर्ण का था। उसके नाखून सूप के समान थे। उसकी जिह्ना हल के फाल जैसी थी। उसके होठ लम्बे थे। उसका मुख सफेद, गोलाकार अलग-अलग स्थित तीक्ष्ण, स्थिर, मोटी और टेढ़ी दाढ़ों से युक्त था। उसकी दुहरी जीभ के

अग्रभाग म्यान रहित तीक्ष्ण धार युक्त दो तलवारों के समान थे जिनसे लार टपक रही थी। वे रस लोलुप थे, मुंह से बाहर निकले हुए थे। उस पिशाच का मुख फटा हुआ था, जिससे उसका लाल तालु दृष्टिगोचर होता था। वह तालु ऐसा लगता था कि मानो हिंगुल से व्याप्त अंजनगिरी की गुफा हो। उसके गाल सिकुड़े हुए थे। उसकी नाक छोटी, चपटी और टेढ़ी थी। क्रोध के कारण उसके फड़कते हुए नथुनों से निकलती हुई श्वास की हवा बड़ी कर्कश एवं असह्य थी। उसका मुख ऐसा भयानक था मानो प्राणियों के घात के लिए रचित हो। उसके दोनों कान चंचल और लंबे थे। इन पर लम्बे-लम्बे विकृत बाल उगे थे। उसकी आँखें पीली और चमकीली थीं। उसके ललाट पर भूकृटि चढ़ी, जो बिजली सी दृष्टिगत होती थी। उसके पास जो ध्वजा थी, उस पर मनुष्यों के मुण्डों की माला लिपटी हुई थी। उसने तरह-तरह के गोनस जातीय सांपों का कमरबंद लगा रखा था। उसने इधर-उधर सरकते, फुंफकारते काले सर्पों बिच्छुओं, गोहों, चूहों, नेवलों और गिरगिटों की विचित्र प्रकार की माला धारण कर रखी थी। उसने भयावह फण युक्त सर्पों के लम्बे लटकते हुए कुंडल कानों में धारण कर रखे थे। अपने दोनों कंधों पर उसने बिलाव और गीदड़ बिठा रखे थे। उसने मस्तक पर घू-घू घ्वनि करते घुग्धू या उल्लूओं को मुकुट के रूप में धारण कर रखा था। वह घण्टा ध्वनि के कारण बड़ा भयंकर प्रतीत होता था। कायरजनों के हृदय को चीर डालने वाला था। वह विकराल रूप में अड्रहास कर रहा था। उसकी देह चर्बी, रक्त, मवाद मल और मांस से पुती हुई थी। प्राणियों के लिए वह त्रासोत्पादक था। उसका वक्ष स्थल विशाल था। उसने उत्तम व्याघ्र चमडा पहन रखा था, जिसमें व्याघ्र के नख, मुख, आँखें और कान स्पष्ट दृष्टिगोचर होते थे। उसके दोनों ऊपर उठे हाथों पर हाथी का रक्तरंजित चर्म फैला हुआ था। वह पिशाच अपनी अत्यंत कर्कश, करुणाशुन्य, अनिष्ट, उत्तापजनक, सहज ही अशुभ, अप्रिय वाणी से तर्जित करने लगा। नौका स्थितजनों ने इस प्रकार का भीषण पिशाच देखा।

विवेचन - इस सूत्र में वर्णित पिशाच का स्वरूप काव्य शास्त्र की दृष्टि से वीभत्स, अद्भुत और भयानक रस का साक्षात् स्वरूप लिए हुए है। काव्य शास्त्र में वर्णित नौ रसों के अंतर्गत ये तीन रस क्रमशः जुगुप्सा, आश्चर्य और भयरूप स्थायी भावों का विभाव अनुभाव आदि द्वारा परिपोषित, विकसित रूप है। सहदयों के अन्तः करण में स्थायी भाव वासना के रूप में सदैव विद्यमान रहते हैं। जब वे काव्यात्मक संदर्भ में, गद्य या पद्यमयी रचना में अपने परिपोषक भावों से समन्वित होते हैं, तब काव्य मर्मज्ञ सहदयजनों के मन में परम आनंद की

अनुभूति होती है। काव्य की ही यह विशेषता है कि भय, जुगुप्सा आदि भाव, जो भीति या घृणा उत्पन्न करते हैं, आनंदप्रद बन जाते हैं। यहां वर्णित पिशाच के रूप की भयावहता, आश्चर्यकारिता और घृणास्पदता रस रूप में परिणत होकर पाठकों और श्रोताओं के लिए ''रस्यतेति रसः'' के अनुसार आनंदवाहिता प्राप्त कर लेती है। यह प्रसंग एक उत्तम गद्यकाव्य का उदाहरण है। जब पाठक इसका अध्ययन करते हैं तो पिशाच की प्रतिकृति प्रत्यक्ष रूप में उपस्थित सी हो जाती है किन्तु न उससे भय लगता है, न घृणा होती है औ न आश्चर्य ही वरन् सहृदय, हृदयवेध आनंद का अनुभव होता है, जिसे काव्यशास्त्रियों ने ब्रह्मानंद सहोदर कहा है। इस प्रसंग में उपर्युक्त तीनों रसों के अनुरूप अनुप्रास, उपमादि शब्दालंकार एवं अर्थालंकारों का बड़ा ही चामत्कारिक प्रयोग हुआ है, जो प्राकृत भाषा की शब्द संपदा के वैशिष्टय का द्योतक है।

उल्लिखित पाठ में तालिपशाच का दिल दहलाने वाला चित्र अंकित किया गया है। पाठ के प्रारम्भ में 'अरहण्णगवज्ञा संजत्ताणावावाणियगा' पाठ आया है। इसका आशय यह नहीं है कि अर्हन्नक के सिवाय अन्य विणकों ने ही उस पिशाच को देखा। वस्तुतः अर्हन्नक ने भी उसे देखा था, जैसा कि आगे के पाठों से स्पष्ट प्रतीत होता है। किन्तु 'अर्हन्नक के सिवाय' इस वाक्यांश का सम्बन्ध सूत्र संख्या ६३ वें के साथ है। अर्थात् अर्हन्नक के सिवाय अन्य विणकों ने उस भीषणतर संकट के उपस्थित होने पर क्या किया, यह बतलाने के लिए 'अरहण्णगवज्ञा' पद का प्रयोग किया गया है। उस संकट के अवसर पर अर्हन्नक ने क्या किया, यह सूत्र संख्या ६४ वें में प्रदर्शित किया गया है।

अन्य वर्णिकों से अर्हन्नक की भिन्नता दिखलाना सूत्रकार का अभीष्ट है। भिन्नता का कारण है - अर्हन्नक का श्रमणोपासक होना, जैसा कि सूत्र ५३ में प्रकट किया गया है। सच्चे श्रावक में धार्मिक दृढ़ता किस सीमा तक होती है, यह घटना उसका स्पष्ट निदर्शन कराती है।

(६३)

तं तालिपसायरूवं एजमाणं पासंति २ ता भीया संजायभया अण्णमण्णस्स कायं समतुरंगेमाणा २ बहूणं इंदाण य खंदाण य रुद्दसिववेसमणणागाणं भूयाण य जक्खाण य अज्जकोष्टिकिरियाण य बहूणि उवाइय संयाणि ओवाइयमाणा २ चिट्ठंति। शब्दार्थ - समतुरंगेमाणा - सटते हुए, अज्जकोट्टिकिरियाण - दुर्गा आदि रौद्ररूप धारिणी देवियों की, ओवाइयमाणा - मनौतियाँ मनाते हुए।

भावार्थ - ताड़ जैसे लम्बे पिशाच को नौकावर्तीजनों ने आता हुआ देखा। वे अत्यंत भयभीत हो गए। डर के मारे एक दूसरे से सट गए। वे बहुत से इन्द्र, स्कन्द (कार्तिकेय) रूद्र, शिव, वैश्रमण, यक्ष तथा रौद्ररूप धारिणी देवियों को उद्दिष्ट कर, सैकड़ों प्रकार की मनौतियाँ मनाने लगे।

(६४)

तए णं से अरहण्णए समणोवासए तं दिव्वं पिसायरूवं एजमाणं पासइ २ त्ता अभीए अतत्थे अचलिए असंभंते अणाउले अणुव्विगो अभिण्णमुहराग-णयणवण्णे अदीणविमणमाणसे पोयवहणस्स एगदेसंसि वत्थं तेणं भूमिं पमज्जइ २ त्ता ठाणं ठाइ २ ता करयल जाव एवं वयासी-णमोत्थुणं अरहंताणं जाव संपत्ताणं, जइ ण अहं एतो उवसगाओ मुंचामि तो मे कप्पइ पारित्तए, अह णं एत्तो उवसगाओ ण मुंचामि तो मे तहा पच्चक्खाएयव्वे-ति कटु सागारं भत्तं पच्चक्खाइ।

शब्दार्थ - पोयवहणस्स - जहाज के, वत्थंतेण - वस्त्र के छोर से, ठाणं ठाइ -स्थान पर स्थित होकर, उवसग्गओ - उपसर्ग-उपद्रव से।

भावार्थ - श्रमणोपासक अर्हत्रक ने उस पिशाच रूपधारी देव को आते हुए देखा। देखकर वह निर्भय, अत्रस्त अविचलित, असंभ्रांत, अनाकुल एवं अनुद्धिन रहा। उसके मुंह पर और आँखों के वर्ण पर इसका कोई भीतिजनक असर नहीं पड़ा। उसके मन में दीनता या विमनस्कता का भाव उदित नहीं हुआ। उसने जहाज के एक भाग में अपने वस्त्र के छोर से भूमि का प्रमार्जन किया। वहाँ बैठा। हथेलियों पर मस्तक को रख कर हाथ जोड़े हुए वह बोला - अरहंत भगवन्तों को यावत् सिद्धि प्राप्त मुक्तात्माओं को नमस्कार हो। यदि मैं इस उपसर्ग से बच जाऊँ तो मेरे कायोत्सर्ग पारना कल्पता है। यदि मैं इस उपसर्ग से मुक्त नहीं हो पाता हूँ तो मेरा तथारूप प्रत्याख्यान यथावत् रहे। यों कहकर उसने सागार आहार-त्याग-अनशन स्वीकार किया।

(६५)

तए णं से पिसायस्त्वे जेणेव अरहण्णए समणोवासए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहण्णगं एव वयासी-हं भो! अरहण्णगा! अपत्थियपत्थिया! जाव परिविज्ञया! णो खलु कप्पइ तव सीलव्वयगुणवेरमणपच्चक्खाणे पोसहोववासाइं चालित्तए वा एवं खोभेत्तए वा खंडित्तए वा भंजित्तए वा उज्झित्तए वा परिच्चइत्तए वा। तं जइ णं तुमं सीलव्वयं जाव ण परिच्चयिस तो ते अहं एयं पोयवहणं दोहिं अंगुलियाहि गेण्हामि २ त्ता सत्तहतलप्पमाणमेत्ताइं उहं वेहासं उव्विहामि २ त्ता अंतो जलंसि णिच्छोलेमि जेणं तुमं अट्टदुहट्टवसट्टे असमाहिपत्ते अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जिस।

शब्दार्थ - खोभेत्तए - क्षुभित होना, वेहासं - आकाश, णिच्छोलेमि - डुबो देता हूँ। भावार्थ - वह पिशाच, जहाँ अर्हन्नक था, वहाँ आया और उसने उसे यों कहा - अरे अर्हन्नक अप्रार्थित प्रार्थी-मृत्यु को चाहने वाले, शीलव्रत, गुणव्रत से विरंत होना, उन्हें छोड़ना, पौषधोपवास से विचलित-क्षुभित होना, उसे खंडित करना, परित्यक्त करना तुम्हें नहीं कल्पता, फिर भी मैं कहता हूँ यदि तुम शीलव्रत यावत् पौषधोपवास का त्याग नहीं करते हो तो मैं तुम्हारे जहाज को अपनी दो अंगुलियों से पकड़ लूँगा उसे सात-आठ तल-मंजिल प्रमाण ऊपर आकाश में उछाल डालूंगा तथा जल में डूबो दूंगा, जिससे तुम आर्त्तध्यान में होते हुए, दुःख पीड़ित समाधि विरहित होते हुए, अकाल में ही जीवन से हाथ धो बैठोंगे।

(६६)

तए णं से अरहण्णए समणोवासए तं देवं मणसा चेव एवं वयासी-अहं णं देवाणुप्पिया! अरहण्णए णामं समणोवासए अहिगयजीवाजीवे, णो खलु अहं सक्का केणइ देवेण वा जाव णिग्गंथाओ पावयणाओ चालित्तए वा खोभित्तए वा विपरिणामेत्तए वा, तुमं णं जा सद्धा तं करेहि-त्तिकट्ट अभीए जाव अभिण्ण-मृहरागणयणवण्णे अदीणविमणमाणसे णिच्चले णिप्फंदे तुसिणीए धम्मज्झाणोवगए विहरइ।

शब्दार्थ - सद्धा - मनोगत संकल्प, णिप्फंदे - निष्पंद-अचंचल।

भावार्थ - तब श्रमणोपासक अर्हत्रक ने मन ही मन इस पर चिंतन करते हुए कहा - देवानुप्रिय! मैं अर्हत्रक नामक श्रमणोपासक हूँ। मैंने जीव-अजीव आदि तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त किया है। मुझे देव, दानव आदि कोई भी निर्मृत्थ प्रवचन से विचलित, क्षुभित या विपरिणत-विपरीत परिणाम युक्त नहीं कर सकता। तुम्हारे मन में जैसा भी संकल्प हो, तुम करो। यों कहकर वह निर्भय रहा। उसके मुँह पर और आंखों के वर्ण पर कोई भी भय अंकित नहीं हुआ। उसके मन में दीनता और विमनस्कता व्याप्त नहीं हुई। वह निश्चल, अचंचल रहा, चुप रहा, धर्मध्यान में संलग्न रहा।

(६७)

तए णं से दिव्ये पिसायरूवे अरहण्णगं समणोवासगं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वयासी-हं भो अरहण्णगा! जाव अदीण-विमणमाणसे णिच्चले णिप्फंदे तुसिणीए धम्मज्झाणोवगए विहरइ।

भावार्थ - तदन्तर उस पिशाचरूप धारी देव में अर्हन्नक को दूसरी बार एवं तीसरी बार पहले की तरह चुनौती दी किन्तु अर्हन्नक पूर्ववत् अदीन, अविमनस्क, निश्चल और सुस्थिर रहा तथा बिना कुछ बोले, शांत भाव से धर्मध्यान में लीन रहा।

(६८)

तए णं से दिव्वे पिसायरूवे अरहण्णगं धम्मज्झाणोवगयं पासइ, पासिता बलियतरागं आसुरुत्ते तं पोयवहणं दोहिं अंगुलियाहिं गिण्हइ २ ता सत्तद्वतलाइं जाव अरहण्णगं एवं वयासी-हं भो अरहण्णगा! अपत्थियपत्थिया! णो खलु कप्पड तव सीलव्वय तहेव जाव धम्मज्झाणोवगए विहरइ।

शब्दार्थ - बलियतरागं - अत्यधिक, आसुरुत्ते - तत्क्षण क्रोधाविष्ट।

भावार्थ - तत्पश्चात् पिशाचरूपधारी देव ने श्रमणोपासक अर्हत्रक को इस रूप में देखा। वह तत्क्षण अत्यंत क्रोधित हुआ। उसने जहाज को दो अंगुलियों द्वारा उठाया और उसे सात-आठ मंजिल ऊपर ले गया, यावत् अर्हत्रक को यों कहा - अरे मौत को चाहने वाले अर्हन्नक! शीलव्रत, गुणव्रत, त्याग, प्रत्याख्यान और पौषधोपवास से चलित होना तुम्हें नहीं कल्पता यावत् उस द्वारा पहले की तरह दी गई धमकी के बावजूद अर्हत्रक धर्म ध्यान में लीन रहा।

(33)

तए णं से पिसायरूवे अरहण्णगं जाहे णो संचाएइ णिग्गंथाओ० चालित्तए वा० ताहे उवसंते जाव णिव्विण्णे तं पोयवहणं सिणयं २ उविरं जलस्स ठवेइ २ त्ता तं दिव्वं पिसायरूवं पिडसाहरइ २ ता दिव्वं देवरूवं विउव्वइ, विउव्वइत्ता अंतिलक्खपिडवण्णे सिखंखिणियाइं जाव परिहिए अरहण्णगं समणोवासगं एवं वयासी-

शब्दार्थ - संचाएइ - समर्थ होता है, अंतिलक्खपडिवण्णे - अंतिरक्षप्रतिपन्ने -आकाशस्थित, सिखंखिणियाइं - घुंघुरुओं से।

भावार्थ - पिशाच रूपी देव जब अर्हन्नक को निर्ग्रन्थ प्रवचन से - जिनधर्माराधना से चिलत, क्षुभित और विपरिणत नहीं कर सका तो वह उपशांत या निर्विन्न-निर्वेदयुक्त या उपसर्ग से निवृत हो गया। उसने जहाज को धीरे-धीरे पानी के ऊपर रखा। देवलब्धि जनित पिशाच रूप का प्रतिसंहनन किया-उसे वापस अपने आप में समेटा। विक्रिया द्वारा दिव्य देव रूप धारण किया। वह अंतरिक्ष में स्थित हुआ। उस द्वारा धारण किए हुए वस्त्रों में धुंधरु छमछमा रहे थे। वह श्रमणोपासक अर्हन्नक से इस प्रकार बोला।

(90)

हं भो अरहण्णगा! धण्णोऽसि णं तुमं देवाणुप्पिया! जाव जीवियफले जस्स णं तव णिगांथे पावयणे इमेयारूवा पडिवत्ती लद्धा पत्ता अभिसमण्णागया, एवं खलु देवाणुप्पिया! सक्के देविंदे देवराया सोहम्मे कप्पे सोहम्मवर्डिसए विमाणे सभाए सुहम्माए बहूणं देवाणं मज्झगए महया २ सद्देणं एवं आइक्खइ ४ - एवं खलु जंबुद्दीवे २ भारहे वासे चंपाए णयरीए अरहण्णए समणोवासए अभिगय जीवाजीवे णो खलु सक्का केणइ देवेण वा दाणवेण वा ६ णिगांथाओ पावयणाओ चालित्तए वा जाव विपरिणामित्तए वा। तए णं अहं देवाणुप्पिया! सक्कस्स देविंदस्स णो एयमट्टं सद्दृहामि०। तए णं मम इमेयारूवे अज्झत्थिए० गच्छामि णं अरहण्णयस्स अंतियं पाउठभवामि जाणामि ताव अहं अरहण्णगं किं पियधम्मे णो पियधम्मे, दढधम्मे णो दढधम्मे, सीलव्वयगुणे किं चालेइ जाव परिच्चयइ णो परिच्चयइ - ति कट्टु एवं संपेहेमि २ ता ओहिं पउंजामि २ ता देवाणुप्पियं ओहिणा आभोएमि २ ता उत्तरपुरिच्छमं २ उत्तरवेउव्वियं० ताए उक्किट्टाए जाव जेणेव लवण समुद्दे जेणेव देवाणुप्पिया तेणेव उवागच्छामि २ ता देवाणुप्पियाणं उवसग्गं करेमि णो चेव णं देवाणुप्पिया भीया वा० तं जं णं सक्के देविंदे देवराया एवं वयइ सच्चे णं एसमट्टे तं दिट्टे णं देवाणुप्पियाणं इट्टी जाव परक्कमे लद्धे पत्ते अभिसमण्णागए। तं खामेमि णं देवाणुप्पिया! खमंतु मरहंतु णं देवाणुप्पिया! णाइभुजो २ एवं करणयाए - तिकट्टु पंजलिउडे पायवडिए एयमट्टं विणएणं भुजो २ खामेइ २ ता अरहण्णगस्स य दुवे कुंडलजुयले दलयइ २ ता जामेव दिसं पाउन्भूए तामेव दिसं पडिगए।

शब्दार्थ - जीवियफले - जीवन की सफलता, पडिवत्ती - प्रतिपत्ति-सफलता सोहम्मविडिंसए - सौधर्मावतंसक नामक विमान में, संपेहेमि - संप्रेक्षण करता हूँ, ओहिं - अविधज्ञान को, पउंजामि - प्रयुक्त करता हूँ, आभोएमि - जानता हूँ, खमंतु मरहंतु - क्षमा करने में समर्थ।

भावार्थ - अर्हन्नक! तुम धन्य हो। देवानुप्रिय! तुमने अपने जीवन को सफल कर लिया क्योंकि तुम्हें निर्ग्रन्थ प्रवचन में ऐसी दृढ़ श्रद्धा प्राप्त है। देवानुप्रिय! देवराज शक्र ने सौधर्मकल्प नामक विमान में, सुधर्मा सभा में, बहुत से देवों के बीच, बड़ी ही दृढ़ता के साथ ऐसा कहा कि इस जम्बूद्वीप के अंतर्गत, चम्पानगरी में, अर्हन्नक नामक श्रमणोपासक है, जो जीव-अजीव आदि तत्त्वों का वेता है। उसे कोई भी देव या दानव निर्ग्रन्थ प्रवचन से विचलित यावत् विपरिणत नहीं कर सकता।

तब हे देवानुप्रिय! देवेन्द्र शक्र की इस बात पर मुझे विश्वास नहीं हुआ। मैंने मन में यह सोचा कि मैं अर्हत्रक के पास जाऊँ, अपने को प्रकट करूँ और यह जानूं कि क्या अर्हत्रक धर्मप्रिय है या नहीं है? क्या धर्म में उसकी दृढ़ता है अथवा नहीं? क्या वह शीलव्रत, गुणव्रत से विचलित किया जा सकता है यावत् धर्माराधना से हटाया जा सकता है अथवा वैसा नहीं किया जा सकता? यों संप्रेक्षण चिंतन कर मैंने अवधिज्ञान का प्रयोग किया। तुम्हारे विषय में जानकारी प्राप्त की, तदनुसार उत्तरपूर्व दिशा भाग में वैक्रिय समुद्रधात किया। उत्कृष्ट देवगति

द्वारा मैं लवणसमुद्र पर जहाँ तुम थे, आया। आकर तुम्हारे लिए उपसर्ग उत्पन्न किया। तुम न भयभीत हुए और न त्रस्त ही। तब मैंने जाना कि देवराज शक्र ने जो कहा था, वह सत्य है। मैंने उस ऋद्धि और पराक्रम को देखा जो तुम्हें प्राप्त है। देवानुष्रिय! मैं तुम से क्षमा मांगता हूँ। तुम क्षमा करने में समर्थ हो। फिर ऐसा नहीं करूँगा। यों कह कर वह हाथ जोड़ कर अर्हन्नक के पैरों में गिर पड़ा एवं बार-बार क्षमायाचना करने लगा। उसने क्षमायाचना कर अर्हन्नक को दो कुण्डल युगल भेंट किये तथा जिस दिशा से आया था, उसी ओर वापस लौट गया।

(99)

तए णं से अरहण्णए णिरुवसग्गमिति कट्टु पडिमं पारेइ। तए णं ते अरहण्णगपामोक्खा जाव वाणियगा दक्खिणाणुकूलेणं वाएणं जेणेव गंभीरए पोयपट्टणे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता पोयं लंबेंति २ त्ता सगडिसागडं सज्जेंति २ त्ता तं गणिमं च ४ सगडि० संकामेंति २ त्ता सगडी० जोएंति २ त्ता जेणेव मिहिला० तेणेव उवागच्छंति २ त्ता मिहिलाए रायहाणीए बहिया अग्गुज्जाणंसि सगडीसागडं मोएंति २ त्ता मिहिलाए रायहाणीए तं महत्थं महग्धं महरिहं विउलं रायारिहं पाहुडं कुंडल जुयलं च गेण्हंति २ त्ता मिहिलाए रायहाणीए अणुप्पविसंति २ त्ता जेणेव कुंभए राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयल जाव महत्थं दिव्वकुंडल जुयलं उवणेंति।

शब्दार्थ - णिरुवसग्गं - उपसर्ग रहित, पोयपट्टणे - बंदरगाह, गणिमं धरिमं मेज्जं परिच्छेजं - गणना द्वारा, तराजू द्वारा, गज आदि के माप द्वारा तथा परिच्छेद्य (विभाजन) द्वारा बेचने योग्य, संकामेंति - रखते हैं, अग्गुज्जाणंसि - श्रेष्ठ उद्यान में।

भावार्थ - तदुपरांत जब अर्हत्रक ने जाना कि उपसर्ग मिट गया है तो उसने प्रतिमा को पारा। फिर अर्हत्रक आदि व्यापारी जब दक्षिण की अनुकूल हवा चलने लगी तो वे वहाँ से आगे बढ़ते हुए गंभीर नामक बंदरगाह पर आए। वहाँ आकर अपने जहाज को रोका-लंगर डाल दिए। फिर वे मिथिला नगरी की ओर चले तथा राजधानी मिथिला के बहिर्वर्ती श्रेष्ठ उद्यान में अपने गाड़े-गाड़ियों को खोला। फिर बहुमूल्य राजा के योग्य विपुल, महत्त्वपूर्ण भेंट तथा कुंडल युगल को लिया। लेकर राजधानी मिथिला में प्रविष्ट हुए। राजा कुंभ के समक्ष उपस्थित हुए। हाथ जोड़ कर मस्तक नवा कर वे महत्त्वपूर्ण रत्नादि उपहार तथा एक कुण्डल युगल राजा को भेंट किए।

(७२)

तए णं कुंभए राया तेसिं संजत्तगाणं जाव पडिच्छड़ २ त्ता मिललं विदेहरायवर-कण्णं सद्दावेड़, सद्दावेत्ता तं दिव्वं कुंडल जुयलं मल्लीए विदेहरायवरकण्णगाए ि पिणद्धेड़, पिणद्धेता पडिविसजेड़।

शब्दार्थ - पडिच्छइ - ग्रहण करता है, पिणेद्धेता - पहनाता है।

भावार्थ - विदेह राजा कुंभ ने उन समुद्री व्यापारियों द्वारा दी गई भेंट और कुंडल स्वीकार किए। फिर अपनी राजकुमारी मल्ली को बुलाया। बुलाकर उसे कुंडल पहना दिए और वापस भेज दिया।

(\$0)

तए णं से कुंभए राया ते अरहण्णगपामोक्खे जाव वाणियगे विपुलेणं असण वत्थगंधमल्लालंकारेणं जाव उस्सुक्कं वियरइ २ ता रायमगमोगाढेइ आवासे वियरइ २ ता पडिविसजेइ।

शब्दार्थ - उस्सुक्कं वियरइ - शुल्क माफ कर देता है, रायमगमोगाढेइ - राजमार्ग पर स्थित।

भावार्थ - राजा कुंभ ने अर्हन्नक आदि व्यापारियों का बहुत प्रकार के अशन-पान-खाद्य-स्वाद्य तथा वस्त्र सुगंधित पदार्थ, माला एवं आभूषण आदि द्वारा सत्कार किया। उनका शुल्क माफ कर दिया। उन्हें राजमार्ग के समीपवर्ती आवास स्थान दिया तथा अपने यहाँ से विदा किया।

(৬४)

तए णं अरहण्णगसंजत्तमा जेणेव रायमग्गमोगाढे आवासे तेणेव उवागच्छंति उवागच्छिता भंडववहरणं करेंति २ त्ता पडिभंडं गेण्हंति २ त्ता सगडी० भरेंति जेणेव गंभीरए पोयपट्टणे तेणेव उवागच्छंति २ त्ता पोयवहणं सर्जेति २ त्ता भंडं संकामेंति दक्खिणाणु० जेणेव चंपापोयट्टाणे तेणेव पोयं लंबेंति २ त्ता सगडी० सर्जेति २ ता तं गणिमं ४ सगडी० संकामेंति जाव महत्थं पाहुडं दिव्वं च

कुंडलजुयलं गेण्हंति २ त्ता जेणेव चंदच्छाए अंगराया तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता तं महत्थं जाव उवणेंति।

शब्दार्थ - भंडववहरणं - साथ लाए विक्रय माल का सौदा, पिडिभंडं - बदले में वहाँ प्राप्य अन्य माल की खरीद।

भावार्थ - अर्हन्नक आदि व्यापारी राजमार्ग पर स्थित आवास में आए। वहाँ उहरे। अपने साथ लाए हुए माल का सौदा बिक्री करने लगे। वैसा कर उन्होंने वहाँ प्राप्य माल खरीदा और गाड़े-गाड़ियों में भरा। गंभीर संज्ञक बंदरगाह पर आए। अपने जहाज को सिज्जित किया, तैयार किया उस पर खरीदा हुआ माल लादा। जब दक्षिणोन्मुखी अनुकूल वायु चलने लगी तब वे जहाज द्वारा आगे बढ़ते-बढ़ते चंपा नामक बंदरगाह पर आए। वहाँ अपने जहाज को रोका, लंगर डाले। गाड़े गाड़ी तैयार करवाए और गणिम, धरिम, मेय एवं परिच्छेद्य सामग्री को गाड़े-गाड़ियों में लदवाया यावत् महत्त्वपूर्ण उपहार तथा दिव्य कुंडल युगल लेकर अंग देश के राजा चन्द्रच्छाय के पास उपस्थित हुए और उन्हें उपहार अर्पित कए।

(৬५)

तए णं चंदच्छाए अंगराया तं दिव्वं महत्थं च कुंडलजुयलं पडिच्छइ २ ता ते अरहण्णगपामोक्खे एवं वयासी-तुब्भे णं देवाणुप्पिया! बहूणि गामागर जाव आहिंडह लवण समुदं च अभिक्खणं २ पोयवहणेहिं ओगाहेह, तं अत्थियाइं भे केइ कहिंचि अच्छेरए दिहुपुव्वे?

शब्दार्थ - अत्थियाइं - अस्तिचापि-यदि ऐसा हो, अच्छेरए - आश्चर्य।

भाषार्थ - अंगराज चन्द्रच्छाय ने वह दिव्य महत्त्वपूर्ण उपहार और कुंडल युगल स्वीकार किया तथा अर्हत्रक आदि व्यापारियों से बोला-देवानुप्रियो! आप भिन्न-भिन्न ग्राम, नगर यावत् सन्निवेश आदि में भ्रमण करते रहे हैं। आपने बार-बार जहाज द्वारा लवण समुद्र पर यात्राएं की हैं। आपने क्या कभी किसी स्थान पर कोई आश्चर्य देखा है?

(७६)

तए णं ते अरहण्णगपामोक्खा चंदच्छायं अंगरायं एवं वयासी-एवं खलु सामी! अम्हे इहेव चंपाए णयरीए अरहण्णगपामोक्खा बहवे संजत्तगाणावा- वाणियगा परिवसामो। तए णं अम्हे अण्णया कयाइ गणिमं च ४ तहेव अहीण-(म)अइरित्तं जाव कुंभगस्स रण्णो उवणेमो। तए णं से कुंभए मल्लीए विदेहरायवर कण्णाए तं दिव्वं कुंडलजुयलं पिणद्धेइ २ ता पडिविसजेइ। तं एस णं सामी! अम्हेहिं कुंभगराय भवणंसि मल्ली विदेहरायवरकण्णा अच्छेरए दिट्ठे। तं णो खलु अण्णा कावि तारिसिया देवकण्णा वा जाव जारिसिया णं मल्ली विदेहरायवरकण्णा।

शब्दार्थ - अहीणं - न्यूनता रहित, अइरित्तं - अधिकता रहित, तारिसिया - तादृशी-वैसी, जारिसिया - यादृशी-जैसी।

भावार्थ - अर्हन्नक आदि ने अंगराज चंद्रछाय से निवेदन किया - स्वामी! हम नौकाओं - जहाजों द्वारा समुद्र पार व्यापार करने वाले व्यवसायी यहीं चम्पा नगरी में निवास करते हैं। एक समय हम गणिम, धरिम, मेय, परिच्छेद्य के रूप में बहुविध विक्रेय सामग्री के साथ समुद्र पार व्यापार यात्रा पर गए। यहाँ पहले की तरह न कम न अधिक पाठ ग्राह्य है। (यावत् राजा कुंभ को हमने उपहार एवं एक कुंडल युगल भेंट किया।) विदेहराज कुंभ ने राजकुमारी मल्ली को दिव्य कुंडलों की जोड़ी पहनाई। स्वामी! हमने राजा कुंभ के प्रासाद में राजकुमारी मल्ली के रूप में आश्चर्य देखा। कोई देवकन्या यावत् अन्य कोई भी राजकन्या वैसी नहीं है, जैसी राजकुमारी मल्ली है।

(७७)

तए णं चंदच्छाए (ते) अरहण्णगपामोक्खे सक्कारेड सम्माणेड स०२त्ता (उस्सुंकं वियरड़) पडिविसज्जेड़। तए णं चंदच्छाए वाणियग-जणिय-हासे दूयं सद्दावेड जाव जड़ वि य णं सा सयं रज्जसुक्का। तए णं से दूए हट्ड जाव पहारेत्थ गमणाए।

शब्दार्थ - वाणियग-जिणय-हासे - विणकों के कथन से हर्षित, सयं - स्वयं, रजासुक्का - राज्य भी मूल्य हो।

भावार्थ - राजा चन्द्रच्छाय ने अर्हन्नक आदि का सत्कार एवं सम्मान किया, उन्हें विदा किया। विषकों का मल्ली विषयक कथन सुन कर राजा के मन में बहुत हर्ष हुआ। उसने अपने दूत को बुलाया यावत् उसे कहा-राजकुमारी मल्ली को प्राप्त करना है। चाहे मुझे अपना राज्य भी उसके मूल्य में चुकाना पड़े।

कुणालाधिपति रावमी

(७८)

तेणं कालेणं तेणं समएणं कुणाला णामं जणवए होत्था। तत्थ णं सावत्थी णामं णयरी होत्था। तत्थ णं रुप्पी कुणालाहिवई णामं राया होत्था। तस्स णं रुप्पिस्स धूया धारिणीए देवीए अत्तया सुबाहु णामं दारिया होत्था सुकुमाल जाव रूवेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य उक्किट्टा उक्किट्टसरीरा जाया यावि होत्था। तीसे णं सुबाहुए दारियाए अण्णया चाउम्मासियमज्जणए जाए यावि होत्था।

शब्दार्थ - रुप्पी - रुक्मी, धूया - पुत्री, दारिया - कन्या।

भावार्थ - उस काल, उस समय कुणाल नामक जनपद था। श्रावस्ती नगरी उसकी राजधानी थी। कुणाल के राजा का नाम रुक्मी था। रुक्मी के धारिणी नामक रानी की कोख से उत्पन्न सुबाहु नामक पुत्री थी। वह सौकुमार्य आदि गुणों से युक्त थी। रूप-यौवन एवं लावण्य में वह उत्कृष्ट थी। उसकी देह यष्टि सौन्दर्य पूर्ण थी। उस सुबाहुकुमारी के चातुर्मासिक स्नान महोत्सव का एक प्रसंग आया।

(30)

तए णं से रुप्पी कुणालाहिवई सुबाहुए दारियाए चाउम्मासिय मज्जणयं उविद्वयं जाणइ जाणइत्ता कोडुंबिय पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया! सुबाहुए दारियाए कल्लं चाउम्मासियमज्जणए भविस्सइ। तं कल्लं तुब्भे णं रायमग्गमोगाढंसि (चउक्कंसि) मंडवंसि जलथलयदसद्ध वण्णमल्लं साहरेइ जाव सिरिदामगंडे ओलइंति।

भावार्थ - कुणालाधिपति राजा रुक्मी को सुबाहुकुमारी के चातुर्मासिक स्नान महोत्सव का ध्यान आया। तब उसने राज प्रासाद के निजी सेवकों को बुलाया और कहा - देवानुप्रियो! कल प्रातःकाल सुबाहुकुमारी का चातुर्मासिक स्नान महोत्सव होगा। इसलिए तुम राजमार्ग से सटे हुए चौक में फूलों का मण्डप तैयार करो। जल और स्थल में होने वाले पाँच रंग के फूलों को लाओ यावत् उन्हें सुंदर गुलदस्ते के रूप में मंडप के मध्य लटकाओ।

(50)

तए णं से रुप्पी कुणालाहिवई सुवण्णगारसेणि सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी-खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! रायमगमोगाढंसि पुष्फमंडवंसि णाणाविहपंच वण्णेहिं तंदुलेहिं णयरं आलिहह तस्स बहुमज्झ प्रभाए पट्टयं रएह जाव पच्चिप्पणंति।

शब्दार्थ - सुवण्णगारसेणिं - स्वर्णकारवृन्द, तंदुलेहिं - चावलीं द्वारा, आलिहह -आलेखन या चित्रण करो, पट्टयं - पाट-बाजोट, रएह - रचना करो।

भावार्थ - कुणालाधिपति रुक्मी ने स्वर्णकारों को बुलाया और कहा - देवानुप्रियो! शीघ्र ही राजमार्ग में अवस्थित पुष्प मण्डप में नाना प्रकार के पाँच वर्णों के चावलों से नगर का आलेखन चित्रण करो। उसके बीचोंबीच एक पाट बनाओ यावत् स्वर्णकारों ने वैसा कर राजा को ज्ञापित किया।

(59)

तए णं से रुप्पी कुणालाहिवई हित्थेखंधवरगए चाउरंगिणीए सेणाए महया भडचडगर जाव अंतेउरपिरयालसंपिरवुडे सुबाहुं दारियं पुरओ कट्टु जेणेव रायमगो जेणेव पुष्फमंडवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता हित्थिखंधाओ पच्चोरुहइ २ त्ता पुष्फमंडवे अणुष्पविसइ २ ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे।

भावार्थ - तदनंतर कुणालाधिपति उत्तम हाथी पर सवार हुआ। चतुरंगिणी सेना तथा अनेक योद्धाओं तथा अतःपुरवर्ती परिजनों से घिरा हुआ, सुबाहुकुमारी के पीछे-पीछे राजमार्ग में निर्मित पुष्प मण्डप के निकट आया। हाथी से नीचे उतरा। पुष्पमण्डप में प्रविष्ट हुआ। पूर्व दिशा की ओर मुख कर, उत्तम सिंहासन पर आसीन हुआ।

(52)

तए णं ताओ अंतेउरियाओ सुबाहुं दारियं पट्टयंसि दुरूहेंति २ त्ता सेयापीयएहिं कलसेहिं ण्हाणेंति २ त्ता सव्वालंकार विभूसियं करेंति २ त्ता पिउणो पायंवंदिउं उवणेंति। तए णं सुबाहू दारिया जेणेव रुप्पी राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता

पायग्गहणं करेइ। तए णं से रुप्पी राया सुबाहुं दारियं अंके णिवेसेइ २ त्ता सुबाहुए दारियाए रूवेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य जाव विम्हिए (जायविम्हए) विरस्थरं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी - तुमं णं देवाणुप्पिया! मम दोच्चेणं बहूणि गामागरणगरिगहाणि अणुप्पविससि, तं अत्थियाइं ते कस्सइ रण्णो वा ईसरस्स वा किहंचि एयारिसए मज्जणए दिद्वपुठ्वे जारिसए णं इमीसे सुबाहुदारियाए मज्जणए।

शब्दार्थ - अंतेउरियाओ - अन्तःपुरवासिनी वनिताएं, सेयापीयएहिं - श्वेत एवं पीत-चाँदी, सोने के, जायविम्हए - आश्चर्यान्वित।

भावार्थ - फिर अंतःपुरवासिनी विनताओं ने सुबाहुकुमारी को बाजोट पर बिठाया। चांदी-सोने के सफेद-पीले कलशों द्वारा उसे स्नान कराया। सब प्रकार के आभूषणों से उसे विभूषित किया एवं पिता के चरणों में वंदना करने हेतु वे उसे लाई। राजा रुक्मी ने सुबाहुकुमारी को अपनी गोद में बिठाया उसके रूप, यौवन और लावण्य को देखकर वह विस्मित हुआ। उसने अन्तःपुर के प्रहरी वर्षधर-नपुंसक को बुलाया और कहा - देवानुप्रिय! तुम मेरे दौत्य कार्य से अनेक गाँव, नगर, गृह आदि में जाते रहे हो। क्या किसी राजा या ऐश्वर्यशाली पुरुष के कहीं ऐसा स्नान महोत्सव देखा है, जैसा यहाँ सुबाहुकुमारी का आयोजित हुआ है।

(52)

तए णं से वित्सधरे रुप्पिं करयल जाव एवं वयासी-एवं खलु सामी! अहं अण्णया तुब्भेणं दोच्चेणं मिहिलं गए, तत्थ णं मए कुंभगस्स रण्णो धूयाए पभावईए देवीए अत्तयाए मल्लीए विदेहरायवरकण्णगाए मज्जणए दिहे तस्स णं मज्जणगस्स इमे सुबाहुएदारियाए मज्जणए सयसहस्सइमंपि कलं ण अग्धेइ।

भावार्थ - तब वर्षधर ने राजा रुक्मी को हाथ जोड़ कर मस्तक झुकाकर इस प्रकार कहा स्वामी किसी समय मैं आपके दूत कार्य से मिथिला गया। वहाँ मैंने राजा कुंभ की पुत्री, महारानी प्रभावती की आत्मजा, विदेह राजकुमारी मल्ली का स्नान महोत्सव देखा। उसके समक्ष सुबाहुकुमारी का यह स्नानोत्सव एक लाखवें अंश में भी नहीं आता।

(८४)

तए णं से रुप्पी राया वरिसधरस्स अंतिए एयमट्टं सोच्चा णिसम्म (सेसं तहेव) मज्जणगजणियहासे दूयं सद्दावेइ जाव जेणेव मिहिला णयरी तेणेव पहारेत्थ गमणाए (३)।

भावार्थ - राजा रुक्मी ने वर्षधर से यह सुनकर दूत को बुलाया (स्नानोत्सव एवं तज्जनित हास आदि का वर्णन पूर्ववत् योजनीय है) दूत से मिथिला नगरी जाने को कहा यावत् वह मिथिला की ओर रवाना हो गया।

काशी नरेश शंख

(5X)

तेणं कालेणं तेणं समएणं कासी णामं जणवए होत्था। तत्थ णं वाणारसी णामं णयरी होत्था। तत्थ णं संखे णामं कासीराया होत्था।

भावार्थ - उस काल, उस समय काशी नामक जनपद था। उसमें वाराणसी नामक नगरी थी। काशी जनपद का शंख नामक राजा था।

(५६) ।

तए णं तीसे मल्लीए वि० अण्णया कयाइं तस्स दिव्वस्स कुंडल जुयलस्स संधी विसंघडिए यावि होत्था। तए णं से कुंभए राया सुवण्णागार सेणिं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी-तुब्भे णं देवाणुप्पिया! इमस्स दिवस्स कुंडल जुयस्स संधिं संघाडेह।

भावार्थ - एक समय का प्रसंग है, विदेहराज की श्रेष्ठ कन्या मल्ली के दिव्य कुण्डल की संधि विसंघटित हो गई-जोड़ टूट गया। राजा कुंभ ने स्वर्णकारों को बुलाया। उनसे कहा-देवानुप्रियो! इस दिव्य कुंडल युगल की संधि के जोड़ लगा दो।

(59)

तए णं सा सुवण्णगारसेणी एयमट्टं तहत्ति पडिसुणेइ २ त्ता तं दिव्वं

कुंडलजुयलं गेण्हइ २ ता जेणेव सुवण्णगारिभसियाओ तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता सुवण्णगारिभसियासु णिवेसेइ २ ता बहूहिं आएहि य जाव परिणामेमाणा इच्छंति तस्स दिव्वस्स कुंडलजुयलस्स संधिं घडित्तए णो चेव णं संचाएइ संघडित्तए।

शब्दार्थ - सुवण्णगार भिसियाओ - स्वर्णकारों की कार्यशाला, आएहि - साधनों द्वारा, परिणामेमाणा - पूर्व रूप में परिणत करने हेतु प्रयत्न करते हुए।

भावार्थ - स्वर्णकारों ने यह स्वीकार किया। उन्होंने दिव्य कुण्डलों को ग्रहण किया और अपनी कार्यशाला में आए। वहाँ उसे पूर्व रूप में लाने हेतु अनेक प्रकार के उपाय किए किन्तु कुण्डल युगल की संधि को घटित नहीं कर सके, उसे जोड़ नहीं पाए।

(55)

तए णं सा सुवण्णगारसेणी जेणेव कुंभए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल जाव वद्धावेता एवं वयासी-एवं खलु सामी! अज तुब्भे अम्हे सद्दावेह जाव संधि संघाडेता एयमाणितयं पच्चिप्पणह। तए णं अम्हे तं दिव्वं कुंडलजुयलं गेण्हामो जेणेव सुवण्णगारिभिसियाओ जाव णो संचाएमो संघाडित्तए। तए णं अम्हे सामी! एयस्स दिव्वस्स कुंडलस्स अण्णं सिरसयं कुंडल जुयलं घडेमो।

भावार्थ - तदनंतर वे स्वर्णकार राजा कुंभ के पास आए और हाथ जोड़ कर मस्तक, झुकाकर यों बोले - स्वामी! आपने हमें बुलाया, बुलाकर कुण्डल के जोड़ लगाने की और वापस लौटाने की आज्ञा दी। हम इन दिव्य कुण्डल को लेकर कार्यशाला में आए किन्तु प्रयत्न करने पर भी जोड़ नहीं लगा सके। इसलिए स्वामी! क्या इन दिव्य कुण्डल के सदृश अन्य कुण्डल बना दें।

(3z)

तए णं से कुंभए राया तीसे सुवण्णगार सेणीए अंतिए एयमट्टं सोच्चा णिसम्म आसुरुत्ते ४ तिविलयं भिउडिं णिडाले साहट्टु एवं वयासी-(से के)केस णं तुब्भे कलायाणं भवह? जे णं तुब्भे इमस्स (दिव्वस्स) कुंडलजुयलस्स णो संचाएह संधिं संघाडित्तए? ते सुवण्णगारे णिव्विसए आणवेइ।

शब्दार्थ - साहटु - संहत्य-डालकर, कलायाणं - स्वर्णकार, णिळ्विसए - निर्वासित। भावार्थ - तब राजा कुंभ उन स्वर्णकारों से यह सुनकर तत्काल क्रोधाविष्ट हो गया। ललाट पर भृकुटि चढ़ाकर तीन सलवट डालकर यों बोला- तुम कैसे स्वर्णकार हो, जो इस कुंडल के जोड़ भी नहीं लगा सकते? यों कह कर राजा ने उनको अपने राज्य से चले जाने की आज्ञा दी।

(03)

तए णं ते सुवण्णगारा कुंभेणं रण्णा णिव्विसया आणत्ता समाणा जेणेव साइं २ गिहाइं तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सभंडमत्तोवगरणमायाओ मिहिलाए रायहाणीए मज्झंमज्झेणं णिक्खमंति २ ता विदेहस्स जणवयस्स मज्झंमज्झेणं जेणेव कासी जणवए जेणेव वाणारसी णयरी तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता अगुज्जाणंसि सगडीसागडं मोएंति २ ता महत्थं जाव पाहुडं गेण्हंति २ ता वाणारसीए णयरीए मज्झंमज्झेणं जेणेव संखे कासीराया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयल जाव वद्धावेंति २ ता (पाहुडं पुरओ ठावेंति २ ता संखरायं) एवं वयासी -

भावार्थ - तब कुंभ राजा द्वारा निर्वासन की आज्ञा दिए जाने पर वे स्वर्णकार अपने-अपने घर आए। अपना सामान-बर्तन, उपकरण औजार आदि के साथ राजधानी मिथिला के बीचोबीच से निकले। आगे उस जनपद के बीच से होते हुए काशी जनपद में पहुँचे और वाराणसी नगरी में आए। वहाँ के प्रमुख उद्यान में उन्होंने अपने गाड़ी-गाड़े खोले। महत्त्वपूर्ण यावत् बहुमूल्य भेंट लेकर वाराणसी नगरी के बीच से होते हुए काशीराज के पास आए। हाथ जोड़ कर, मस्तक नवा कर यावत् उन्हें वर्धापित किया। भेंट उनके आगे रखी और राजा शख को यों निवेदित किया।

(89)

अम्हे णं सामी! मिहिलाओ णयरीओ कुंभएणं रण्णा णिळ्विसया आणत्ता समाणा इहं हळ्यमागया, तं इच्छामो णं सामी! तुन्भं बाहुच्छाया परिगहिया णिक्भया णिरुव्विगा सुहंसुहेणं परिविसउं। तए णं संखे कासीराया ते सुवण्णगारे एवं वयासी-किं णं तुब्भे देवाणुप्पिया! कुंभएणं रण्णा णिव्विसया आणत्ता? तए णं ते सुवण्णगारा संखं, एवं वयासी-एवं खलु सामी! कुंभगस्स रण्णो धूयाए पभावईए देवीए अत्तयाए मल्लीए कुंडलजुयलस्स संधी विसंघडिए। तए णं से कुंभए सुवण्णागारसेणि सद्दावेइ जाव णिव्विसया आणत्ता। तं एएणं कारणेणं सामी! अम्हे कुंभएणं णिव्विसया आणत्ता।

शब्दार्थ - बाहुच्छाया परिग्गहिया - भुजाओं की छत्रछाया में आश्रित।

भावार्थ - स्वामी! हम राजा कुंभ द्वारा मिथिला नगरी से निर्वासित किए गए हैं। यहाँ आपकी भुजाओं की छत्रछाया में आश्रित होकर निर्भय, निर्विघ्न रहना चाहते हैं। काशी राज शंख ने स्वर्णकारों को इस प्रकार कहा—देवानुप्रियो! राजा कुंभ द्वारा आपको निर्वासन की आज्ञा क्यों दी गई? स्वर्णकारों ने शंख को इस प्रकार उत्तर दिया - स्वामी! राजा कुंभ के महारानी प्रभावती की कोख से उत्पन्न मल्ली नामक राजकुमारी के कुंडल युगल का जोड़ टूट गया। तब राजा ने हम स्वर्णकारों को बुलाया यावत् कुण्डल-युगल के जोड़ लगाने की आज्ञा दी। बहुत प्रयत्न करने के बावजूद उन दिव्य कुण्डलों के जोड़ नहीं लगा सके, जिससे कुद्ध होकर राजा ने हमें निर्वासन का आदेश दिया।

(53)

तए णं संखे सुवण्णगारे एवं वयासी-केरिसिया णं देवाणुप्पिया! कुंभगस्स धूया पभावई देवीए अत्तया मल्ली विदेहरायवरकण्णा? तए णं ते सुवण्णगारा संख रायं एवं वयासी-णो खलु सामी! अण्णा कावि तारिसिया देवकण्णा वा जाव जारिसिया णं मल्ली विदेहवररायकण्णा। तए णं से संखे कुंडल (जुअल) जिंग्यहासे दूर्य सद्दावेड जाव तहेव पहारेत्थ गमणाए।

भावार्थ - यह सुनकर राजा शंख ने स्वर्णकारों से कहा - देवानुप्रियो! राजा कुंभ की पुत्री, प्रभावती की आत्मजा विदेहराज कन्या मल्ली कैसी है?

स्वर्णकारों ने राजा शंख से कहा - स्वामी! विदेह राजकुमारी मल्ली सौंदर्यादि गुणों में जैसी है, वैसी न कोई देव कन्या है यावत् न अन्य कोई राजकन्या है। तब राजा कुंभ ने अपने दूत को बुलाया-यावत् पूर्ववत् उसने दूत को सब बातें कही। यह सुनकर राजा की लक्ष्य पूर्ति हेतु दूत रवाना हुआ।

राजा अदीनशत्रु

(\$3)

तेणं कालेणं तेणं समएणं कुरुजणवए होत्था। हत्थिणाउरे णयरे। अदीणसत्तू णामं राया होत्था जाव विहरइ।

भावार्थ - उस काल, उस समय कुरु नामक जनपद था। उसमें हस्तिनापुर नामक नगर था। अदीनशत्रु वहाँ का राजा था यावत् वह सुख पूर्वक राज्य करता था।

(83)

तत्थ णं मिहिलाए (तस्स णं) कुंभगस्स पुत्ते पभावईए अत्तए मल्लीए अणु(भग्ग)जायए मल्लिदिण्णए णामं कुमारे जाव जुवराया यावि होत्था। तए णं मल्लिदिण्णे कुमारे अण्णया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी-गच्छह णं तुब्भे मम पमदवणंसि एगं महं चित्तसमं करेह अणेग जाव पच्चिप्पणंति।

भावार्थ - मिथिला नगरी में राजा कुंभ का पुत्र, प्रभावती का आत्मज, मल्ली का अनुज युवराज मल्लिदिन था। उसने एक बार अपने प्रासाद के सेवकों को बुलाया और कहा कि जाओ, तुम मेरे प्रमद वन (विशिष्ट उद्यान) में एक विशाल चित्रशाला भवन का निर्माण कराओ, जो सैकड़ों स्तंभों पर सन्निविष्ट - अवस्थित हो। वैसा कर मुझे मेरे आज्ञानुरूप कार्य होने की सूचना करो।

(K3)

तए णं से मल्लिदिण्णे चित्तगरसंणि सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी-तुब्भे णं देवाणुप्पिया! चित्तसभं हावभावित्तास बिब्बोयकिलएहिं रूवेहिं चित्तेह जाव पच्चिप्पणह। तए णं सा चित्तगरसंणी तहित पिडसुणेइ २ त्ता जेणेव सयाइं गिहाइं तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तूलियाओ वण्णए य गेण्हइ २ त्ता जेणेव चित्तसभा तेणेव (उवागच्छइ, उवागच्छित्ता) अणुप्पविसइ २ त्ता भूमिभागे विरयइ २ त्ता भूमिं सज्जेइ २ ता चित्तसभं हाव भाव जाव चित्तेउं पयत्ता यावि होत्था।

शब्दार्थ - हाव - स्त्री चेष्टा, भाव - मानसिक कल्पनाओं की अभिव्यक्ति, विलास - श्रृंगारमय भावोद्गम, विक्वोय - इच्छित की प्राप्ति पर भी गर्व पूर्ण अनादर।

भावार्थ - तब कुमार मल्लिदिन्न ने चित्रकारों को बुलाया और कहा-देवानुप्रियो! चित्रशाला में हाव, भाव विलास एवं बिब्बोक पूर्ण सुंदर मुद्राओं में चित्रांकन करो। वैसा कर यावत् मुझे सूचित करो।

तब चित्रकारों ने कहा - राजन् वैसा ही करेंगे। यों कह कर स्वीकार किया। वे अपने घरों में आए। तूलिकाएं एवं रंग लिए। चित्रशाला भवन में आए। भीतर प्रवेश किया। चित्रांकन हेतु स्थान तैयार किए। उन्हें सिब्बत किया तथा उन पर विविध हाव, भाव यावत् बिब्बोक आदि मुद्रायुक्त चित्र बनाने में प्रवृत्त हुए।

(\$3)

तए णं एगस्स चित्तगरस्स इमेयारूवा चित्तगरलद्धी लद्दा पत्ता अभिसमण्णागया - जस्स णं दुपयस्स वा चउपयस्स वा अपयस्स वा एगदेसमवि पासइ तस्स णं देसाणुसारेणं तयाणुरूवं णिव्वत्तेइ।

शब्दार्थ - चित्तगरलद्धी - चित्रकार लब्धि-विशिष्ट साधना-अभ्यास जनित असाधारण चित्रकारिता की क्षमता, दुपयस्स - द्विपद - दो पैर वाले का-मनुष्य आदि का, चउपयस्स - चतुष्पद—चौपाये अश्व आदि प्राणी का, अपयस्स - पाद रहित, वृक्ष, भवन आदि एकावयवभूत वस्तु का, एगदेसं - एक अंश या भाग, णिक्वत्तेइ - निवर्तयति-रचना करता है।

भावार्थ - उन चित्रकारों में एक युवा चित्रकार को ऐसी विशिष्ट चित्रनिर्माण की लिब्धि प्राप्त थी कि वह किसी द्विपद, चतुष्पद या वृक्ष भवन आदि के किसी एक भाग को देखकर तदनुसार उसके परिपूर्ण रूप का चित्र बना देता था।

अद्भुत चित्रकार

(83)

तए णं से चित्तगरदारए मल्लीए जविणयंतरियाए जालंतरेण पायं गुट्टं पासइ। तए णं तस्स (णं) चित्तगरस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था सेयं खलु ममं मल्लीए वि० संपेहेइ २ ता भूमिभागं सज्जेइ २ ता मल्लीए वि० पायंगुट्ठाणुसारेणं जाव णिव्वत्तेइ।

शब्दार्थ - जवणियंतरियाए - पर्दे के पीछे स्थित, पायंगुईं - पैर का अंगूठा।

भावार्थ - उस लिब्ध संपन्न युवा चित्रकार ने पर्दे के पीछे स्थित मल्ली कुमारी के पैर के अंगूठे को पर्दे में बनी अधोवर्तिनी जाली में से देखा। उसके मन में ऐसा विचार उठा कि मैं राजकुमारी मल्ली के पैर के अंगूठे के आधार पर उसे यथावत् गुणोपेत रूप में चित्रित करूँ। ऐसा विचार कर उसने चित्रांकन हेतु स्थान सिज्जत किया तथा विदेह राजकन्या मल्ली के पैर के अंगूठे के आधार पर यावत् चित्र बनाया।

(85)

तए णं सा चित्तगरसेणी चित्तसभं जावं हावभावे चित्तेइ २ ता जेणेव मल्लदिण्णे कुमारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता एयमाणित्तयं पच्चिप्पणइ। तए णं मल्लदिण्णे चित्तगरसेणिं सक्कारेइ २ विपुलं जीवियारिहं पीइदाणं दलयइ २ ता पडिविसजेइ।

भावार्थ - चित्रकारों ने चित्रसभा में कला पूर्ण हाव-भाव आदि से युक्त चित्र बनाए। फिर वे राजकुमार मल्लदिन्न के पास उपस्थित हुए यावत् उन्होंने निवेदन किया-आपकी आज्ञानुसार चित्रकार्य संपन्न कर दिया गया है। कुमार मल्लदिन्न ने चित्रकारों का सत्कार तथा सम्मान किया तथा उनको जीविकोपयोगी प्रीतिदान दिया तथा वहाँ से विदा किया।

(33)

तए णं मल्लिदिण्णे कुमारे अण्णया ण्हाए अंतेउरपरियालसंपरिवुडे अम्मधाईए सिद्धं जेणेव चित्तसभा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चित्तसभं अणुप्पविसइ २ ता हावभाव विलासिबब्बोयकिलयाई रूवाई पासमाणे २ जेणेव मल्लीए वि०। तयाणुरूवे णिव्वत्तिए तेणेव पहारेत्थ गमणाए। तए णं से मल्लिदिण्णे कुमारे मल्लीए वि० तयाणुरूवं णिव्वत्तियं पासइ, पासित्ता इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था एस णं मल्ली वि० त्तिकट्टु लज्जिए वीडिए वि(अडे)डे सिणयं २ पच्चोसक्कइ।

भावार्थ - राजकुमार मल्लिदिन्न एक बार स्नानादि कर अंतःपुर एवं परिवार के जनों से घिरा हुआ धायमाता के साथ चित्र सभा में आया। कलापूर्ण हाव-भाव, विलास युक्त चित्रों को देखता हुआ वह विदेह राजकुमारी मल्ली के स्वरूप के सर्वथा अनुरूप चित्र जहाँ बना था, उस तरफ गया।

(900)

तए णं (तं) मल्लदिण्णं अम्मधाई सिणयं २ पच्चोसक्कंतं पासिता एवं वयासी-किण्णं तुमं पुत्ता! लिजए वीडिए विड्डे सिणयं २ पच्चोसक्किसि? तए णं से मल्लदिण्णे अम्मधाइं एवं वयासी-जुत्तं णं अम्मो! मम जेट्टाए भिगणीए गुरुदेवयभूयाए लज्जणिजाए मम चित्तगरणिव्वत्तियं अणुपविसित्तए?

शब्दार्थ - पच्चोसक्कंतं - वापस लौटते हुए, वीडिए - व्रीडित-विशेष रूप से लज्जा युक्त, विद्वे - व्यर्दित-खेदाभिभूत।

भावार्थ - धायमाता ने राजकुमार मल्लदिन्न को उधर से वापस लौटते हुए देखा तो वह बोली-पुत्र! तुम अधिकाधिक लज्जित होते हुए धीरे-धीरे वापस क्यों लौट रहे हो?

कुमार मल्लदिन्न ने धायमाता से कहा - माता चित्रकारों द्वारा रचित चित्रसभा में अपनी गुरु तथा देव सदृश बड़ी बहिन के सामने जाना क्या मेरे लिए लज्जास्पद नहीं है?

चित्रकार दण्डित

(१०१)

तए णं अम्मधाई मल्लदिण्णं कुमारं एवं वयासी-णो खलु पुत्ता! एस मल्ली, एस णं मल्लीए विदे० चित्तगरएणं तयाणुरूवे णिव्वत्तिए। तए णं से मल्लदिण्णे अम्मधाईए एयमहं सोच्चा णिसम्म आसुरुत्ते ४ एवं वयासी-केस णं भो! से चित्तगरए अपत्थियपत्थिए जाव परिवज्जिए जे णं मम जेट्ठाए भगिणीए गुरुदेवयभूयाए जाव णिव्वत्तिए त्तिकटु तं चित्तगरं वज्झं आणवेइ।

्राब्दार्थ - वज्झं - वध-मृत्युदण्ड।

भावार्थ - तब धाय माता ने कुमार मल्लदिन्न से कहा - पुत्र! यह विदेह की उत्तम राजकन्या मल्ली कुमारी नहीं है किन्तु चित्रकार द्वारा उसके स्वरूपानुरूप तैयार किया गया चित्र ही है। राजकुमार मल्लिदिन्न धायमाता से यह सुनकर अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा और बोला-वह कौन मृत्युकांक्षी चित्रकार है, जिसने मेरी गुरु एवं देव तुल्य बड़ी बहिन का ऐसा चित्र तैयार किया। यों कह कर उसने चित्रकार के लिए मृत्युदण्ड की आज्ञा दी।

(907)

तए णं सा चित्तगरस्सेणी इमीसे कहाए लद्धहा समाणा जेणेव मल्लदिण्णे कुमारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल परिग्महियं जाव वद्धावेता एवं वयासी-एवं खलु सामी! तस्स चित्तगरस्स इमेयारूवा चित्तगरलद्धी लद्धा पत्ता अभिसमण्णागया - जस्स णं दुपयस्स वा जाव णिव्वत्तेइ, तं मा णं सामी! तुब्भे तं चित्तगरं वज्झं आणवेह, तं तुब्भे णं सामी! तस्स चित्तगरस्स अण्णं तयाणुरूवं दंडं णिव्वत्तेह।

भावार्थ - चित्रकारों ने जब यह बात सुनी तो वे कुमार मल्लिदिन के पास आए। हाथ जोड़े, मस्तक झुकाए उन्होंने राजकुमार को वर्धापित किया, जयनाद किया यावत् उन्होंने कहा - स्वामी! उस चित्रकार को ऐसी लिब्धि प्राप्त है, जिससे वह किसी भी प्राणी या वस्तु का यावत् चित्रांकन कर सकता है। स्वामी! आप उसे मृत्यु दण्ड न दें। उसे कोई तदनुरूप अन्य दण्ड दे दें।

चित्रकार राजा अदीनशत्रु की शरण में (१०३)

तए णं से मल्लिदिण्णे तस्स चित्तगरस्स संडासगं छिंदावेइ २ ता णिव्विसयं आणवेइ। तए णं से चित्तगरए मल्लिदिण्णे णं णिव्विसए आणत्ते समाणे सभंडमत्तोवगरणमायाए मिहिलाओ णयरीओ णिक्खमइ २ ता विदेहं जणवयं मज्झमज्झेणं जेणेव कुरुजणवए जेणेव हित्थणाउरे णयरे जेणेव अदीणसत्तू राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता भंडणिक्खेवं करेइ २ ता चित्तफलगं सज्जेइ २ ता मल्लीए विदे० पायं गुट्ठाणुसारेण रूवं णिव्वत्तेइ २ ता कक्खंतरिस छुन्भइ २ ता महत्थं जाव पाहुडं गेण्हइ २ ता हित्थणाउरं णयरं मज्झंमज्झेणं जेणेव अदीणसत्तू राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता तं करयल जाव वद्धावेइ २ ता

पाहुडं उवणेइ २ ता एव वयासी-एवं खलु अहं सामी मिहिलाओ रायहाणीओ कुंभगस्स रण्णो पुत्तेणं पभावईए देवीए अत्तएणं मल्लदिण्णेणं कुमारे णं णिळिसए आणत्ते समाणे इह हळामागए तं इच्छामि णं सामी! तुब्धं बाहुच्छाया परिगाहिए जाव परिवसित्तए।

शब्दार्थ - संडासगं - संडासी की तरह तूलिका पकड़ने का अंग-हाथ का अंगूठा और तर्जनी अंगुली, छिंदावेइ - कटवा डालता है, छुब्भइ - दबा लेता है।

भावार्थ - राजकुमार मल्लिदिन्न ने उस चित्रकार के हाथ के अंगूठे और तर्जनी अंगुली को कटवा दिया और उसे राज्य से निर्वासन की आज्ञा दे दी। यों किए जाने पर वह चित्रकार अपना सामान-चित्रकारिता के उपकरण आदि लेकर मिथिलानगरी से निकल पड़ा। आगे बढ़ता हुआ विदेह जनपद के बीच से गुजरता हुआ कुरूजनपद में, हस्तिनापुर में पहुँचा, जहाँ का राजा अदीन शत्रु था। उसने अपने सामान को यथा स्थान रखा। चित्र बनाने के लिए काष्ठ पट्टिका को तैयार किया। उस पर उत्तम विदेह राजकुमारी मल्ली का उसके अंगूठे के आधार पर चित्र तैयार किया। काष्ठ पट्टिका को कांख में दबाया। महत्त्वपूर्ण यावत् उपहार लिए। हस्तिनापुर नगर के बीचों-बीच होते हुए राजा अदीनशत्रु के सम्मुख उपस्थित हुआ। हाथ जोड़ कर यावत् मस्तक नवाकर राजा को वर्धापित किया - जय-जयकार किया तथा अपनी भेंट अपित की। चित्रकार ने राजा से निवेदन किया - स्वामी! मिथिला राजधानी के राजा कुंभ के पुत्र, महारानी प्रभावती के आत्मज राजकुमार मल्लिदिन्न द्वारा निर्वासित होकर मैं अविलंब यहाँ आया हूँ। स्वामी! आपकी भुजाओं की छत्रच्छाया में यावत् प्रवास करना चाहता हूँ।

(१०४)

तए णं से अदीणसत्तु राया तं चित्तगरदारयं एवं वयासी-किण्णं तुमं देवाणुप्पिया! मल्लदिण्णेणं णिब्बिसए आणत्ते?

भावार्थ - राजा अदीनशत्रु ने चित्रकार से कहा - देवानुप्रिय! मल्लदिन्न ने तुम्हें देश-निर्वासन की क्यों आज्ञा दी?

(१०५)

तए णं से चित्तगरदारए अदीणसत्तु रायं एवं वयासी-एवं खलु सामी!

मल्लिदिण्णे कुमारे अण्णया कयाई चित्तगरसेणिं सद्दावेड, सद्दावेत्ता एवं वयासी-तुब्भे णं देवाणुप्पिया! मम चित्तसभं० तं चेव सव्वं भाणियव्वं जाव मम संडासगं छिंदावेड २ त्ता णिब्विसयं आणवेड, तं एवं खलु (अहं) सामी! मल्लिदिण्णे णं कुमारेणं णिब्विसए आणत्ते।

भावार्थ - यह सुनकर युवा चित्रकार ने राजा अदीनशत्रु से कहा - स्वामी! राजकुमार मल्लिदिन्न ने एक बार किसी समय चित्रकारों को बुलाया। उनसे कहा - मेरे लिए एक चित्रशाला तैयार करो (यहाँ वह सब पाठ ग्राह्य है, जो पहले आया है) यावत् राजकुमार ने मेरे अंगूठे और तर्जनी अंगुली को कटवा दिया और मुझे निर्वासन की आज्ञा दे दी। स्वामी! मेरे निर्वासन का यह वृत्तांत है।

(१०६)

तए णं अदीणसत्तु राया तं चित्तगरं एवं वयासी-से केरिसए णं देवाणुप्पिया तुमे मल्लीए वि० तहाणुरूवे रूवे णिव्वत्तिए? तए णं से चित्तगरे कवखंतराओं चित्तफलयं णीणेइ २ ता अदीणसत्तुस्स उवणेइ २ ता एवं वयासी-एस णं सामी! मल्लीए वि० तयाणुरूवस्स रूवस्स केइ आगार भाव पड़ोयारे णिव्वत्तिए णो खलु सक्का केणइ देवेण वा जाव मल्लीए विदेहरायवरकण्णाए तयाणुरूवे रूवे णिव्वत्तित्तए।

शब्दार्थ - णीणेइ - निकालता है, पडोयारे - प्रकटित।

भावार्थ - राजा अदीनशत्रु ने चित्रकार से कहा - देवानुप्रिय! तुमने राजकुमारी मल्ली का उसके अनुरूप चित्र कैसा बनाया? चित्रकार ने यह सुनकर अपनी कांख से चित्रमयी काष्ठ पट्टिका निकाली और राजा के समक्ष रखी। उसने राजा से निवेदन किया - विदेह की उत्तम राजकुमारी मल्ली की आकृति और उसकी भाव भंगिमा का यह किंचित् मात्र प्रकटीकरण है। उसके स्वरूप का यथावत् चित्रण तो न कोई देव यावत् न मानव आदि ही कर सकता है।

(৭০৬)

तए णं (से) अदीणसत्तु (राया) पडिरूवजिणयहासे दूयं, सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी-तहेव जाव पहारेत्थ गमणाए (५)।

www.jainelibrary.org

भावार्थ - राजा अदीनशत्रु मल्लीकुमारी के प्रतिरूप - चित्र को देखकर बहुत हर्षित हुआ! उसने अपने दूत को बुलाया और उस से कहा - यहाँ पूर्वोक्त वर्णनानुसार पाठ योजनीय . है यावत् दूत ने मिथिला की ओर प्रस्थान किया।

पांचाल नरेश जितशत्रु

(90g)

तेणं कालेणं तेणं समएणं पंचाले जणवए। कंपिल्लेपुरे णयरे। जियसत्तू णामं राया पंचालाहिवई। तस्स णं जियसत्तुस्स धारिणीपामोक्खं देविसहस्सं ओरोहे होत्था।

शब्दार्थ - ओरोहे - अन्तःपुर में।

भावार्थ - उस काल उस समय पांचाल नामक जनपद था। उसमें कांपिल्यपुर नामक नगर था। पांचाल देश का अधिपति जितशत्रु नामक राजा था। उसके अंतःपुर में एक सहस्त्र रानियाँ थीं, जिनमें धारिणी पटरानी थी।

(30P)

तत्थ णं मिहिलाए चोक्खा णामं परिव्वाइया रिउव्वेय जाव (सु) परिणिडिया यावि होत्था। तए णं सा चोक्खा परिव्वाइया मिहिलाए बहूणं राईसर जाव सत्थवाहपभिईणं पुरओ दाणधम्मं च सोयधम्मं च तित्थाभिसेयं च आधवेमाणी पण्णवेमाणी परूवेमाणी उवदंसेमाणी विहरइ।

शब्दार्थ - परिव्वाइया - संन्यासिनी, रिउव्वेय - ऋग्वेद, आघवेमाणी - प्रतिपादित करती हुई, पण्णवेमाणी - प्रज्ञापित करती हुई, उवदंसेमाणी - उपदर्शित करती हुई-अपने आचार द्वारा उपदेशों को स्थापित करती हुई।

भावार्थ - मिथिला नगरी में चोक्षा (चोक्खा) नामक परिव्राजका रहती थी। वह ऋग्वेद प्रभृति वेदों यावत् इतिहास, पुराण आदि शास्त्रों में निष्णात थी यावत् मिथिला में राजा, ऐश्वर्यशाली पुरुष यावत् सार्थवाह आदि विशिष्टजनों के समक्ष दान धर्म, शौच धर्म एवं तीर्थ स्थान की उपादेयता का प्रतिपादन, परिज्ञापन एवं प्ररूपण करती थी। अपने आचार द्वारा इन सिद्धांतों को ख्यापित करती थी।

परिव्राजिका चोक्षा एवं मल्ली में धर्म-चर्चा (११०)

तए णं सा चोक्खा परिव्वाइया अण्णया कयाई तिदंडं च कुंडियं च जाव धाउरताओ य गेण्हइ २ ता परिव्वाइगावसहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता पविरत्नपरिव्वाइया सिद्धं संपरिवुडा मिहिलं रायहाणिं मज्झंमज्झेणं जेणेव कुंभगस्स रण्णो भवणे जेणेव कण्णंतेउरे जेणेव मल्ली वि० तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता उदयपरिफासियाए दब्भोवरिपच्चत्थुयाए भिसियाए णिसियइ २ त्ता मल्लीए वि० पुरओ दाणधम्मं च जाव विहरइ।

शब्दार्थ - पविरल - संख्या में कम, कण्णंतेउरे - कन्याओं का अन्तःपुर, उदयपरिफासियाए - जल छिड़क कर शुद्ध किए हुए, पच्चुत्थुयाए - बिछाए हुए।

भावार्थ - एक बार वह चोक्षा परिव्राजका त्रिदण्ड, कुण्डिका यावत् गैरिक वस्त्र यथावत् धारण किए, परिव्राजिकाओं के साथ अपने स्थान से निकली तथा कुछेक परिव्राजिकाओं को साथ लिए, राजधानी मिथिला के बीचों-बीच होती हुई निकली। राजा कुंभ के भवन के पास आई। कन्याओं के अन्तःपुर में जहाँ विदेह की उत्तम राजकुमारी मल्ली थी, वहाँ पहुँची। पानी छिड़क कर आसन के लिए भूमि-शोधन किया। उस पर डाभ का आसन बिछाया एवं उस पर बैठ गई। उसने राजकुमारी मल्ली के समक्ष दान-धर्म यावत् शौचधर्म, तीर्थ स्थान आदि अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया।

(999)

तए णं मल्ली वि० चोक्खं परिव्वाइयं एवं वयासी-तुब्भे णं चोक्खे! किंमूलए धम्मे पण्णते? तए णं सा चोक्खा परिव्वाइया मिल्लं वि० एवं वयासी-अम्हं णं देवाणुप्पिए! सोयमूलए धम्मे पण्णते जं णं अम्हं किंचि असुई भवइ तं णं उदएण य मिट्टयाए जाव अविग्धेणं सग्गं गच्छामो।

भावार्थ - तब विदेह की उत्तम राजकुमारी मल्ली ने चोक्षा परिव्राजिका से पूछा- आपके धर्म का मूल क्या है? परिव्राजिका चोक्षा ने कहा - देवानुप्रिये! हमारे धर्म का मूल आधार

शौच है। जब हमारी कोई वस्तु अपवित्र हो जाती है, तब हम पानी और मिट्टी से उसे शुद्ध करते हैं यावत् इन सिद्धांतों के अनुसार आचरण करते हुए शीघ्र ही स्वर्ग पाने के अधिकारी बनते हैं।

(997)

तए णं मल्ली वि० चोक्खं परिव्वाइयं एवं वयासी-चोक्खा! से जहाणामए केई पुरिसे रुहिरकयं वर्त्थं रुहिरेण चेव धोवेजा अत्थि णं चोक्खा! तस्स रुहिरकयस्स वर्त्थस्स रुहिरेणं धोव्वमाणस्स काई सोही? णो इणडे समडे।

भावार्थ - राजकुमारी मल्ली ने चोक्षा परिव्राजिका से कहा - जैसे कोई पुरुष रक्त से लिप्त वस्त्र को रक्त से ही धोए तो क्या रक्त द्वारा धोए जाते उस वस्त्र की शुद्धि होती है? परिव्राजिका ने कहा - ऐसा नहीं होता-शुद्धि नहीं होती।

(49a)

एवामेव चोक्खा! तुब्धे णं पाणाइवाएणं जाव मिच्छादंसणसल्लेणं णिल्थ काई सोही जहा व तस्स रुहिरकयस्स वत्थस्स रुहिरेणं चेव धोव्वमाणस्स।

भावार्थ - राजकुमारी मल्ली ने कहा - चोक्षा! आपेक मतानुसार प्राणातिपात यावत् मिथ्यादर्शन शल्य से - अष्टादश पापों के सेवन से उसी प्रकार आत्मा की शुद्धि नहीं होती जिस प्रकार रुधिर रंजित वस्त्र को रुधिर द्वारा धोने पर शुद्धि नहीं होती।

(११४)

तए णं सा चोक्खा परिव्वाइया मल्लीए वि० एवं वुत्ता समाणा संकिया कंखिया विइगिच्छिया भेयसमावण्णा जाया यावि होत्था मल्लीए वि० णो संचाएइ किंचिवि पामोक्खमाइक्खित्तए तुसिणीया संचिद्वइ।

भावार्थ - राजकुमारी मल्ली द्वारा यों कहे जाने पर चोक्षा परिव्राजिका के मन में शंका, कांक्षा और विचिकित्सा का भाव पैदा हुआ। वह द्वैधी भाव में पड़ गई, किंकर्त्तव्यविमूढ हो गई। वह मल्ली को कुछ भी उत्तर नहीं दे पाई, चुप हो गई।

चोक्षा परिव्राजिका का तिरस्कार

(৭৭५)

तए णं तं चोक्खं मल्लीए बहुओ दास चेडीओ हीलेंति णिंदंति खिसंति गरहंति अप्पेगइया हेरुयालंति अप्पेगइया मुहमक्कडिया करेंति अप्पेगइया वग्घाडीओ करेंति अप्पेगइया तज्जमाणीओ (क० अ०) तालेमाणीओ (क० अ०) णिच्छुभंति। तए णं सा चोक्खा मल्लीए विदेहरायवरकण्णाए दासचेडियाहिं हीलिज्जमाणी जाव गरहिज्जमाणी आसुरुत्ता जाव मिसिमिसेमाणी मल्लीए विदेहरायवर कण्णाए पओसमावज्जइ भिसियं गेण्हइ २ ता कण्णंतेउराओ पिडिणिक्खमइ २ ता मिहिलाओ णिग्गच्छइ २ ता परिव्वाइया संपरिवुडा जेणेव पंचालजणवए जेणेव कंपिल्लपुरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता बहूणं राईसर जाव परूवेमाणी विहरइ।

शब्दार्थ - खिसंति - उपहास करती हैं, गरहंति - सबके समक्ष, अवर्णवाद-अत्यधिक निंदा करती हैं, हेरुयालंति - चिढ़ाकर क्रुद्ध करती है, मुहमक्कडिया - मुंह मटकाती हैं, वग्धाडीओ - तरह-तरह के शब्दों से मजाक उड़ाती हैं, तज्जमाणीओ - दुर्वचनों द्वारा तर्जित करती हैं, तालेमाणीओ - ताड़ित करती हुई, णिच्छुभंति - निकालती हैं, पओसमावज्जइ - अत्यंत द्वेष करती हुई।

भावार्थ - तब चोक्षा परिव्राजिका की बहुत सी दासियाँ अवहेलना, निंदा, उपहास, गर्हा करने लगी। कुछ दासियाँ उसे चिढ़ाकर कुद्ध करने लगी। कुछ मुंह मटकाने लगी। कतिपय तरह-तरह के दुर्वचनों से मजाक उड़ाने लगीं। अन्त में उसे तर्जित, ताड़ित करते हुए निकाल दिया। चोक्षा परिव्राजिका विदेह राजकन्या मल्ली की दासियों द्वारा निंदा यावत् गर्हा अवहेलना किए जाने पर बहुत कुद्ध हो गई। यावत् क्रोध से तमतमाती हुई, वह राजकुमारी मल्ली के प्रति अत्यंत द्वेष भाव युक्त हो गई। उसने अपना आसन उठा लिया। कन्याओं के अन्तःपुर से बाहर निकल कर वह मिथिला से चल पड़ी। परिव्राजिकाओं से घिरी हुई वह पांचाल जनपद के अन्तर्गत कांपिल्यपुर में आई। वहाँ आकर राजाओं यावत् श्रेष्ठिजनों इत्यादि के मध्य अपने सिद्धान्तों की प्ररूपणा करने लगी।

(११६)

तए णं से जियसत्तू अण्णया कयाइ अंतेउरपरियालसिद्धं संपरिवुडे एवं जाव विहरइ। तए णं सा चोक्खा परिव्वाइया संपरिवुडा जेणेव जियसत्तुस्स रण्णो भवणे जेणेव जियसत्तू तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अणुपविसइ २ ता जियसत्तुं जएणं विजएणं वद्धावेइ। तए णं से जियसत्तू परिव्वाइयं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता सीहासणाओ अब्भुट्टेइ, अब्भुट्टेता चोक्ख परिव्वाइयं सक्कारेइ २ ता आसणेणं उविणमंतेइ।

भावार्थ - एक बार का प्रसंग है, राजा जितशतु अपने अन्तःपुर और पारिवारिकजनों से घिरा हुआ यावत् सिंहासनासीन था। तब चोक्षा परिव्राजिका राजा जितशतु के भवन में आई। उसने राजा को जय-विजय शब्दों द्वारा वर्धापित किया। राजा जितशतु ने चोक्षा परिव्राजिका को आते हुए देखा तो वह सिंहासन से उठा और चोक्षा परिव्राजिका का सत्कार सम्मान किया और आसन पर बिठाया।

(११७)

तए णं सा चोक्खा उदगपरिफासियाए जाव भिसियाए णिविसइ जियसत्तुं रायं रज्जे य जाव अंतेउरे य कुसलोदंतं पुच्छइ। तए णं सा चोक्खा जियसत्तुस्स रण्णो दाणधम्मं च जाव विहरइ।

शब्दार्थ - कुसलोदंतं - कुशल वृत्तान्त।

भावार्थ - चोक्षा परिव्राजिका यावत् डाभ बिछाए हुए आसन पर बैठी। उसने जितशत्रु के राज्य यावत् अन्तःपुर का कुशल वृत्तात पूछा। उसने राजा जितशत्रु को दान-धर्म यावत् शौच धर्म आदि का उपदेश दिया।

(११८)

तए णं से जियसत्तू अप्पणो ओरोहंसि जाव विम्हिए (जायविम्हए) चोक्खं (परिव्वाइयं) एवं वयासी-तुमं णं देवाणुप्पिया! बहूणि गामागर जाव (अडह) आहिंडिस बहूण य राईसरगिहाइं अणुप्यविससि, तं अत्थियाइं ते कस्सवि रण्णो वा जाव एरिसए ओरोहे विद्वपुट्वे जारिसए णं इमे मह उवरोहे?

भावार्थ - अनंतर राजा जितशत्रु, जो अपने अन्तःपुर की रानियों के सौंदर्य आदि से विस्मित था, चोक्षा परिव्राजिका से बोला-देवानुप्रिय! आप बहुत से ग्राम, नगर आदि में घूमती रही हैं यावत् बहुत से राजाओं ऐश्वर्यशालीजनों के घरों में प्रविष्ट होती रही हैं। क्या किसी राजा का यावत् ऐश्वर्य शाली पुरुष का ऐसा अन्तःपुर कहीं देखा है?

(399)

तए णं सा चोक्खा परिव्वाइया जियसत्तुं (रायं) एवं वयासी-ईसिं अवहिसयं करेइ, करेत्ता एवं वयासी-(एवं च) सिरसए णं तुमं देवाणुप्पिया! तस्स अगडद्दुरस्स। केस णं देवाणुप्पिए! से अगडद्दुरे? जियसत्तु! से जहाणामए अगडद्दुरे सिया, से णं तत्थ जाए तत्थेव वुद्धे अण्णं अगडं वा तत्नागं वा दहं वा सरं वा सागरं वा अपासमाणे चेव मण्णइ - अयं चेव अगडे वा जाव सागरे वा। तए णं तं कूवं अण्णे सामुद्दए द्दुरे हव्वमागए। तए णं से कूवद्दुरे तं सामुद्ददुरें एवं वयासी-से केस णं तुमं देवाणुप्पिया! कत्तो वा इह हव्वमागए? तए णं से सामुद्दएद्दुरे तं कूवद्दुरे तं सामुद्दण्दुरे। तए णं से कूवद्दुरे तं सामुद्दण्दुरे एवं वयासी-केमहालए णं देवाणुप्पिया! से समुद्दे! तए णं से सामुद्दण्दुरे एवं वयासी-केमहालए णं देवाणुप्पिया! समुद्दे। तए णं से कूवद्दुरे पाएणं लीहं कड्ढेइ २ ता एवं वयासी-एमहालए णं देवाणुप्पिया! से समुद्दे। तए णं से समुद्दे? णो इणडे समडे, महालए णं से समुद्दे। तए णं से कूवद्दुरे पुरिधिमिल्लाओ तीराओ उप्फिडित्ताणं (पच्चिमिछं तीरं) गच्छइ २ ता एवं वयासी-एमहालए णं देवाणुप्पिया! से समुद्दे? णो इणडे समडे? णो इणडे समडे (तहेव)।

शब्दार्थ - ईसिं - ईषद्-कुछ, अवहसियं करेड़ - हंसती है, अगड-दद्दुरस्स - कूप मण्डूक का, लीहं - लकीर, कड्ढेड़ - निकालता है। भाषार्थ - चोक्षा परिव्राजिका कुछ मुस्कराते हुए जितशत्रु से बोली - देवानुप्रिय! तुम उस कुएं के मेंढक के सदृश हो। राजा बोला-किस कुएं के मेंढक के सदृश। परिव्राजिका बोली-जितशत्रु! किसी कुएं में एक मेंढक रहता था, जो इसी में उत्पन्न हुआ था, इसी में बझा हुआ था। उसने किसी दूसरे कुएं, तालाब, झील सरोवर या समुद्र को नहीं देखा था। वह यही मानता था कि यह कुआँ ही तालाब यावत् सागर है। एक बार उस कुएं में सहज ही एक समुद्र का मेंढक आ गया। तब कुएं के मेंढक ने समुद्र के मेंढक से कहा - देवानुप्रिय! तुम कौन हो? कहाँ से चल कर आये हो? समुद्री मेंढक - देवानुप्रिय! मैं समुद्र का मेंढक हैं। कुएं का मेंढक - देवानुप्रिय! समुद्र कितना बड़ा है? समुद्री मेंढक - समुद्र बहुत बड़ा है। तब कुएं के मेंढक ने अपने पैर से लकीर खींची और बोला - क्या समुद्र इतना बड़ा है? समुद्री मेंढक - ऐसा कहना ठीक नहीं है। समुद्र बहुत ही बड़ा है। तब कुएं का मेंढक अपने अग्रवर्ती तट से उछलकर दूसरे तट पर चला गया। वहाँ जाकर बोला-क्या वह समुद्र इतना बड़ा है? समुद्री मेंढक बोला-नहीं ऐसा नहीं है।

चोक्षा द्वारा जितशत्रु को उकसाना (१२०)

एवामेव तुमंपि जियसत्तू अण्णेसिं बहूणं राईसर जाव सत्थवाहपभिईणं भजं वा भगिणिं वा धूयं वा सुण्हं वा अपासमाणे जाणेसि जारिसए मम चेव णं ओरोहे तारिसए णो अण्णस्स। तं एवं खलु जियसत्त्। मिहिलाए णयरीए कुंभगस्स धूया पभावईए अत्तिया मल्लीणामं विदेहरायवरकण्णा रूवेण य जुव्वणेण य जाव णो खलु अण्णयाकाइ देवकण्णा वा जारिसिया मल्ली। विदेहवरराय कण्णाए छिण्णस्स वि पायंगुट्टगस्स इमे तव ओरोहे सयसहस्सइमंपि कलं ण अग्घइ - त्तिकट्ट् जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया।

शब्दार्थ - भजं - भार्या, सुण्हं - स्नुषा-पुत्रवधू, कलं - अंश।

भावार्थ - परिव्राजिका चोक्षा ने कहा - जितशत्रु! तुमने भी इसी प्रकार दूसरे बहुत से राजा ऐश्वर्यशालीजन यावत् सार्थवाह आदि की पत्नी, बहिन, पुत्री या पुत्रवधुओं को नहीं देखा है। इसीलिए तुम ऐसा मानते हो कि तुम्हारा अन्तः पुर जैसा है, वैसा दूसरे किसी का नहीं है। जितशत्रु! मिथिला नगरी के राजा कुंभ की पुत्री, प्रभावती की आत्मजा मल्ली नामक उत्तम विदेह राजकुमारी रूप, यौवन यावत् लावण्य में जैसी उत्कृष्ट है, वैसी कोई देव कन्या भी नहीं है। विदेह राजकुमारी मल्ली के कटे हुए अंगूठे के लाखवें अंश के समान भी तुम्हारा अन्तःपुर नहीं है। यों कहकर वह परिव्राजिका जिधर से आई थी, उधर चली गई।

(979)

तए णं से जियसत्तू परिव्वाइयाजणियहासे दूयं सद्दावेड जाव पहारेत्थ गमणाए (६)।

भावार्थ - परिव्राजिका का यह कथन सुनकर राजा के मन में बड़ा हर्ष उत्पन्न हुआ यावत् दूत को मिथिला जाने का आदेश दिया। दूत तदनुसार मिथिला की ओर रवाना हुआ।

छहों दूतों का एक साथ आगमन (१२२)

तए णं तेसिं जियसत्तू पामोक्खाणं छण्हं राईणं दूया जेणेव मिहिला तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

भावार्थ - जितशत्रु आदि छओं राजाओं के दूत मिथिला की ओर रवाना हो चुके थे।

(973)

तए णं छप्पि (य) दूयगा जेणेव मिहिला तेणेव उवागच्छंति २ त्ता मिहिलाए अग्गुज्जाणंसि पत्तेयं २ खंधावारणिवेसं करेंति २ त्ता मिहिलं रायहाणिं अणुप्पविसंति २ त्ता जेणेव कुंभए तेणेव उवागच्छंति २ त्ता पत्तेयं २ करयल जाव साणं २ राईणं वयणाइं णिवेदेंति।

शब्दार्थ - खंधावारणिवेसं - छावनी या पड़ाव।

भावार्थ - छहों दूत मिथिला पहुँचे। वहाँ के प्रमुख उद्यान में अलग-अलग अपने पड़ाव डाल दिए। फिर राजधानी मिथिला में प्रविष्ट हुए। राजा कुंभ के पास आए और उन्होंने हाथ जोड़े, मस्तक झुकाए, अलग-अलग अपने-अपने राजा का संदेश निवेदित किया।

राजा कुंभ द्वारा तिरस्कार पूर्ण प्रतिक्रिया (१२४)

तए णं कुंभए राया तेसिं दूयाणं अंतिए एयमहं सोच्चा आसुरुत्ते जाव तिविलयं भिउडिं (णिडाले साहटु) एवं वयासी-ण देमि णं अहं तुब्धं मिल्लं विदे० त्तिकट्ट ते छप्पि दूए असक्कारिय असम्माणिय अवदारेणं णिच्छुभावेइ।

भावार्थ - राजा कुंभ दूतों का यह कथन-अभिप्राय सुनकर बहुत क्रुद्ध हुआ। उसके ललाट पर भृकुटी चढ़ गई और बोला-'मैं विदेह राजकुमारी नहीं दूँगा।' यह कह कर उन छहों दूतों का कोई सत्कार, सम्मान न करते हुए उन्हें पीछे के द्वार से निकाल दिया।

(१२५)

तए णं जियसत्तु पामोक्खाणं छण्हं राईणं दूया कुंभएणं रण्णा असक्कारिया असम्माणिया अवदारेणं णिच्छुभाविया समाणा जेणेव सगा २ जाणवया जेणेव सयाई २ णगराई जेणेव सगा २ रायाणो तेणेव उवागच्छंति २ ता करयल जाव एवं वयासी-

भावार्थ - राजा कुंभ द्वारा असत्कार एवं असम्मान पूर्वक पिछले द्वार से निकाले हुए जितशत्रु आदि छहों राजाओं के दूत अपने-अपने नगरों में, अपने-अपने राजाओं के पास पहुँचे। करबद्ध और विनत होकर उन्होंने कहा।

(१२६)

एवं खलु सामी! अम्हे जियसत्तु पामोक्खाणं छण्हं राईणं दूया जमग-समगं चेव जेणेव मिहिला जाव अवदारेणं णिच्छुभावेइ। तं ण देइ णं सामी! कुंभए मिललं विदेहरायवरकण्णं। साणं २ राईणं एयमट्टं णिवेदिंति।

शब्दार्थ - जमगसमगं - एक साथ, साणं - अपने।

भावार्थ - स्वामी! जितशत्रु आदि राजाओं के छहों दूत एक ही साथ मिथिला पहुँचे यावत् सारा वृत्तान्त हमारे द्वारा निवेदित किए जाने पर राजा कुंभ ने असम्मान एवं अनादर पूर्वक हमें पीछे के दरवाजे से निकाल दिया। स्वामी! राजा कुंभ विदेह राजकुमारी मल्ली आपको नहीं देगा। दूतों ने अपने-अपने राजाओं से यह वृत्तांत निवेदित किया।

मिथिला पर चढ़ाई की तैयारी

(976)

तए णं ते जियसत्तु पामोक्खा छप्पि रायाणो तेसिं दूयाणं अंतिए एयमहं सोच्चा णिसम्म आसुरुत्ता ४ अण्णमण्णस्स दूयसंपेसणं करेंति २ त्ता एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया! अम्हं छण्हं राईणं दूया जमगसमगं चेव जाव णिच्छूढा। तं सेयं खलु देवाणुप्पिया! (अम्हं) कुंभगस्स जत्तं गेण्हित्तए-त्तिकहु अण्णमण्णस्स एयमहं पडिसुणेंति २ त्ता ण्हाया सण्णद्धा हत्थिखंधवरगया सकोरंट मल्लदामा जाव सेयवर चामराहिं० महयाहयगयरहपवरजोहकलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सिद्धं संपरिवृडा सि्व्विट्टीए जाव रवेणं सएहिं २ णगरेहिंतो जाव णिग्गच्छंति २ त्ता एगयओ मिलायंति (२त्ता) जेणेव मिहिला तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

शब्दार्थ - जत्तं - युद्ध की यात्रा-चढ़ाई।

भावार्थ - तत्पश्चात् जितशत्रु आदि छहों राजा अपने-अपने दूतों से यह सुनकर अत्यंत कुद्ध हुए और एक दूसरे के यहाँ दूत भेज कर यह संदेश करवाया-देवानुर्प्रियो! हम छहों राजाओं के दूत एक ही साथ यावत् मिथिला पहुँचे। पर वे अपमान पूर्वक निकाल दिए गए। इसलिए अब यही अच्छा होगा, हम राजा कुंभ पर चढ़ाई करें। एक दूसरे ने यह बात स्वीकार की। वे स्नानादि सभी दैनंदिन कृत्य संपन्न कर युद्ध के लिए तैयार हुए। हाथियों पर सवार हुए। कोरंट पुष्प मालाओं से युक्त छन्न उन पर तने थे, श्वेत चामर उन पर डुलाए जा रहे थे। वे हाथी, रथ और पदाति योद्धाओं से युक्त चतुरंगिणी सेनाओं से घिरे हुए थे, जिससे उनकी ऋद्धि वैभव प्रकट होता था। युद्ध के नगाड़ों की ध्वनि के साथ अपनी अपनी नगरी से निकले। आगे चलते हुए यथा स्थान परस्पर मिले और मिथिला की ओर रवाना हुए।

कुंभ द्वारा भी सैन्य-सञ्जा

(925)

तए णं कुंभए राया इमीसे कहाए लद्धहे समाणे बलवाउयं सदावेइ २ ता

एवं वयासी-खिप्पामेव (भो देवाणुप्पिया!) हय जाव सेण्णं सण्णाहेह जाव पच्चिप्पणंति।

शब्दार्थ - बलवाउयं - सेना नायक।

भावार्थ - जब राजा कुंभ को यह ज्ञात हुआ तो उसने अपने सेना नायक को बुलाया और कहा - शीघ्र ही अपनी चतुरंगिणी सेना को तैयार करो यावत् ऐसा कर मुझे सूचित करो।

(38)

तए णं कुंभए (राया) ण्हाए सण्णद्धे हित्थिखंधवरगए जाव सेयवरचामराहिं महया मिहिलं रायहाणिं मज्झंमज्झेणं णिज्जाइ, णिज्जाइता विदेहजणवयं मज्झंमज्झेणं जेणेव देसअंते तेणेव उधागच्छइ २ ता खंधावारणिवेसं करेइ २ ता जियसत्तूपामोक्खा छप्पि य रायाणो पडिवालेमाणे जुज्झसज्जे पडिचिडइ।

शब्दार्थ - णिजाइ - निकलता है, पडिखालेमाणे - प्रतीक्षा करता हुआ, जुज्झ सजे-युद्ध के लिए तत्पर, पडिचिद्दइ - प्रतिस्थित ठहरा।

भावार्थ - फिर राजा कुंभ ने स्नानादि नित्य कर्म किए। युद्ध के लिए तत्पर होकर वह हाथी पर सवार हुआ। छत्र चामर युक्त वह चतुरंगिणी सेना से घिरा हुआ, युद्ध के नगाड़ों की ध्वनि के साथ, मिथिला नगरी के बीचों बीच होता हुआ, अपने राज्य की सीमा पर आया। राजा कुंभ ने पड़ाव डाला, युद्ध के लिए सन्नद्ध होकर जितशत्र आदि राजाओं की प्रतीक्षा करने लगा।

समर भूमि में कुंभ का पराभव (१३०)

तए णं ते जियसत्तुपामोक्खा छप्पि य रायाणो जेणेव कुंभए तेणेव उवागच्छंति २ त्ता कुंभएणं रण्णा सद्धिं संपलग्गा यावि होत्था।

शब्दार्थ - संपलग्गा - संप्रलग्न-युद्ध करने में प्रवृत्त।

भावार्थ - तत्पश्चात् जितशत्रु आदि राजा कुंभ की ओर बढ़े। कुंभ के साथ उनका युद्ध छिड़ गया।

(9₹9)

तए णं ते जियसतुपामोक्खा छप्पि रायाणो कुंभयं रायं हयमहियपवर-वीरघाइयणिवडिय चिंधद्धयप्पडागं किच्छप्पाणोवगयं दिसोदिसिं पडिसेहिंति। तए णं से कुंभए राया जियसतुपामोक्खेहिं छिहं राईहिं हयमहिय जाव पडिसेहिए समाणे अत्थामे अबले अवीरिए जाव अधारणिजमितिकटु सिग्घं तुरियं जाव वेइयं जेणेव मिहिला तेणेव उवागच्छइ २ त्ता मिहिलं अणुपविसइ २ त्ता मिहिलाए दुवाराई पिहेइ २ त्ता रोहसजे चिट्टइ।

शब्दार्थ - घाइय - घात करने पर, णिवडिय - निपतित, किच्छप्पाणोवगयं - प्राणं संकट में पड़ गए, पडिसेहिंति - निवारण करते हैं, अत्थामे - आत्मबल रहित, अधारणिजं - सामना करने में असमर्थ, रोहसज्जे - नगर में शत्रुओं के प्रवेश का अवरोध करने में तत्पर।

भावार्थ - जितशतु आदि छहों राजाओं ने राजा कुंभ की सेना का हनन, मंथन करते हुए उनके विशिष्ट योद्धाओं को मार डाला, गिरा डाला, राजचिह्न, ध्वजाओं और पताकाओं को छिन्न-भिन्न कर दिया। कुंभ एवं उसकी सेना सब ओर से धिर गई, तब उसने अपने प्राणों को संकट में पड़ा जाना। इस प्रकार छहों राजाओं द्वारा घेर लिए जाने पर राजा कुंभ, अस्थिर, अबल, शक्तिहीन हो गया। अब शत्रुओं का सामना किया जाना संभव नहीं है, यह सोचकर वह अत्यंत तीव्रता यावत् वेगपूर्वक मिथिला नगरी की ओर लौट चला। मिथिला में प्रविष्ट होकर उसने नगर के द्वार बंद कर दिए और उसमें शत्रुओं के प्रवेश को रोकने हेतु सन्नद्ध हो गया।

मिथिला पर संकट के बादल

(937)

तए णं ते जियसत्तु पामोक्खा छप्पि रायाणो जेणेव मिहिला तेणेव उवागच्छंति २ त्ता मिहिलं रायहाणिं णिस्संचारं णिरुच्चारं सव्वओ समंता ओरुंभित्ताणं चिट्ठंति। तए णं से कुंभए राया मिहिलं रायहाणिं रुद्धं जाणित्ता अरुंगतिरयाए उवट्ठाणसालाए सीहासणवरगए तेसिं जियसत्तु पामोक्खाणं छण्हं राईणं छिद्दाणि य विवराणि य मम्माणि य अलभमाणे बहूहिं आएहि य उवाएहि

य उप्पत्तियाही य ४ बुद्धीहिं परिणामेमाणे २ किंचि आयं वा उवायं वा अलभमाणे ओहयमण संक्रप्ये जाव झियायइ।

शब्दार्थ - णिस्संचारं - आवागमन रहित, णिरुच्चारं - नगर के परकोटे के ऊपर भी गमनागमन शून्य, ओरुंभित्ताणं - अवरोध पूर्वक घेर लिया, ओहयमण संकप्पे - विनष्ट मनः संकल्प युक्त - किं कर्त्तव्य विमूढ़।

भावार्थ - जितशंत्र आदि छहों राजा मिथिला के निकट पहुँचे। उन्होंने मिथिला का घेराव कर लोगों का आवागमन बंद कर दिया। यहाँ तक कि परकोटे पर भी आना-जाना बंद हो गया।

राजा कुंभ ने मिथिला को इस प्रकार घिरी हुई देखा तो वह नगर की भीतरी उपस्थानशाला-सभा भवन में सिंहासनारूढ़ हुआ और जितशत्रु आदि छहों राजाओं के छिद्र, किमयाँ, मर्म, गुण-दोष देखने का प्रयत्न किया किन्तु वैसा नहीं कर सका। उसने अनेक प्रकार के मार्ग, उपाय खोजने में औत्पातिकी आदि चारों प्रकार की बुद्धियों का प्रयोग किया परन्तु उसे बचाव का कोई भी मार्ग, उपाय सूझ नहीं पड़ा। उसका मनः संकल्प चूर-चूर हो गया - वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर, चिंतामन हो गया।

मल्ली द्वारा संकट का समाधान (१३३)

इम च णं मल्ली विदे० ण्हाया जाव बहूहिं खुज्जाहिं परिवुडा जेणेव कुंभए तेणेव उवागच्छइ २ त्ता कुंभगस्स पायगहणं करेड़। तए णं कुंभए राया मिल्लं विदे० णो आढाइ णो परियाणाइ तुसिणीए संचिट्टइ।

शब्दार्थ - खुजा - कुब्ज-वक्र देह संस्थान युक्त।

भावार्थ - इधर विदेहराजकुमारी मल्ली स्नानादि कर बहुत-सी कुबडी दासियों से घिरी हुई राजा कुंभ के पास आई। उनका चरण स्पर्श किया। राजा कुंभ ने न तो राजकुमारी का कुछ आदर ही किया और न उसकी ओर ध्यान ही दिया। वह चुपचाप बैठा रहा।

(१३४)

तए णं मल्ली विदे० कुंभगं रायं एवं वयासी-तुब्भे णं ताओ! अण्णया ममं

एजमाणं जाव णिवेसेह, किण्णं तुन्धं अज ओहयं जाव झियायह? तए णं कुंभए मिल्ल विदे० एवं वयासी-एवं खलु पुत्ता! तव कजे जियसतुपामोक्खेहिं छिहें राईहिं दूया संपेसिया। ते णं मए असक्कारिया जाव णिच्छूढा। तए णं ते जियसत्तू पामोक्खा तेसिं दूयाणं अंतिए एयमट्टं सोच्चा परिकुविया समाणा मिहिलं रायहाणिं णिस्संचारं जाव चिट्टंति। तए णं अहं पुत्ता। तेसिं जियसत्तु पामोक्खाणं छण्हं राईणं अंतराणि अलभमाणे जाव झियामि।

भावार्थ - राजकुमारी मल्ली अपने पिता कुंभ से बोली-तात्! आप जब कभी मुझे आते देखते, आदर करते, गोद में बिठाते। आप किंकर्त्तव्यविमूढ की तरह चिंतातुर क्यों है? यह सुनकर राजा कुंभ ने राजकुमारी मल्ली से कहा—पुत्री! तुम्हें प्राप्त करने के लिए जितशत्र आदि छहों राजाओं ने दूत भेजे। मैंने उनको असत्कार यावत् अपमान कर निकाल दिया। उन दूतों से जितशत्र आदि राजाओं ने यह सुना तो वे अत्यंत कुपित हो गए और मिथिला नगरी को घेर लिया, इसे संचार रहित कर दिया। ऐसा कर वे पड़ाव लगाए यहीं टिके हैं। पुत्री! मैं प्रयत्न करके भी उन छहों राजाओं के छिद्र आदि नहीं जान सका। अतएव मैं चिंता निमन्न हूँ।

(१३५)

तए णं सा मल्ली विदे० कुंभयं रायं एवं वयासी-मा णं तुब्भे ताओ! ओहयमण संकप्पा जाव झियायह तुब्भे णं ताओ! तेसिं जियसत्तुपामोक्खाणं छण्हं राईणं पत्तेयं २ रहिसयं दूय संपेसे करेह एगमेगं एवं वयह-तव देमि मिल्लं विदे० तिकटु संझाकाल समयंसि पविरल मणुस्संसि णिसंत पिडणिसंतंसिं पत्तेयं २ मिहिलं रायहाणिं अणुप्पवेसेह २ ता गब्भघरएसु अणुप्पविसेह मिहिलाए रायहाणीए दुवाराइं पिहेइ २ ता रोहसजे चिट्ठह।

शब्दार्थ - पविरल मणुस्संसि - विरले मनुष्यों के आवागमन से युक्त, णिसंत - शांत - रूप में, पडिणिसंतंसि - जब लोग विश्राम में हों।

भावार्थ - विदेह राजकन्या मल्ली ने राजा कुंभ से कहा-तात! आप चिंतातुर न रहे, यावत् दुःखनिमग्न न रहें। उन छहों राजाओं में से प्रत्येक को गुप्त रूप में दूत भेजें। एक-एक को यह कहलाए कि मैं राजकुमारी मल्ली तुम्हें दूंगा। ऐसा कह कर सायंकाल के समय, जब लोगों का आवागमन बहुत कम हो, लोग शांति से विश्राम कर रहे हों, उनमें से प्रत्येक राजा को राजधानी में प्रविष्ट करवा कर गर्भ गृहों में पहुँचा दें। फिर राजधानी मिथिला के द्वार बंद करवा दें और नगर की रक्षा हेतु सन्नद्ध रहें।

(१३६)

तए णं कुंभए राया एवं तं चेव जाव पवेसेइ रोहसजे चिद्वइ।

भावार्थ - तब राजा कुंभ ने पूर्वोक्त रूप में यावत् मिथिला में प्रवेश कराया, गर्भगृह में ठहराया, स्वयं नगरी की रक्षा हेतु सुसज्ब रहा।

(१३७)

तए णं ते जियसत्तुपामोक्खा छप्पि य रायाणो कल्लं पाउल्पूषा जाव (जलंते) जालंतरेहिं कणगमयं मत्थयछिड्डं पउमुप्पलिपहाणं पडिमं पासंति एस णं मल्ली विदे० तिकट्ट मल्लीए विदे० रूवे य जोव्वणे य लावण्णे य मुच्छिया गिद्धा जाव अज्झोववण्णा अणिमिसाए दिट्टीए पेहमाणा २ च्रिटंति।

भावार्थ - गर्भगृह स्थित जितशतु आदि राजाओं ने प्रातःकाल होने पर यावत् जाली में से मल्लीकुमारी की स्वर्णमयी प्रतिमा को देखा, जिसका मस्तक कमलाकार ढक्कन से ढका था। "यह विदेह की उत्तम राजकन्या मल्ली है" यह समझ कर वे उसके रूप सौन्दर्य लावण्य में मूर्च्छित लोलुप यावत् अत्यंत आसक्त होते हुए, अनिमेष दृष्टि से देखने लगे।

मल्ली द्वारा प्रतिबोध

(935)

तए णं सा मल्ली विदे० ण्हाया जाव पायच्छिता सव्वालंकार-विभूसिया बहूहिं खुजाहिं जाव परिक्खिता जेणेव जालघरए जेणेव कणग पडिमा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता तीसे कणगपडिमाए मत्थयाओ तं पउमं अवणेइ। तए णं गंधे णिद्धावइ से जहाणामए अहिमडेइ वा जाव असुभतराए चेव।

शब्दार्थ - परिक्खिता - परिवेष्टित, अवणेड़ - हटाती, णिद्धावड़ - निकलने लगी, असुभतराए - अत्यंत विकृति युक्त।

भावार्थ - तब विदेह राजकुमारी मल्ली ने स्नान किया यावत् नित्य नैमित्तिक मंगल कृत्य किए। आभूषण धारण किए। फिर वह बहुत सी कुब्जा यावत् दासियों से घिरी हुई जालगृह में स्वर्ण प्रतिमा के निकट गई। उसके मस्तक के ऊपर के कमलाकार ढक्कन को हटाया। तब मरे हुए सांप के शरीर जैसी यावत् अत्यंत विकृति युक्त दुर्गन्ध फैलने लगी।

(38P)

तए णं ते जियसत्तुपामोक्खा ते णं असुभेणं गंधेणं अभिभूया समाणा सएहिं २ उत्तरिजेहि आसाइं पिहंति २ ता परम्मुहा चिट्ठंति। तए णं सा मल्ली विदे० ते जियसत्तुपामोक्खे एवं वयासी-िकं णं तुब्धं देवाणुप्पिया! सएहिं २ उत्तरिजेहिं जाव परम्मुहा चिट्ठह? तए णं ते जियसत्तू पामोक्खा मल्लिं विदे० एवं वयंति - एवं खलु देवाणुप्पिए! अम्हे इमेणं असुभेणं गंधेणं अभिभूया समाणा सएहिं २ जाव चिट्ठामो।

शब्दार्थ - परम्मुहा - पराङ्मुख।

भावार्थ - तब जितशत्रु आदि राजाओं ने दुर्गन्ध से अभिभूत, आकुल होकर अपने-अपने उत्तरीय वस्त्रों से अपनी नासिका ढक ली और पराङ्मुख हो गए-दूसरी ओर मुंह फेर लिया।

राजकुमारी मल्ली ने उन राजाओं से कहा - देवानुप्रियो! आपने अपने उत्तरीय वस्त्र से नाक ढर्क कर, मुंह को क्यों फिर लिया?

इस पर जितशत्रु आदि राजाओं ने राजकुमारी मल्ली से कहा-देवानुप्रिय! हमने इस विकृति युक्त दुर्गन्ध से घबराकर अपने-अपने यावत् उत्तरीय वस्त्र से नाक ढक कर, मुँह फेर लिए हैं।

ુ(૧૪૦)

तए णं मल्ली विदे० ते जियसत्तु पामोक्खे एवं वयासी-जइ ताव देवाणुप्पिया! इमीमे कणग जाव पडिमाए कल्लाकिल्लं ताओ मणुण्णाओ असणाओ ४ एगमेगे पिंडे पक्खिप्पमाणे २ इमेयारूवे असुभे पोग्गल परिणामे इमस्स पुण ओरालिय सरीरस्स खेलासवस्स वंतासवस्स पित्तासवस्स सुक्कासवस्स सोणियपूयासवस्स दुरूव (रुय) ऊसास णीसासस्स दुरूवमुत्तपुइय पुरीसपुण्णस्स सडण जाव धम्मस्स

केरिसए (य) परिणामे भविस्सइ? तं मा णं तुब्भे देवाणुप्पिया! माणुस्सएसु काम भोगेसु सज्जह रज्जह गिज्झह मुज्झह अज्झोववज्जह।

शब्दार्थ - कल्लाकल्लिं - प्रतिदिन, मणुण्णाओ - मनोज्ञ-मन को प्रिय लगने वाले, दुरूव - दूषित, सज्जह - आसक्त, रज्जह - राग युक्त, गिज्झह - लोलुपता युक्त, मुज्झह - मूच्छियुक्त, अज्झोववज्जह - काम-भोगात्मक आर्तथ्यान युक्त।

भावार्थ - राजकुमारी मल्ली ने जितशतु आदि राजाओं से इस प्रकार कहा - देवानुप्रियो! यदि यह स्वर्णमयी यावत् मस्तक पर छेद युक्त प्रतिमा जिसमें प्रतिदिन श्रेष्ठ अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य पदार्थों का पिण्ड डाला जाता रहा है, यदि ऐसे अशुभ पुद्गल परिणामों में परिणित हो सकती है तो इस औदारिक शरीर, जो पित्त, वमन, कफ, शोणित तथा मवाद का निर्झर रूप है, दूषित श्वासोच्छ्वास, मूत्र विष्ठा से भरा हुआ है, जो सड़ने वाला यावत् मिटने वाला है, उसकी कैसी परिणित होगी, जरा सोचो?

देवानुप्रियो! आप मानव जीवनगत काम भोगों में आसक्त, रंजित, लोलुप, मूर्च्छित एवं तन्मूलक आर्त्तध्यान में संलम्न न हों।

विवेचन - मल्ली भगवती ने अपने ज्ञान के द्वारा सब से कम हिंसक इसी तरीके को जाना, अतः इसका उपयोग किया। यह तरीका अपने आप में सावद्य तो था ही। गृहस्थ अवस्था में स्नान आदि सावद्य प्रवृत्तियाँ भी करने वाले होने से ही इस तरीके को अपनाया गया था। अतः इसे प्रशस्त नहीं कहा जा सकता।

(१४१)

एवं खलु देवाणुप्पिया! तुम्हे (अम्हे) इमाओ तच्चे भवगाहणे अवरविदेहवासे सिललावइंसि विजए वीयसोगाए रायहाणीए महब्बलपामोक्खा सत्तविय-वालवयंस्या रायाणो होत्था सहजाया जाव पव्वइया। तए णं अहं देवाणुप्पिया! इमेणं कारणेणं इत्थीणामगोयं कम्मं णिव्वत्तेमि—जइ णं तुब्भं चउत्थं उवसंपजित्ताणं विहरह तए णं अहं छट्टं उवसंपजित्ताणं विहरामि सेसं तहेव सव्वं।

भावार्थ - देवानुप्रियो! मैं और आप इससे पूर्व के तीसरे भव में, अपरविदेह वर्ष के अन्तवर्ती सलिलावती विजय में, वीतशोका राजधानी में महाबल आदि सात बालमित्र राजा थे। हम साथ ही उत्पन्न हुए थे यावत् साथ ही प्रव्रजित हुए। देवानुप्रियो! जब आप उपवास करते थे तब मैं बिना बताए बेला करती थी। इसीलिए मुझे स्त्रीनाम गोत्र उपार्जित हुआ। बाकी का वर्णन पूर्ववत् ग्राह्य है।

विवेचन - कोई भी जीव नववें गुणस्थान से पहले अवेदी नहीं होता है। अतः मिल्लिराजकुमारी भी संयम ग्रहण करने के बाद क्षपक श्रेणी चढ़ते हुए नववें गुणस्थान में अवेदी बने थे। मल्ली भगवती के 'तविवसय चेव माया, जाया जुवइत्तहेउत्ति' बताया है। इसिलए उनके उस समय मायाशल्य का होना स्पष्ट होता है। मायाशल्य के द्वारा स्त्रीवेद का बंध होता है, अंगोपांग का नहीं। मल्ली भगवती के निकाचित स्त्रीवेद का बंध हो जाने के कारण आलोचना के द्वारा मायाशल्य का उद्धार (नाश) हो जाने पर भी निकाचित होने के कारण पूर्वबद्ध स्त्रीवेद की निर्जरा नहीं हुई। इसीलिए गृहस्थावस्था में 'स्त्रीवेद' का उदय रहा।

(૧૪૨)

तए णं तुब्भे देवाणुप्पिया! कालमासे कालं किच्चा जयंते विमाणे उववण्णा। तत्थ णं तु तुब्भे देसूणाइं बत्तीसाइं सागरोवमाइं ठिई। तए णं तुब्भे ताओ देवलोयाओ अणंतरं चयं चइत्ता इहेव जंबुदीवे २ जाव साइं २ रजाइं उवसंपिकित्ताणं विहरइ। तए णं अहं देवाणुप्पिया। ताओ देवलोयाओ आउक्खएणं जाव दारियत्ताए पच्चायाया।

किं थ तयं पम्हुटं जं थ तया भो! जयंत पवरंमि। बुत्था समयणिबद्धं देवा तं संभरह जाइं॥

शब्दार्थ - पच्चायाया - उत्पन्न हुई, पम्हुटं - भूल गए, पवरंमि - अनुत्तर (विमान) में, वुत्था - निवास करते थे, समयणिबद्धं - उस समय प्रतिज्ञात किया, संभरह - स्मरण करो।

भावार्थ - मल्ली ने आगे कहा - देवानुप्रियो! तत्पश्चात् आयुष्य पूर्ण होने पर यथासमय देह त्याग कर, तुम जयंत विमान में उत्पन्न हुए। वहाँ तुम्हारा आयुष्य कुछ कम बत्तीस सागरोपम था। उस देवलोक से च्युत होकर, आयुष्य पूर्ण कर यहाँ जम्बूद्वीप के अंतर्गत भरत क्षेत्र में अपने-अपने राज्य का आधिपत्य पाकर रह रहे हैं।

गाथार्थ - देवानुप्रियो! मैं अपना आयुष्य पूर्ण कर देवलोक से यहाँ कन्या के रूप में

उत्पन्न हुई हूँ। क्या तुम लोग भूल गए जब जयंत अनुत्तर विमान में वास करते थे, वहाँ हमने एक दूसरे को प्रतिबोध देने की प्रतिज्ञा की थी। तुम उस देव भवगत वृत्तांत को स्मरण करो।

विवेचन - महाबल अनगार ने तपविषयक माया करने से 'निकाचित स्त्रीवेद' का बन्ध किया था। आलोचना, प्रतिक्रमण नहीं करने वाले भी संलेखना कर सकते हैं। इतने मात्र से (संलेखना कर लेने से) वे आराधक नहीं हो जाते हैं। महाबल अनगार तो आलोचना, प्रतिक्रमण करके संयम साधना को शुद्ध करके आराधक बने थे। आराधक होने पर ही अनुत्तर विमान में जाया जाता है। आराधक हो जाने पर पूर्वबद्ध (तीव्र माया भावों में बंधा हुआ-मिथ्यात्व अवस्था में) स्त्री वेद का निकाचित बंध होने के कारण उसमें परिवर्तन नहीं हो सका।

आराधक होने के बाद तो उस भव में स्त्रीवेद आदि पाप प्रकृतियों का निकाचित बंध नहीं होता है। किन्तु पूर्व में 'तीव्र माया' आदि के भावों में बन्धा हुआ 'निकाचित स्त्रीवेद' का बन्ध तो आराधक को एवं अनुत्तर विमान में उत्पन्न होने वाले यावत् लवसप्तम देवों को भी भोगने पड़ते हैं। यही कारण है कि - एक भवावतारी 'तीर्थंकर नाम गोत्र' बांधे हुए महाबल को भी स्त्रीवेदी बनना पड़ा।

भगवती आदि सूत्रों में बताया गया है कि - एक भी अकृत्य स्थान की जानबूझकर (आभोग पूर्वक) आलोचना नहीं करने पर व्यक्ति आराधक नहीं होता है। महाबल अनगार आराधक होने से उन्होंने अपने 'अकृत्य स्थान (तप विषयक माया)' की शुद्धि तो की ही थी। किन्तु निकाचित स्त्रीवेद का बन्ध हो जाने से उसमें परिवर्तन नहीं हो सका।

'स्त्री अंगोपांग' नाम कर्म की कोई प्रकृति नहीं है। ज्ञाता सूत्र अ० द में 'इत्थि नाम गोयं कम्मं' शब्द आ जाने मात्र से इसे नाम गोत्र कर्म की प्रकृति मान लेना अनेक ऊहापोहों का कारण बन सकता है। आगम में 'तित्थयर नाम गोयं' 'कोहवेयणिज्जं' इत्यादि शब्द आते हैं इस कारण से 'तीर्थंकर नाम' गोत्र कर्म की प्रकृति नहीं हो जाती है। एवं क्रोध मोह वेदनीय कर्म की प्रकृति नहीं हो जाती है। आगमकारों का आशय-'तीर्थंकर इस नाम से प्रसिद्ध होने के कारण नामकर्म की प्रकृति होते हुए भी उसे 'तीर्थंकर नाम गोत्र' कह देते हैं।' क्रोधादि के रूप में वेदा जाने के कारण मोहनीय कर्म की प्रकृति होते हुए भी आगमकार उसे 'क्रोधादि वेदनीय' कह देते हैं। इसी प्रकार 'स्त्रीवेदी' इस नाम से जिस कर्म के उदय से प्रसिद्धि, उस मोहनीय कर्म की प्रकृति को भी 'स्त्रीनाम गोत्र' कह देते हैं। क्योंकि टीका में भी बताया है - 'स्त्रीनाम-स्त्री परिणाम: स्त्रीत्वं यदुदयाद्भवित तत्स्त्रीनामिति गोत्रमिधद्यानं यस्य तत्स्त्रीनाम् गोत्रम्'

इस टीका पाठ में स्पष्ट रूप से 'स्त्री परिणाम' को अर्थात् जिस कर्म के उदय से स्त्रीत्व (स्त्रीपन) प्राप्त हो उसको अर्थात् 'स्त्रीवेद' को 'स्त्री नाम' कहा है। 'स्त्री नाम' इस प्रकार का गोत्र अर्थात् अभिधान संज्ञा जिस कर्म की हो, उसे 'स्त्री नाम गोत्र' कहा जाता है। इस प्रकार टीकाकार 'स्त्रीवेदमोहनीय' को ही 'स्त्रीनाम गोत्र' समझा रहे हैं। जो अन्य आगम पाठों से सम्मत है। स्त्रीवेद का उदय होने पर तदनुरूप शरीर रचना एवं तदनुरूप नाम से प्रसिद्धि होने से नाम गोत्र कर्म भी साथ में तो रहता ही है। मुख्यता तो मोहनीय कर्म की ही समझी जाती है। पूज्य श्री घासीलाल जी म. सा. की टीका में भी 'स्त्रीभावः स्त्रीत्वं' शब्द प्राचीन अभयावृत्ति के 'स्त्री परिणामः-स्त्रीत्वं का ही शब्दान्तर।' पुरानी टीका के विचारों का खण्डन भी नहीं किया है। अतः हमारी दृष्टि से तो पूज्य घासीलाल जी म. सा. भी इसका अर्थ 'स्त्रीवेद मोहनीय' ही करते हैं। स्त्री प्रायोग्य शरीर की रचना में स्त्रीवेद का उदय ही प्रमुख कारण समझा जाता है। देह धारण के पश्चात् वेद की उत्कटता के कारण भाव वेद में परिवर्तन हो सकता है। मन्द वेद में भाव वेदों के परिवर्तन संभव नहीं लगते हैं। शरीर रचना के समय तो भाववेद के अनुसार ही प्रायः रचना संभव लगती है।

(१४३)

तए णं तेसिं जियसत्तुपामोक्खाणं छण्हं राईणं मल्लीए विदे० अंतिए एयमहं सोच्चा २ सुभेणं परिणामेणं पसत्थेणं अज्झवसाणेणं लेसाहिं विसुज्झमाणीहिं तयावरिणजाणं कम्माणं खओवसमेणं ईहावूह जाव सिण्णजाईसरणे समुप्पण्णे एयमहं सम्मं अभिसमागच्छंति।

शब्दार्थ - ईहा - अर्थ विषयक जिज्ञासा पूर्ण चेष्टा, ऊह - अर्थ निश्चय का प्रयास। भावार्थ - तत्पश्चात् जितशत्रु आदि राजाओं को विदेह राजकन्या मल्ली से यह सुनकर शुभ परिणाम, प्रशस्त अध्यवसाय, विशुद्ध होती हुई लेश्याओं तथा जातिस्मरण ज्ञान को आवृत करने वाले कर्मों के क्षयोपशम से ईहा, अपोह, मार्गण, गवेषण पूर्वक संज्ञी-समनस्क प्राणियों को होने वाला जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। फलतः उन्होंने इस अभिप्राय को भली भांति जान लिया।

(१४४)

तए णं मल्ली अरहा जियसत्तुपामोक्खे छप्पि रायाणो समुप्पण्ण जाईसरणे

www.jainelibrary.org

जाणित्ता गब्भघराणं दाराइं विहाडावेइ। तए णं ते जियसत्तु पामोक्खा जेणेव मल्ली अरहा तेणेव उवागच्छंति। तए णं महब्बलपामोक्खा सत्त वि य बालवयंसा एगयओ अभिसमण्णागया (या) वि होत्था।

शब्दार्थ - विहाडावेड - खुलवाया।

भावार्थ - तत्पश्चात् मल्ली अरहन्त ने जब यह जाना कि जितशत्रु आदि छहों राजाओं को जाति स्मरण जान हो गया है तो उन्होंने गर्भगृह के दरवाजे खुलवा दिए। छहों राजा तीर्थंकर मल्ली के पास आए। तब पूर्व-भव के महाबल आदि सातों बाल मित्रों का परस्पर मिलन हुआ।

(१४५)

तए णं मल्ली अरहा ते जियसतुपामोक्खे छप्पि य रायाणो एवं वयासी-एवं खलु अहं देवाणुप्पिया! संसार भउब्बिगा जाव पब्वयामि, तं तुब्भे णं किं करेह किं ववसह (जाव) किं भे हियसामत्थे?

शब्दार्थ - ववसह - व्यवसाय-उद्यम करोगे।

भावार्थ - तब मल्ली अरहंत ने जितशत्रु आदि छहों राजाओं से कहा - देवानुप्रियो! संसार के भय से उद्दिग्न यावत् व्यथित होकर मेरा दीक्षा लेने का निश्चय है। आप क्या करोगे? कैसे रहोगे? तुम्हारे मन में कैसी इच्छा है?

(१४६)

तए णं जियसत्तु पामोक्खा छ० रा० मिल्ल अरहं एवं वयासी-जइ णं तुब्भे देवाणुप्पिया! संसार जाव पव्वयह अम्हाणं देवाणुप्पिया! के अण्णे आलंबणे वा आहारे वा पडिबंधे वा? जह चेव णं देवाणुप्पिया! तुब्भे अम्हे इओ तच्चे भवगहणे बहूसु कजेसु य मेढीपमाणं जाव धम्मधुरा होत्था तहा चेव णं देवाणुप्पिया इण्हिंपि जाव भविस्सह। अम्हे वियणं देवाणुप्पिया! संसारभउव्विगा जाव भीया जम्मण मरणाणं देवाणुप्पियाणं सिद्धं मुंडा भवित्ता जाव पव्वयाओ।

ा शब्दार्थ ~ इण्हिंपि - इस समय भी।

भावार्थ - जितशत्रु आदि राजाओं ने मल्ली अरहंत से इस प्रकार कहा - देवानुप्रिय!

संसार भय से उद्विग्न होकर यावत् भयभीत होकर आप प्रव्रज्या लेती हैं तो फिर हम लोगों का सहारा क्या रहेगा? देवानुप्रिये! जैसे तुम इस भव से पूर्वतन तृतीय भव में हमारे लिए बहुत से कार्यों में भी मेढी (मुखिया) प्रमाण यावत् धर्माराधना में प्रेरणा स्वरूप रही हैं, उसी प्रकार अब भी यावत् हमारे लिए आधार रूप रहें।

देवानुप्रिये! हम भी संसार के भय से उद्विग्न यावत् जन्म-मरण से भयभीत होते हुए, आपके साथ ही मुण्डित यावत् प्रव्रजित होंगे।

(१४७)

तए णं मल्ली अरहा ते जियसत्तुपामोक्खे एवं वयासी—(जं) जड़ णं तुब्धे संसार जाव मए सिद्धें पव्वयह तं गच्छह णं तुब्धे देवाणुप्पिया! सएहिं २ रजेहिं जेड्डे पुत्ते रज्जे ठावेह २ ता पुरिस सहस्सवाहिणीओ सीयाओ दुरूहह (दुरूढा समाणा) मम अंतियं पाउब्धवह।

भावार्थ - तदनंतर मल्ली अरहंत ने जितशत्रु आदि राजाओं से कहा - यदि आप संसार भय से उद्विग्न हो मेरे साथ दीक्षित होते हों तो अपने-अपने राज्य में, अपने ज्येष्ठ पुत्र को राज्य सिंहासन पर स्थापित करो। वैसा कर एक हजार पुरुषों द्वारा वहन किए जाने योग्य शिविकाओं में आरूढ़ होकर मेरे पास आओ।

(१४८)

तए णं ते जियसत्तुपामोक्खा मल्लिस्स अरहओ एयमट्टं पडिसुणेंति।

भावार्थ - जितशत्रु आदि राजाओं ने मल्ली अरहंत के इस अभिप्राय-कथन को स्वीकार किया, तदनुरूप कार्य करने का निश्चय किया।

(386)

्र तए णं मल्ली अरहा ते जियसत्तु पामोक्खे गहाय जेणेव कुंभए (राया) तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कुंभगस्स पाएसु पाडेइ। तए णं कुंभए (राया) ते जियसत्तुपामोक्खा विउलेणं असणेणं ४ पुष्फवत्थगंधमल्लालंकारेणं सक्कारेइ जाव पडिविसजेइ। भावार्थ - मल्ली अरहंत जितशत्रु आदि राजाओं को लेकर राजा कुंभ के पास गई। उन सबको कुंभ के चरणों में प्रणाम करवाया।

राजा कुंभ ने जितशत्रु आदि राजाओं का विपुल अशन-पान-खाद्य-स्वाद्य, सुगंधित द्रव्य, माला, अलंकार आदि द्वारा सत्कार, सम्मान कर विदा किया।

(१५०)

तए णं ते जियसत्तुपामोक्खा कुंभएणं रण्णा विसज्जिया समाणा जेणेव साइं २ रजाइं जेणेव णगराइं तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सगाइं (२) रजाइं उवसंपज्जिता (णं) विहरंति।

भावार्थ - राजा कुंभ द्वारा विदा किए जाने पर वे जितशत्रु आदि राजा अपने-अपने नगरों में आए। अपने-अपने राज्यों का शासन, पालन, उपभोग करते हुए रहने लगे।

(१५१)

तए णं मल्ली अरहा संवच्छरावसाणे णिक्खमिस्सामित्ति मणं पहारेइ। भावार्थ - तदनंतर मल्ली अरहंत ने ऐसा निश्चय किया कि एक वर्ष पश्चात् मैं दीक्षा ग्रहण करूँगी।

(947)

तेणं कालेणं तेणं समएणं सक्कस्स आसणं चलइ। तए णं सक्के देविंदे देवराया आसणं चिलयं पासइ पासित्ता ओहिं पउंजइ २ ता मिललं अरहं ओहिणा आभोएइ २ ता इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पजित्था-एवं खलु जंबूद्दीवे २ भारहे वासे मिहिलाए कुंभगस्स रण्णो मल्ली अरहा णिक्खमिस्सामित्ति मणं पहारेइ।

भावार्थ - उस काल, उस समय शक्रेन्द्र का आसन चलायमान हुआ। देवराज शक्र ने अपने आसन को जब चिलत देखा, तब उसने अवधिज्ञान का प्रयोग किया। प्रयोग करने से उसने जाना यावत् चिंतन किया कि जंबूद्वीप में, भारत वर्ष में, मिथिला राजधानी में, कुंभ राजा की पुत्री मल्ली अरहंत ने निष्क्रमण करने का-दीक्षा लेने का निश्चय किया है।

(१५३)

तं जीयमेयं तीयपच्चुप्पण्णमणागयाणं सक्काणं (३) अरहंताणं भगवंताणं णिक्खममाणाणं इमेयारूवं अत्थसंपयाणं दलित्तए तंजहा -

तिण्णेव य कोडिसया अट्ठासीइं च होंति कोडीओ। असिइं च सयसहस्सा इंदा दलयंति अरहाणं।।

शब्दार्थ - जीयं - परंपरागत मर्यादा-आचार, तीय - अतीत-भूतकाल, पच्चुप्पण्ण - वर्तमान, अणागयाणं - भविष्य।

भावार्थ - वर्तमान, भूत और भविष्य के होने वाले शक्रेन्द्रों का यह परम्परागत मर्यादानुगत आचार है कि वे दीक्षा लेते हुए अरहत भगवंतों को दान देने हेतु इस रूप में अर्थ संपदा प्राप्त कराएं।

गाथा - तीन अरब अहासी करोड़ अस्सी लाख स्वर्ण मुद्राएं इन्द्र अरहंतों को प्राप्त कराते हैं। (१५४)

एवं संपेहेइ, संपेहिता वेसमणं देवं सद्दावेइ, सद्दावेता एवं व्रयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया! जंबुद्दीवे २ भारहे वासे जाव असीइं च सयसहस्साइं दलइत्तए, तं गच्छह णं देवाणुप्पिया! जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे मिहिलाए कुंभगभवणंसि इमेयारूवं अत्थसंपयाणं साहराहि २ ता खिप्पामेव मम एयमाणत्तियं पच्चिप्पिणाहि।

शब्दार्थ - संपेहेड़ - संप्रेक्षण, चिंतन, अत्थसंपयाणं - अर्थ-संपत्ति-धन, साहराहि -प्राप्त कराओ-पहुँचाओ।

भावार्थ - शक्रेन्द्र ने इस प्रकार चिंतन किया- उसने वैश्रमण देव को बुलाया और कहा-देवानुप्रिय! जंबूद्वीप में, भारत वर्ष में यावत् मल्ली अरहंत के दीक्षा लेने के प्रसंग को उदिष्ट कर तीन सौ अद्वासी करोड़ अस्सी लाख स्वर्ण मुद्राएं देनी हैं। इसलिए देवानुप्रिय! जंबूद्वीप के अन्तर्गत, भारत वर्ष में, राजा कुंभ के भवन में, यह धन पहुँचाने की व्यवस्था करो एवं शीघ्र ही मेरे आज्ञानुरूप किए जाने की सूचना दो।

www.jainelibrary.org

(१५५)

तए णं से वेसमणे देवे सक्केणं देविंदेणं ० एवं वृत्ते समाणे हट्टे० करयल जाव पिडसुणेइ २ ता जंभए देवे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी-गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! जंबुद्दीवं २ भारहं वासं मिहिलं रायहाणिं कुंभगस्स रण्णो-भवणंसि तिण्णेव य कोडिसया अडासीयं च कोडीओ असियं च सयसहस्साइं अयमेयारूवं अत्थसंपयाणं साहरह २ ता मम एयमाणत्तियं पच्चिप्पिणह।

भावार्थ - देवेन्द्र देवराज शक्र द्वारा यों कहे जाने पर वैश्रमण देव बहुत हर्षित और परितुष्ट हुआ। हाथ जोड़ कर यावत् मस्तक झुकाकर शक्रेन्द्र का आदेश स्वीकार किया। जृंभक देवों को बुलाया और उनसे कहा - देवानुप्रियो! तुम जंबूद्वीप के अंतर्गत, भारत वर्ष में, मिथिला राजधानी में, कुंभ राजा के मह्तून में, तीन सौ अहासी करोड़ अस्सी लाख स्वर्णमुद्राएँ पहुँचाओं। वैसा कर मुझे सूचित करो।

(१५६)

तए णं ते जंभगा देवा वेसमणेण जाव सुणेता उत्तरपुरिच्छमं दिसीभागं अवक्कमंति जाव उत्तरवेउव्वियाइं रूवाइं विउव्वंति २ ता ताए उविकहाए जाव वीइवयमाणा जेणेव जंबुद्दीवे २ भारहेवासे जेणेव मिहिला रायहाणी जेणेव कुंभगस्स रण्णो भवणे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता कुंभगस्स रण्णो भवणंसि तिण्णि कोडिसया जाव साहरंति २ ता जेणेव वेसमणे देवे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयल जाव पच्चिप्पणंति।

भावार्थ - तदनंतर वैश्रमण द्वारा यों आज्ञा दिए जाने पर जंभृक देव यावत् आदेश को स्वीकार कर उत्तरपूर्व दिशा भाग-ईशान कोण में गए। उत्तरवैक्रिय समुद्धात द्वारा-उत्तर वैक्रिय रूप की विकुर्वणा की। दिव्य, उत्कृष्ट गित से चलते हुए वे जम्बूद्वीप के अंतर्गत, भारत देश में, मिथिला नगरी में, जहाँ राजा कुंभ का भवन था, वहाँ आए। वहाँ तीन सौ अष्टासी करोड़ अस्सी लाख स्वर्णमुद्राएँ पहुँचाई। फिर वापस वैश्रमण देव के पास आए। हाथ-जोड़ कर मस्तक नवाकर निवेदित किया-आपकी आज्ञानुरूप कार्य कर आए हैं।

(এম্বড)

तए णं से वेसमणे देवे जेणेव सक्के ३ तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल जाव पच्चप्पिणइ।

भावार्थ - तदनंतर कैश्रमण देव देवेन्द्र शक्र के पास आया और हाथ जोड़ कर यावत् मस्तक झुकाकर उनकी आज्ञानुरूप किए जाने की सूचना दी।

विवेचन - पृथ्वी का एक नाम 'वसुन्धरा' भी है। वसुन्धरा का शब्दार्थ है - वसु अर्थात् धन को धारण करने वाली। 'पदे पदे निधानानि' कहावत भी प्रसिद्ध है, जिनका आशय भी यही है कि इस पृथ्वी में जगह-जगह निधान-खजाने भरे पड़े हैं। जूम्भक देव अवधिज्ञानी होते हैं। उन्हें ज्ञान होता है कि कहाँ-कहाँ कितना द्रव्य पड़ा है। जिन निधानों का कोई स्वामी नहीं बचा रहता, जिनका नामगोत्र भी निश्शेष हो जाता है, जिनके वंश में कोई उत्तराधिकारी नहीं रहता, जो निधान अस्वामिक हैं, उनमें से जूम्भक देव इतना द्रव्य निकाल कर तीर्थंकर के वर्षीदान के लिए उनके घर में पहुँचाते हैं।

विपुल दान (१५८)

तए णं मल्ली अरहा कल्लाकिल्लं जाव मागहओ पायरासो ति बहूणं सणाहाण य अणाहाण य पंथियाण य पहियाण य करोडियाण य कप्पडियाण य एगमेगं हिरण्णकोडिं अट्ट य अणुणाइं सयसहस्साइं इमेयारूवं अत्थसंपयाणं दलयइ।

शब्दार्थ - सणाहाण - सनाथजन, अणाहाण - अनाथ, पंथियाण - निरंतर मार्ग गामी, पहियाण - प्रयोजनवश मार्ग पर चलने वाले-राहगीर, करोडियाण - कापालिक-हाथ में कपाल (खोपड़ी) लिए भिक्षा मांगने वाले, कप्पडियाण - कार्पटिक-कंथाधारी भिक्षुओं को अणुणाइं - पूरी।

भावार्थ - तब मल्ली अरहंत ने प्रातःकालासे लेकर मगध देश में प्रचलित प्राभातिक भोजन वेला तक बहुत से सनार्थो, अनार्थो, पांथिकों, पथिकों, कापालिकों, कार्पटिकों आदि को प्रतिदिन पूरी एक करोड़ आठ लाख स्वर्ण मुद्राएं दान में देने लगे।

(948)

तए णं से कुंभए राया मिहिलाए रायहाणीए तत्थ २ तिहं २ देसे २ बहूओ महाणससालाओं करेइ। तत्थ णं बहवे मणुया दिण्णभइभत्तवेयणा विउलं असणं ४ उवक्खडेंति० जे जहा आगच्छंति तंजहा-पंथिया वा पिहया वा करोडिया वा कप्पडिया वा पासंडत्था वा गिहत्था वा तस्स य तहा आसत्थस्स वीसत्थस्स सुहासणवरगयस्स तं विउलं असणं ४ परिभाएमाणा परिवेसेमाणा विहरंति।

शब्दार्थ - महाणससालाओं - भोजनशालाएँ, भइ - भृति-काम करने वाले को तदाक्षित जनों के लिए अन्नादि रूप पारिश्रमिक, भत्त - भोजन, वेयण - वेतन, पासंडत्था-पाषण्डस्थ-अन्य मतानुयायी, परिभाएमाणा - सम्मान पूर्वक देते हुए, परिवेसेमाणा - परोसते हुए।

भावार्थ - राजा कुंभक ने राजधानी मिथिला में भिन्न-भिन्न स्थानों पर अनेक भोजन-शालाएँ बनवाई। वहाँ भृति, भोजन एवं वेतन पर बहुत से आदिमयों को नियुक्त किया, जो विपुल मात्रा में अशन-पान-खाद्य-स्वाद्य तैयार करते थे। आने वाले पंथिक, पथिक, कापालिक, कार्पटिक, परमतानुयायी, साधु-संत तथा गृहस्थजनों को वहाँ आश्वस्त विश्वस्त कर, उनके लिए विश्राम आदि की व्यवस्था कर उनके लिए सुखद आसन बिछाकर उन्हें यथेष्ट अशन-पान-खाद्य-स्वाद्य पदार्थ सम्मान पूर्व देते थे, परोसते थे।

(9६०)

तए णं मिहिलाए सिंघाडग जाव बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ-एवं खलु देवाणुष्पिया! कुंभगस्स रण्णो भवणंसि सव्वकामगुणियं किमिच्छियं विपुलं असणं ४ बहुणं समणाण य जाव परिवेसिजइ।

वरवरिया घोसिजड किमिन्छियं दिजए बहुविहीयं। सुरअसुर देव दाणवणरिंद महियाण णिक्खमणे॥१॥ 🎉

शब्दार्थ - सब्बकामगुणियं - सर्वकामगुणितं - सब प्रकार के सुंदर रूप, रस, गंध एवं स्पर्श युक्त-मनोनुकूल, किमिच्छयं - इच्छानुरूप, वरवरिया घोसिजड़ - मांगो-मांगो ऐसी घोषणा की जाती है, महियाण - अरहंतों के-तीर्थंकरों के।

भावार्थ - राजधानी मिथिला में तिराहे यावत् चौराहे, चौक आदि स्थानों में बहुत से लोग परस्पर इस प्रकार कहते थे - देवानुप्रियो! कुंभ राजा के भवन में सर्वकाम गुणित-मनोवांछित रसादि युक्त विपुल मात्रा में अशन-पान-खाद्य-स्वाद्य आदि बहुत से श्रमणों यावत् अन्यान्यजनों को दिये जा रहे हैं।

गाथा - सुर, असुर, देव दानव एवं नरेन्द्र पूजित तीर्थंकरों के दीक्षा के अवसर पर यह घोषणा की जाती है - 'मांगो-मांगो।' मांगने वालों को बहुत प्रकार का यथेष्ट दान दिया जाता है।

(989)

तए णं मल्ली अरहा संवच्छरेणं तिण्णि कोडिसया अहासीइं च होंति कोडीओ असिइं च सयसहस्साइं इमेयारूवं अत्थसंपयाणं दलइत्ता णिक्खमामिति मणं पहारेइ।

भावार्थ - फिर मल्ली अरहंत ने एक वर्ष तक तीन सौ अठासी करोड़ अस्सी लाख स्वर्ण मुद्रा परिमित दान देकर मन में ऐसा निश्चय किया कि अब मैं दीक्षा ग्रहण करूँ।

(१६२)

तेणं कालेणं तेणं समएणं लोगंतिया देवा बंभलोए कप्पे रिट्ठे विमाण पत्थडे सएहिं २ विमाणेहिं सएहिं २ पासायविडंसएहिं पत्तेयं २ चउिहं सामाणिय साहस्सीहिं तिहिं परिसाहिं सत्तिहं अणिएहिं सत्तिहें अणियाहिवईहिं सोलसिहं आयरक्ख- देवसाहस्सीहिं अण्णेहि य बहूहिं लोगंतिएहिं देवेहिं सिद्धं संपरिवुडा महया-हयणट्टगीयवाइय जाव रवेणं भुंजमाणा विहरंति तंजहा -

सारस्सयमाङ्ख्या वण्ही वरुणा य गद्दतीया य।

तुसिया अव्वाबाहा अगिच्चा चेव रिट्टा य॥१॥

शब्दार्थ - पासायविंडसएहिं - श्रेष्ठ प्रासादों में, आयरक्ख - आत्मरक्षक।

भावार्थ - उस काल, उस समय लोकांतिक देव ब्रह्मलोक नामक पंचम देवलोक में, अरिष्ट नामक विमान के प्रस्तट में, अपने-अपने विमानों से, उत्तम प्रासादों से, प्रत्येक-प्रत्येक चार-चार सहस्र सामानिक देवों से, तीन-तीन परिषदों से, सात-सात अनीकों-सेनाओं से, सात-सात सेनानायकों से, सोलह-सोलह सहस्र आत्म रक्षक देवों से तथा अन्य, अनेक लोकांतिक

www.jainelibrary.org

देवों से युक्त विविध वाद्यों की ध्वनि, नृत्य, गीत आदि के साथ, दिव्य भोग भोगते हुए, आनंद निमन्न थे।

गाथा - लोकांतिक एवं रिष्ट देवों के नाम इस प्रकार हैं - सारस्वत, आदित्य, वहि, वरुण, गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध, आग्नेय एवं रिष्ट।

देव-प्रेरणा

(१६३)

तए णं तेसिं लोयंतियाणं देवाणं पत्तेयं २ आसणाइ चलंति तहेव जाव अरहंताणं णिक्खममाणाणं संबोहणं करेत्तए-ति तं गच्छामो णं अम्हे वि मिललस्स अरहओ संबोहणं करेमि-तिकट्टु एवं संपेहेंति २ त्ता उत्तरपुरच्छिमं दिसीभायं० वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणंति० संखिजाइं जोयणाइं एवं जहा जंभगा जाव जेणेव मिहिला रायहाणी जेणेव कुंभगस्स रण्णो भवणे जेणेव मल्ली अरहा तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता अंतलिक्खपडिवण्णा सिखंखिणियाइं जाव वत्थाइं पवर परिहिया करबल जाव ताहिं इट्टाहिं जाव एवं वयासी।

भावार्थ - तब उन लोंकांतिक देवों में से प्रत्येक-प्रत्येक के आसन चिलत हुए यावत् एतत्संबद्ध पाठ पूर्ववत् ग्राह्म है। देवों ने यह विचार किया कि दीक्षा लेने को समुद्यत अरहंत भगवन्तों को देव संबोधित संप्रेरित करते हैं। इस परंपरा के अनुसार हम भी जाएं और मल्ली अरहंत को संबोधित करें। यों सोचकर उन्होंने ईशान कोण (उत्तर-पूर्व दिशा) में जाकर वैक्रिय समुद्धात द्वारा विक्रिया कर, उत्तर वैक्रिय शारीर धारण किया। यावत् जृंभक देवों की तरह दिव्यगति से संख्यात योजन पार कर मिथिला राजधानी में राजा कुंभ के भवन में, मल्ली अरहंत के समक्ष उपस्थित हुए। वे आकाश स्थित थे। छोटे-छोटे घुंघर युक्त यावत् पांच वर्णों के सुन्दर वस्त्र वे धारण किए हुए थे। हाथ जोड़े, मस्तक झुकाए, उन्होंने इष्ट यावत् मनोज्ञ वाणी में कहा -

(१६४)

बुज्झाहि भगवं! लोगणाहा! पवत्तेहि धम्मतित्थं जीवाणं हियसुहणिस्सेयसकरं भविस्सइ त्तिकटु दोच्चंपि तच्चंपि एवं वयंति ० मिल्लं अरहं वंदंति णमंसंति वंदिता णमंसित्ता जामेव दिसिं पाउब्भ्या तामेव दिसिं पडिगया। शब्दार्थ - बुज्झाहि - बोध प्राप्त करो, पवत्तेहि - प्रवर्तित करो, णिस्सेयसकरं - मोक्ष प्रद। भावार्थ - भगवन्! बोध प्राप्त करें। धर्मतीर्थ का प्रवर्तन करें। आप द्वारा प्रवर्तित धर्मतीर्थ प्राणियों के लिए हितप्रद, सुखकर एवं मोक्षदायक होगा। इस प्रकार उन्होंने दो बार-तीन बार कहा। फिर मल्ली अरहंत को वंदन, नमस्कार किया। वैसा कर जिस दिशा से आए थे, उसी ओर लौट गए।

विवेचन - तीर्थंकर अनेक पूर्वभवों के सत्संस्कारों के साथ जन्म लेते हैं। जन्म से ही, यहाँ तक कि गर्भावस्था से ही उनमें अनेक विशिष्टताएं होती हैं। वे स्वयं बुद्ध ही होते हैं। किसी अन्य से बोध प्राप्त करने की आवश्यकता उन्हें नहीं होती। फिर लोकान्तिक देवों के आगमन की और प्रतिबोध देने की आवश्यकता क्यों होती है? इस प्रश्न का उत्तर प्रकारान्तर से मूल पाठ में ही आ गया है। तीर्थंकर को प्रतिबोध की आवश्यकता न होने पर भी लोकान्तिक देव अपना परम्परागत आचार समझ कर आते हैं। उनका प्रतिबोध करना वस्तुतः तीर्थंकर भगवान् के वैराग्य की सराहना करना मात्र है। यही कारण है तीर्थंकर का दीक्षा ग्रहण करने का संकल्प पहले होता है, लोकान्तिक देव बाद में आते हैं।

तीर्थंकर के संकल्प के कारण देवों का आसन चलायमान होना अब आश्चर्यजनक घटना नहीं रहा है। परामनोविज्ञान के अनुसार, आज वैज्ञानिक विकास के युग में यह घटना सुसम्भव है। इससे तीर्थंकर के अत्यन्त सुदृढ़ एवं तीव्रतर संकल्प का अनुमान किया जा सकता है।

(१६५)

तए णं मल्ली अरहा तेहिं लोगंतिएहिं देवेहिं संबोहिए समाणे जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल जाव एवं वयासी-इच्छामि णं अम्मयाओ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए मुंडे भवित्ता जाव पव्यइत्तए। अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं करेह।

भावार्थ - लोकांतिक देवों द्वारा यों संबोधित किए जाने पर मल्ली अरहंत माता-पिता के पास आए। उन्होंने दोनों हाथ जोड़े, मस्तक पर अंजलि किए कहा-माता-पिता! आप से आज्ञा प्राप्त कर, मेरा मुण्डित होकर यावत् प्रव्रज्या लेने का भाव है।

माता-पिता बोले-देवानुप्रिये! जैसे तुम्हें सुख हो, जो अच्छा लगे, वह करो। संयम ग्रहण करने में विलंब मत करो।

प्रव्रज्या-समारोह

(१६६)

तएणं कुंभए राया कोडुंबियपुरिसे सदावेइ २ ता एवं वयासी-खिप्पामेव अद्वसहस्सं सोवण्णियाणं (कलसाणं) जाव भोमेजाणं (ति) अण्णं च महत्थं जाव तित्थयराभिसेयं उवड्ठवेह जाव उवड्ठवेति।

शब्दार्थ - भोमेजाणं - मिट्टी के।

भावार्थ - तदनंतर राजा कुंभ ने कौटुंबिक पुरुषों को बुलाया और कहा - शीघ्र ही तुम आठ हजार सोने के कलश यावत् आठ हजार मिट्टी के कलश तथा तीर्थंकरों के अभिषेक में प्रयुक्त होने वाली अन्य महत्त्वपूर्ण सामग्री को उपस्थापित करो यावत् कौटुंबिक पुरुषों ने राजा की आज्ञानुसार वैसा किया।

(१६७)

तेणं कालेणं तेणं समएणं चमरे असुरिंदे जाव अच्चुय पज्जवसाणा आगया।
भावार्थ - उस काल, उस समय, चमर असुरेन्द्र से लेकर यावत् अच्युत देवलोक तक के
सभी इन्द्र-चौसठ इन्द्र वहाँ आ गए।

(१६८)

तए णं सक्के (३) आभिओगिए देवे सद्दावेइ २ ता एवं वयासी-खिप्पामेव अद्वसहस्सं सोवण्णियाणं (कलसाणं) जाव अण्णं च तं विपुलं उवहुवेह जाव उवहुवेंति। तेवि कलसा ते चेव कलसे अणुपविद्वा।

भावार्ध - तब देवेन्द्र देवराज शक्र ने आभियोगिक देवों को बुलाया और कहा - शीघ्र ही एक हजार स्वर्णकलश यावत् तीर्थंकर अभिषेक के लिए समुचित् विपुल सामग्री उपस्थित करो यावत् आभियोगिक देवों ने शक्रेन्द्र के आदेशानुसार समस्त सामग्री उपस्थापित की। देवों द्वारा लाए गए कलश राजा कुंभ के कलशों में (दैवी प्रभाव से) अनुप्रविष्ट हो गए।

(१६६)

तए णं से सक्के देविंदे देवराया कुंभए य राया मल्लिं अरहं सीहासणंसि पुरत्थाभिमुहं णिवेसेइ अइसहस्सेणं सोवण्णियाणं जाव अभिसिंचंति।

भावार्थ - देवराज देवेन्द्र और राजा कुंभ ने मल्ली अरहंत को सिंहासन पर पूर्वाभिमुख बिठाया तथा आठ हजार सौवर्णिक आदि कलशों से उनका अभिषेक किया।

(9७०)

तए णं मल्लिस्स भगवओ अभिसेए वट्टमाणे अप्पेगइया देवा मिहिलं च सन्भितरं बाहिरियं जाव सञ्वओ समंता परिधावंति।

भावार्थ - जब मल्ली अरहंत का अभिषेक हो रहा था, उस समय कतिपय देव मिथिला नगरी से भीतर और बाहर यावत् सब ओर ईधर-उधर आ-जा रहे थे-दौड़-धूप कर रहे थे।

(१७१)

तए णं कुंभए राया दोच्चंपि उत्तरावक्कमणं जाव सव्वालंकारविभूसियं करेइ, करेता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी-खिप्पामेव मणोरमं सीयं उवहवेह ते वि उवहवेंति।

भावार्क - राजा कुंभ ने दूसरी बार सिंहासन को उत्तराभिमुख रखवाया यावत् भगवान् मल्ली को सब प्रकार के आभूषणों से विभूषित किया। कौटुंबिक पुरुषों को बुलाया और उन्हें आदेश दिया कि शीघ्र ही मनोरमा नामक शिविका-पालखी को लाओ।

कौटुंबिक पुरुष आज्ञानुरूप पालखी ले आए।

(१७२)

तए णं सक्के (३) आभिओगिए देवे सद्दावेइ, सद्दावेता एवं वयासी-खिप्पामेव अणेगखंभं जाव मणोरमं सीयं उवडुवेह जाव सावि सीया तं चेव सीयं अणुप्पविद्वा। भावार्थ - तत्पश्चात् देवेन्द्र देवराज शक्र ने आभियोगिक देवों को बुलाया और कहा-अनेक स्तंभों से युक्त यावत् मनोरमा नामक शिविका यहाँ उपस्थित करो।

उन देवों ने वैसा ही किया। देवों द्वारा लाई हुई वह शिविका भी दिव्य प्रभाव से राजा कुंभ की शिविका में समार्विष्ट हो गई।

(Fep)

तए णं मल्ली अरहा सीहासणाओ अब्भुट्टेइ २ त्ता जेणेव मणोरमा सीया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मणोरमं सीयं अणुपयाहिणी करेमाणा मणोरमं सीयं दुरूहइ, दुरूहित्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे।

शब्दार्थ - अणुपयाहिंणी करेमाणा - दक्षिणी पार्श्व में करते हुए।

भावार्थ - मल्ली अरहंत सिंहासन से उठे। उठकर जहाँ मनोरमा शिविका थी, वहाँ आए। मांगलिक दृष्टि से शिविका को अपने दक्षिणी ओर रखते हुए वे उस पर आरूढ हुए। आरूढ होकर पूर्व की ओर मुंह कर सिंहासनासीन हुए।

(৭৬४)

तए णं कुंभए (राया) अट्टारस सेणिप्यसेणीओ सद्दावेड २ त्ता एवं वयासी-तुब्भे णं देवाणुप्पिया! ण्हाया जांव सव्वालंकार विभूसिया मल्लिस्स सीयं परिवहह जाव परिवहंति।

भावार्थ - राजा कुंभ ने अठारह जाति-उपजाति के शिविकावाहकों को बुलाया। उनसे कहा—देवानुप्रियो! तुम स्नान आदि कर यावत् सब प्रकार के अलंकारों से विभूषित होकर मल्ली की शिविका का वहन करो।

शिविका वाहकों ने यावत् राजा के आदेशानुसार सब संपादित कर, शिविका को उठाया।

(৭৬५)

तए णं सक्के ३ मणोरमाए (सीयाए) दक्खिणिल्लं उवरिल्लं बाहं गेण्हइ।

ईसाणे उत्तरिल्लं उवरिल्ल बाहं गेण्हइ। चमरे दाहिणिल्लं हेट्विल्लं बली उत्तरिल्लं हेट्विल्लं अवसेसा देवा जहारिहं मणोरमं सीयं परिवहंति-

भावार्थ - देवेन्द्र देवराज शक्र ने मनोरमा नामक उस शिविका के दक्षिणी ओर के ऊपरी भाग को ग्रहण किया - वहन किया। ईशानेन्द्र ने उत्तरी ओर के ऊपरी भाग को उठाया।

चमरेन्द्र ने दक्षिणी ओर के नीचे के भाग को वहन किया तथा बली ने उत्तरी ओर के नीचे के भाग को वहन किया। बाकी के देवताओं ने यथा योग्य स्थानों से शिविका को उठाया।

(१७६)

पुळ्वि उक्खिता माणुस्सेहिं (तो) सा हट्टरोमकूवेहिं। पच्छा वहंति सीयं असुरिंदसुरिंदणागेंदा॥१॥ चल चवल कुंडल धरा सच्छंदविउळ्वियाभरणधारी। देविंददाणविंदा वहंति सीयं जिणिंदस्स॥२॥

भावार्थ - सर्व प्रथम मनुष्यों ने उस शिविका को उठाया। हर्ष के कारण उनके शरीर के रोम कूप खिले थे। तत्पश्चात् असुरेन्द्रों, सुरेन्द्रों और नागेन्द्रों ने उस शिविका को उठाया॥ १॥

इस प्रकार देवेन्द्र, दानवेन्द्र, जो जिनेन्द्र देव की शिविका को उठाए थे, उनके कानों में धारण किए कुण्डल हिल रहे थे। उन्होंने स्वेच्छा पूर्वक, वैक्रिय लब्धि द्वारा निष्पादित अनेक आभरण धारण कर रखे थे॥२॥

(eep)

तए णं मिल्लस्स अरहओ मणोरमं सीयं दुरूढस्स एमे अट्टहमंगलगा पुरओ अहाणुपुव्वीए एवं णिग्गमो जहा जमालिस्स।

भावार्थ - तत्पश्चात् अर्हत मल्ली मनोरमा शिविका पर आरूढ हुए। उनके आगे यथाक्रम आठ मांगलिक प्रतीक चले। जिस प्रकार जमालि की दीक्षा के अवसर पर इनका वर्णन आया है, वैसा यहाँ ग्राह्य है।

(৭৬८)

तए णं मल्लिस्स अरहओ णिक्खममाणस्स अप्पेगइया देवा मिहिलं आसिय जाव अब्भिंतरवास विहिगाहा जाव परिधावंति।

भावार्थ - जब अरहंत मल्ली प्रव्रज्या स्वीकार हेतु जा रहे थे, तब कतिपय देव मिथिला राजधानी में भीतर-बाहर विविध कार्य करने में प्रयत्नशील थे।

(3eP)

तए णं मल्ली अरहा जेणेव सहस्संबवणे उज्जाणे जेणेव असोगवर पायवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीयाओ पच्चोरुहइ० आभरणालंकारं० पभावई पडिच्छइ।

भावार्थ - फिर अरहंत मल्ली सहस्राप्रवन नामक उद्यान में, अशोक वृक्ष के नीचे आए। शिविका से उतरे। पहने हुए समस्त आभरण उतारे, रानी प्रभावती ने उन्हें ग्रहण किया।

(950)

तए णं मल्ली अरहा सयमेव पंचमुद्धियं लोयं करेइ। तए णं सक्के ३ मिल्लस्स केसे पिडच्छइ (२त्ता) खीरोदगसमुद्दे साहर(पिक्खिव)इ। तए णं मल्ली अरहा णमोऽत्थुणं सिद्धाणं–तिकट्ट सामाइय(च)चारित्तं पिडवज्जइ।

शब्दार्थ - खीरोदगसमुद्दे - क्षीर सागर में।

भाषार्थ - अरहंत मल्ली ने स्वयं ही पंचमुष्टिक लोच किया। देवराज शक्र ने मल्ली के केशों को ग्रहण किया तथा क्षीर सागर में प्रक्षिप्त किया।

(१≈१)

जं समयं च णं मल्ली अरहा चरित्तं पडिवजड़ तं समयं च णं देवाणुं माणुसाण य णिग्घोसे तुरियणिणाए गीयवाइयणिग्घोसे य सक्कस्सवयणसंदेसेणं णिलुक्के यावि होत्था। जं समयं च णं मल्ली अरहा सामाइयं चारित्तं पडिवण्णे तं समयं च णं मल्लिस्स अरहओ माणुसधम्माओ उत्तरिए मणपज्जवणाणे समुप्पण्णे।

शब्दार्थ - णिलुक्के - निलीन-शांत या बंद।

भावार्थ - जिस समय अरहंत मल्ली ने चारित्र स्वीकार किया उस समय देवों और मनुष्यों का कोलाहल और उन द्वारा बजाए जाने वाले, गाए जाने वाले वाद्यों, गीतों की ध्वनि, शक्रेन्द्र के आदेश से बंद या शांत हो गई।

जिस समय अरहत मल्ली ने सामायिक चारित्र स्वीकार किया, उसी समय उनको मानुष धर्मोत्तर-अत्रती मनुष्यों को न होने वाला या लोकोत्तर मनःपर्याय ज्ञान उत्पन्न हुआ।

(9¤२)

मल्ली णं अरहा जे से हेमंताणं दोच्चे मासे चउत्थे पक्खे पोससुद्धे तस्स णं पोससुद्धस्स एक्कारसी पक्खेणं पुव्वण्ह कालसमयंसि अट्टमेणं भत्तेणं अपाणएणं अस्सिणीहिं णक्खत्तेणं जोगमुवागएणं तिहिं इत्थीसएहिं अन्भिंतरियाए परिसाए तिहिं पुरिससएहिं बाहिरियाए परिसाए सिद्धं मुंडे भवित्ता पव्वइए।

भावार्थ - अरहंत मल्ली ने हेमंत ऋतु के दूसरे मास में (पौष में), चतुर्थ पक्ष में (शुक्ल पक्ष में), पौष शुक्ला एकादशी के पूर्वार्द्ध काल में, पानी रहित तेले की तपस्या कर, जब अश्विनी नक्षत्र का योग था, तीन सौ आभ्यंतर परिषद् की स्त्रियों तथा तीन सौ बाह्य परिषद् के पुरुषों के साथ मुण्डित होकर प्रव्रज्या स्वीकार की।

(१८३)

मिललं अरहं इमे अह णायकुमारा अणुपव्वइंसु तंजहा-गाथा- णंदे य णंदिमित्ते सुमित्त बलमित्त भाणुमित्ते य। अमरवइ अमरसेणे महसेणे चेव अट्टमए।।१॥

भावार्थ - मल्ली अरहंत का अनुसरण करते हुए ज्ञात वंशीय-इक्ष्वाकु कुलोत्पत्र आठ राजकुमारों ने दीक्षा ली। इनके नाम इस प्रकार हैं -

गाथा - नंद, नन्दिमित्र, सुमित्र, बलमित्र, भानुमित्र, अमरपति, अमरसेन तथा महासेन॥१॥

www.jainelibrary.org

(१८४)

तए णं (से) ते भवणवई ४ मिल्लस्स अरहओ णिक्खमणमहिमं करेंति २ त्ता जेणेव णंदीस(रव)रे० अट्टाहियं करेंति जाव पडिगया।

शब्दार्थ - अट्टाहियं - अष्टाह्निक-आठ दिवसीय महोत्सव।

भावार्थ - तदनंतर भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिष्क एवं वैमानिक देवों ने मल्ली अरहंत का दीक्षा-महोत्सव किया। वैसा कर वे नंदीश्वर द्वीप में आए। वहाँ उन्होंने अष्ट दिवसीय महोत्सव मनाया। वैसा कर वे यावत् अपने-अपने स्थानों को वापस चले गए।

(१८४)

तए णं मल्ली अरहा जं चेव दिवसं पव्वइए तस्सेव दिवसत्स पुव्वा (पच्चा)-वरण्हकाल समयंसि असोगवरपायवस्स अहे पुढिविसिलापट्टयंसि सुहासणवरगयस्स सुहेणं परिणामेणं(पसत्थेहिं अज्झवसाणेहिं)पसत्थाहिं लेसाहिं (विसुज्झमाणीहिं) तयावरणकम्मरयविकरणकरं अपुव्वकरणं अणुपविद्वस्स अणंते जाव केवल(वर)णाणदंसणे समुप्पण्णे।

भावार्थ - अरहंत मल्ली ने जिस दिन दीक्षा ली, उसी दिन के अंतिम भाग में, जब वे श्रेष्ठ अशोक वृक्ष के नीचे, पृथ्वीशिला पट्ट पर विराजित थे, शुभ परिणाम प्रशस्त अध्यवसाय तथा विशुद्ध होती हुई लेश्याओं, ज्ञानावरणीय एवं दर्शनावरणीय कर्म रज के क्षय से अपूर्वकरण में प्रविष्ट हो जाने के अनंतर (उन्होंने) अनंत यावत् अनुत्तर केवल ज्ञान प्राप्त किया।

(१८६)

तेणं कालेणं तेणं समएणं सव्वदेवाणं आसणाइं चलंति समोसढा सुणेंति अद्वाहिय महिमा० णंदीसरे (जाव) जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया। कुंभए वि णिग्गच्छइ।

भावार्थ - उस काल उस समय सब देवों के आसन चलित हुए। वे वहाँ समवसृत हुए-

आए। उन्होंने धर्मोपदेश सुना। नंदीश्वर द्वीप में जाकर अष्ट दिवसीय महोत्सव किया। फिर वे जिस दिशा से आए थे, उसी दिशा में वापस लौट गए। राजा कुंभ भी वापस लौट गया।

छहों राजा दीक्षित

(৭৯৬)

तए णं ते जियसत्तु पामोक्खा छप्पि य रायाणो जेट्ट पुत्ते रजे ठावेता पुरिससहस्स वाहिणीयाओ दुरूढा सन्विद्वीए जेणेव मल्ली अरहा जाव पजुवासंति।

भावार्थ - तत्पश्चात् जितशत्रु आदि छहों राजा अपने-अपने ज्येष्ठ पुत्र को राज्य सौंप कर एक सहस्र पुरुषों द्वारा वहनीय शिविकाओं पर आरूढ हुए। समस्त ऋदि एवं वैभव के साथ वे आरहंत मल्ली के सान्निध्य में उपस्थित हुए, पर्य्युपासना करने लगे।

(955)

तए णं मल्ली अरहा तीसे महइमहालियाए कुंभगस्स रण्णो तेसिं च जियसनुपामोक्खाणं धम्मं(परि)कहेइ। परिसा जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया। कुंभए समणोवासए जाए पडिगए पभावई य।

भाषार्थ - तब अरहंत मल्ली ने विशाल परिषद् को तथा राजा कुंभ को और जितशतु आदि छहों राजाओं को धर्मोपदेश दिया। परिषद् जिस दिशा से आई थी, उसी ओर लौट गई। राजा कुंभ श्रमणोपासक बना-उसने श्रावकव्रत स्वीकार किए और वापस लौट गया। प्रभावती भी श्रमणोपासिका बनी और वापस लौट गई।

(3=6)

तए णं जियसत्तुपामोक्खा छप्पि रायाणो धम्मं सोच्चा आलित्तए णं भंते! ज्ञाव पच्चइया (जाव) चोद्दसपुव्विणो अणंते केवले सिद्धा।

शब्दार्थ - आलित्त - प्रज्वलित।

भावार्थ - जितशत्रु आदि छहीं राजाओं ने धर्म सुना। वे बोले-भगवन्! यह संसार जरा-मरण आदि विविध दुःखों से प्रज्विलत है यावत् उन्होंने प्रव्रज्या स्वीकार की। उन्होंने क्रमशः चतुर्दश पूर्वों का ज्ञान, अनंत केवलज्ञान और सिद्धत्व प्राप्त किया।

(980)

तए णं मल्ली अरहा सहसंबवणाओ णिक्खड़ २ त्ता बहिया जणवय विहारं विहरड़। भावार्थ - तदुपरांत अरहंत मल्ली ने सहस्राम्रवन—उद्यान से प्रस्थान किया। वे विविध जन-पदों में विहार करते रहे।

चतुर्विध संघ-संपदा (१६१)

मिलस्स णं (अरहओ) भिसगपामोक्खा अट्टावीसं गणा अट्टावीसं गणहरा होत्था। मिललस्स णं अरहओ चत्तालीसं समणसाहस्सीओ उक्को०। बंधुमई पामोक्खाओ पणपण्णं अज्जिया साहस्सीओ उक्को०। सावयाणं एगा सयसाहस्सी चुलसीइं सहस्सा० सावियाणं तिण्णि सयसाहस्सीओ पण्णिट्टं च सहस्सा छस्सया चोइसपुट्वीणं वीससया ओहिणाणीणं बत्तीसं सया केवलणाणीणं पणतीसं सया वेउव्वियाणं अट्टसया मणपज्जवणाणीणं चोइससया वाईणं वीसं सया अणुत्तरोव-वाइयाणं।

भावार्थ - अरहंत मल्ली के भिषग आदि अडाईस गण थे तथा अडाईस गणधर थे। मल्ली अरहंत के चालीस सहस्र उत्कृष्ट साधु-संपदा थी। बंधुमती आदि पचपन सहस्र आर्थिका-साध्वी संपदा थी। एक लाख चौरासी सहस्र श्रावक संपदा थी। तीन लाख पैंसठ हजार श्राविका संपदा थी।

अरहंत मल्ली के छह सौ चतुर्दश पूर्वधर, दो हजार अवधिज्ञानी, तीन हजार दो सौ केवलज्ञानी, तीन हजार पांच सौ वैक्रिय लब्धिधारी, आठ सौ मनःपर्यायज्ञानी, एक हजार चार सौ वादी तथा दो हजार अनुत्तरोपपातिक-एक भव के पश्चात् मुक्तिगामी, के रूप में उत्कृष्ट साधु संपदा थी।

विवेचन - उपर्युक्त पाठ में जो भी सम्पदा का वर्णन आया है। वह सब वर्तमान में एक साथ होने वाली उत्कृष्ट संख्या समझनी चाहिए। पूरे शासनकाल को मिलाकर तो इसे कई गुणी ज्यादा संख्या हो सकती है। सम्पदा का अर्थ "वर्तमान में विद्यमान सम्पत्ति" होता है। जैसे किसी के पास एक साथ में मौजूद चल-अचल सम्पत्ति एक लाख जितनी हो उसे ही लखपित कहा जाता है किन्तु जीवन भर की कमाई को जोड़कर लाख रुपया होवे वह लखपित नहीं कहलाता है। वैसे ही यहाँ पर भी समझना चाहिए।

(987)

मिल्लिस्स (णं) अरहओ दुविहा अंतगडभूमी होत्था तंजहा-जुयंतकरभूमी परियायंतकरभूमी य जाव वीसइमाओ पुरिसजुगाओ जुयंतकरभूमी दुवास परियाए अंतमकासी।

भावार्थ - अरहंत मल्ली के तीर्थ में दो प्रकार की अन्तकृद् भूमि हुई। युगान्तकर भूमि तथा पर्यायान्तर भूमि। युगान्तकर भूमि शिष्य-प्रशिष्य के रूप में-पाटानुपाट, बीस पाटों तक हुई। बीसवें पाट के बाद फिर आगे के अनुक्रम के पाट वालों में से किसी ने मोक्ष प्राप्त नहीं किया। बीच के कुछ पाट छोड़ने के बाद कोई मोक्ष गया हो तो कोई बाधा नहीं है। मल्ली अरहंत को केवलज्ञान प्राप्त होने के दो वर्ष का पर्याय होने पर पर्यायान्तर भूमि हुई। तब जिन्होंने मोक्ष प्राप्त किया, वे पर्यायान्तकर भूमि के अन्तर्गत हैं।

विवेचन - इस सूत्र में प्रयुक्त युगांतकर एवं पर्यायान्तकर शब्द अपना एक विशेष पारिभाषिक अर्थ लिए हुए हैं। शिष्य-प्रशिष्य के रूप में बीस पाट तक साधु मुक्त होते रहे, इसे युग शब्द द्वारा आख्यात किया गया है। इसका अभिप्राय यह हुआ - अरहंत मल्ली के पश्चात् पहले पाट से लेकर बीस पाट तक होने वाले साधुओं ने मुक्ति प्राप्त की। तत्पश्चात् उनके तीर्थ में किसी ने मुक्ति प्राप्त नहीं की।

'भूमि' शब्द कालवाची है। पर्यायान्तकर शब्द का संबंध तीर्थंकर मल्ली के सर्वज्ञत्व प्राप्त करने के दो वर्ष के पर्याय से संबद्ध है।

अर्थात् इस द्विवर्षीय काल के बाद जिन्होंने मुक्ति प्राप्त की वे पर्यायान्तकर भूमि में आते हैं। तीर्थंकर मल्ली के सर्वज्ञत्व प्राप्ति के इन दो वर्षों के पर्याय से पूर्व किसी भी साधु ने मुक्ति प्राप्त नहीं की।

(**\$3**P)

मल्ली णं अरहा पणुवीसं धणूइं उद्घं उच्चत्तेणं वण्णेणं पियंगुसमे समचउरंस-संठाणे वज्जरिसहणाराय संघयणे मज्झदेसे सुहंसुहेणं विहरित्ता जेणेव सम्मेए पव्वए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता संमेयसेलिसिहरे पाओवगमणुववण्णे।

भावार्थ - अरहंत मल्ली ऊँचाई में पच्चीस धनुष थे। इनका वर्ण प्रियङ्गु के सदृश नीला था। उनका दैहिक संस्थान समचतुरस्त्र तथा संहनन वज्रऋषभनाराच था। वे मध्य देश सुखपूर्वक विहार कर सम्मेद शिखर पर आए। उसके शिखर पर उन्होंने पादोपगमन अनशन स्वीकार किया।

अर्हत् मल्ली ः सिद्धत्व-प्राप्ति (१६४)

मल्लीणं अरहा एगं वाससयं अगारवासमज्झे पणपण्णं वाससहस्साइं वाससयऊणाइं केविल परियागं पाउणिता पणपण्णं वाससहस्साइं सव्वाउयं पालइता जे से गिम्हाणं पढमे मासे दोच्चे पक्खे चित्तसुद्धे तस्स णं चेत्तसुद्धस्स चउत्थीए भरणीए णक्खत्तेणं अद्धरत्तकालसमयंसि पंचिहं अज्ञियासएहिं अन्भितिरयाए परिसाए पंचिहं अणगार सएहिं बाहिरियाए परिसाए मासिएणं भत्तेणं अपाणएणं वग्धारियपाणी खीणे वेयणिजे आउए णामे गोए सिद्धे। एवं परिणिव्वाणमहिमा भाणियव्वा जहा जंबूदीवपण्णत्तीए णंदीसरे अट्टाहियाओ पडिगयाओ।

भावार्थ - अरहंत मल्ली एक सौ वर्ष पर्यंत घर में रहे। सौ वर्ष कम पचपन हजार वर्ष (चौवन हजार नौ सौ वर्ष) केवली पर्याय का पालन किया। इस तरह उन्होंने कुल पचपन हजार वर्ष का आयुष्य भोगा। तदनंतर ग्रीष्म ऋतु के प्रथम मास-चैत्रमास के शुक्ल पक्ष की चतुर्थी तिथि में, जब भरणी नक्षत्र के साथ चन्द्र का योग था, आधी रात के समय, आभ्यंतर परिषद् की पांच सौ साध्वियों तथा बाह्य परिषद् के पांच सौ साधुओं के साथ, बिना पानी के एक मास

का अनशन कर, दोनों हाथ लंबे रख कर वेदनीय आयुष्य नाम तथा गोत्र संज्ञक चार अघाति कर्मों का क्षय हो जाने पर अरहंत मल्ली सिद्ध हुए।

जंबूद्वीप प्रश्नप्ति में वर्णित परिनिर्वाण महिमा-महोत्सव का वर्णन यहाँ योजनीय है। देवों द्वारा नंदीश्वर द्वीप में अष्टदिवसीय निर्वाण महोत्सव किया गया। तदनंतर वे अपने-अपने स्थानों पर चले गए।

(१९५)

एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्टमस्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते - त्तिबेमि।

भावार्थ - आर्थ सुधर्मा ने कहा - हे जंबू! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने आठवें ज्ञाताध्ययन का इस प्रकार वर्णन किया। मैंने जैसा सुना, वैसा ही तुम्हें कहा है।

गाथा:- उग्गतव संजमवओ पगिडफलसाहगस्सवि जियस्स। धम्मविसएवि सुहुमावि होइ माया अणत्थाय॥१॥ जह मिल्लस्स महाबलभवंमि तित्थयरणामबंधेऽवि। तवविसय थेवमाया, जाया जुवइत्तहेउत्ति॥ २॥

॥ अहमं अज्झ्यणं समत्तं।।

शब्दार्थ - पगिष्ठफलसाहगस्स - उत्तमफलप्रद साधना युक्त, जियस्स - धार्मिक परंपरानुमोदित उत्तम आचार युक्त।

भावार्थ - उत्कृष्ट फलप्रद, मयादानुरूप उग्र तप तथा संयम के होते हुए भी यदि धार्मिक आचार में जरा भी माया या छल हो तो वह अनर्थकारक होती है॥ १॥

महाबल के भव में जैसे मल्ली द्वारा तीर्थंकर गोत्र का बंध किए जाने पर भी तपश्चर्या में माया का प्रयोग करने के कारण, उन्हें स्त्री के रूप में जन्म लेना पड़ा॥ २।।

।। ज्ञाताधर्मकथांग भाग १ समाप्त।।



अधिक भारतीय है। असम अधिक भारतीय सुधने जीन सरकृति स्थान सुध अधिक अधिक भारतीय सुधने जीन सरकृति स्थान सुध अधिक अधिक सुध अधिक भारतीय सुधने जीन सरकृति स्थान सुध सुध अधिक सुध अधिक अधिक सुध अधिक अधिक सुध अधिक भारतीय सुधने जीन सरकृति स्थान सुध सुध अधिक सुध अधिक सुधने सु

विकास संव का निर्माद स्थान जैन संस्कृति स्थान संव अध्वत मारतीय सुधनं जैन संस्कृति स्थान संव अध्वत मारतीय सुधनं जैन संस्कृति स्थान संव आस्त्रित भारतीय सुधनं जैन संस्कृति स्थान संव अस्त्रित भारतीय सुधनं जैन संस्कृति स्थान संव अखिल भारतीय सुधनं जैन संस्कृति स्थान संव